.

.

THE

BHAŢŢIKÂVYA

OF

BHATTI

WITH

The Commentary (Jayamangalâ)

OF

JAYAMANGALA.

EDITED BY

THE LATE VINÂYAK NÂRÁYAN SHÂSTRÎ JOSHI,

WÂSUDEV LAXMAN SHÂSTRÎ PANSÎKAR,

Sixth Edition.



PUBLISHED BY

PÂNDURANG JÂWAJÎ,

PROPRIETOR OF THE "NIRNAYA-SÂGAR" PRESS,

BOMBAY.

1920.

Price 3 Rupees

[All rights Reserved by the publisher.]

Publisher:—Pandurang Jawaji, | at the 'Nirnaya-sagar Press, Printer:—Ramchandra Yesu Shedge, | 23, Kolbhat Lanc, Bombay

The state of the s

॥ श्रीः॥

महाकविश्रीभट्टिविरचितं

महिकाच्यम्।

जयमङ्गलकृतटीकया जयमङ्गलया समेतम् ।



र्गनिवासिना नारायणात्मजेन विनायक-शास्त्रिणा संस्कृत्य संशोधितम्।

(तस्येदं षष्टं संस्करणं)

पणशीकरोपाह्नविद्वद्वरलक्ष्मणशर्मतनुजनुषा वासुदेवशास्त्रिणा संस्कृतम् ।

इदं च

सुम्बय्यास्

पांडरंग जावजी 🗸

इत्यनेन ''निर्णयसागरा''ख्यमुद्रणयन्त्राळयाधिपतिना स्वीयेऽङ्कनाळये रा. य. शेडगेद्वारा मुद्रयित्वा

प्रसिद्धिं नीतम्।

~~*******~~

सकाटदाः १८४१, सिस्ताटदाः १९२०-



श्री-भद्दिकाव्य-सुधारणा—

यद्यपि वहु नाधीषे तथापि पठ पुत्र ! व्याकरणम् । स्वजनः व्यजनो मा भूत् सकलं शकलं सकृत् शकृत्॥ अ-विदित-श-प-स-विशेषा वाणी वक्रात् विनिर्गता येषां। गुद-वदन-विवर-भेदो रदनैरेव किल लक्ष्यते तेषाम् ॥ अष्टाध्यायी जगन्माता, उमर-कोशो जगत्पिता। सद्दि-काव्यं गणेदाश्च त्रयीयं सुख-दाऽस्तु वः॥ शब्द-वाक्य-पद-च्छेद-स्थूलाक्षर-विशेषदक् । सुधारकैः सुधार्यासौ पुस्तक-स्थापने यदि- ॥ स्थाप्येते गद्य-पद्येषु सच्छात्राऽनुग्रहेच्छया, । मूलौदेवार्थ-सिद्धिः स्यात् किं टीकायाः प्रयोजनम् ॥ अ-संस्कारं वि-कोशं चांऽपच्छन्दश्चानलङ्कृति। नीरसं तद्भवेत्काव्यमित्याहुः काव्य-कोविदाः ॥ व्याकृत्या कोश-छन्दोभ्यामलङ्कत्या रसेन च। पञ्चकेनान्वितं काव्यं भट्टि-काव्यं विराजते ॥ व्याकृति-चषके पेयं राम-राज-कथामृतम्। शब्द-वाक्य-पद-च्छेद-स्थूलाक्षर-विशेषहक् ॥ सर्वेषामेव ब्रन्थानामेवं भाव्या सुधारणा ।

कै० वि० ना० शा०.

अन्ततः शिक्षण-प्रन्था अप्येवं स्युः सुधारिताः॥

^{. (} ভাণেণ). २. (ভাণেলী जाते). ३. मूल्यन्थात्, पक्षे बाल-ফিণ্যাত্ৰ. , पद्ये स्पष्टग्,

विशेष-सचनाः

१-सदर्हू प्रंथ छापण्याची व्यवस्था अशी ठेविली आहे कीं— विद्यार्थ्यांना पदच्छेद करण्यास सुलम पडावें सणून संध्यक्षरावर वैदिक स्वरितस्वराप्रमाणें '।' अशी उभी रेषा दिली आहे; तिचा अर्थ—ज्या अक्षरावर ही '।' उभी रेषा दिली आहे तें अक्षर उमें चिरून द्याचा पूर्वभाग पूर्वपदांत व उत्तरभाग उत्तरपदांत सामील करावा, असें समजावें. जसें प्रथम ऋोकांत 'इत्युदाहृतः' आणि 'पितरसुपागमत्' ह्या दोहोंवर '।' ही रेपा आहे. आतां त्यु=त्यू+उ=त्यु; सु=म्+उ=सु; ह्याण्जे इत्यू, (इति) उदाहृतः; पितरम् उपागमत् अशीं पदे समजावींत. इति याचें इत्यू हें पाणिनीच्या 'इको यणिच'या सूत्रानें

(प्रातिपदिक) छेदही '—' ह्या चिह्नानें दाखिवला आहे. आतां जेथें संधीमुळें '—' ह्या चिह्नानें शब्दच्छेद दाखिवतां येत नाहीं, तेथें संघ्यक्षराखालीं वैदिकानुदात्तखराप्रमाणें '—' अशी आडवी रेषा दिली आहे. ह्मणजे तीच शब्दच्छेदरेषा खालीं ओढली आहे. जसें ३ स्रो-

झाछें आहे; ह्याप्रमाणें पदच्छेद दाखवून सामासिक नामांत शब्द–

कांत (सर्वेषु-भृताम्) र्वे यांत र्व+इ=्वें, झणजे सर्व-इपु-भृताम् असे जाणावें. येथे सर्व+इपु=सर्वेषु हें पाणिनीच्या 'आहुणः' या सूत्रानें झालें आहे असें समजावें. स्वत्पविराम चिह्नाचा उपयोग करून वाक्येंही निरिनराळीं तोहन दाखविळीं आहेत. झाप्रमाणें मूळ यंथाळा वाघ न येतां वाक्य-पदशब्दच्छेद दर्शविळा. परंतु किसेक स्थलीं 'अमून् नृपः' (ऋोक ११). 'ख्रीभिर युतानि' (ऋो०७),

'ज्ञाताऽऽ शयम् तस्य' (क्षोक ११). असा पदच्छेद दाखविला आहे. त्या स्थळी 'अभूजृपो,' 'स्लीमिर्धुतानि,' 'ज्ञाताशयस्तस्य'

आहे. त्या स्वर्धी 'अभूजृपो,' 'स्नीभिधेतानि,' 'ज्ञाताशयस्तस्य' असेंच पाठकाठी द्वणार्वे । सयुक्त पाठ दुर्बोघ नाहीं टीकेंतन कोठें कोठें फेरफार केला आहे. किलेक ठिकाणीं टीका कायम ठेवून मूळांत फेरफार केला आहे. जसें १४५५ श्लोकांत 'असार्यत महीपतेः' असा जयमङ्गलाटीकेचा पाठ आहे, परंतु मिल-नाथाच्या टीकेंत 'असार्यत महीपतिः' असा पाठ आहळतो, आणि हा जरी (माइया अस्पमतीला) योग्य नाटतो तथापि सर्व पुस्त-कांत जयमङ्गला टीका असल्यामुळें वरीलच पाठ (असार्यत महीपतेः) वेतला आहे आणि दुसरा पाठ 'असार्यत महीपतिः' हा खालीं टीकेंत दिला आहे.

'श्रायेण मुह्यन्ति हि ये लिखन्ति' ह्या नियमानें हा प्रथमच प्रसंग असल्यामुळें ज्या कांहीं नजरचुकीनें प्रकृत पुस्तकांत चुका राहिल्या असतील त्या मदेशविद्दसुहज्जनांनीं पत्रद्वारा कळविल्यास आदरपूर्वक स्वीकारून आगामि मुद्रणांत सुधारीन इ० ६०.

क० वि० जो ०.

भहिकाव्यस्य काण्ड-वर्ग-पद्य-संख्याऽनुकमः-

| भाग | विभागाः (वर्गाः) २२ | | | | | | |
|--------------------------------|-----------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------|---------------------------------------------------------------------------------------------|--|--|--|--|--|
| (काण्ड ४ | व्याकरण-रीत्या परिच्छेदाः (वर्गाः) | कथानक-रीला सर्गाः | | | | | |
| १-प्रकीणै-क्षाण्डः- | ং— ३— ३— ३— ४— ४,९७—१०० স্থাবি০, १०१—१०ইস १०४—४ आमधि० | १-राम-संभवः २-सीता-परिणयः ३-राम-प्रवासः ४ ५-सीता-हरणः राम- प्रवासः | | | | | |
| , | १-५-७,प्र०,८-१० दुहादि-द्विकमांथि ११-१५ प्र०, १६-३४ सिजधि ६५-३९ अभिवि०, ४०-४५ प्र ४६-६७ क्रत्याधि०, ६८-७० प्र ७१-८६ निरुपपदकुद्धि०, ८७- | o, o, | | | | | |
| २~अधिकार-काण्ड: प्रकीर्ण-(संक: | ९४—१०८ खज्ञधि०, १०९—११ डाधि०, ११२—१४३ सोपपदकुद्धिः र-१—२७ ताच्छीलिककृद्धि०, २८—३ निर्धिकारकृद्धि०, ३४—६० भावेकर्त कृद्धि०, ६८—७७ स्त्रीलिङ्गाधि०, ७ | १ ७-सीता-ऽन्वेपणम् २, ३ | | | | | |
| २ –अभिकार–काष | —८५ कृद्धि०, ८६—९० प्र०, ९१ —१०६ जित्नाधि०, १-१—६९ जात्मनेपदाधि०, ७०—८ कारकाधि०, ८५—९३ कर्मप्रवचर्न याधि०, ९४—१३१ जनभिष्टितेऽधि० ४-१—७ प्र०, ८—११ सिचिन्न्यधि० १२—२२ इट्प्रतिपेषाधि०, २३—५। इड्विस्यधि० ५८—६३ सत्याधि० ६७—९१ प्रवाधि०, ९२—१०० | ४ - ९-मारुति-संयमः | | | | | |
| ? | १अलङ्कार-दर्शनम्-शब्दाऽलङ्कारः १२१; अर्थाऽलङ्कारः २२७४; २माधुर्य-प्रदर्शनम् १भाविकत्व-प्र० ४भाषा-समावेशः | १०-सीताऽभिज्ञानद्शैनम ११-छङ्कागतप्रभात-वर्णनम् १२-विभीपणाऽऽगमनम्, १३-सेतु-वन्धनम्, | | | | | |
| ४-तिखन्त-माण्ड:- | १—हिङ्—विलसित: (प्. म्. का.)— २—छङ्—वि० (सा. सू. का.)— ३—ॡर—वि० (—भ. का.)— ५—ल्ड् —वि० (श. भू. का.)— ५—ल्ड् —वि० (वर्त. का.) ६—हिङ्—वि० (विध्यर्थः) ७—लोट्—वि० (सा-र्थः) ८—ॡइ वि० (सं र्थ) ९—नुट-वि० (स म का | १४-शर-बन्धः १५-कुन्भकर्ण-वृधः १६-रावण-विलापः १७ | | | | | |
| | | 7 7 | | | | | |

श्लोकानुक्रमणिका—

| श्होकाः | 88 | होकाङ्काः | श्लोकाः | | શ્હે | ोकाङ्काः | |
|-----------------------------|-----------------------------------------|----------------|-------------------------------|-------|-------|--------------|---|
| अ र. | , | | अटाट्यमानः • | ••• | | 980 | |
| अकम्पनस्ततो० . | 18 + 33 | ११५० | अतलरच तान् | | | १२४१ | |
| अकुप्यदिन्द्रजित् • • | | १३७८ | अतस्तंभदयम् | | | १२६८ | |
| अकृर्दिष्ट व्यकारी च | | १२२६ | अताप्यस्योत्तमम् | | *** | ३२४ | |
| अकृष्टपच्याः • • • | | ३४९ | अतिकायाद्विना० | | | १३०७ | |
| अकोकूयिष्ट० | | १२९५ | अतिकाये हते | ••• | | १३०६ | |
| अकुधचाभ्यधाद् | | १२०० | अतिकान्ता लया | | | १५९९ | |
| अक्रेरयमसिना | . 614 | ५१२ | अतिप्रियलात्० | • • • | * * * | ४०२ | |
| अक्षारिषुः शराम्भांसि | ••• | ६८१ | अतीते वर्धके० | ••• | | ४५२ | |
| अ क्षेमः परिहासोऽयम् | | ३०६ | अतुल्यमहसा० | ••• | | २१२ | |
| अक्णोः पतन्नीळ० 🔐 | | ९२० | अतुषत्पीठम्० | • • • | | ११८९ | |
| अखण्डामानम् | ., | 386 | अतुष्यनमराः सर्वे | *** | *** | १३९३ | |
| अगाधत ततो | | ५४३ | अतृणेद् शकजित् | ••• | • • • | १३६१ | |
| अगोपिष्टां पुरीम् ॰ | | १२९४ | अतौत्सीद्भदया | ••• | • • • | १२१८ | |
| अग्निः प्रमादेन० 🔐 | | <i>લ્પા</i> પ્ | अथ क्रमात् | ••• | • • • | ४९२ | |
| अग्निचित्सोम० | | ४१९ | अथ जगदुरनीचैः | ••• | *** | २७ | |
| अभिष्टोगादि० | | ७५२ | अथ तसुपगतम् | ••• | ••• | 3606 | |
| अप्रीनवरिवस्यंश्व | | १३९७ | अथ तीक्ष्णायसैः | ••• | *** | १८६ | |
| अग्याहितजनप्रहे | | ७८४ | अथ दह्युः | ••• | ••• | ८६० | |
| अग्रसिष्ट व्यथाविष्ट० | | १२४३ | अथ नयन० | ••• | | 660 | |
| अघानि ताडका॰ | | २२३ | अध पुरुजनयोगात् | ••• | | ८२ | |
| अघुरंस्ते महा॰ | | 9806 | अथ मृदु॰ ••• | ••• | • • • | ४७४ | |
| अज्ञदेन समं | | १२५८ | अय लक्ष्मण० | | * • • | -5 te 3 | |
| अङ्गदेनाऽहसाताम् | | १२९६ | अथ छुलित ० | | | ८ ٩٩ | ~ |
| अन्पंयश्र यूपासम् . | | Jucare 1 | | | 41+ | १६२० | |
| अच्छेतां च महाऽऽत | गुना ० | १२७२ | अथ संपत्तः | ••• | | ૧ <u></u> ૭૬ | |
| att ater at 19 | • • • • • • • • • • • • • • • • • • • • | ६ % [| अथ चन्ताताः अथाज्ञितोरस्कम् | | | ९५२ | |
| -10-11-0 | ••• | १२ ० ० | अथाश्वतारस्य अथानुकूलान् | | *** | ९२२ | |
| Transport of the second | | १२९९ | 1 | ••• | ••• | २६६ | |
| अजीगणद्दाशः • | ••• | ەن | अथाऽऽयस्यन् अथार्घ्यं मधुः | *** | - • - | 3 6 9 | |
| O | | १५१६ | ल्याप्य गञ्ज | | | , - | |
| | | | | | | | |

* A supplemental of

| <i>'</i> छोकाः | क्षोकाड्डाः | क्षेकाः | श्लोकाङ्काः |
|-----------------------|-------------|-----------------------|------------------|
| अथाऽऽलम्ब्य | ३२६ | अनुजिज्ञासतेवाऽथ | ५७७ |
| अथाऽऽछुलोके | ٠ ٧٩ | अनुमन्ताखहे नावां | ••• १६ १३ |
| अथास्तमासेदुषि० ··· | 6619 | अनुष्ठाय यथादिष्टम् | 9488 |
| अथोपश्चरदे | ४४८ | अरुतोद्यं न तत्रास्ति | ३४५ |
| अदालिपुः शिलाः | १२१९ | अनेकशो निर्जित० | ৩ৎ |
| अदिहंश्वन्दनैः | 9800 | अन्तःपुराणि पौलस्यम् | १४९५ |
| अदीदिपत्ततो वीर्यम् | १२६३ | अन्तर्घत्स्त्र रहु॰ | २१५ |
| अदक्षताम्भांसि | ३७ | अन्तर्निविष्टो | 4 |
| अदृश्यन्ताऽनिमित्तानि | 9885 | अन्याऽऽसक्तस्य | 606 |
| अदेवीद्रन्धु० | ६६४ | अन्ये त्वलङ्घिषुः | १२१३ |
| अदोहीव | ३२५ | अन्योन्यं सं | 486 |
| अद्धि त्वं पञ्चगव्यम् | 9482 | अन्वनैषीत्ततो० | ४२८ |
| अद्यो द्विजान् | ६१ | अन्वयाऽऽदि॰ | ٠٠٠ د ١٥٠ |
| अदा सीता मया | ६४२ | अपक्रकुस्भाविव | ९७३ |
| अद्राष्ट्रांतंरघु॰ | 9२२० | अपव्यमायती | १४६३ |
| अधर्मात्रात्रसः | १३८० | अपप्रथद्धणान् | १२५३ |
| अधिगतमहिमा | ८८२ | अपमन्युस्ततो० | १५०१ |
| अधिजलिध | ১৩६ | अपरिमित् , | ८७१ |
| अधिज्यचापः | 46 | अपर्राक्षित • | 640 |
| अधि रामे | ६३५ | अपलापयमानस्य | ५८६ |
| अधीयत्रात्म० | २४६ | अपहरदिव | ১৩५ |
| अध्यगीष्टार्थ० | १२६९ | अपि तत्र रिपुः | १५७० |
| अध्यङ् शस्त्र | २१९ | अपि स्तुह्यपिसेधा॰ | ६३४ |
| अध्यायच्छक्रजित् | ००१६० | अपिस्फवत्खसामर्थ्य | १२८० |
| अध्यासिसिपमाणे | 450 | अपूजयेश्वतुर्वक्रम् | १३५१ |
| अध्यासीत् ः | 499 | अपूजयन् कुलज्येष्ठान् | १३४८ |
| अध्वरेष्वभि० | ∙∙∙ ૧૧૪૨ | अपूपुजन् विष्टर॰ | ٠٠٠ ٧٦ |
| अध्वरेष्टिनाम् | ••• | गारयत्रभः | ••• १४०२ |
| अनंसीचरणो | ••• ४५४ | अपृष्टी नु व्यवास | १४७५ |
| अनंसी द्भूभेरेण | ··· १२०६ | अपौहद्वाणवर्षम् | १४२९ |
| अनर्दिषुः कपि० | ••• १२१६ | अप्रतिसाब्धः | ७६२ |
| अनिमित्तान्यथा० | ٠٠٠ ٩٦٧٤ | अवभाजत्ततः | १२६४ |
| अनिवृतं भूतिषु | 9009 | अबिभ्रजत्ततः | १२७४ |
| भनुजानीहि | १५३२ | समायत यथा॰ | 488 |
| - | 1744 | भभावे सवताम् | ५ १९ |

| श्लोकाः | श्लोकाङ्गाः | श्लोकाः | श्लोकाङ्काः |
|----------------------|-------------|---------------------|--------------|
| अभिज्ञानं | ४८४ | अवसन्नरुचिम् | ८४३ |
| अभिद्योतिष्यते | ••• ६३१ | अवसायो॰ | ••• ३७२ |
| अभिनच्छत्रु० | १४१२ | अवसाव नगेन्द्रेषु | ¥30 |
| अभिन्यविक्षयाः | ६२२ | अवसितं इसितम् | ۷٩٤ |
| अभिमानफळं जानम् | હજ્૪ | अवसेयाश्च कार्याणि | 9426 |
| अभिमानफलं शेक्तम् | ८०३ | अवाक्शिरसम् | 989 |
| अभियाता | ८३० | अवादीत्तिष्ठते॰ | ६८२ |
| अभिष्यन्तः | VVV | अवादीन्माम् | 9990 |
| अभीषयन्त | ٠ ٧٥٧ | अवाद्वायुः | ६०३ |
| अभूकृषो ृ | 9 | अविवेष्टत्रुपा० | १२४२ |
| अभेदि च शरैः | १२४६ | अवीततृष्णों • | 909 |
| अमेषुः कपयो० | ••• १२३८ | अवोचत्कुम्भ० | ११९४ |
| अमंस्यत भवान् | १५७७ | अव्ययमुप • | ५५६ |
| अगन्थीच परानोकम् | १२२७ | अन्यणों गिरि॰ | ६९२ |
| अमर्षित्मिव | ५३८ | अशनिरयम् | ৫৬৬ |
| अभर्षों में परः | १३२५ | अशप्त निहुवानो० | ६१६ |
| अमलमणि॰ | س،م م م م | अशान भरतात् | १५५३ |
| अभितम्पचम् | ३८८ | अशिश्रवन्नात्ययिकम् | 90V |
| अमृडिला | ··· 430 | अश्यवनस्यतः | १३६३ |
| अम्भांसि स्वमकुम्भेन | ૧५२३ | अशोभिष्ट | १२३५ |
| अयुक्तमिदमिखन्ये | १३९५ | अश्रोतद्वधिरम् | ••• १४२३ |
| अयं नियोगः पत्युस्ते | १५४५ | अश्रीतिपवतीयन्ती | २७५ |
| अयं मैथिल्यभिज्ञानम् | ક્ક્૦ | अश्वान् वालिसुतो० | 9749 |
| अरण्ययाने | 933 | अश्वान् बिभीषणो० | ••• १४३६ |
| अरविन्द्रेणु॰ | १०३७ | अष्टधण्टां महा॰ | १४३८ |
| अरासिष्ठः | ६८४ | असंस्कृत्रिम० | ••• १७५ |
| अरोदीद्राक्षसानीकम् | १३९४ | असद्धन्धु॰ | 609 |
| अर्थेन संस्ता . ••• | १३३१ | असंप्राप्ते | ••• ६५४ |
| अर्थोत्थिता ० | 605 | असितोमर॰ | १०६५ |
| अखिगणविस्रोल॰ | ••• वै०ई६ | असीतो रावणः | २८८ |
| असोठिष्ट च भू० | १२३७ | असुलभहरिसंचारम् | १०२९ |
| अवगाढं गिरिजालम् | १०३५ | असृष्ट्रयो॰ | ٠٠٠ ٢٧ |
| अव्याहे | ४८२ | असौ दघद् | ••• ६६८ |
| अवर्यपान्यम् | ••• ३५५ | | ૧ ૨५૧ |
| ٥ | . ३७१ | ं अस्तुवन् देव | ୩•୩6୍ |

| श्होकाः | | Ą | ोकाङ्काः | श्लोकाः | | rej | ोकाङ्काः | ; |
|--------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------|-------|-------|---------------|--------------------------|---------|-------|-----------------|---------------|
| अस्तुवन् वन्दिनः | *** | | १३५४ | आढ्यंकरण० | ••• | | 804 | • |
| अस्तृणाद्धिकम् | | , | 9886 | आतिश्यमेभ्यः | ••• | ••• | १२४ | |
| अर्ख्वाकोऽसा० | | | १६७ | आतिष्ठद्व | | p # 6 | 942 | |
| अस्पन्दिष्टाऽक्षि | *** | • • • | १२०८ | आत्मनः परि० | | | 420 | |
| अस्याकमुक्तम् | | | १२५ | आत्मम् भ रिस्त्वं | ••• | | . ६0 | , |
| अस्यन्दिनुदु॰ | | | ६०८ | आत्मान म पजानान | | ••• | ५६८ | * |
| अस्यन्नहष्॰ | ••• | | ৬३८ | आत्रिकूटम् | ••• | | ८०२ | |
| अस्रसचाऽऽहतो० | | • 4 0 | १२६५ | आददीष्वं महाहीं | भे | | 9406 | |
| अस्राक्षरसम् | ••• | | ९९ | आद्रेण गमं | | | ४९० | |
| अहं राम॰ | | | ३३९ | आदिक्ष दा दीप्त ० | | ••• | 64 | |
| अहं शूर्पणखा | | | 9000 | आदिदेश स | | ••• | ११३२ | , |
| अहं स्वप्नक् | | ••• | ४५९ | भादसस्तेन | 9 + 0 | • • • | ३४६ | |
| अहं तु शुश्रुवान् | ••• | • • • | ४२७ | आनम्द्यिष्यदागम | य | *** | १५७९ | |
| अहं न्यवधिषम् | ٠ | ••• | ३०७ | आनन्दितारस्खाम् | • • • | *** | १६०४ | |
| अह्मन्त॰ 🚥 | | | २८२ | आपिङ्गरूक्षो | ••• | • • • | <i>હ</i> ્યું છ | 1 |
| अहत धने० | • • • | | ८४६ | आपीतमधुका | | ••• | २५३ | |
| अहो जागर्ति | , | ••• | १४६९ | क्षाप्तारौ भवता | ••• | | १५९८ | |
| अहें।पीत्कृष्ण <i>०</i> | | • • • | १२७७ | आप्यान स्कन्ध | | ••• | २३९ | |
| आहिषातां रघु० | | • • • | १४२ | आवद्धनेत्रा ॰ | 4.0 | 4** | ९०७ | |
| आंहिष्ट तानसंमान्य | • • • | ••• | १२०९ | आबद्धभीम • | ••• | ••• | 992 | |
| आः कष्टम् … | , | ••• | ३०२ | आवधन् कि॰ | *** | | १४५८ | |
| आकक्ष्मीम यशः | | | १३३ | आमच्चयेत् तान् | | • • • | 9400 | -^ * 4 |
| आस्यन्मुनिस्तस्य | • • • | ••• | d s | आसिक्षीयं दिधि० | | ••• | 984 | |
| आख्यातासि ह्तम् | • • • | ••• | 9504 | आमुखदुर्म | • • • | | १३५२ | |
| आधुर्णिष्टां क्षती | • • • | *** | <i>व २,९९</i> | आयान्यः खफल | | • • • | १५९० | |
| आझन् भेरीः | • • • | ••• | १३५३ | आयाससंभवाऽरुण | Γ | | १०२८ | |
| आचचक्षे च वृत्तान | | • • • | ११२० | आयिष्ट मारुतिम् | | • • • | १२८५ | إنعيس |
| आचाम्यं सन्ध्ययोः | | | ३७,६ | आयोधने स्थायुका | | • • • | ४९ | |
| | | | | आरामदर्शनात् | | | ६३० | |
| | | | | आरूढं च सुवेलम | * | | १०४९ | |
| The second secon | | | | आरूढवाण० | | | | |
| | | | | आरोक्ष्यामि युगाः | | | | |
| | ••• | | | आर्ची द्विजातीन् | | | | * |
| आज्ञां प्रतीषुर् | *** | | | आर्च्छन् वामम् | *** | ••• | १३५६ | |
| | -31 | | १४२१ | ं श्रालिङ्गिताया | | | ८९७ | |
| | | | | | | | | |

| | श्लोकाङ्काः | श्लोकाः | | * | गेकाहा: |
|------------|-------------|------------------------|-----------|-------|------------|
| • 4 | १४२७ | इत्थं प्रवादम् | ••• | ••• | ६३ |
| •• | ४७४ | इदं कवचम् | ••• | 1 | ३्२० |
| •• | ६९७ | इदं नक्तंतनम् | • • • | ••• | ३०४ |
| | २७३ | इदमधिगतम् | ••• | | १६२२ |
| • • | २९७ | इन्दुं चषक० | ••• | | 469 |
| | १३४७ | इन्दोः स्यन्दिष्यते | ••• | 400 | १३२१ |
| . p | ३९७ | इष्टुमति रघुसिंहे | | ••• | २६ |
| | २४ | इह सा व्यलिपत् | *** | ••• | ३१२ |
| 10 | ७,७८ | इहाऽजीव इहैव स्व | म् | • • • | १३७९ |
| | १५१९ | इहाऽऽसिष्टा० | • • • | ••• | ३०३ |
| ٠. | १५७५ | | ई. | | • |
| •• | ७२९ | ईक्षांचकेऽथ | ••• | ••• | १०८६ |
| | ७०७ | ईयु र्भरद्वाज ० | | *** | १२२ |
| | ११२९ | ईर्ष्याविरुग्गाः | ••• | ••• | 668 |
| | १९७२ | ईश्वरस्य | ••• | ••• | ६५७ |
| ٠. | १०३ | ईषदाळ्यङ्गरो | ••• | ••• | ५१८ |
| | १४०३ | | ₹. | | |
| | १४२८ | उक्तवन्तौ ततो र | तसम् | ••• | १६१२ |
| •• | ३४३ | उक्तवान् राघवः | ••• | ••• | १५३९ |
| ٠. | १३९६ | उक्षान्प्रचक्रु॰ | | ••• | ৫৩ |
| | व ३५,९ | उम्रंपश्या\$ऽकुछे | ••• | | १६१ |
| | ६२१ | 1 | *** | ••• | ३९१ |
| | . ७१९ | डचड़नाते नलेना | লী | ••• | 9900 |
| | . २१० | उच्च हतुः परि० | ••• | ••• | १०३९ |
| , | . ३१६ | डिचिवियरे पुष्प | | • 4 • | १२० |
| 10 | . वहवप | उचैरबित ० | | ••• | ७३३ |
| | | उचैरसी राघवम् | | • • • | 46 |
| | , ६२० | उच्चे रारस्यमानाम | Ţ | *** | २७९ |
| | 9090 | उच्छायवान् | ••• | • • • | 803 |
| | | उज्जुगूरे ततः | ••• | | 9995 |
| ٠ | | उत्तराहि | | | ६४९ |
| | | उत्तिष्टस्व मते | • • • | | १५४८ |
| | . १३८ | उत्तीणीं वा | *** | 4 6 4 | ३८६ |
| • | . ६७ | 1 | | *** | वे वे दे छ |
| | 9096 | उत्पत्य खम् | ••• | * | २१३ |
| | | | | | |

| श्चोकाः | श्लोकाङ्काः | श्लोकाः | | श्लोकाङ्काः |
|--------------------------------------------------|-----------------|-----------------------------------------------|-------|------------------|
| स्त्यातजं छिद्रम् | 9009 | ऊर्णुनाव स | | १९७१ |
| उत्पाताः प्रावृतन् | 00-16 | ऊर्ध्व मुहूर्तादहो | | १५४७ |
| उत्सकानीयतां | , १५३८ | ऊर्घ स्रिये सुहूर्ताद्धि | ••• | १ ४९४ |
| उदक् शत॰ ••• ••• | ४८५ | ऊहिरे मूर्धि | | 9948 |
| उदक्षिपन् पदृ० · · · · | 998 | ऋ. | | |
| उद्जीवत् सुमित्राभुर्॰ ••• | 9889 | ऋग्यजुषम् | ••• | 980 |
| उदतारिषुः | . 9 २9 ४ | ऋणाद्वह • • • • • • • • • • • • • • • • • • • | | £84, |
| उदतारोदुदन्वन्तम् ••• | . ११९१ | ऋदिमान् राक्षसो० | ••• | ८४७ |
| उद्पतद्वियत् | ८२८ | ऋषमोऽद्रीन् | *** | १२२५ |
| उदरे चाऽजरनन्ये | , १२३१ | ऋष्यमूकम् | | ४ ११ |
| उदांस्यति हरिर् | , १३०९ | ऋष्यमूके | • • • | ३४१ |
| उन्नसं द्वती | 94६ | Ų. | | |
| उन्नयान्धि • • • • • • • • • • • • • • • • • • • | . ४७१ | एकः पदातिः | ••• | ९८७ |
| उन्मीलिष्यति चक्षुर॰ 🔐 | १३१२ | एकहायन० | | ३७६ |
| उन्मुच्य सजम् | १४९२ | एकेन बह्वः | | ६८८ |
| उपशाम्यतु ते बुद्धिः | <i>बेप</i> ३५ | एकेन वाली | ••• | 350 |
| उपश्राम् | ६२९ | एकेन सन्धिः | | ९६६ |
| उपाम्यकुरुताम् | ३,९६ | एको द्वाभ्याम् | | ७९७ |
| उपारंसीच | . ५९६ | एता दैवानु॰ | *** | ४४३ |
| उपासांचिकिरे ••• | . २९० | एते ते मुनिजन | *** | १६१६ |
| उपास्थितैवसुक्ते 🐽 | . ३३३ | एतौ स्म मित्रावरुणौ | | ६८ |
| उपास्थिषत् 🚥 🚥 | . ७६८ | एवं युवां मम | e 9 a | १६११ |
| उपेक्षणीयैव 🚥 🚥 | ९५८ | एवं विजिग्ये ताम् | ••• | १९७४ |
| खपेक्षिता देव॰ ••• | ९२७ | एष पेक्ष्याम्यरीन् | | १३४२ |
| उपेक्षिते वालि॰ | ९४६ | एष प्रादृषि० | *** | २३७ |
| उभावकृन्तताम् | 3840 | एप रावणिः | ••• | १२७० |
| उभौ मायां व्यतायेताम् | 3843 | एष शोकच्छिदो॰ | • • • | ४६१ |
| उल्कादहिशरे | 9068 | एष्टारमेषिता | ••• | ४०७ |
| उवाच चैनं क्षणदा० | 3095 | षे. | | |
| उवाच मारुतिः | ५१० | ऐक्षिष्महि | *** | ३०५ |
| उष्णीषं मुमुचे | ११६३ | ऐद्विप्रवदमानैः | | ^६ ५७२ |
| उह्येरन् यज्ञपात्राणि | 9490 | ऐन्द्रेण हृदये | • • • | 9240 |
| ₹. | | ऐ वाचं देहि | ••• | ३०९ |
| ऊचे संवरिषीष्ठाः ं | ७०० | ऐषीः पुनर्जन्म | *** | 96 |
| क्षर्वेखछ इस्ति॰ | १३७ | ऐहिष्ट त कारियतुम् | | 99 |
| | | | | |

| | श्लोकाङ्काः | श्चोकाः | | श्चोंकाङ्काः |
|-------|-------------|-----------------------|-------|--------------|
| | | ङमुदवन० | | 205 |
| | २ ५९ | कुम्भकर्णसाती | | १२०२ |
| # 2 # | २९२ | कुम्भकर्णसुनौ | ••• | 3233 |
| | | कुम्भकर्णे हते | | १३२३ |
| | ९९५ | कुम्भकणीं रणे | *** | १३२२ |
| | | कुरु बुद्धिम् | | 986 |
| | ৬৬८ | कुर्याद्योगिनम् | | ४४४ |
| ••• | २५८ | कुर्याखधा येन | | ८३४ |
| | ४२३ | कुर्वन्ति परिसारिण्यः | | ४४१ |
| *** | 3508 | कुवेन्तो हवम् | | ४९५ |
| • • • | 1808 | कुलभायीम् | | ५६ व |
| ••• | . ८३७ | कृतं सर्वं यथोदि्षम् | ₹ # # | عهو بمو |
| • • • | ६७९ | कृताभिषेको० | ••• | 929 |
| | ८५३ | इती थुनी | *** | १३४ |
| | ८०१ | कृते कानिष्ठिनेयस्य | *** | २६७ |
| ••• | 80,0 | कृते नोपकृतम् | * • • | فيلاه |
| | <i>६</i> ४५ | कृतेषु पिण्डोदक० | | 296 |
| *** | 9000 | कृते सौमागिनेयस्य | * * * | 9 ৩ই |
| ••• | ४५८ | कृतेरपि दृढ • | *** | 9903 |
| ••• | ૧૯૨ | कृत्वा कमें | • • • | ६६९ |
| ••• | १०१४ | कृत्वा लङ्का॰ | ••• | ३०९ |
| • • • | ۷ ۶ | कृत्वा वाछि॰ | ••• | ४१३ |
| ••• | ४६६ | कृशानुवर्धण्यधि॰ | *** | 880 |
| • • • | १०५३ | कृषीद्वं भर्तु० | ••• | ७५० |
| *** | ૧૩૧૬ | केचित्संचुकुटुः | *** | १९७३ |
| | ર ૪૬ | केचिद्वेषथुम् | *** | 353 |
| • • • | ८२६ | केचित्रिनिन्दुः | | 44 |
| *** | ५९ व | केन संभावितम् | • • • | १३१९ |
| | १५२० | केन संविद्रते नाऽन्यः | *** | 9 865 |
| ••• | ४६७ | केन संविद्रते वायोर् | *** | did |
| *** | १६२५ | केनापि दौष्कुछेयेन | ••• | ५२२ |
| | ५७० | केशानछिचिषुः | ••• | ११८४ |
| *** | 888 | कोट्या कोट्या पुर० | | 90810 |
| ••• | ३५८ | कोऽन्योऽकरस्यदिह | *** | 3,458 |
| ~ | ६३२ | कोपारकाश्चित् | | 404 |

| श्लोकाः | | श्लोकाङ्काः | <i>श</i> ्ठोकाः | | श्लोकाद्याः |
|---------------------------|---------|--------------------------|-----------------------|-----------------------------------------|---------------|
| _ | ٠. | 98 | गते त्वयि पथानेन | | १६०७ |
| कौशल्ययाऽसावि | | 863 0 | ! | | , 400 83 |
| कियासमारम्भ • | | • | गत्वाथ ते पुरीम् | | ३५ १५१४ |
| क्रियेरंश्च दशास्ये | | १५०३ | 1 - | | 3908 21210 |
| क्रीडन् भुजङ्गेन | | २० <i>१५</i> | गन्तारः परमां श्री | तिम | १६० ६ |
| कुद्धाननुनयेः | | १५२४ | | , | |
| कुद्धोऽदीपि | ••• | ३२३ | 1 | *** | 9 o 3 o |
| कुध्यन् कुलम् | | २३ | | ••• | 9069 |
| कूराः किया प्राम | य० | ९९७ | 1 | *** *** | ३४०९ |
| क्रिष्टाऽऽत्ममृत्यः | | <i>૧ હવ</i> | 1 : | *** *** | ८३४ |
| क्रच ख्यातो स्व | | १५५४ | | | २६ |
| क ते कटाक्षाः | | ८८७ | 1 - 4.0 | ••• | १०२१ |
| क स्त्रीविसह्याः | *** | ९९० | 1 - | | 9069 |
| क्षणं भद्रावतिष्ठस्व | 417 418 | ५५३ | f . | • • • • • • • • • • • • • • • • • • • • | 3468 |
| क्षतैरसंचेतित • | 410 750 | 303 | गाधेयदिष्टम् | | ५९ |
| क्षितिकुरु • • • • | *** | ८६९ | गान्धर्वेण न्यविध्यत | Ι | १४३४ |
| क्षिप्रं ततोऽध्वन्य | | ওপ | गिरिपङ्कचारः • | ••••• | १०४७ |
| क्षुद्रान जक्षुः | ••• | ष्य | | 4. | ८७७ |
| | ख. | | गिरिमन्वस्पत् . | 41 104 | ३१८ |
| खम्ट द्याम्ट | *** | १५६० | 1 | •• ••• | 3 4 |
| खम <u>ूयु</u> र्वसुधाम् ् | ••• | ११५२ | 1 - | *** | १०३४ |
| खं पराजयमानो | *** | ५,५ व | 1 | ••• | १०६३ |
| खरदूषणयोर् - | *** | १७२ | गुरुर्दभाना | *** | ८९९ |
| खरादिनिधनं | 4 | ७८० | 1 | •• | ९२५ |
| | ग. ँ | | , — , | ** *** | ४०९ |
| गच्छन्तु चार० | 491 | १०३३ | , en | 414 | ५८७ |
| गच्छन्स वारीणि | ••• | ८३२ | | *** | ३२२ |
| गजानां प्रददुः | *** 0** | १०७९ | ब्रह्मणिरसनम् . | *** | ८५७ |
| गतमङ्गुलि० | | ডদ্প | : 15 | . | |
| गतासु तासु | *** ** | ६४४ | e | l • | |
| गतास्यादवचिन्दा | ना | ३०१ | घनगिरीन्द्र . | | ८२५ |
| गते तस्मिन्नुपा॰ | | ७२५ | घानिषीष्ट स्वया . | | १५२९ |
| गते तस्मिन्गृहीता | | १६० | धानिष्यते तेन | | २२ |
| गते तस्मिन् जलः | | | घोरजलदन्ति० . | | १०२२ |
| गते तस्मिन् समा | o | ६३९ | घोषेण तेन प्रति | | 358 |
| गतेऽतिभूमिम् | | ९ १३ [।] | व्रन्तं मोपेक्षिषायाम | | 9228 |
| | | | | | |

| | श्लोकाङ्काः | ∤ श्लोकाः | | | श्लोकाद्दाः |
|-----|-------------------|---------------------|------------|-----|----------------|
| | | जगन्खमेयाद्धुत | ٠., | *** | <i>લુ</i> ષ્દ્ |
| ••• | હર્ | जगर्जुर्जहृयुः | •,• | | Pove |
| ••• | 9020 | जगाद वानरान | [| ••• | ५२५ |
| | 990 | जगाहिरेऽम्बुधि | म् | | 9934 |
| | ঀঀ৸ৢৢৢ | जग्मुः प्रसाद्म् | *** | | ક્ષ્ક |
| | 806 | जग्ली दध्यी | ••• | *** | 9976 |
| | १०२४ | जटायुः पुण्यकृत | ξ | *** | ५१७ |
| | १४८३ | जनानुरागेण | | *** | ९५९ |
| | ७३५ | जरिस्वेव | *** | *** | ৩৭४ |
| | 9498 | जलकामदन्ति० | ••• | ••• | १०६० |
| •• | १३२४ | जलतीरतुङ्ग ० | | ••• | १०६७ |
| •• | ی باه و | जलद इव | ••• | ••• | ९३9 |
| •• | ८३६ | जलनिधिमगमत | | ••• | ८६१ |
| • • | ९५१ | जले विक्रम० | | ••• | ५६६ |
| •• | १०४२ | जल्पाकीभिः | *** | | ४५३ |
| | १०१९ | जित्पतोत्कुष्ट० | ••• | *** | <u> </u> |
| • • | ૬ફ ુ છ | जहसे च क्षणम् | | ••• | 9959 |
| •• | ११३° | जहीहि शोकम् | ••• | *** | 9480 |
| • • | ४५६४ | जिगमिषया संयु | ন্ধা | ••• | १०३३ |
| • • | ७३१ | जिज्ञासोः शक्तिम | Ţ- <i></i> | | ४०७ |
| • • | ६०१ | जिते नृपारौ | ••• | *** | 69 |
| | يع ه څ | ज्तिभिच्छथ | *** | ••• | ५०३ |
| • • | १३२ | जेता यज्ञ • | ••• | ••• | 950 |
| | २२५ | जेतुं न शक्यो० | *** | ••• | <i>হ</i> ু ৩ ৩ |
| | २३५ | इात्वेङ्गितैर् | ••• | ••• | ९८ |
| • | ६३७ | ज्ञायिष्यन्ते मया | ••• | | १३४५ |
| | 9992 | ज्योतिष्कुर्वेन् | *** | | ७३७ |
| • | १९७५ | ज्योत्लाऽमृतम् | ••• | ••• | ६०४ |
| • | १५५८ | | ਵ∙ | | |
| | ļ | डुढौकिरे पुनर् | 400 | *** | ११३९ |
| • | ३८९ | | त. | | |
| • | 9899 | तं यान्तं दुद्रवुर् | *** | | ११६५ |
| | İ | तं यायज्काः | 440 | ••• | ४७ |
| • | ৭৩৬ | तं रत्नदायम् | | *** | ¢85. |
| | 9489 [!] | तं विप्रदर्शम् | | • | ५० |
| | | | | | |

| श्लोकाः | Ą | होकाङ्काः | श्लोकाः |
|-----------------------|-----------------------------------------|--------------|----------------------|
| तं मुस्थवन्तः . | | 994 | ततोऽद्विषुर्निरालोके |
| | 94 434 | ४५७ | ततोऽधावन् महा० |
| ततः कथाभिः • | | १६१४ | ततो नदीष्णान् |
| ततः कपिसमाहारम्. | | ४६८ | ततो नीलहनूमन्तौ |
| ततः कपीनाम् | | ४६४ | ततोऽभ्यगादाधि॰ |
| ततः कर्ता | ** | ४३५ | ततो मातलिना |
| ततः कोधानिल॰ . | | ७९१ | ततो मन्द्रगतः |
| ततः खङ्गं समुद्यम्यः | | ६३६ | ततो मायामयान् |
| ततः परं भरद्वाजो . | | 9600 | ततो मायामयी सीताम् |
| ततः प्रगदिता वाक्य | म् | १५५६ | ततो रामेति चकन्दुः |
| ततः प्रजघटे युद्धम् . | ** *** | 9984 | ततो रामो हनूमन्तम् |
| त्ततः प्रणीताः . | | ९०४४ | ततो रौदसमायुक्तम् |
| ततः प्रहदिनो 🕝 | 40 906 | 9304 | ततो बिलन्दम॰ |
| नतः प्रविद्याजयिषुः | | 5,9 | ततो वालिपशौ |
| ततः प्राकारम् . | •• ••• | ५९७ | ततो वाष्ट्रत्यमानासौ |
| ततः प्रामुद्यताम् . | ** *** | १३७० | ततो विजघटे |
| | | ष३६ | ततो विनिद्रम् |
| ततः श्रोदसहन् . | | १४४२ | ततोऽशीति |
| ंततः शतसहस्रेण . | •• ••• | १४४५ | तत्कर्मवाछि० |
| ततश्चित्रीयमाणो० . | | २३१ | तत्र जेतुं गमिष्यामि |
| ततः सकोपम् | • • • • • • • • • • • • • • • • • • • • | १०१२ | तत्रेन्द्रजितम् |
| ततः सगतवान् . | • • • • • • • • • • • • • • • • • • • • | 9455 | तथापि वक्तुम् |
| त्ततः समभवद्युद्धम् | ••• | 9804 | तथाऽऽतींऽपि |
| त्ततः समाशङ्कितः | | ८९० | तं दृष्ट्वाचिन्तयत् |
| ततः ससंमदास्तत्र | *** | ४८३ | तं नो देवा विषेयासुः |
| ततः सुचेतीकृत ० | *** | ८४ | तमः प्रसुप्तम् |
| ततः सौमित्रिर् | • • • • • • • • • • • • • • • • • • • • | १२७५ | तमध्यासिष्ट |
| ततिश्रिचिरसम् | | १४३५ | तमसाया महानिल० |
| तुतुपुर्वानराः | 10 C+1 | 9960 | तमुरूत॰ |
| ततोऽकुष्णाद्श• | • ••• | १४२६ | तमेर्ववादिनम् |
| ततोऽक्रन्दीद्श० | | १२४६ | तं भीतंकारम् |
| ततोऽचित्रीयता॰ | | 9890 | तं मनोहरम् |
| ततो जलियगम्भीरान् | | 409 | तं सीताघातिनम् |
| ततो दशास्य | | 588 , | तयोगांनर० |
| ततो दशास्य सार॰ | | १०६९ | • |

| Ą | होकाङ्काः | श्लोकाः | | 58 | डोकाङ्काः |
|-------|--------------|--------------------------------|-------|-------|---------------|
| | ४३६ | ता हनूमान् | ••• | | ६९२ |
| • • • | ६६५ | तिग्मांशुरिस० | ••• | ••• | ३९ |
| | १०९८ | तिरोबभूवे सूर्यण | ••• | | 9999 |
| | १००६ | तीवं स्यन्दिष्यते | *** | | 9399 |
| | १३९१ | तीव्रमुत्तपमानो ० | ••• | | بيرين |
| | 984 | तुङ्गत र च्छाया० | ••• | 4 | १०५२ |
| • • • | ५९३ | तुङ्गमणिकिरण ० | | ••• | 9048 |
| • • • | ४८६ | तुङ्गमहागिरि० | ••• | • • • | 9080 |
| | इष्ष | तुङ्गा गिरिवर० | ••• | | १०२७ |
| | १२८४ | तुरङ्गाः प ुर फुटुः | • • • | *** | 9068 |
| | ४३३ | त्यांणामथ | • • • | | 9595 |
| | १६९ | ृ तृणाहानि दुराचार | T: | • * • | १५३३ |
| • • • | ८४८ | तृणाय मला | ••• | | ६४१ |
| ••• | ११९८ | नृणेढु त्वद्वियोग० | • • • | | १५४३ |
| • • • | १२५७ | तृणेह्मि देवम् | *** | ••• | १४९१ |
| ••• | ३१३ | ते तं व्याशिषत | a + + | | १२२४ |
| | १२६० | तेन वह्येन | ••• | | ३४२ |
| ••• | ६१७ | तेन सङ्गतम् | *** | 44. | ₹४४ |
| • • • | ع ه <i>و</i> | तेनादुद्यूषयत | | a • • | 5 \$ 5 |
| | १५८६ | तेनेऽद्रिवन्धो | * 4 # | *** | 9084 |
| • • • | ६९१ | ते परस्परमासाद्य | • • • | • • • | १३९० |
| • • | ५५ | तेऽभाषिषत | | •4+ | 9960 |
| *** | ४३८ | ते विज्ञायाऽमि० | 4 * * | ••• | ७६३ |
| • • • | १४४७ | ते भुक्तवन्तः | ••• | *** | १२७ |
| | १४३७ | ते रामेण सरभसम् | | *** | १०६ ७६ |
| ••• | 340 | तेऽव्यरासिषुः | *** | 444 | १२५३ |
| • • • | ६८६ | तेषां निहन्य० | ••• | ••• | ६९४ |
| • • • | ६१३ | ते हि जालैर् | | | ४२६ |
| • • • | १३७४ | तैरजेषत सैन्यानि | ••• | ##4 | १२५७ |
| ••• | २७७ | तैर्द्वणसम्म • | • • • | | 960 |
| ••• | ६०२ | तौ खङ्गमुसल० | *** | *** | 964 |
| ••• | ९०३ | तौ चतुर्दश० | *** | • • • | 906 |
| ••• | १३७१ | तौ वालिप्रणिधी | ••• | *** | ३७७ |
| ••• | १३८९ | तौ हनूमन्तमानेतुः | म् | *** | ९२८६ |
| | ६४३ | ंत्रस्यन्तीं ताम् | *** | • | २७८ |
| | | | | | |

| क्षोकाः | | | श्लोकाङ्का | ः ∤ श्लोकाः | | • | श्वोकाङ्काः | |
|-----------------------|-------|---------|---------------|---------------------------|-------|--------|-------------|---|
| विवर्गपारी णम् | • • • | | , ৬३ | दर्शयांचिकिरे रा | मम् | | 9993 | |
| त्रिंशतमम् | ••• | | ५२३ | दशशीवोऽहम् | *** | 999 | १३८४ | |
| त्वं ससर्जिथ | ••• | | ७२१ | दशदन्तिसहस्रा | ળિ | | १४१३ | |
| त्वं स्म वेत्थ | ••• | ••• | १४७६ | दस्येऽहं मधुनो | ••• | ••• | इ्टइ | |
| त्वक्त्रः संविद्ययुः | | | १२४२ | दाद्धः स्थातुद्विष | | | 9886 | |
| त्वन्तु भीरु | *** | | २२७ | दिक्पालैः कदनम | Į | • \$ 0 | १३६५ | |
| त्वन्मित्रनाशो | | • • • | ९७८ | दिग्व्यापिनीलीच | ने० | ••• | ४० | |
| त्वमजानन्निद्म् | ••• | 4 | १४४३ | दिइक्षमाणः परि | | ••• | 999 | |
| द्यमईसि श्रातुः | | *** | 9400 | दिह्रश्रमें थिली राग | Ŧ | **. | १५३७ | |
| त्वं पुनीहि पुनीही | ति | ••• | 9449 | दिद्विष्ठर्दुड्खुर् | • • • | ••• | ११६९ | |
| त्वयातुलोके | *** | * * * | ९६७ | दिशो द्योतयमान | ामिर् | ••• | 466 | |
| त्वयाद्य लङ्का० | | ••• | 9099 | दिशो न्यश्नुवते | ••• | ••• | १४८४ | |
| त्वयाद्रक्ष्यत किम् | • • • | • • • • | १५७२ | दीक्षस्व रामेण | *** | ••• | १५४४ | |
| त्वयापि नाम रहिं | ता | ••• | १४९० | दीपतुल्यः प्रवन्धं | ोऽयम् | | 9६२३ | |
| त्वया संदर्शितारौ | | ••• | १५९७ | दीप्यमानम् | ••• | *** | २६४ | |
| त्वयि नस्तिष्ठते | ••• | ••• | ५५४ | दुःखायते | ••• | ••• | २५७ | |
| _ | ₹. | | | इष्तरे | ••• | | 308 | |
| द्रभव्हील इवा० | *** | ••• | १२०४ | दु र्गाऽश्रिवानाम् | • • • | *** | ९८३ | |
| द् ण्डकानध्य ० | ••• | ••• | १८९ | दुष्पानः पुनर् | ••• | ••• | ७९१ | |
| दण्डकां दक्षिणेन | ••• | ••• | ६५० | दूतमेकम् | | | きこと | |
| दण्डेन कोशेन च | | ••• | ९७४ | दूरं समारह्य | | *** | ८८६ | |
| दत्तः खदोषैर् | . • • | ••• | 9095 | दूरगैरन्तगैर | • • • | 4-4 | 800 | å |
| दतंन किं के | *** | ••• | 386 | दूरात्प्रतीहार० | 9 4 5 | *** | ९३९ | |
| दत्तावधानम् | | | ३४ | हट्टा ताम् | • • • | ••• | ७६९ | |
| ददा्ल भूनभो० | ••• | *** | 3066 | हङ्मा दियतया | *** | *** | ष्ट्र | |
| दहरो पर्ण० | *** | ••• | 943 | हङ्घा राघव० | • • • | ••• | Éeo | |
| ददैर्दुःखस्य | | ••• | ३७० | हट्टा सप्ताम् | • • • | *** | ردادم دم | - |
| ददौ स दियताम् | * + • | ••• | ४३२ | हट्टोर्णुवानान् | *** | *** | १२९ | |
| दधाना बलिसम् | *** | ••• | 348 | देवान्तकोऽति० | | *** | १३५५ | |
| दथावाऽद्भिः | ••• | *** | | देहं बिश्रक्षः | | 444 | २४० | |
| | | ••• | | देहमश्चन० | 444 | | 498 | |
| दन्तच्छदे प्रज्वलिह | 11 | | 390 | दैखक्षये महा० | *** | ••• | १५८५ | |
| दिमितारिः | • • • | *** | ६०३ | दैलाभिभृतस्य | *** | | 618 | , |
| | • • • | ••• | | दैवं न विद्धे | | 4 4 4 | ४३१ | |
| द शेनीयतमाः | | | ६ ५८ - | देवाद्विमी हि | | 9 | 440 | |
| | | | | | | | | |

| श्लोकाङ्गाः | क्षोकाः | શ્ | ोकाङ्घाः |
|---------------|-----------------------|-------|----------|
| १३८६ | न चोभावप्यलक्ष्येताम् | | १४५२ |
| ९३८ | न जिजीवाऽसुखी | ••• | ११२९ |
| . ५ ६० | न जिह्नयांचकार | | २९४ |
| १५९६ | न तज्जरुं यन | | ६४ |
| १६०९ | न तंपस्यामि | ••• | 308 |
| ५૬७ | न तानगणयन् | | १३५७ |
| ٩٥٧ | न तृणेह्यीति | | 330 |
| ८२१ | न खजायत मे | . • • | १३८३ |
| १३०१ | न त्वं तेनान्ध | • • • | २१८ |
| ६ <i>७</i> ४ | न निश्चितार्थम् | ••• | ९९४ |
| २८० | नन्दनानि मुनी० | ••• | ३६३ |
| ७३६ | न प्रणाध्यो० | ••• | ३५७ |
| १४६७ | न प्राणिषि • • • | n + ± | ७३० |
| | न प्रावीचसहम् | 44. | ११९२ |
| ৭४७८ | न विभाय ••• ••• | ••• | २८५ |
| ७३३ | न भवति महिमा | ••• | ८७२ |
| १०७६ | न भदाननु॰ | | ६२८ |
| ३५३ | नभस्वान्यस्य वाजेषु | ••• | १४५६ |
| ৩८८ | न बोद्धमशकन् ••• | *** | 9230 |
| ६२ | नरकस्यावतारोऽयम् | ••• | ५१६ |
| ۶ | न वानरैः 👵 🚥 | ••• | ८२० |
| ३६९ | नइयन्ति इदर्श | ••• | ८२२ |
| ૪૧૫ | न सर्वरात्र | • • • | ७८५ |
| १३१३ | नहि प्रेष्यवधम् | ••• | १५३६ |
| २८४ | नाकल्प्यत्संनिधिम् | *** | १५७८ |
| ११४१ | नाखेयः सागरः | ••• | ३४७ |
| १५२७ | नागाश्रमिदम् | | ११३३ |
| 9929 | नाजानन्संद्धानम् | ••• | १३६२ |
| ३६८ | नानुरोत्स्ये जगत्॰ | *** | १३२७ |
| | नाभविष्यदियम् · · · | *** | १५६९ |
| 9964 | | | व ३४० |
| १४९३ | _ | | |
| ሪዓዓ | नामप्राहं कपिभिर् | | ४३४ |
| १६०३ | नामोक्याम वयम् | ••• | 9469 |
| ८१५ | | | ५२६ |
| | | | |

| श्लोकाः | | શ્રું | ोकाङ्काः | श्लोकाः | | श्चोकाङ्गाः |
|-------------------------------|------------|-------|--------------|------------------------------|-------|-------------|
| नायास्यसि | | ••• | ३६० | नीवारफल० | 4 | ··· 860 |
| नारीणासप • • • • | | ••• | ८२३ | नृपाऽऽत्मजौ | ••• | 993 |
| नावकरण्यमिद्म् | | • | 949७ | नेत्रेयुभिः | ••• | 890 |
| नाविविदुषुम् | ••• | + | ५३३ | नेदानीं शक्र० | .,. | 9868 |
| नावैत्याप्यायितारम् | | ••• | ४५१ | नैतन्मतं मत्कम् | | 998 |
| नासां मातृ ० | | * • • | ৬५३ | नैवं विरह० | | 9६९० |
| नास्ये पश्यति | , | | २०२ | नैवेन्द्राणी न | | २०५ |
| निकुजे तस्य | | | ५३७ | नोद्कव्ठिष्मता० | • • • | २५५ |
| निकुम्भो वानरेन्द्रस | | | १३०२ | न्यकृत्तंथक० | ••• | १३५८ |
| निकृत्तमत्त० | ••• | ••• | ९ २६ | न्यवर्तयत् <u>य</u> ुमित्रा० | | २३१ |
| निखिलाभ वन् | | * 9 5 | ८१३ | न्यवसिष्ठ ततो० | | 9966 |
| निघानिघ० | *** | • • • | ४९९ | न्यविक्षत | | 488 |
| निजघाना ॰ | | | ७९९ | न्यर्यम् राह्याणि | | १३५० |
| निस मुद्यच्छमा नाभि | (: | | ७,८९ | न् यपेधत्पावका० | | १४३३ |
| निन्दको रजनि | *** | *** | ४४७ | स्याप्यं यदात्र | | ४७५ |
| निमित्तशून्ये | | • • • | 9000 | t | τ. | |
| निरचायि यदः | *** | ••• | 9366 | पक्षिभिवितृदैर् | • • • | ३६७ |
| निरवर्स्यन | +12 | | ६११ | पहुंबाल॰ | ••• | … હજફ |
| निराकरिष्णवो | | • • • | ४३७ | पञ्च पञ्चनखा० | • • • | ४२२ |
| निराकरिष्णुर् | | *** | ९२८ | पतिकोष्टु॰ | • • • | २६३ |
| निराकरिष्ण् | ٠٠, | ••• | 968 | पतिवध० | * • • | 669 |
| निराकुल यथा | ••• | ••• | १३८१ | पपात राक्षसो० | *** | 99x2 |
| निरासू राक्षसाः | | | १०९ ९ | पयोघटोधीरपि | | 900x |
| निर्माणदक्षस्य | 9 4 9 | | Ę | पयोधरांश्च | • • • | 399 |
| निर्यत स्पु लिङ्गाञ्चल | 4 • • | | ९४९ | परस्रीभोग० | * ; * | ٠٠٠ ٧٩٤ |
| निर्लङ्को विसदः | | | २७० | परिखेदित० | ••• | ८३८ |
| निर्वणं ऋतम् | | • • • | ဖြင့်ဖ | परिषेणावधिष्टाथ | *** | १२६२ |
| निलिल्ये मूर्धि | | | 9988 | परितः पर्यवाद्वायुः | * 0 0 | १३९८ |
| निवृत्ते भरते | *** | *** | १३९ | | ••• | २५२ |
| निशातुषारेंर् | | | | परिभावम् | ••• | ४८८ |
| निस्कोषितव्यान् | | *** | • | परिभावीण | • • • | ३६५ |
| निष्कम्य शिक्षया | | *** | ५०५ | परिशेषं न | *** | ··· ६३३ |
| निष्ठां गते | | , | 9 ₹ | परीक्षितुसुपा | | 4 EA |
| निह्तश्च | | 4 ° F | ५०२ | परेद्यव्यव | *** | 949 |
| निद्यन्ता वैर० | | | २६१ | पर्यशाप्सीत् | | १७६ |

| 5 | स्रोकाद्धाः | श्लोकाः | | ز | छोकाङ्काः |
|-------|----------------|---------------------------|-------|-------|-----------|
| *** | ७१२ | प्रतन्व्यः कोमलाः | ••• | 441 | 9484 |
| • • • | १५३४ | प्रतीय सा पूर् | *** | *** | 909 |
| ٠ | ९८२ | प्रतुष्टुबुः कर्म | ••• | 4 | ५६ |
| • • • | 9949 | प्रतुष्टुषुः पुनर् | ••• | | ७४२ |
| | ४१८ | प्रतोदा जगछः | ••• | | ११६७ |
| *** | ७१६ | प्रत्यूचे मारुतिः | *** | | ₹९0 |
| | ४९८ | प्रत्यूचे राक्षसेन्द्रः | *** | *** | २०६ |
| | २८६ | प्रत्यूचे वाछिनम् | *** | *** | ४२५ |
| ••• | ८१८ | प्रदह्युक्ह॰ | 4 6 4 | ••• | ८६५ |
| | १३६१ | प्रवाधमानस्य | *** | | ९३३ |
| • 4 9 | 904 | प्रवोधकाळात् | ••• | ••• | ९२४ |
| ••• | ८९२ | प्रभातवाताहति | • • • | 444 | ३३ |
| | 600 | प्रमादवांस्लम् | | | ९९१ |
| ••• | 8 | प्रमेदिताः | | | ६९० |
| ••• | 90 | प्रयथाविन्द्रजित् | ••• | | 9068 |
| | ३६६ | त्रयाणमात्रेण | | | ९६५ |
| | ৬%০ | प्रयातस्तव यम्यल | म् | ••• | ३४० |
| 9 + 4 | १४३ | त्रवास्यतः पुष्य० | | • • • | 54 |
| • • • | <i>પ</i> ર્ક્ડ | प्रलापिनो॰ | • • • | ••• | ४४६ |
| ••• | ६४७ | प्रद्धितभवनौ | ••• | ••• | २९१ |
| | ६७,१ | प्रवपाणि वपुर् | ••• | 411 | १५६६ |
| • • • | ८६२ | प्रवपाणि शिरों | | 494 | .८७९ |
| | ९७ | प्रवहन्तं सदा० | • • • | | 468 |
| • • • | 3408 | प्रविधाय भृतिम् | ••• | ••• | १६२१ |
| • • • | ३५२ | प्रष्टव्यं पृच्छतः | • • • | ••• | २३७ |
| • • • | ४७८ | प्रस्कन्दिकाम् | • • • | | ७०८ |
| • • | ८५८ | प्रस्थास्यमानौ | | | 68 |
| •• | २९३ | प्रहक्तमर्थ गांचके | | *** | ११५६ |
| • • | दुरु६ | प्रहस्तस्य पुरो० | • • • | • = + | ११७० |
| •• | १५८३ | प्रहीणजीवितम् | * * * | ••• | ७८७ |
| •• | ا می کا | प्राकारमात्रावरणः | • • • | • • • | ९६९ |
| •• | ८०७ | श्राघानिष <u>त</u> | ••• | • • • | ७७५ |
| ** | 9०२६ | प्राङ्मुहूर्तात् | • • • | ••• | १३३७ |
| ••• | ४७३ | प्राचीं ताबद्भिः | ••• | ••• | ४८६ |
| | ७७३ | प्रा चुचूर्ण च | | | १२१७ |
| | | | | | |

| - | श्लोकाङ्काः | श्लोकाः | | ૠ | किङ्काः |
|-----------------------------------------|---------------------------------------|---------------------|-----------------------------------------|--------------|----------------|
| श्लोकाः | ९०८३ | बद्धो वासर० | | | १०२० |
| प्राच्यमाञ्जिहिषाम् | | बन्ध्रनशङ्किष्ट | | *** | 906 |
| प्राज्ञवाक्यान्यवा • | · · · · · · · · · · · · · · · · · · · | वबाधे च बलम् | | *** | 9993 |
| प्राज्ञांस्तेजिस्तिनः | १४६४ ৩৬४ | वभूद याऽधि॰ | ••• | *** | ५ २९ |
| आणयन्सम् ••• | | वभौ मस्लान् | | | ८२५ |
| प्राणा दध्वंसिरे | 55.40 | वलान्यभि० | ••• | | ७४३ |
| प्राणिषुर्निह्ताः | a 61. | वलिनावसुम् · · · | | | ३८३ |
| प्रातस्तरां | مامات | बलिबेबन्धे | | | |
| प्राद्मयन्त | tions | बहुधवलवारि | | | 9089 |
| प्रादिदक्षत ••• ••• | ichese | बहुधा भिन्न ० | *** | *** | ७६६ |
| प्रादुःषन्ति · · · · · | | विश्रस स्नाणि | 4 * * | | 9862 |
| प्रादुन्वज्ञानुभिः ··· | 0.1.1.0 | बिम्बागतैस्तीर० | • • • | | ३० |
| प्राप्तचारित्रय० | 01 | बुद्धिपूर्व भुवम् | | | ४२१ |
| प्राप्य चब्रूर्थ ॰ • • | 634 | बुभुत्सवो द्वतम् | | *** | ५३४ |
| प्रायुद्ध राक्षसीर् | tainte | बोद्धव्यं किमिव | 4 | | 663 |
| प्रायोपासन॰… •• | 0350 | बोभधीति न० | ••• | 0 # # | ९४९ ९ |
| प्रालोठन्त · | 01- 40 | ब्रह्मर्षिभिर्नृनम् | | | 9,66 |
| प्रावर्तिष्यन्त चेष्टाः | A - 4 - 6 | ब्रह्माद्धाद्वधम् | | | १३७३ |
| प्रावर्धत रजी॰ •• | 5 5 5 5 5 5 5 5 5 5 5 5 5 5 5 5 5 5 5 | ब्रुहि दूर॰ | *** | | ઝ ૧૬ |
| प्राशीन चातृपत् · · | 4.0 | | भ∙ | ••• | - ` |
| प्रास्थापयस्पूरा ० | 307 | भजन्ति विषद्स्तू | | | १४६२ |
| प्रियंवदोऽपि • • • | | भयसंहष्ट० | , , , , , , , , , , , , , , , , , , , , | *** | દ્વપ |
| प्रियंभाद्यकताम् ·· | | * ~ ~ | | | 9002 |
| श्रीतोऽहं भोज० ·· | 0.540 | भवत्यामुत्सुको० | | | દુષ્ય |
| श्रीखापि दत्तेक्षण श्रेता वरेण शकस्य | ১४४ १५८७ | भवन्तं कार्तः | ••• | ••• | २१६ |
| | | भिन्ननीकः | ••• | | ૨ હવુ |
| श्रोदपाति नभस्तन श्रोणीति शोकः | १४८६ १४८६ | | | *** | ९४७ |
| | 05 | भुजो चक्रततुः | | | ३३६ |
| 3 1 4 4 | | भुवनभर० | | , | <i>द६४</i> |
| प्रोणेवीत्तेजसा फ. | 14-4 | भूतिं तृणिद्य | | | રૂ ર. સ્વ.લ |
| | gove | भूमिष्टस्यासमम् | | | १४४३ |
| फलभरमन्थर॰ • | | भूमी शेते दश॰ | | | 9850 |
| फलान्यादस्ख • • फलाबिनो निर्झर• • | | भूयस्तं धिप्सुम् | | | ું હું દુ |
| फलाशना क्लर ः व. | <i>j</i> | मृह्याली को किल० | | | ३६४ |
| _ | ዓፍъ | : मृतनिखिल <i>ः</i> | | | २ ५ ७ ८ ६ ७ |
| बद्दो दुर्बेछ० 🕠 | 170 | CHAIR MAN | | | - , |

| Ą | ोकाङ्काः | श्लोकाः | | 16 | ोकाङ्काः |
|-------|-------------|-----------------------|-----|-------|-------------|
| | १३४४ | मान सावीर् | ••• | | ७२३ |
| | 9466 | मानुषानभि • | | | १६० |
| • • • | ४३९ | मानुषी नाम | | *** | १३३२ |
| • • • | २६५ | मानेन तल्पेषु | *** | ••• | 666 |
| | 9000 | मां दुष्टां ज्वलित० | | ••• | १५६७ |
| ••• | ११३६ | मापराध्नोदियम् | *** | | १३६७ |
| a • • | ४८९ | मामुपास्त | ••• | • • • | २०७ |
| | १०४६ | मायानामीश्वराः | ••• | ••• | ६८५ |
| | | मायाभिः सुचिरम् | ••• | *** | ৬৭৭ |
| 5 6 8 | १४३० | मायाविभिस्नास ० | 3+6 | ••• | ९२९ |
| ••• | १२६६ | मारयिष्यामि | ••• | ••• | १३२६ |
| | ९६३ | मार्गं गतो गोत्र० | ••• | *** | १००२ |
| ••• | २६९ | मावसंस्थाः | ••• | ••• | ६२३ |
| | ८५६ | माशोचिष्ट रघु० | ••• | ••• | १२८२ |
| ••• | ७५९ | मास्मातिष्ठत | *** | • • • | १३७२ |
| ••• | ५८३ | मा स्म द्राक्षीर् | ••• | ••• | ३०६ |
| ••• | १३३५ | मा सा भूश्रीहिणी | | ••• | २७६ |
| ••• | ঀ४७४ | सितमवदत् | | | ८२७ |
| | ६०७ | मित्रवस्य प्रचुक्षोद | ••• | ••• | 9909 |
| ••• | ७९८ | मिथ्या मास्म | *** | 474 | १३८२ |
| ••• | 9430 | मिथ्यैव श्रीः | ••• | ••• | 348 |
| | १९१७ | मिमेह रक्तम् | ••• | ••• | ११६८ |
| ••• | ३२१ | मुश्चेताकाश॰ | ••• | • • • | 3408 |
| ••• | ४२४ | मुदा संयुहि | ••• | ••• | <i>१५४६</i> |
| | ঀ७४ | मुषिला धनदम् | *** | • • • | ५७१ |
| | २१ | मुष्णन्तसिव | *** | | ७६५ |
| | १३१७ | मूर्खास्त्वामव | ••• | | ११९६ |
| | २६० | मूर्धजान् स | *** | ••• | १४९६ |
| • • • | ĘŊ | मूर्धा दिवमिवा० | *** | *** | 3503 |
| • • • | | मृगयुमिव | 8+4 | | १८२ |
| ••• | | मृगाः प्रदक्षिणम् | ••• | | १०८२ |
| *** | | मृदङ्गा धीरम् | ••• | | 3005 |
| ••• | | मृदुभिरपि | ••• | *** | ८७३ |
| ••• | ६८९ | मृषासि त्वम् | ••• | • • • | 890 |
| | ۵۵ | मुबोद्यम् • | | | २४३ |
| | | | | | |

| श्लोकाः | क्षोकाङ्काः | [*] श्लोकाः | श्लोकाङ्काः |
|-----------------------|------------------|----------------------|-------------|
| मेघङ्गरम् | ••• ३५५ | यां कारिं राज॰ | 409 |
| मेथनादः | ৩४८ | यात यूयम् | ४५० |
| मेद्राः सविद्युतो | ९४२० | यानैः समचरन्त | 408 |
| मोज्जिप्रहः सुनीतानि | १२०१ | यायास्त्वभिति | २४२ |
| मोदिन्ये कस्य 🔐 | १३२८ | यावजीवम् | ••• १५७३ |
| वित्रभाणः | ४२९ | यादन संत्रासित | ९३५ |
| मियामहे | 6,28 | युद्धाय राज्ञा | · 6 4 3 . |
| त्रिययोध्वं मुहुतीन् | 94,04 | युद्धोन्मत्तं च | १२५६ |
| थ. | | युयुजुः स्यन्दनान् | 9945 |
| यः पयो दोग्धि | ••• <i>ई</i> રેઠ | युवजानिर् | १९६ |
| यक्षेन्द्रशक्तिम् | 9779 | युष्मानचेतन् | 684 |
| यच यत्र भवांस्ति ह | 9496 | यूयं समैध्यथ | 988 |
| यवापि यहा॰ | ९५४ | येन पूतकतोर् | ৭४৩৭ |
| यज्ञपात्राणि गात्रेषु | 949 ફ | ये सूर्यमुप | in dala |
| यत्कृतेऽसीन् | १३६९ | थ्रधानि खरों | ૧૨૪૭ |
| यहां प्रोणीवितुम् | ५२७ | योगक्षेमंकरम् | २२३ |
| यत्र यवामरिष्यत् | १५७६ | योदारोऽबिभरः | १३९९ |
| यत्स्वधर्मम् | 60% | योद्धं सोऽप्यस्पत् | १२२३ |
| यथास्वं संगिरन्ते | ५७३ | योऽपचके | ५६२ |
| यथेष्टं चर वैदेहि | 9444 | योषिहृन्द।रिका | २०७ |
| यदताप्सीच्छनैर् 🏎 | ६७५ | ₹. | |
| यदा न फेड़ः | 9969 | रक्तपङ्क गजाः | 9066 |
| यदा विगृह्म | ९६० | रक्तमश्योतियुः | 9२३५ |
| यदेहेनर्दिनम् | २२४ | रक्तं प्रबुधतुः | १९४७ |
| यदाकत्प्यत् | .,, 494 | रक्तेनाचिक्रिदत् | on. 9228 |
| यदाई नाथ | 989 | रक्षांचि वेदिम् | 4.۰ 92 |
| यमं सुनजिम | ••• ३२८ | रक्ष्णं करोषि | ore place |
| यमलोकिमित्र | 9894 | रधुतनयम् | 680 |
| यमायाकम्पनम् | | रणयण्डित्रो० | 693 |
| यमास्यदृश्वरी ़ | 390 | रणे चिक्रीड् | 9986 |
| ययाथ त्वम् | ••• ७२७ | रथेनाविव्यधत् | १२६७ |
| यसुविन्ध्यम् | · 880 | रविस्तप्यति | * 9390 |
| यशस्कर० | .••• २८१ | रसान् संहर | १५६२ |
| यस्या नासम्ति | ၆၀ရှ | राक्षसस्य न | १२३९ |
| या सहस्य | १३२९ | े राक्षसानां मयि | ६६३ |
| | | | • |

þ

| 26 | गेकाङ्काः - | श्लोकाः | | 78 | ोकाङ्काः |
|-------|----------------|-----------------------|-------|-------|----------------|
| | २६८ | - 8 | 5. | | |
| | ११८२ | लक्षे दे च पदातीन | | 424 | 9898 |
| | ६७१ | लक्ष्मणं सा | | ••• | १६८ |
| | १४४९ | लक्मणाचक्व | ••• | ••• | ३११ |
| | १४१७ | लक्ष्मीः पुंयोगम् | *** | ••• | २०० |
| 000 | 9६२ | , छङ्कां नाम्रा 🚥 | • • • | ••• | ५२८ |
| | ४६२ | लङ्कालये तुमुल • | | *=1 | 9040 |
| | <i>९५६७</i> | लज्जानता | ••• | | ولاتاه |
| | १४३९ | लतानुपातम् | • • • | *** | ३८ |
| • • • | १९९७ | लब्धां ततो ॰ | • • • | ••• | <i>હા</i> જૂ છ |
| | ६७२ | लभ्यां कथं नु | | ••• | ३३८ |
| 1 4 5 | 9990 | ल्लुः खङ्गान् | • • • | ••• | १९६० |
| ٠. | १४५७ | लवणजलवन्ध्र | ••• | *** | १०६२ |
| | ४१६ | लांगूलमुद्धतम् | ••• | *** | ६८० |
| | २३८ | लांगूलेलींटयां ॰ | *** | ••• | १०९४ |
| | ६६१ | लेढि मेपजवत् | ••• | ••• | १४६५ |
| | ६६७ | लोकानशिशिषोः | • • • | ••• | ७२७ |
| • • • | ६१४ | लोभाद्रयाद्वा | | ••• | ९७९ |
| | ९७१ | लोलं कूलाभिगमे | ••• | | १०४८ |
| | २९६ | लोहवन्धेववन्धे नु | ••• | • • • | ११२४ |
| | ३८७ | ঘ | · | | |
| 4 4 | 9090 | वक्षः स्तनाभ्याम् | • • • | *** | ८९५ |
| • • • | १०६८ | वचनं रक्षसाम् | ••• | ••• | ६२७ |
| | १४९७ | वज्रमुष्टेविंशिश्हेष | ••• | ••• | ११०२ |
| | ६६२ | वज्राभिधातर् | • • • | | ९८९ |
| • • • | १५५२ | विश्चित्वापि ••• | | | 480 |
| | ६४० | विणिक् प्रमाह० | ••• | ••• | ४८३ |
| | ३२७ | वधेन संख्ये | | • • • | ૮રૂ |
| | ८४२ | वनतापसके | | ••• | २२६ |
| | ३१० | वनस्पतीनां सरसाम् | | ••• | २८ |
| | ११४६ | वनानि तोयानि | ••• | 940 | ३२ |
| | ६१५ | वनान्तप्रेह्मणः | ••• | | ७७९ |
| | ७२८ | वनेषु वासतेयेषु | ••• | ••• | 186 |
| | 3886 | वपुश्चान्दनिकम् | ••• | *** | 363 |
| | ७८२ | * | | | ४६३ |

| _ | | | | (> |
|--------------------|-------|-------|--------------|---------------------------------|
| श्लोकाः | | 8 | डोकाङ्काः | श्लोकाः |
| वारवारणं सलिल | ٠ ٥ | ••• | १०२५ | विद्युतप्रगाशम् |
| वरिषीष्ट ••• | • • • | • • • | ६९८ | विद्युन्नाशम् |
| वरेण तु मुनेर् | | ••• | ४०१ | विद्यसमिण |
| वर्तिष्यमाणम् | | ••• | ६१० | विधृतनिशितः |
| वर्धते ते | ••• | • • • | રૂષ્ | विनङ्क्यति |
| वर्धिपीष्ठाः | *** | ••• | १५२६ | विनेष्ये कोंधम् |
| बल्गूयन्तीम् | ••• | ••• | <i>च ५</i> ६ | विपाकोऽयम् |
| वसानस्तन्त्रकः | *** | ••• | 984 | विप्रकृष्टम् |
| वसानां वल्कले | ••• | *** | ३९१ | विभिना जुबुरः |
| वसुन्धरायाम् | ••• | ••• | ३९९ | विभीषणस्ततो० |
| नसूनि तीयम् | | *** | રે | विभीषणोक्तम् |
| वसूनि देशांश्व | ••• | ••• | ९० | विमलसहामणि० |
| वस्त्रात्रपान • | *** | v = 4 | १२६ | वियति व्यख० |
| वस्त्रेरनत्युल्दण | ••• | | ९१४ | वियत्यानभ्रतुः |
| वाचंयमान् | *** | ••• | ९२३ | वियोगदुःसा० |
| वाचंयमो॰ | ••• | ••• | ३९३ | विराधताडका० |
| वाताहति॰ | *** | ••• | ३७५ | विराधं तपसाम् |
| वाद्यांचिकिरे | ••• | ••• | ৭০৩৭ | विरुग्णसंकीर्ण० |
| वानरः कुछ० | ••• | ••• | ७३२ | विरुगोद्य |
| वानरं प्रोर्णु॰••• | ••• | | ७०९ | विरूपाक्षस्ततो • |
| वानरा मुष्टिमिर् | *** | ••• | १०९३ | विरूपाक्षो जहे |
| वानरेषु कपिः | *** | ••• | ६५६ | विञ्जलित पु ष्प ० |
| वायव्यास्त्रेण तम् | ••• | | १२४८ | विलोक्य द्योतनम् |
| वालिनं पतितम् | 2 6 # | • • • | ४१४ | विटोक्य रामेण |
| वास्येत सु॰ | ••• | 4++ | 9493 | विरोक्य सहिरु० |
| विकस्थी याचते | ••• | ••• | ४४५ | विलोचनाम्बु० |
| विकुर्वे नगरे | ••• | | ५६३ | विलोलतां चक्षुषि |
| विगाढारम् | | | ७०२ | विवृतपार्श्वम् |
| विप्रहस्तव | ••• | • • • | 950 | विशङ्कटो वक्षसि |
| विचित्रमुचैः | *** | • • • | 88 | विशिश्वासयिषाम् |
| विचुकुशुर्भूमि० | | ••• | 908 | विश्वासप्रद • |
| विटयिमृग • | | • • • | ८३९ | विषधरनिलये |
| विदाङ्कवन्तु | ••• | *** | २९५ | विषसादेन्द्र |
| विदित्वा शक्तिम् | ••• | *** | ५३२ | विषद्य राक्षसाः |
| निद्यामयैनम् | *** | ••• | *c } | विष्यन्द्रमान० |
| | | | | |

| % . | गेकाङ्काः | कोकाः | | ক | किङ्गाः |
|----------------|------------|----------------------|-------|-------|---------|
| | ७४९ | शक्यान्यदोषाणि | ••• | *** | ९७६ |
| ••• | ४९४ | शङ्काधवित्र० | ••• | • • • | 450 |
| | ११९३ | शतसाहस्रम् | 444 | • • • | ५७९ |
| ••• | ६१२ | शत्रुन्नान् युधि | + + + | ••• | 808 |
| ••• | १९३ | शत्रुभिर्निहरो | ••• | ••• | १३१४ |
| | 3,40 | शत्रून् भीषयमाणम् | | | २४९ |
| ••• | 689 | शमं शमं नभखन्तः | *** | | १४८५ |
| 9 | १३६ | श्र्णामेव | 446 | | ८७९ |
| | ७२ | शरीरं लोहिताक्षस्य | ••• | ••• | १२९८ |
| ••• | ४७९ | शरेरताडयत् | 440 | ••• | १३८७ |
| ••• | 9६ | शमेंदं मारुतिम् | ••• | ••• | ३७९ |
| *** | ७७६ | शशाङ्कनाथा० | ••• | ••• | ९०० |
| | १२८ | शशिरहितमपि | ••• | | 646 |
| | १२२८ | शस्त्रेदिदेविषुम् | ••• | | ७०५ |
| | १३८५ | शस्रं तरूवीधरम् | | ••• | ९८४ |
| ••• | ५४७ | शाम्यत्यृतुसमाहारः | ••• | | १४७९ |
| ••• | 488 | शिञ्जानभ्रमर० | *** | ••• | १६१७ |
| | १४२२ | शितविशिख॰ | ••• | *** | \$ 5 P |
| *** | بروي | शिला तरिष्यति | • • • | ••• | 9006 |
| ••• | 9848 | शिवाः कुष्णन्ति | • • • | ••• | 9840 |
| *** | १६२४ | शीघायमाणैः | • • • | ••• | 998 |
| | ४८६ | शीर्षधातिनम् | • • • | *** | ४०३ |
| *** | ४१० | शीर्षच्छेयम् | *** | *** | २२८ |
| • • • | १४ई९ | गुक्रोत्तरासङ्ग • | *** | *** | 9३० |
| | 408 | शुश्राव रामः | *** | *** | १०८५ |
| *** | ८३५ | शूलानि अमयाम्० | ••• | 6 7 0 | १०७७ |
| • • • | ३३४ | भ्युष्वच्चः प्रति ० | | 9 9 9 | ६१९ |
| 0 + 1 | ६८३ | शैलेन्द्रश्केभ्यः | | ••• | ९२३ |
| ••• | 340 | शैले विश्रयिणम् | | | 848 |
| | | श्रीर्निष्कुष्यति | | *** | 9860 |
| *** | 9869 | श्रुला विस्फूर्जेथु० | | | २३६ |
| ••• | १२३६ | श्रोत्राक्षिनासा० | | - * * | 990 |
| • • • | 884 |] _ | | *** | |
| | ६७७ | शिष्ये केन | | *** | १३०८ |
| | ९६४ | श्व श्रेयसम् | | | १७६ |
| | | | | | |

| <i>र</i> होकाः | | | श्लोकाङ्का <u>ः</u> | _। श्लोकाः | |
|---------------------|----------|-------|---------------------|------------------------|-------|
| | ঘ, | | | सखमेजय॰ | |
| षड्वर्गवस्यः | | 8 . 1 | , <i>९७</i> ० | सलानजसम् | |
| ч | स्र. | | | सदोद्गार० | |
| संयुयूषुम् | | • • • | ७०८ | सहत्रमुक्ता० | |
| संवर्गयांचकार | | | ११६२ | संदर्शितस्नेह० | |
| संवाद्भिः सकुसुम | ۰ | | 94.69 | संत्रसानामपाहारि० | |
| संवित्तः सह … | | | २२० | संत्रासयांचकार | • • |
| संभृणुष्व | | | نع تع ح | संदिदशीयषुः | |
| संसगी परि० | | ••• | ४४२ | संदश्य शरणम् | |
| संसिस्मयिषमाणो | | *** | ७२६ | संदुधुक्षे तयोः | |
| संस्तावमिव | *** | *** | ४७३ | संधानकारणम् | |
| स एव धारयेत् | • • • | | 9408 | संधानमेवास्तु | |
| स किङ्करैं: कल्पित | म् | | ९४३ | संधुक्षितं मण्डलं॰ | |
| सख्यस्य तव | ••• | | ३६२ | संधौ स्थितो वा | 4 5 |
| स गिरिं तहः | ••• | | ८३३ | सन्नत्साम्यथवा | ٠. |
| संकल्पं नाकरिष्यः | 4 | | १५७१ | सपक्षोऽद्विरिवा॰ | ٠. |
| संक्रुध्यसि | ••• | *** | ६१८ | स पुण्यकीर्तिः | |
| संक्ष्णुवानः | *** | | ५८२ | सप्तषष्टि प्रवङ्गानाम् | _ |
| संगच्छ पौंस्नि | ••• | | २७४ | स प्रोषिवान् | |
| संगच्छ राम० | ••• | *** | ७८६ | स विश्रेष प्रचुक्षोद् | |
| संग्रामे | *** | • • • | ७४५ | समयं परिहरमाणी० | |
| संघर्षयोगिणः | | | ७७० | स भवान् भातृ | • |
| स च विद्वल ॰ | 0++ | | ८५१ | स भस्मसाञ्चकार | |
| स चापि रुधिरेर् | | | १२४४ | समक्षुभ्रतृदन्वन्तः | • |
| स जलाम्भोद् | • • • | ••• | 866 | समक्ष्णुवत शस्त्राणि | |
| संचेरः सहसा | • • • | | ४९१ | समगत कपिसैन्यम् | |
| संजानानान् | | | ५६९ | समगध्वम् | • |
| _ | ••• | | ६८७ | समतां शक्षि॰ | • • • |
| संज्वारिणेव | | | | समनःसीत्ततः | 4 2 0 |
| | | | | समपत्स्यत राजेन्द्र | |
| | | | | स महाफणि० | • • • |
| सतामविभ्रमत् | ••• | | १२३४ | समघत्तासुरम् | ۸. |
| सतामूचे | ••• | *** | ३५४ | समाविष्टम् | ••• |
| सत्त्वं समृदुधुक्षच | ••• | *** | | समाश्वसिमि केनाहम् | |
| स त्व इनिष्यन् | | | ७२२ | • | |
| | | | | | |

| श्ल | किन्द्राः | श्चोकाः | | શ્હો | काड़ाः | |
|-------|-----------|---------------------|-------|---------|---------------------|---|
| | ११७९ | सहायवन्तः | · • • | ••• | 988 | |
| | 9939 | सांराविणम् | | ••• | 81818 | |
| +,+ | ६३३ | सामर्थ्यं चापि | | ••• | 1२१२ | |
| •• | 94,६८ | सामर्थसंपादित० | | ••• | 48.8 | |
| ٠. | 340 | सामोन्मुखेन० | | • • • | 292 | |
| ٠. | 9000 | साम्नैव लांके | • • • | 4 4 4 | ९ १६ | |
| | २७२ | सायन्त्नीम् | ••• | | २४८ | |
| | 9439 | सारथिं चाछनात् | • • • | . * + * | १३८८ | |
| | १३१ | सारोऽसाविन्द्रिया ० | ***. | • • • | २०३ | |
| | २१४ | सा स्तम्बद्ग ० | | • • • | 80.00 | |
| | ११३७ | सितारविन्द ् | | • • • | محالع | |
| | १०९९ | सीतां सौमित्रिणा | | • • • | २९८ | |
| | १२९ | सीतां जिघांस् | | • • • | ३१९ | |
| | ५१९ | सीतान्तिके | | • • • | इ०९ | |
| | 966 | सीतां दिहसुः | *** | | ५८५ | |
| | 9060 | सीतारक्षो० | *** | • • • | ४७६ | |
| | ९१९ | सुकृतं प्रिय० | *** | ••• | ५५१ | |
| • • • | ९०५९ | मुखं खप्सन्ति | | • • • | <i>१३३६</i> | |
| | ८१४ | सुखजातः | | ••• | २२ ९ | |
| • • • | ९५० | सुखावगाहानि | *** | 444 | ९१८ | |
| | ३४६ | मुत्रीवान्तिकम् | *** | ••• | ४६५ | |
| • • • | ३९४ | सुयीवो मुसुदे | | ••• | 99०६ | |
| ٠,. | 2886 | मुत्रीवोऽस्याभ्रशत् | • • • | * * * | 9280 | |
| | ३६६ | सुपाद् द्विरद॰ | ••• | ••• | 944 | |
| | ७५७ | छप्तो नमस्तः | • • • | | 909 | |
| | १४६६ | सुप्रतिष्णात • | ••• | • • • | ७५६ | |
| •• | 9486 | स्त्रातमासादित - | | • • • | હ દ્વ | |
| | ३७८ | सुरापाण | *** | | ७६९ | |
| | २० | सुराषैरिव | | *** | ३८९ | |
| | ५३१ | सुषान्तीं सर्व ० | *** | *** | ৩ % ८ | |
| | 99६६ | सुपुपुस्ते | | | ড४৭ | • |
| •• | 9880 | मुहदी राम॰ | | | ७८७ | |
| | ११४० | · | , | | | |
| | १३४३ | ं सूतोऽपि गातः | | | 900 | |
| | 9083 | • | | | ¥ፍ | |

| श्लोकाः | | 8 | डोकाङ्काः | श्लोकाः |
|----------------------|-------|-------|-----------|-----------------------------|
| सेतुं सहेन्द्रम् | | | १६१५ | स्वं कमे कारयनाः |
| सेवितासे प्रवङ्ग ० | ••• | | १५९३ | खर्गे विद्यस्त |
| सेहे कपी रथा० | ••• | | ঀঀ७६ | स्वभीनुभीस्करम् |
| सोऽध्यष्टीयत रामे | ण, | | ያሄሄሄ | स्वां जिज्ञापयिषु० |
| सोऽध्यैष्ट वेदान् | | | २ | स्वामिनो निष्क्रयम |
| सोऽपृच्छत् | | | २९९ | स्वेनुस्तित्विषुः |
| सौमित्रिः सर्पवत् | | * 4 0 | १२७१ | |
| सौमित्रिराकुलः | ••• | | १३६५ | इतं रक्षांचि |
| सौमित्रेमा | | | १५८ | हत बन्धु र्जगाम |
| सौमित्रेरिति | ••• | ••• | ८८४ | हतराक्षस॰ |
| सौर्याध्येये | 4 4 0 | | १२७३ | हता जनस्थान • |
| स्त्रीभूषणम् | ••• | | ४२ | हते तस्मिन् |
| स्थानं नः पूर्वजान | ाम् | ••• | १६२८ | हत्वा रक्षांसि |
| स्थायं स्थायम् | ••• | ••• | २३४ | हन्तुं कोधवशात् |
| स्थितमिव परि॰ | ••• | • • • | 548 | हया जिहेषिरे |
| सानभ्यविचत | *** | *** | ३१४ | हरहासरुद्ध |
| स्नानीयै: स्नापयेत | *** | ••• | 9499 | हरामि राम॰ |
| स्नाह्यनुष्टिम्प | ••• | ••• | 9488 | हरिरव विलोल ० |
| स्पृह्याङ्म् ⊷ | *** | ••• | 844 | हरेः प्रगमनम् |
| स्फटिकमणियृहः | | ••• | ८५९ | हविर्जक्षिति |
| स्फुटपरुषम् | 400 | • | ८१० | हित्वाशितङ्गवीनार्ग |
| स्रातुरे चेतसि | *** | *** | ९१२ | हिरण्मयी शाल॰ |
| स्मेष्यन्ते सुनयो | | | १३१८ | ही चित्रं लक्ष्मणेन |
| स्यन्तवा स्यन्तवा दि | द: | ••• | 9609 | |
| स्याङ्गचेष्टो० | *** | | ८९३ | हतरत्रथत० |
| स्रसाङ्गयष्टिः | | | ८९६ | हृदयङ्गम |
| खपोषमपुषत् | | ••• | ३१७ | हृदयोदङ्ग० |



.ु≍ःःःः>ंद्रःःःः>ः श्रु समाप्तेयं श्लोकानुक्रमणिका । .'ॅंद्रःःः≍ःःः>ंद्रःः

देवं नंदनंदनं वंदे। ओं नमः सिद्धम्।

अथ

श्रीभद्दि-काव्यं

जयमङ्गलया समेतम्—

प्रथमः सर्गः--

प्रणिपत्य सक्छवेदिनमतिदुस्तरभटिकाव्यसिल्लिने ।॥ जयमङ्गलेति नाम्ना नौकेव विरच्यते टीका ॥ ३ ॥

छक्ष्यं छक्षणं चोभयमेकत्र विदुषः प्रदर्शयितुं श्रीस्वामिस्तुः कविभेदिनामा रामकथाश्रयमहाकाव्यं चकार। तथाह्यस्रोपनिहम्भनं कविना द्विधा कृतम्। एकं छक्षणस्चकैः प्रकीर्णा-धिकार-प्रसन्न-तिङ्न्तकाण्डेश्चतुर्भिः। द्वितीयं छक्ष्य-स्चके रामसंभवादिभिद्वाविद्यासाँ सर्गैः। तत्र छक्षणं द्विविधम्। शब्दछक्षणं काव्यछक्षणं च। तत्र प्रथमस्य प्रकीर्णाधिकारतिङ्न्तकाण्डानि। द्वितीयस्य प्रसन्नकाण्डम्। यत्रोचावचेन बहूनां छक्षणानां प्रकरणं तत्प्रकीर्णकाण्डम्। तदेवात्र प्रथमसुक्तं तस्य व्यापित्वात् 'उत्तरत्रापि द्रष्टव्यम्' इति प्रदर्शनार्थम्। अत्र यद्यप्यादौ कविना देवतावमस्कारो न कृतस्तथापिष्टदेवतासंकीर्तनमपि विद्योपश्चमनहेतुर्भवतीति मन्यसान आह—

१-अभून् नृषो विबुध-सर्खः परं-तपः श्रुताऽन्वितो दश-रथ इत्युंदाहृतः,॥ गुणैर् वरं भुवन-हितर्च-छलेन यं सना-तनः पितरभुंपागमत् स्वयम्.॥

१—'अम्झृपो दशरथ श्लुदाहतः श्रुतान्वितो विश्वधससः परन्तपः॥' इति पाठन्यत्यासोऽपि कचित्। २—'७७७। अथ मित्रं साखा सहत् ।' इति नामिलजानुशासनेऽमरसिंहः। ६—दशस दिश्च रथो रथ-गतिर्थसेति यथार्थनामेति मावः।
४—'१४६। छे च ।६।१।७३। हस्वस्य छे परे तुगागमः स्यात्संहितायाम् । यथा-सदाशिव-। छात्रः=सदाशिवच्छात्रः ।' इतिसिद्धान्त-कौमुणां भट्टदीक्षितः। ५—पथेऽसिन्दृत्तं
रिचिरा । तद्यक्षणम्-'चतुर् (४)- यहै (९) रिह सचिरा ज-भ-स्-ज-गाः।' इति
कृत्तरस्वाकरे मट्टनेदार

अभृदित्यादि-तस्य हीष्टदेवता सनातनो विष्णुः। स चादो कीर्तितः। तस्त्रतिबन्धना चेयं कथेति प्रबन्धेनैवात्र संकीर्तनं रामायणवत् । तत्र विष्णोर्थ-स्मिन्काले जगत्कार्यवशादवतारः कृतस्तदेव प्रथमं दर्शयति । अमूदिति भूतसा-मान्ये लुङ् । भृत इत्यर्थः । अन्यथा राज्ञश्चिरातीतत्वात्कयेः परोक्षत्वाच लिद स्यात् । '२२२३। गाति-स्था-।२।४।७७।' इति सिचो छक् । '२२२४। भू-सुवो-स्तिङि ।७।३।८८।' इति गुणप्रतिषेधः ॥ 'नयतेर्डिच' इति नयतेरीणादिक ऋन्। नरो मनुष्यास्ताज्ञून्पातीति । '२९१५। आतोऽनुपसर्गे कः ।३।२।३।'। '२३७२। आतो लोपः-।६।४।६४।' नृपो राजा । अत्यन्तधर्मविजयित्वादेवराजस्य मिश्च-मासीदित्याह — विद्वधसस्य इति । विद्वध्यन्त इति विद्वधा देवास्तेपामपि प्रधा-नत्वात् । तत्रेगुपधलक्षणः कः । सामान्यशब्दोऽपि देवेषु वर्तमानोऽप्यर्थवशा-च्छके प्रयुक्तस्तस्य सखेति । '७८८। राजाऽहःसिवस्यष्टच् ।५।४।९१।' विबुध-सलः । अनेन धर्मविजयिष्यं दर्शयति विबुधसलत्वस्य धर्मकार्यत्वात् । सुरलो-कविजयिनश्र वे राजानस्तेषां धर्मविजयी प्रधानम् । परे शत्रवस्त्रिविधाः— उच्छेदनीयोपपीडनीयकर्षणीयाः । तत्र ये उपपीडनीयकर्षणीयास्तान्परांस्तापय-तीति परंतपः । '२९५४। द्विषत्परयोस्तापेः ।३।२।३९।' इति सन् । '२९५५। खिच ह्रस्वः । ६।४।९४। । '२९४२। अरुद्धिंपदजन्तस्य- । ६।३।६७।' इति सुस् । नृप इत्यनेन स्वमण्डले वृत्तिराख्याता । परंतप इति परमण्डले । श्रूयन्त इति श्रुतानि वेदादीनि तैरन्वितः संबद्धः । प्रनथतोऽर्थतश्च गृहीतत्वात् । दशरथ इत्यनेन नास्रोदाहतो क्षोके गीतः॥ गुण्यन्तेऽभ्यस्यन्त इति गुणाः। '२०४०। गुण आमञ्चणे।' इति चौरादिकोऽदन्तः । तस्मात् '३१८८। अकर्तरि च–।३।३। १९।' इत्यादिना घञ् । येपाम् 'एरजण्यन्तानाम्' इति दर्शनम् । येषां तन्नास्ति तेषामेरच् । स्वरं प्रति विवादो न रूपं प्रति । गुणैरभिरामत्वादिभिर्वरं श्रेष्ठ यं नृपं पितरमुपागमदिति संबन्धः । श्रियत इति वरः । '३२३४। ब्रह-बृ-ह-।३।३।५८।' इलादिना कर्मण्यए । केन हेतुनोपगतवांस्तं पितरं सनातन इत्यत आह—भुवनहितच्छलेनेति । भवन्त्युत्पद्यन्त इति भुवनानि । भूर्भुवःस्वरिति त्रयो लोकाः । 'रजः वयुन्' इत्यनुवर्तमाने 'मृ-स्-ध्-सर्जिभ्यइछन्दसि' इत्योगादिकः क्युन्बहुळवचनाद्गापायामपि भवति । तेभ्यो हिता भुवनहिता विष्णोर्दशावताराः। इह तु रामो दृष्टव्यः। तच्छलेन व्याजेन सुवनहितच्छलेन। इदानीं रावणादि—कण्टकोद्धरणात् । तथा चोक्तम्—'परित्राणाय साधृनां विनाशाय च दुष्कृताम् । धर्मसंस्थापनार्थाय संमवामि युगे युगे ॥' इति । सनेत्यव्ययं सदार्थे वर्तते । सना भवतीति । '१३९१। सार्य-चिरम्- ।४।३।२३।' इति खुट्युलौ तुइ च । सनातनो विष्णुरुपागसदुपजगाम । स्टिद्स्वादङ् । सस्यन्येषुराजसु गुणैर्वरस्वाधं पितरं ेऽमूदिति योज्यम्

न कर्मणाम्येन वा प्रेरित इत्यर्थ ॥

२-सौऽध्येष्ट वेदांस्, त्रि-दश्गांनीयेष्ट, पिवृनेपारीत्, सममंस्त वन्धून्,॥ व्यजेष्ट षेड्-वर्गम्रंस्त नीतौ, स-मूल-घातं न्यवधीदरींश् चॅ.॥

सोऽध्येष्टेत्यादि-क्षत्रियस्य धर्मोऽध्ययनं यजनं दानम् । ज्ञास्त्राजीवो भूत-(क्षणं चेत्युभयं नृप इसनेनोक्तम् । भृतरक्षणे शस्त्रमङ्गस् । स नृपो वेदानध्यै-ष्टाधीतवानिति स्वाध्याय उक्तः । वेदयन्ति ज्ञापयन्ति धर्माधर्माविति वैदाः सामादयः । '२८९६। नन्दि-प्रहि-पचादि-।३।३।३३४।' इसच् । इङोऽघिपू-र्वस्य '२४६०। विभाषा सुङ्-सुङोः-।२।४।५०।' इति गाङ् । विभाषयेति गान क्षभावपक्षे रूपम् । अजादित्वादाद । '२६९। आरश्च ।६।१।९०।' इति वृद्धिः । ख्तिवादात्मनेपद्म् । '२१२। आदेश-प्रत्यययोः-।८।३।५९।' इति पत्वं कृत्वं च । त्रिदशान्देवान्यष्टाग्निष्टोमादिभिः पूजितवान् । यजनमुक्तम् । यजेः '२१५८। स्वरितः-वितः-। १।३।७२।' इति तङ् । अनिक्समीपत्वाद्धलः '२३००। हिङ्सि-चौ-१।२।११। इति किस्वं न भवति । '२२६। बश्च-भ्रस्ज-८।२।३६।' इत्या-दिना पत्वम् । '२२८९। झलो झलि ।८।२।२६।' इति सिचो लोपः ॥ पितृनपा-रीदाप्यायितवान्। पितरमुद्दिश्य यजनम् '११६० । पृ पालन-प्रणयोः।'इत्यसा-त्परणार्थाञ्जिङ रूपम् । '२२९७। सिचि वृद्धिः-।७।२।३'। '२२६६। इट ईटि।८। २।२८।' इति सिचो लोपः। अथवा 'पितृनताप्सीत्' इति पाठः । '१२७३। तृप प्रीणने ।' इससाछुङि 'स्पृश-मृश-कृश-तृप-दृपां च्लेः सिज्वक्तव्यः' इति च्लेः सिचि '२४०२।अनुदात्तस्य च-१६।११५९।' इत्यादिना अमभावपक्षे रूपम्। पितुंसार्पितवानित्यर्थः ॥ सममंस्त वन्धूनमातृपित्रादिज्ञातीन्संमतवान् । सदा दानमानादिभिः प्जितवानिसर्थः । मन्यतेरनुदात्तःवात्तङ् । इदमतिषेधश्च । येषां सिच इकार उच्चारणार्थस्तेषाम् '२६९७। हनः सिच् ।१।२।१४।' इति किःक-

१—'७। अमरा निर्जरा देवास त्रि-द्शा विवुधाः छराः ॥' इति ना० अ० 'एतीया योवनाख्या दशा सदा येषां ते त्रि-द्शाः । विश्व ब्दस्य तृतीयार्थता त्रिभागवत्'।
इति व्याख्यासुधायां (रामाश्रम्यां) भानुदीक्षितः । २—'२९४। त्रश्च-श्रस्ज-स्ज-मृजयज-राज-श्राज-छ-शां षः ।८।२।३६। त्रश्चादीनां सप्तानां छशान्तयोश्च पकारोऽन्तादेगः
स्याज्ञ्चलि पदान्ते च ।' इति वै० भ० । ३—काम-क्रोध-छोभ-मोइ-मद-मत्सरेत्यन्तर्रीणा
पद्धीमित्यनित्यसमासः । यथा—'४३ । तनुसुद्ध्यन् मत्यः शिवा-भागवतो यदि ।
अरि-षद्ध्यर्ग-तस् तस्य भयं नाऽस्ति कदा-चन ॥' इति समास-कुसुमाऽऽवब्यामनन्त-शिष्यः । ४—पथेऽस्मिन्वृत्तसुपजातिरापत्रविश्वितपथेभ्यः । तह्यक्षणम्—'स्यादिन्द्रवजा यदि तौ व-गौ गः छपेन्द्रवजा च त-आस्ततो गौ । अन तरोद्यितत्रक्षमभाजौ पादौ
वदी (१४) शिव वृत्त० मट्ठ श्राद्वेद्रायिषा सन्ति

रणज्ञापकाञ्चलोपाभादः । येषां तु इकार इत्तेपामिदिस्वाञ्चकारकोपाभावः ॥ आभ्यन्तरं शत्रुमजित्वा कथं परंतप इलाह—व्यजेष्ट पट्ट्यांमिति । कामकोधकोभमोहमद्मात्सर्याणां घण्णां वर्गः पट्ट्याः । तमिश्मत्तवात् । विप्र्वेस्य जयतेः
'२६८५। वि-पराभ्यां जेः ।१।२।१९।' इति तङ् ॥ अरंत्त नीतौ सामादिषु संध्यादिषु च रतः । नीतिमानित्यर्थः ॥ समूळवातं न्यवधीत्ससूलान्निःशेषानरीकत्त्रज्ञान्निष्ठतवात् । उच्छेदनीया ये रात्रवस्तेष्वदं विधानम् । समूळोपपदाद्वन्तेः '३३५७। समूळाकृत-।३।४।३६।' इलादिना णमुळ् । '३५८। हो हन्तेः-।
७।३।५४।' इति घत्वम् । वृद्धिः । '२५७४। हनस्तः-।७।३।३२।' इति तत्वम् ।
'३३६७। कषादिषु यथा-।३।४।६।' इलादिना यथाविध्यनुप्रयोगः । अनुप्रयोगे '२७३४। लुङ्कि च-।२।३।४३।' इति वधादेशः । तस्याकारान्तत्वादुपदेशेऽनेकाच्त्वादिण्नियेधो न भवति । अतो लोपे कृते तस्य स्थानिवद्यावात्
'२२८४। अतो हळादेः-।७।२।७।' इति विभाषावृद्धिन भवति ॥

इ—वर्सृनि तोयं घन-वेद् व्यकारीत्, सहांऽऽसनं गोत्रै-भिदाऽध्यवात्सीत्,॥ न व्यम्वैकादंन्यमुंपास्थिताऽसो, यशांसि सर्वेषु-भृतां निरास्थत्.॥

चस्नीत्यादि वस्ति द्वाणि वन्ध्वातिरेकेण बालादिभ्यो व्यकारीहत्त-वान् । विश्विसवानिति वा । किरतेर्छेलि रूपम् । कः किमिवेलपेक्षायामाह— तोयं घनवदिति । तोयमुद्कम् । घनो मेघः फलनिरपेक्षतया यथा विकिरति तद्वत् । एवं सम्यक्पालनादिन्देण तुल्यत्वमाह—सहासनं गोत्रमिदाऽध्यवा-त्सीदिति । गोत्रमिदेन्देंण सहासनमध्यवात्सीदध्युषितवान् । अनेनात्यन्तध-मेविजयित्वस्य फलं दर्शयति । '१०७४। वस निवासे ।' इत्सस्य रूपम् ।'वसिः संप्रसारणी' इति वचनादिडभावः । '२२२५। अस्ति-सिचः—।७।३।९६।' इति इट

१—'९७६। द्रव्यं वित्तं स्वापतेयं रिनथमृत्रथं धनं वसु । हिरण्यं द्रविणं बुम्नमंथं-रे-विभवा अपि ॥' इति ना० अ०। २—'१७७८। तेन तुस्यं किया चेद् चितः (वत्)।५।१।११९५। ब्राह्मणेन तुस्यं व्राह्मणवदधीते। क्रिया चेदिति किम्। गुणतुत्ये मामूत्। पुत्रेण तुस्यः स्थूलः।' इति वै० भ०। ३—'४९। स्त्रामा गोत्र-भिद् वज्ञी वासवो यृत्रद्या वृषा। वास्तोष्पतिः सुरपतिर् वलारातिः शचीपतिः॥' इति० ना० अ०। 'गां पृथ्वी त्रायन्ते पाल्यन्ति ते गोत्राः पर्वतास्तान् भिनत्ति विदारयतीति गोत्र-भिद् (त्)।' इति व्या० भा०। '१०३४। श्रे-ङ् पाल्ने।' ('१५३३। भिदिर् विदारणे।' इति धातुपाठे पाणिनिः। ४—'३८। हरः स्मरहरो भर्गस् त्रयम्बकस्स् विपुरान्तकः। गङ्माथरोऽन्यकरिषुः कतुष्वंसी वृषच्यवः।' इति ना० अ० 'दैव दीपस् त लोचनम् च इति त्रिकाण्डयेथे पुरुषोत्तम

'२२६७। वद्-वज-१०१२।३।' इत्यादिना वृद्धिः । '२३४२। सः स्यार्धभातुके । ७।४।४९।' इति तत्वम् । आसनमिति '५४४। उपान्वध्याङ्वसः ।१।४।४८।' इत्यिकरणस्य कर्मसंज्ञा ॥ त्रीण्यम्बकान्यक्षीणि अस्येति व्यम्बको महादेव-सस्याद्वन्यं नोपास्थित । न पूजितवानिसर्थः । उपपूर्वासिष्ठतेः 'देवपूजा-सं-गितकरण-पित्रकरण-पथिषु-।' इति देवपूजायां तङ् । '२३८९। स्था-व्वोरिच । ११२१९।' इत्यादिनेत्वं कित्वं च । '२३६९। हस्यादक्षात् ।८।२।२०।' इति सिचो छोपः ॥ इपून्विभ्रतीति । '२९८०। अन्येभ्योऽपि इश्यन्ते ।१।२।०।' इति सिचो छोपः ॥ इपून्वभ्रतीति । '२९८०। अन्येभ्योऽपि इश्यन्ते ।१।२।०।' इति किष् । इषुभृतो धनुर्धराः सर्वेषां तेषां यशांसि निरास्थत् । नि रस्त-वानिसर्थः । एतेनास्यासाधारणीकृतास्वत्वं दिशेतत् । 'उपसगीदस्यसूद्धोर्वा-वचनम्' इति वचनाद्यद्वा तङ् नास्ति तदा तिष् । '२४३८। अस्यति–।३।१।५२।' इत्यादिना च्छेरङ् । '२५२०। अस्यतेस्थुक् ।०।४।१०'॥

४-पुण्यो महा-ब्रह्मं-समूह-जुष्टः संतर्पणो नाक-सदां वरेण्यः ॥ जज्वाल लोक-स्थितये स राजा यथाऽध्वरे वह्निरीमेंप्रणीतः.॥

पुण्य इत्यादि — पुनातीति पुण्यः । 'पूजो यत् णुक् हस्तश्च' इत्योणादिको यत् णुगागमश्च हस्तश्च । अत्यन्तपुण्यकरणाद्वाजापि पुण्य इत्युज्यते । तन्मयत्वा-द्वाजा । अग्निरपि पुण्यः पावनत्वात्पुण्यः । यागादिः पुण्यस्तेन पुरुषः प्यते । महतां वेदविदां ब्रह्मणां ब्राह्मणां समूहेन जुष्टः सेवितो राजाग्निश्च । ब्रह्मश-व्होऽत्र ब्राह्मणपर्यायः । नाके स्वर्गे सीदन्तीति '२९७५। सत्-स्-द्विष—१३२१ इशा इत्यादिना किप् । नाकसदो देवास्तेषां । कर्मणि षष्टी । संतर्पयति प्रीणय-तीति संतर्पयति क्रिपय-तीति संतर्पयति प्रीणय-तीति संतर्पयतेः '२८४१। क्र्यच्युटो बहुलम् ।३१३११९३।' इति कर्तिरि ल्युट् । राजा यागादिना तर्पयति । अग्निरप्यग्निमुखत्वादेवानाम् । वरेण्यः श्रेष्ठो राजाग्निश्च 'वृङ एण्यः'। जन्वाल प्रदीसवान् । लोकस्थितये मामूल्लोकस्य स्थिलतिकम इत्येवमर्थम् । अग्निरपि लोकस्य स्थितये ज्वलति । यथोक्तम्— 'अग्नो प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते । आदिसाज्ञायते वृष्टिर्वृष्टेरसं ततः

१— '१३२२। वेदस् तत्त्वं तथे व्रह्म, ब्रह्मा विष्ठः प्रजापतिः।' इति ना० अ०। यथा—'श्रह्माणी ब्रह्मणो ब्रह्मणा वेतुमईतः, । इतत्-पद्माऽर्थ-ब्राह्माऽर्थाऽपि न स्यात् कोश्मान्तरा.॥' इति कोशाऽवतंसः । २— '२९७५। सत्-स्-द्विष-द्वृह-दुह-दुज-विद-भिदच्-छिद-जि-नी-राजामुपसर्गेऽपि किप् (०)। ३।२।६१। एभ्यः किप् स्यादुपसर्गे सल्यसित च सुप्युपपदे। यथा—शु-सत्। उप-नि-धत् । अण्डस्ः। प्रस्रित्यादि।' इति नै० भ० ३ २२८७ उपसर्गाद-समासेऽपि णोपदेशस्य ८४१४ उपसर्गस्याद्वि णोपदेशस्य भातोनस्य ण समासेऽपि प्रणदि प्रणनदिति।'

यजाः ॥' इति । अभिप्रणीत इत्यभिविद्योवणम् । आभिमुख्येन प्रणीत इति भादिसमासः । '२२८७। उपसर्गादसमासे—।८।४।४४।' इत्यदिना णत्वम् । मन्त्रेणाभिमुखीकृत ्इत्यर्थः । यथाध्वरे यागेऽभिप्रणीतो वह्निर्वेलति तथा राजापीत्यर्थः ॥

यत्रस्थो राज्यं चकार तां नगरीं दर्शयकाह-

५—स पुण्य-कीर्तिः शत-मन्यु-कल्पो महेन्द्र-लोक-प्रतिमां समृद्धा ॥ अध्यास्त सर्वेत्री-सुलामेयोध्या-मध्यासितां ब्रह्मभिरिद्ध-वोधैः.॥

स पुण्येत्यादि—स्वामिगुणपूर्वका हि निवासस्य गुणा भवन्तीति प्रद्रर्शनार्थं पश्चात्तद्विभानम् । तथा चोक्तम्—'स तु यच्छीलस्तच्छीला अस्य प्रकृतयो भवन्ति ।' इति । स राजा पुण्यकीर्तिः पुण्याः पवित्राः कीर्तयो यस्य
सः । शतमन्युकल्प इति प्रभावं दशेयति । '२०२२। ईषदसमासौ—।५।३।६७।'
इति कल्पप् । शतमन्युरिन्दः । महेन्द्रलोकप्रतिमामयोध्यामिति योज्यम् । प्रति॰
सीयते तुल्यत इति प्रतिमा । '३२८३। आतश्चोपसर्गे—।३।३।१०६।' इत्यङ् ।
महेन्द्रलोकेन प्रतिमा तुल्या । '६९२। तृतीया—।२।१।६०।' इति योगविभागास्मासः । अमरावर्तामिवेत्यर्थः । कया । समुद्धा । सम्यगतिशयेनर्द्धः समुद्धिः । '७६९१। कुगतिप्रा—।२।२।१८।' इति प्रादिसमासः । अध्यास्ताध्यासितवान् । भूतसामान्ये लङ् । अस्तेरनुदात्तेत्वात्तङ् । '५४२। अधि-शिङ्—।६।६।
४६।' इत्यादिनाधिकरणस्य कर्मसंद्धा । सुखयतीति सुखा पचाद्यम् । सुखहेतुस्वाद्वा सुखा । सर्वेषु ऋतुषु सुखेति । '७१७। सप्तमी—।२।१।४०।' इति योगविभागात्समासः । अध्यासितामध्युषिताम् । वद्यमिर्वाद्यणेरद्धवोधेः । सर्वशास्वपरिज्ञानात्पदुञ्जद्धिभिरित्यर्थः । इन्धिर्निष्टायामनुनासिकलोपः ॥

६-निर्माण-दक्षस्य समीहितेषु सीमेव पद्माऽऽसन-कौशलस्य ॥ ऊर्ध्व-स्फुरद्-रल्ल-गर्भस्तिमिर् या स्थिताऽवहस्येव पुरं मघोनैंः.॥

२— '५४२। अधि-शीइ—स्थाऽऽसां कर्म ।१।४।४६। अधिपूर्वाणामेपामाथारः कर्म स्थात् । यथा—अधिशेते-अधितिष्ठति-अध्यास्ते वा वैकुण्ठं हरिः ।' इति० वै० म० । २— '११८। किरणोस्नमयूखांऽज्य-मभस्ति-प्रणि-रदमयः ॥' ३— '१३० । पूः स्वी पुरी-नगर्यों वा पन्तन ४ ४७ इन्द्रो मस्त्वान् मध्या विदेखा पाकशासन इति सवत्र ना० म०



निर्माणेत्यादि-पद्मासनो ब्रह्मा । पद्ममासनं यस्येति कृत्वा । तस्य कोशरूं नेपुण्यमिति षष्टीसमासः । तस '७०५। पूरण-गुण-१२।२।११' इस्रा-दिना न प्रतिपेधः । तत्र विशिष्टा एव गुणा रूपरसगन्धस्पर्शास्तद्विशेषाश्च क्रुक्कनीलादयः कटुकाम्लादयः सीरभ्यादयः शीतोष्णादयश्च गृहीताः । तत्र रूपादिभिः समासो भवत्येव । 'तत्स्थैश्र गुणैः पष्टी समस्रते न तु तिहृशेषगुणैः।' इति वचनात् । अन्यैस्तु समासप्रतिषेधः। एवं च कृत्वा मुनित्रयवचनसर्थवद्भवति । तद्यथा '९१९। अधिकरणैतावस्ये च ।२।४।१५। -१२९५। तद्शिष्यं संज्ञाप्रमाणस्वात् ।१।२।५३।' इति पाणिनेः, 'युग-पहेशपृथक्तदर्शनादिति रूपसामान्याहेति वचनप्रामाण्यादिति चेद्छो-पप्रतिषेधः' इति कास्वायनस्य, 'नकारमहणसामध्योञ्जोषो न भवि-ध्यतीति किं पुनरत्रार्थसत्तत्वम्' इति भाष्यकारस्येति । तस्य सीमेव मर्वादेवायोध्या । ततो न सम्बन्तरं शोसनमसीत्यर्थः । कीदशस्य । निर्मा-णदक्षस्य । निर्मितिनिर्माणं सृष्टिस्तत्र दक्षस्य पटोः । क विषयेषु । समीहि-तेल । स्रष्टमीप्सितेप्विलर्थः । अर्ध्वमुपरिष्टास्फुरद्रवगभस्तिभः स्फुरन्तो ये रतानां गभक्तयो रशमयस्त्रेहीसभूतैमीवोन इन्द्रस्य पुरममरावतीमवहस्येव स्थिता या तामध्यास्त । 'सघवन् धन् उक्षन्' इत्यौणादिकः । '३६२। श्रयुव-मघोनाम्-।६।४।१३३।' इति संप्रसारणम् ॥

> ७-सद्-रत्न-मुक्ता-फल-वज्र-भाञ्जि विचित्र-घात्नि स-काननानि ॥ स्त्रीभिर् युतान्यंप्सरसामिवीधैर् मेरोः शिरांसीव गृहाणि यस्याम्, ॥

सद्रह्मस्यादि स्विन्त शोभनानि यानि रह्मादिन तानि भजन्ते यानि
गृहाणि तानि सद्रह्ममुक्ताफलमञ्ज्ञभाञ्जि । मुक्ताफलमञ्ज्ञयो रह्मान्तभावेऽपि
शाधान्यक्यापनार्थ वचनम् । गोवलीवर्दन्यायाहा । रह्माव्देन मरकतपद्मरागवैद्र्यीद्यो गृह्मन्ते । 'सद्रह्मादि स्वृज्जि' इति पाठान्तरम्। '३७६। युजेरसमासे ।७।१।७१।' इति प्रतिपेधो न भवति । अनपुंसकविषयस्वात् । नपुंसके तु
तल्लक्षणस्य नुमो विधानात् । विचित्रधात् निविन्त्रा नानाप्रकारा धातवो मनःशिलाद्यो येषु गृहेषु तेषां विरचित्रचित्रकर्मस्वात् । सकाननानि सोद्यानानि ।
स्वीभिर्युतान्यप्सरसामिनौष्यसत्रत्याभिः स्वीभिरप्तरोभिरिवेद्यर्थः । मेरोः शिर्गसीच मेरोः गृह्माणीव एवंत्रिधानि गृहाणि यस्यामयोध्यायां तामध्यास्त । गृह्
इति '२९०६। गेहे कः ।३।११९४।' तत्र गृहशब्दो वेश्मनि नपुंसकलिङ्गः ।
तःस्थायिषु पुंल्लिङ्गो नित्यं बहुवचनान्तश्च ॥-

८-अन्तर्-निविष्टोज्ज्वल-रत्न-भासो गवाक्ष-जालैरीभिनिष्पतन्त्यः ॥ निमादनि-सङ्गिति सानित सम्यां

हिमाऽद्रि-टङ्कादिन भान्ति यस्यां गङ्काऽम्बु-पात-प्रतिमा गृहेभ्यः॥

अन्तरित्यादि अन्तर्गृहमध्ये निविष्टानि निहितान्युज्जवलरतानि यानि तेषां भासो रश्मयो गृहेभ्यो गवाञ्चजालैराभिनिष्पतन्त्यो निर्गच्छन्त्यो यसां भान्ति तामध्यास्तेति योज्यस् । पर्वतस्योजतप्रदेशष्टङ्क इत्युच्यते । तसादिम-वस्पर्वतरङ्कादिव गङ्गाम्बुपातप्रतिमा गङ्गाजलप्रवाहतुष्याः स्वच्छत्वात् ॥

> <-धन्यांसु कामाऽर्थ-यशस्-करीषु मतासु लोकेऽधिगतासु काले॥ विद्यासु विद्वानिवै सोऽभिरेमे पत्नीषु राजा तिसृष्त्तमासुः॥ँ

ध्रम्योस्वित्यादि — धर्मादनपेतासु । '१६४४। धर्म-पथ्यर्थ-।४।४।९२।' इत्यादिना यत्। कामार्थयत्रांसि कर्तुं शीलं यासां तासु। '२९३४। कृषो हेतु-।३।२।२०' इत्यादिना ताच्छील्ये टः। '१६०। अतः कृ-किम-।८।३।४६।' इत्यादिना विसर्जनीयस्य सत्वम्। दित्यान्हीप्। मतासु पूजितासु लोके तासां प्रती-तत्वात्। अधिगतासु काले विवाहयोग्ये काले परिणीतासु। सोऽभिरेमे सराजाभिरतवान्। पत्नीषु '४९०। पत्युनी यज्ञसंयोगे।४।१।३३।' इति नकारः। तिसृषु कौसल्याकेकेथीसुमित्रासूत्तमास्विति सन्नारीगुणैः श्रेष्टासु। विद्यास्विति विदन्त्याशिर्धमीधर्माविति विद्याः '३२७६। संज्ञायां समज-।३।३।९९' इत्यादिना कथप्। तिसृषु सामग्येजुराख्यासु। धर्म्यास्वित्यादिकं तुल्यम्। विद्वानिव यथाधिगतविद्य इत्यर्थः। '३१०५। विदेः शतुर्वसुः। ।०।१।६६।' दीर्व-हरुङ्यादि-संयोगान्तलोपाः॥

तस्य राज्ञः पत्नीभिसाभिः सह रममाणस्य सुता नैवासन् । ऋष्यश्वक्षनामा सुनिः पुत्रीयं ऋतुं जानानीति पुरोधसो बसिष्ठादुपश्चस्य राज्ञा वारविलासिनी-भिरानावितो सुनिरित्येतत्कथयितुमाह—

4

१— '१६४४। ध्रारी-पश्येर्थ-न्यायादेनपेते ।४।४।९२। धर्मादनपेतं ध्रार्यम् । पथ्यम् । ज्ययेम् । न्याय्यम् ।' इति वै० भ० ॥ २— 'इन्छा काङ्का स्पृहेहा तृष्ड् बाक्ष्ठा लिन्सा मनोरथः ॥ २२८ । कार्र्गोऽभिलापस् तर्पश्च च—।' इति ना० अ० । ३—अत्रोपमाऽलङ्कारः, तल्लक्षणं कुवल्यानन्दकारिकायाम् । 'उपमा' यत्र साष्ट्रय- लक्ष्मी-रुल्सित द्रयो इंसीव कृष्ण त कीर्ति स्वर्-गद्भाम् स्वर्गगाम्) अवगा- इते ४ तल्लक्षणं पूर्वो (२) कम्

१०-पुत्रीयता तेन वराऽङ्गनाभि-रानायि विद्वान् ऋतुषु क्रियावांन् ॥ विपक्रिम-ज्ञान-गतिर् मनस्वी मान्यो मुनिः स्वां पुरमृष्य-शृङ्गः॥

पुत्रीयतेत्यादि — पुत्रीयतात्मनः पुत्रमिच्छता । इच्छायाम् '२६५७। सुप आत्मनः क्यम् ।३।१।८।' इति क्यम् । '२६५८। क्यमि च ।७।४।३३।' इतीत्व-म्। तेन राज्ञा प्रयोजककत्री वराङ्गनामिवरस्त्रीसिः प्रयोज्यकर्त्रीसिरानायि स्वां पुरमिति योज्यम् । 'नी-वह्योः' इत्यादेरपि '५३९। अकथितं च ।१।४।५१।' इति चकारेण संगृहीतत्वान्नयतिर्द्धिकर्मकः। तत्र प्रधानकर्मणि छङ् । चिण्णि-लोपी '२३२९। चिणो लुक्-।६।४।१०४।' इति तशब्दस्य लुक् । गुणकर्मणि तु पुरमिति द्वितीया । '५४०। गति-बुद्धि–।३।४।५२।' इत्यादिना प्रयोज्यकर्तरि द्वितीया न भवति । 'नी-वद्योः प्रतिषेधः' इति वचनात् । विद्वान्वेदार्थतस्यवि-त्। एवं च कृत्वा कतुषु कियावान्प्रशस्तकियः । प्रशंसायां मतुप् । विपक्तिमज्ञा-नगतिरिति विपाकेन निर्वृत्तम् । पचतेः क्त्रिः क्त्रैर्भेष् । यत्पूर्वजन्मकृतमनिवर्त-नीयं कर्म तस्योमतपः प्रत्ययाद्विनोपदेशाञ्ज्ञानात्मवृत्तिर्बुद्धावस्य जातेलर्थः । मनस्त्री प्रशस्तमनाः । प्रशंसायाम् '१९२८। अस्तायामेघा-।५१२११' इत्यादिना विनिः । मान्यो मानाहैः । '२८२२। अहे कृत्यतृचश्र–३।३।१६९।' इति ण्यत्। धर्मादिमननान्सुनिः। 'मनेस्चोपद्यायाः' इति इन् । उपधाया उकारः । ऋष्यस्य शृङ्गमृष्यशृङ्गं तन्खुङ्गमिव शृङ्गं यस्य स ऋष्यशृङ्गः। 'सप्तम्युपमान--'इत्यादिनोत्तरपदलोपी समासः ॥

> ११-ऐहिष्टे तं कारियतुं कृताःऽऽत्मा ऋतुं नृषः पुत्र-फलं मुनीन्द्रम् , ॥ ज्ञानाःऽऽश्यस् तस्य ततो व्यतानीत् स कर्मठैः कर्म सुताःऽनुबन्धम् ॥

ऐहिष्टेत्यादि—तं सुनीन्दं कतुं कारयितुं नृप ऐहिष्ट ईहितवान् । ईहतेश-त्मनेपदिनो लुक्ति सेट्स्वादिटि च रूपम् । द्विकर्मकता तु '५४१। ह-कोरन्यतर-स्याम् ।१।४।५३।' इति । कृतात्मा वशीकृतात्मेति भावः । पुत्रफलं पुत्रः फलं कार्यं यस्य कृतोः ॥ तत उत्तरकालम् । स सुनिः परचित्तज्ञत्वाज्ज्ञाताशयो ज्ञा-

१—-'१०६२। क्रियाधान् कर्मस्वतः ।' इति ना० अ० । 'भूम-निन्दा-प्रशंसासु निल्योगेऽतिशायने । संबन्धेऽस्ति निवक्षायां भवन्ति मतुबादयः ॥' इति वै० भ० । २—'६७५। ईत् वेष्टायाम् ।' इति घा० पा० । ३—'१०६३ । कर्मश्चरस तु कर्मठः इति ना० अ०

तामित्रायो राजामिमतं कर्म कारियतुं तस्य तृपस्य कर्म व्यतानीत्प्रारव्धवान् । सनोतेः '१२६८। नेटि-।०।२।५।' इति हरुनतलक्षणायां प्रतिषिद्धायाम् '१२८६। अतो हलादेः-।०।२।७।' इति विभाषावृद्धिः । कर्मठः कर्मणि घटते '१८३६। कर्मणि घटोऽठच् ।५।२।६५।' यागिक्रयानिष्पादक इत्यर्थः । सुतानुबन्धं सुतान-तुक्षातीति कर्मण्यण् । 'सुतानुबन्धि' इति पाटान्तरम् । सुतानुबन्धं शीलम-स्थेति । '१९८८। सुष्यजाती णिनिः-।३।२।०८।' सुपीत्मनुवर्तमाने सुप्प्रहण्-सुपसर्गनिवृत्यर्थमिति केवलस्योपसर्गस्य निवृत्यर्थं दृष्टव्यम् । अन्यथा जाता-विति कि ब्राह्मणानामञ्जयितेति न युज्यते । आजित्यस्योपसर्गत्वात् ॥

१२-रक्षांसि वेदीं पेरितो निरास्थ-दंझान्यंयाक्षीदंभिंतः प्रधानम् ,॥ द्रोषाण्यंहीषीत् सुत-संपदे च, वरं वरेण्यो नृपतेरंमार्गीत्.॥

रक्षांसीत्यादि—वेदीं परितो यजनवेद्याः समन्तान् । विद्यायोपस्थिताति रक्षांसि । रक्ष्यते येभ्य इत्यसुन् । ताति रक्षोप्तेर्भक्षेतिरास्थित्रस्तवान् । पर्यभिभ्यां सर्वोभयार्थं तसित् । 'अभितःपरितः—' इत्यादिना द्वितीया ॥ अङ्गान्य-याश्चीद्वसितः प्रधानमिति । यद्देवतामयो यागः सा देवता तम्न प्रधानम् । पुत्र-फल्त्वाद्विष्णुः प्रधानम् । तमिष्ट्वा । तस्योभयतः पार्श्वयोर्थान्यङ्गानि चञ्चरादीनि देवतान्तराणि तान्ययाञ्चीत् अभावाद्वत्या पूजितवान् । कर्तुः क्रियापल्लाभावान्तकः न भवति । वस्वकरवे ॥ शेषाण्यद्दौपीदिति स्वाङ्गं विष्णुमिष्ट्वा शेषाणि प्रतिकृतानि पिष्टकमयानि सुतानां संपद्रथमश्चौ हुतवान् । ज्ञहोतेः सिनि वृद्धाविटे च रूपम् ॥ वरेण्यः श्रेष्टः । वरं वामार्गीन्मार्गितवान् । हे देवा अग्निप्रसृतयो पृपतेः सुता भ्रयासुरिति । '१९८९। मार्ग अन्वेषणे' । 'आ-धृषाद्वा' इति यदा णिच् नास्ति तदा चङभावासिजेव भवति ॥

१३-निष्ठां गते दैन्तिम-सभ्य-तोषे
रिविहित्रिमे कर्मणि राज-पत्यः ॥
प्राश्चर् हुतो्च्छिष्टमुदार-वंद्यास्
तिस्रः प्रसोतुं चतुरः सु-पुत्रान्, ॥

निष्टामित्यादि—निष्टां समाप्तिं गते कमेणि यागिकयायां समाप्तायां राज-पत्यो हुतोच्छिष्टं हुतावशेषं शिष्टचरं प्राधुर्भक्षितवत्यः । अभोतेर्छिटि उसि



१- '*आमितः परितः-समया-निकवा हा-प्रतियोगेऽपि "। १- '११४७। निष्टाः निष्पत्ति-नाज्ञाऽन्ताः।' इति ना० अ०। १- '११६६। हु-द्ा-व् दाने'। ४- '११६७ द्वा क्रिया-व् वारण पोषणयो दान इत्यप्येके इति वा० पा०

रूपम् । दिश्वमसम्यतीषे दानेन निर्वृत्तो दिश्वमः सम्यानां ब्राह्मणानां तीषो यन्न कर्मणि । विहित्रिमे विधानेन निर्वृत्ते कर्मणि दानो धानश्च '१२६६। द्वितः क्रिः। १११८८।' इति क्रौ विहिते प्रथमस्य '१००६। दोदद्वोः । ७।४।४६।' इति ददादेशः । दितीयस्य '१००६। दवातेर्हिः ।७।४।४२।' इति हिरादेशः । मप् । सभायां साधव इति सम्याः । '१६५७ सभाया यः—४।४।१०५।' उदारवंश्या महावंशोद्धवाः । शेषे यत् । क्रौसस्या कैकेशी च क्षित्रयो । सुमित्रा तु वर्णसंकर- जा । किमर्थं प्राञ्चः । प्रसोतुं सुपुन्नानिवनीतान्त्रसिवत्म् । तत्र क्रौसस्या कैकशी चेकैकं पिण्डं प्राञ्चितवत्यो । ताभ्यां चावयोः परिचारिकेति पिण्डभागद्वयं दत्तं सुमित्रा प्राशितवत्यो । ततश्च पुत्रद्वयं जनयिष्यति । एवंचामिसंघाय चतुर इत्युक्तं न तु न्नीनिति । '११०४। पू-क्र् प्राणिगर्भविमोचने ।' '२२७९। स्वर-ति-।७।२।४४।' इत्यादिना विभाषितेद् ॥

१४-कौसल्ययाऽसावि सुखेन रामः प्राक्, केकयी-तो भरतस् ततोऽभूत्,॥ प्रासोष्ट शत्रु-झमुंदार-चेष्ट-मेका सुमित्रा सह रुक्ष्मणेन ॥

कीसल्ययेत्यादि कोसल्य राज्ञोऽपत्यमिति '११८९। वृद्धेकोसलाजात्त्रक्र्यक् ।४।११०१। १७९। १७९८। यङ्श्राप् ।४।११०४। कीसल्यया प्राक् प्रथसम् असावि रामो जन्यते सा। पूकः कमिण लुक्ति चिणि रूपम् । सुद्धेनेति
पक्तवादित्वान्तीया । महतां जन्मिन न काचिदिप पीडास्ति ॥ तद्नन्तरं
केकयीतो मरतोऽभूत् । केकयानाचष्टेति णिच् । सा हीहशासादशाः केकया
इति कथयति । तद्दन्तात् 'अच इः' इति इकारप्रत्यय औणादिकः ।
णिलोपः । 'कृदिकारादक्तिनः' इति ङीच् । '२११२। अपादाने चाहीयस्होः
।पाशश्यां इति तसिः । यदा च केकयसापत्यम् '११८६। जनपदशब्दास्थत्रियादम् ।शाशश्यादेशः । '४००। दिष्टुाणस्—।४।१११४। देति कीप्। तदा केकेयीति द्वितीयं रूपम् । सुमिन्ना शत्रुक्षमुदारचेष्टम् । उदारा चेष्टा यस्येति ।
प्रासोष्ट प्रस्तुवर्ती।कर्तरि छङ् । हिस्वासङ् । जातमात्रस्य हि तस्य किल महासरवत्या ताद्दर्येव चेष्टाऽभृदिति श्रूयते । एकेति । एकेयेति गम्यमानत्वादेवशब्दो न प्रयुक्तः । सह लक्ष्मणेन लक्ष्मणेन सह ॥

१५-आचींद् द्वि-जातीन् परमाऽर्थ-विन्दा-तुदेजयान् भूत-गणान् न्यवेधीत्,

विद्वानुपानेष्ट च तान् स्व-काले यतिर्वे विशिष्टो यमिनां वरिष्टः.॥

आर्चीदित्यादि —तेषु जातेषु द्विजातीन्द्वे जाती येपामिति तान्वाह्मणक्षत्रि-ववैद्यान्परमार्थविनदान्। विन्दन्तीति विन्दाः। '१५२६। विद्-ऌ लामे' इत्यसा-त् '२९००। अनुपसर्गा-।३।१।१३८। इत्यादिना शः । सुचादिन्वानुम् । पर-मार्थस्य विन्दाँहाभिन इति कर्मणि पष्टी । तस्याः 'कृद्योगा च षष्टी समस्यत इति वक्तव्यम्' इति समासः। तानाचींत्लगादिभिः पुजितवान् । '२१३। अर्च प्रवायाम्' इत्यसाहुिं तिप् इद सिचो छोपः ॥ भूतगणान्राध्यसादि-गणान् । उदेजयानुत्कम्पान् । तस्तिक्षेत्र सूत्र उत्पूर्व एजिण्येन्तो निर्दिष्टः। तसादुदेजयतीति शः। ताष्यपेघीदुत्सादितवान्। विधेः '२२६८। नेटि।।।२ १४।' इति हल्न्तलक्षणायाः प्रतिषेधः ॥ बिद्वान्पौरोहित्यकर्मणि कुशलः। उपानेष्ट च तान्रामादीन् । तेषासुपनयनादिकियां चकार । '२७०९। संमानन -।१।३।३६।' इत्यादिनाचार्यकरणे तङ् । स्वकाले इति 'गर्भादेकाद्शे वर्षे जातस्य गर्भैकाद्रों ' इत्यादिना वचनेन उपनयनकाल उक्तः । यमतियमेषु यतत इति यतिः। 'सर्वेघातुम्य इन्' इति इन्। 'अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रहाचर्यमक-ल्मषम् । इति पञ्च यमा चेषां सन्तीति यमिनः स्पृताः'। तेषां चरिष्ठ उत्त-मः । '२०१६ । प्रिय-स्थिर-।६।४।१५७।' इत्यादिनोरुशब्दस्य वरादेशो महस्य-र्यायस्य । वशिष्ठः ॥

> १६—वेदोऽङ्गवांस्तैरेखिलोऽध्यगायि, शस्त्राण्युंपायंसत जिँत्वराणि, ॥ ते भिन्न-वृत्तीन्यंपि मानसानि समं जनानां गुणिनोऽध्यवात्सुः, ॥

वेद इत्यादि — 'शिक्षा कर्ला व्याकरणं छन्दोविवृतिर्निरुक्तं ज्योतिषं चेति पडङ्गानि शास्त्राणि तानि विद्यन्ते यस्य वेदस्थेलङ्गवान् । तैरुपनीते रामादिभिः। अखिलो निःशेषो वेदोऽध्यगायि । अधीत इत्यर्थः । इङोऽधिपूर्वात्कर्मणि लुङ्ग् १२४६० विभाषा लुङ्ग्-रुङोः ।२१४।५०।' इति गाङादेशः । चिण् युक् तलुक् । शस्त्राणि धनुरादीनि जित्वराणि जयशीलानि । '३५५३। इण्-नश्-जि-।३।२।



१६३।' इत्यादिना करप्। तैरुपायंसत स्वीकृतानि। उपपूर्वी यिमः स्वीकरणे वर्तते । तसात्कर्मणि छुङ् । '२२५८। आत्मनेपदेषु ।७।१।५।' इत्यादिना अदादेशः। '२६९७। इनः सिच् ।१।२।१४।' इति ज्ञापकादनुनासिकळोपाभावः॥ ततस्ते रामाद्यो गुणिनो मानसानि मनांसि । प्रज्ञादित्वात्स्वार्थे णः। भिन्नवृत्तीनि नानाविधप्रवृत्तीनि विषयेषु तानि मानसान्यपि जनानां समं साधा-रणम्। क्रियाविशेषणम् । अध्यवात्सुरध्युषितवन्तः । अधिपूर्वाद्वसेः सिचि '२२६७। वद-वज-।७।२।३।' इत्यादिना वृद्धिः। '२३४२। सः सि-।७।४।४९।' इति तत्वम्। '२२२६। सिजम्यस्त-।३।४।५०९।' इति जुस्। '५४४। उपानु-१।४।४८।' इत्यादिनाऽधिकरणस्य कर्मसंज्ञा॥

१७-ततो-भ्यगाद् गाधि-सुतः क्षितीन्द्रं रक्षोभिरंभ्याहत-कर्म-वृत्तिः ॥ रामं वरीतुं परिरक्षणा-र्थं, राजाऽऽजिहत् तं मधुपर्क-पाणिः.॥

तत इत्यादि—तेषु रामादिषु तथाभूतेषु । गाधिसुतो विश्वामित्रः । क्षि-तीन्द्रं राजानमभ्यगादिभगतवान् । इषो गादेशः । '२२२३। गाति-स्था—१२८। ७७।' इत्यादिना सिचो लुक् । रक्षोभिर्निशाचरैरभ्याहताभिभूता यागादेः कर्म-णो वृत्तिः प्रवृत्तिर्थसेति । रामं वरीतुं पार्थयितुम् । '२३९१। वृतो वा ।७१२३८।' इति इटो दीर्घत्वम् । परिरक्षणार्थं विहन्यमानस्य कर्मण इत्यर्थः ॥ तं गा-धिसुतम् । आजिहत् प्जितवान् । '१८६४ अर्हे प्जायाम्' इति स्वार्थिक-ण्यन्तश्चौरादिको गृह्यते न भौवादिकः । तस्माद्धेतुमण्णिचात्र न भवितव्यम् । '२३१२। णि-श्रि—१३११४८।' इत्यादिना चक् । णिलोपः । '२२४३। द्विचंच-नेऽचि ११११५५।' इति स्थानिवद्मावात् । '२१७६। अजादेद्वितीयस्य ।६१९१२।' इति हिश्ववदो द्विरुच्यते । रेफस्य न । '२४४६। न न्द्राः ।६१९१३।' इति ध-तिवेधः । चुत्वम् । आह् । वृद्धिः । मधुपर्कपाणिः । दिधवृतमधून्येकीकृतानि मधुपर्क इत्युच्यते । तस्मिन् पात्रे स्थितः पाणिर्थस्येति विग्रहः । 'सक्षम्यु-पमाने—' इत्यादिना उत्तरपदलोपी समासः । पात्रादुक्त मधुपर्केण प्जि-तयानित्यर्थः ॥

> १८-ऐषीः पुनर्-जन्म-जयाय यत् त्वं, रूपाऽऽदि-बोघान् न्यवृतच् च यत् ते, ॥ तत्त्वान्यंबुद्धाः प्रतनूनि येन, ध्यानं नृपस् तच्छिवमित्यंवादीत्.॥

१--- '७४३। अथ **गाभेयो** विश्वासित्रस् च कौशिकः ॥' इति ना० अ०।

२ १४७ स्र श्रेयसं **हिार्च** मद्रं कल्याणं मङ्गर्णं ग्रुमस् ेदति ना० स०

ऐविहित्यादि — मुक्तिस्त्वाववोधस्तस्या ध्यानं प्रयोजनं तत्र पुनर्जनम् सूयोजनम् तत्य जयाय यद्धानं त्वमैषीः एषितवानसि । इपेकुंक् । मध्यमैकव्यन्ते '२२६६। इट ईटि ।८।२।२८।' इति सिचो छोपे रूपम् ॥ रूपादिबोधा- इयवृत्व यसे—ह्पादिषु शब्दस्पर्शरूपरसगन्वेषु चक्षुरादिद्वारेण यो बोधोऽध्य- वसायछक्षणा बुद्धिः तस्याच यद्धानं न्यवृत्त् निवृत्तम् । वृतेर्धुतादित्वात् '२३४७। द्वस्यो कुन्नि ।१६१९१।' इति तिप् । घलेर्ड्स् ॥ तस्यानि पञ्चवित्रतिः पुरुपप्रधानमहदहङ्कारादीति । अतन्ति स्थमाणि चेन ध्यानेनावुद्धाः ज्ञातवान् नित्ते । वृत्ते वृत्ते सिचः सित्वाहुणाभावः । सिज्होपधत्वज्ञत्वादि ॥ तद्धानं सिवं शोभनं किचदिति नृपोऽवादीत् । न तस्य व्याघात इति '२२६७। वद-वज्ञ-।७।२।३।' इत्यादिना वृद्धिः । '९७४ ध्ये चिन्तायाम्' साये व्युद्ध । ध्यानम् ॥

१९-आख्यन् मुनिस् तस्य शिंवं समाधेर्, विन्नन्ति रक्षांसि वने ऋतूंश्च, ॥ तानि द्विषद्-वीर्य-निराकरिष्णुस् तृणेढु रामः सह लक्ष्मणेन.॥

आस्यित्यादि—एष्टो मुनिसस्य समावेष्यांनस्य शिवमनुषद्वमास्यत् कथितवान् । '२४६६। चक्षिकः स्यान् ।२।४।५४।'।'१४६८। अस्यति ३।१।५२।' इत्यादिना च्छेरक् । आतो छोपः ॥ किन्तवयं दोषः—विव्यन्ति रक्षांसि वने कतृत् । '२६६३ । गम-इन-।६।४।९८।' इत्यादिना उपधालोपः । '३५८। हो हन्तेः-।७।३।५४।' इति कुत्वम् ॥ किं क्रियतामिति चेदाह-तानि रक्षांसि । हिचतां वीर्यं सामर्थं । वीरेः त्वार्थिकण्यन्तात् '२८४२। असो यत् ।३।१९७।' तस्य निराकरिष्णुः निराकरणकीलः । '३११६। अलंकुन्न-।३।२।३६६।' इत्यादिना इष्णुच् । तृणेद्व हिनस्तु । तृहेविधी छोद्व । '२२९६। एकः ।३।४।८६।' रुधादित्वात् अम् । '२५४५। तृणह इस् ।७।३।९२।'। (३२४। हो ढः।८।२।३१।' इत्वम् । '२३३५। हो ढः।८।२।३१।' इत्वम् । '२३३५। हो ढः।८।२।३१।' इत्वम् । सह छक्ष्मणेन छक्ष्म-णेन सह ॥

२०-स ग्रश्जवांस्तंद्-वचनं मुमोह राजा ऽसहिष्णुः सुत-विप्रयोगम्,॥

१ १४७ म अपर्स शिखं मद्र कस्याण मङ्गळ श्रुमम् इति ना० स०

अंहंयुना ऽथ क्षिति-पः शुभंयुं-रूचे वचस् तापस-कुक्जैरेण.॥

स इत्यादि—स राजा तस्य मुनेसाद्वचनं शुश्रवान् श्वत् सन् सुतविय-योगमसिहण्णुरसहनभीको मुगोह मोहसुपगतः। सुगोतेः '२०९०। भाषायां सद-वस-श्रवः १३१२११०८।' इत्यनेन कसुः। सुतेन विप्रयोगमिति '६९४। कर्तृ-करणे कृता बहुलम् १२१११३२।' इति समासः '६२७। न क्षोकाव्यय-लिष्टा— १२१३६। बहं-श्रममोर्थुस् १५१२१४०।' तापसकुक्षरेण '१९०९। तपःसहसा-भ्यां विनीनी १५१२१०२।' इत्यनुवर्तमाने 'अण् च' इति मत्वर्थेऽण्। तापसश्च स कुक्षरश्चेति । '७४१। वृन्दारक—१२११६२।' इत्यादिना समासः। तेन क्षिति-पो राजा। सुभंगुः कल्याणवान्। पूर्ववद्यस्। वचो वश्यमाणम् चे उक्तः। कर्म-णि लिह् । सम्प्रसारणम् । अहंयुनाथः इति विसर्गान्तं पाठान्तरम्। तत्र शहं-यूनां क्षत्रियाणां नाथ इति योज्यम्।।

> २१-मया त्वमांच्याः शरणं भयेषु, वयं त्वयाऽप्यांप्सिहि धर्म-वृद्धी, ॥ क्षात्रं द्विज-त्वं च परस्पराऽर्थं, शङ्कां कृथा मा, प्रहिणु-स्व-सुनुम्, ॥

मयेत्यादि—भयेषु त्वं शरणम् आप्याः प्राप्तोऽसि मया । आपेः कर्मणि छङ् । सिज्लोपः ॥ त्वयापि धर्मनृष्टे धर्मोपचयाय वयमाप्सिह प्राप्ताः । पूर्ववछुङादि । उत्तमबहुवचनम् । सिचो लोपाभावः । मकारस्वाझस्त्वात् ॥ तदित्यं क्षात्रं हिजत्वं च धर्मगृष्टे परस्पराधं अन्योन्यप्रयोजनम् । 'कर्मव्यति-हारे सर्वनान्नो हे भवतः'। 'समासवच बहुलस्' इति यदा न समासवत् तदायम् ॥ तस्मान्मा शङ्कां कृथाः माकार्षाः । कथमस्मिन् संकटे पुत्रं नियोज-यामीति । '२२१९। मान्ति छङ् ।३।३।१७५' अडभावः । '२३६८। उश्च ।१।२।१२ इति कित्त्वाङ्गणाभावः । '२३६९। हस्वादङ्गात् ।८।२।२७' इति सिचो लोपः ॥ प्रहिणु प्रेषय । स्वं पुत्रम् । हिनोतेः प्रार्थनायां लोट् । ध्रः । अपित्वात् छित्वम् । गुणाभावः । '२३३। उत्तश्च प्रस्थात् ।६।३।१०६।' इति हेर्छक् । २५३०। हिन् मीना ।८।३।१५ हित णस्तम् ।

२२-घानिष्यते तेन महान् विपक्षः, स्थायिष्यते येन रणे पुरस्तात्,॥ मा मां महाऽऽत्मन् परिभूर्ं-योग्ये न मद्-विधो न्यस्वति भारमध्यम्.॥

वानीत्यादि — अनागतमर्थ ज्ञानेन समीक्ष्याह — महान्विपक्षो रावणः जैलोन्यिति विर्वात् । सोऽपि तेन रामेण व्यानिष्यते किसुतेतरे राक्षसाः । हन्तेः कमीण छ्रद्द । '१७५७। स्व-सिष्-। ६।४।६२।' इत्यादिना चिण्वदिद्द उपधावृद्धिः। '१५८। हो हन्तेः—।७।१।५४।' इति कृत्वस् ॥ पुरस्ताद्यतो यद्गणं युद्धं भावि परग्रुरामेण सार्धमिति भावः । तत्र येन स्थायिष्यते तेन व्यानिष्यत इति योज्यम् । अत्र तिष्ठतेभावे छ्रद्द । चिण्वदिष्ठा । '२७६९। आतो युक् ।७।३।३२।' ॥ हे महात्मन् । महासत्व मा मां परिभूमांवज्ञासीः । किमेवं वदसीति । परिपूर्वो भवतिर्निराकरणे वर्तते ॥ मिद्रिध इति विधानं विधा प्रकारः '१२८३। आतश्चीपसर्वे । सिष्ठा । निधा भेदः सादश्यं च । इह सादश्यं गृह्यते मया विधा सादश्यं यस्पेति मिद्रिधः । '१३७३। प्रत्योत्तरपद्योश्च ।७।२।९८।' इति मत्रादेशः । मिद्रिधो मत्सदशोऽन्यो न भारमध्यम् '३४६२। अत्राद्यत् । ।।।।१।११६६। अयोग्ये असमर्थे न्यस्यति निक्षिपति । किमहं येनानागतं समीक्षितमिति भावः । योगाय प्रभवति योग्यः '१७६६। योगाद्यत् ।।।।।।१।१०२।'॥

२१-कुष्यन् कुलं धक्ष्यति विप्र-विह्यः, यास्यन् सुतस् तण्स्यति मां स-मन्युम् , ॥ इत्थं नृःपः पूर्वर्मवालुलोचे, ततो ऽनुजन्ने गमनं सुतस्य.॥

कुध्यितित्यादि — यद्यहं भूतरक्षणेऽधिकृतोऽस्य वचनं न कुर्यां तदा कुध्य-न्सन् । दिवादित्वात् श्यन् । विमो विह्निरिव । '७३५। उपमितम् –।२।१।५६।' इति समासः । ध्रश्यित कुर्ल भस्मसात्करिष्यति । दहेर्ल्ट '३२५। दादेः—।८।२।३२।' इति वः । भष्भावः । चर्त्वम् । गकारस्य ककारः । '२९१। इण्कोः ।८।३।५७।' इति पश्चम् ॥ यास्य-गमिष्य-सुतो मां समन्युं स्वशोकं तप्स्यति सन्तापयिष्यति । तपेर्ल्ट ॥ इत्यमेवंप्रकारं नृपः पूर्वमादाववा-छलोचेऽवलोकितवान् । अवाङ्पूर्वालोचेर्ल्टि ॥ तत उत्तरकालं सुतस्य गमन-मनुजन्ने । अनुज्ञातं नृपेणेति विभक्तिविपरिणामेन तेनेति योज्यम् । कर्मणि किट । '१६०४ मा स्वयंबोधने इति परसौपदित्वात् स्मनेपद विद्यम् । २४-आशीर्भिरम्यर्च्य मुनिः क्षितीन्द्रं प्रीतः प्रतस्थे पुनरांश्रमाय,॥ तं पृष्ठ-तः प्रैष्टमियाय नम्नो हिंस्रेषु-दीहाऽऽह्य-धनुः कुमारः.॥

आशीर्भिरित्यादि—रामगमनसानुज्ञातत्वात् प्रीतो मुनिः क्षितीन्द्रं राजानसाशीर्भिरम्यच्यं पूजियत्वा । आङः शासेः किप्युपसंख्यानात् उपधाया इत्वस् । प्रतस्थे पुनराश्रमाय-आश्रमं पुनः प्रस्थितवान् । तिष्ठतेः '२६८९। समव—।११३१२।' इत्यादिना लिटि तक्ष् ॥ प्रष्टस् अप्रयायिनं तं । '२९१७। प्रष्टोऽप्रगामिनि ।८।३१९२।' इति पत्वम् । पृष्ठतः पश्चात् इयाय कुमारः । इणो णिल वृद्धिरायादेशः '२२४३। द्विवैचनेऽचि ।१११५९।' इति स्थानिवद्धावा-द्विवैचनिमकारस्य । '२२९०। अभ्यासस्याऽसवर्णे ।६।४१७८।' इतीयङ् । नम्रोऽनुकूलः । हिंसनशीला इषवः शराः हिंसेषवः । आप्तमविसंवादि यद्यनुस्तत् । हिंसेषु दीप्तमाप्तं धनुर्यस्य कुमारस्येति विग्रहः । अत्र '८७०। धनु-पश्च ।५।४१३३२।' इत्यनङ् न भवति 'समासान्तविधिरनित्यः' इति । दीप्रा-स्थानुरिति पाठान्तरम् । दीप्रमस्थं धष्टतया यस्य धनुषस्तदीप्रास्त्रं धनुर्यस्तिति सः। कस्मिन्विषये । हिंसेषु नान्येषु । नम्नाद्यो '३१४७। ममिकम्पि—।३।२।१६७।' इत्यादिना रप्रस्थान्ताः ॥

२५-प्रयास्यतः पुण्य-वैनाय जिँष्णो-रामस्य रोचिँष्णु-मुखस्य घृष्णुः॥ त्रै-मातुरः कृत्स्न-जिता॒ऽस्त्र-शस्त्रः सध्यक्ष् रतः श्रेयसि रुक्ष्मणोऽभूत्.॥

प्रयास्यत इत्यादि—प्रयास्यतो गमिष्यतो रामस्य छक्ष्मणः सम्यङ् अभूत् सहायीभूतः। 'सहाञ्चाति' इति किन् अनुषङ्गछोपः '३६१। उगिद्चाम्-।७।१।७०।' इति नुम् । हल्ङ्यादि-संयोगान्तछोपौ '३७७। किन्प्रत्यस्य-।८।२।६२।' इति कुत्वं नकारस्य क्वारः। '४२२। सहस्य सिन्नः ।६।३।९५।' इति सम्यादेशः। पुण्यवनाय पुण्यहेतुः वात्पुण्यं वनम् । गत्यर्थात् कर्मणि चतुर्थो । जिष्णोर्जन्यशीलस्य '३१९९। ग्ला-जि-स्थश्र-।३।२१९।' इति गसुः । रोचिष्णु रोचन-

१—'८३७। पुरोगाऽभेसर-प्रष्ठाऽयतःसर-पुरस्-सराः ।' इति ना० अ०। २—'५८५। गत्यर्थ-कर्मणि दितीया-चतुथ्यों नेष्टायामेनध्वनि ।२।३।१२। अध्वभिन्ने गत्यर्थानां कर्मण्येते स्तश्रेष्टायाम् । यामं यामाय वा गच्छति ।' इति नै० म०।३—'८४२। जेता जिष्णुरू च जित्वरः ।' ४—'६६५। विश्वाइ श्राजिष्णु-रोचिष्णू,' ५—'१०७०। वृष्टे धृष्णम् (धृष्णुर्) विद्यातश्च,'। ६—'१०७९। कः सहोऽज्ञति सम्यक् स पति सर्वेत्र ना० स०

शीलं सुलं यस रामस्य पितुराज्ञया तुष्टत्वात् । '३११६। अलंकुल्—।३।२।२६।' इत्यादिना इत्लुच्। एल्णुः शञ्जिविष्वंसने प्रगरमः । '३१२० । त्रिसि-गृषि—।३।४१४०।' इत्यादिना कुः । त्रैमातुरः तिस्णां मातृणामपत्यमिति तिद्धितार्थं विषये समासः । पश्चात् '१११८। मातृस्तसङ्ख्या—।४।१।११५।' इत्यादिना अण् उत्वं च। '१०८०। द्विगोर्लुगनपत्ये ।४।१।८८।' इति छक् न भवति । स हि पिण्डद्वयप्राशानात्ताभ्यां च जतितः । अखं च शखं चेति द्वन्दः । कृत्सं समग्रं जित्तमित्रातमस्त्रशसं चेनेति विम्रहः, रतः श्रेयसि कर्याणे । '२०१०। प्रकृत्येकाच् ।६।४।१६३।' ।'२०००। प्रशस्यस्य श्रः ।५।३।६०।' लक्ष्मीरित्यौणा-विकः । लक्षेर्सुंह ईप्रत्यश्र्य। सा यस्य विद्यत् इति लक्ष्मणः। स्रोमादिषु 'लक्ष्म्या अच् इति न-प्रत्ययः अत्वं च ॥

२६-इष-मति रघु-सिंहे दन्दश्काञ् जिघांसौ धनुरेरिभिरे-सहां मुष्टि-पीडं दधाने ॥ व्रजति, पुर-तरुण्यो वद्ध-चित्राऽङ्गुलित्रे कथमेपि गुरु-शोकान् मा रुदन् माङ्गलिक्यैः॥

इषुमतीत्यादि - रघुषिंहे रामे रघुषु रघुवंशभवेषु सिंह इव शीर्यादि-योगान् । वजति सति । इपुमति लनिष्क्षे । प्रशंसायां मतुष् । तदुकं कौसुद्यां 'सूम-निन्दा-प्रशंसासु नित्ययोगेऽतिशायने । संसर्गेऽस्तिविवक्षायां मवन्ति म-तुबादयः ।' दन्दर्जूकान् हिस्नान् । दंशेः '२६३५। छप-सद्-।३।११२४।' इत्या-दिना यङ् । 'जप-जभ-' इत्यादिना अभ्यासस्य नुक् । तदन्तात् '३१४६। यज-जप-।३।२।१६६' इत्यादिना ऊकः । '२३०८। अतो छोपः ।६।४।४८।' । '२६३१। यस हलः ।६।४।४९'। जिघांसी हन्तुमिच्छो । '२६१४। अज्झन-।६।४।९६।' इति दीर्घः । '२४३०। अभ्यासाच ।७।३।५५।' इति इत्वम् '३१४८। सनाशंस-।३।२।१६८।' इति उः '६२७। न लोक-।२।३।६९।' इति पष्टीप्रतिषे-थात् हितीयैव । धनुर्दधाने विञ्राणे । अरिभिरसद्यं सोद्धमशक्यम् । '२८४७। शकि-सहोश्र ।३।१।९९।' इति यत् । मुष्टिपीइं मुष्टिना पीडयित्वा । मुष्टिशब्दे तृतीयान्ते उपपदे '३३७०। सप्तम्यां चोषपीड-।३।४।४९।' इति णसुछ् । तन्न चकारेण तृतीयानुकर्षणात् । बद्धं चित्रमङ्गुलित्रं येन । अङ्गुलि त्रायत इति कः । पुरे तरुण्यः पुरतरुण्यः । 'नञ्सनीकक्ल्युंसहणतलुनानामुपसङ्ख्यानम्' इति ङीप्। यदि तहचोऽर्थवत् । नो चेद्रोरादिपाठात् ङीप् । रामो गत इति गुरुः शोको यासां ताः। कथमपि मा रुदन् न रुदितवत्यः। रुदेः '२२६९। इरितो वा ।३।१।५७।' इति च्छेरङ् । यतो माङ्गलिक्यः मङ्गलप्रयोजनाः ।



j

१ मालिनी (८)-लोकै (७) 'इति वृत्तर

न न-म य-य-शुतेय **मालिनी** सोगि जातौ (१५ मञ्च०) मद्र केदार तदस्य '१७७२। प्रयोजनम् ।५।१।१०९।' इति उस् । '४७०। टिह्वाणस्— ।४।१।१५।' इत्यादिना कीप् ॥

> २७-अथ जगदुर्रनीचै-राशिषस् तस्य विप्रास्, तुमुल-कल-निनादं तूर्यमाजप्तूर्रन्ये,॥ अभिमत-फल-शंसी चारु पुस्फोर बाहुस्, तरुषु चुकुदुर्रुचैः पक्षिणश् चांऽनुकूलाः.॥

अथित्यादि—तस्य रामस्य वजतो विषा अनीचैर्महता ध्वनिनाशिष इष्टव-चनानि जगदुर्गदितवन्तः। अन्ये वादकारत्यं कांस्यतालपटहादिसमूहमाज मु-स्ताडितवन्तः। '२६९५। आङो यम-हनः। ११३१२८।' इत्याध्मनेपदं न भवति। अकर्मकादित्यनुवर्तते। तुमुलो महान्कलो मधुरो निनादो ध्वनिर्यस्थिति। अ-भिमतिमिष्टं फलं शंसितुं शीलं यस्य बाहोः स चारु पुरकोर सुतरां स्फुरित-वान्। अत्र दक्षिणो बाहुः सामध्योद्गम्यते स्वाङ्गत्वात्। अनेन सीताप्राप्ति-बीजभुपन्यस्तम् । स्फुरतेरम्यासस्य '२२५९। अर्पुवीः स्वयः । ७१४१९।' इति स्वयः शेषः । चर्त्वम् । पक्षिणश्च तस्यु स्थिता अनुकूलाः सन्त उच्चैः सुष्ठु चुकुषुः कूजितवन्तः। '१९१५। कु शब्दे' इत्यस्य लिटः कित्वा-दुवङादेशः॥

इति श्री-जयमङ्गलाऽऽख्यया व्याख्यया समलंकृते श्री-भट्टिकाव्ये-प्रथमे प्रकीर्ण-काण्डे लक्षण-रूपे प्रथमः परिच्छेदः (वर्गः), तथा लक्ष्य-रूपे कथानके श्री-राम-संभवो नाम प्रथमः सर्गाः पर्यवसितः।

द्वितीयः सर्गः—

इदानीं विजिगीषूणां कण्टकान् समुद्धर्तुं शरकाले समुघोग इति तमेव वर्णयक्ताह—

> २८-वेनस्पतीनां सरसां नदीनां तेजस्विनां कान्तिभृतां दिशां च॥ निर्याय तस्याः स पुरः समन्ता-स्क्रियं दघाना शरदं ददर्श. १

वनस्पतीनामित्यादि — स रामः । तस्याः पुरः अयोध्यायाः । निर्योधं निर्गस्य । समन्तात् सर्वतः शरदं दद्शं दृष्टवान् । काळस्याप्रस्थस्त्वात् कार्याण दृशंनात्तद्शंनमिति मन्यते । श्रियं द्धानां धारयन्तीं । केषां वनस्पतीनः पारस्करादिदृशंनात् सुद्ध । अत्र लोकप्रतीत्या वृक्षा दृष्टव्याः । न तु पारि भाषिकाः । तथा सरसां तहाकानां नदीनां गङ्गादीनां तेजस्विनां चन्द्रतारा-दीनां कान्ति नेर्मेल्यं विश्रतां दिशां च । तदा हि निर्मेला दिशो भवन्ति । वन-स्थादीनां श्रियं द्धानां शरदं ददशं ॥

तां रामव्यापारं विना सामान्येन वर्णयन्नाह-

२९-तरङ्ग-सङ्गाच् चपछैः पलाशैर् ज्वाला-श्रियं साऽतिशयां दधन्ति॥ स-धूम-दीप्ताऽग्नि-रुचीनि रेजुस् तामोृत्पलान्यांकुल-पट्-पदानि.॥२॥

तरक्रेत्यादि—तरङ्गसङ्गात् सिल्लोर्मिसम्पर्काचपकैः चञ्चकैः पलाशैः पत्रैः दवालाश्रियं सातिशयां द्धन्ति । सधूमदीप्ताग्निस्चीनि सधूमदीप्ताग्नेरिव रूजि-वेषां रक्तोत्पलानां तानि रेज्ञः दीप्यन्ते सा । राजेर्लिट '२३५४। फणां च सप्तानाम् ।६।४।१२५।' इति एक्वाभ्यासलोपौ । आकुलाः इतसतो यायिनः पदपदा येष्विति । चलितपत्राणामग्निशिखानुस्यत्वात् पद्रपदानां च धूमनुस्यत्वात् सप्रमदीप्ताग्नरूकम् ॥

२०-विम्बाऽऽगतैस् तीर-वनैः समृद्धिं निजां विलोक्यांऽपहृतां पयोभिः॥ कूलानि साऽऽमषतयेव तेनुः सरोज-लक्ष्मीं स्थल-पद्म-हासैः॥ ३॥

विम्बेस्पादि — बिम्बं प्रतिबिम्बं तेनागतैनिंपतितैहिति । तृतीयेति योगवि-मागात् समासः । तीरवनैः कुसुमितैहित्यर्थात् । तैः करणभूतैः । पयोभिः कर्नुभिः समृद्धिं विभूतिं निजामात्मीयां अपहृतां विलोक्य कृलानि कर्नुभूता-नि सामर्पतयेव साक्षमतयेव सरोजलक्ष्मीं कमल्झोमां पयःसम्बन्धिनीं तेनुः विस्ताहितवन्ति । '२२६०। अत एकहल्मध्ये—।६।४।१२०।' इत्यादिना एत्वा-म्यासलोपौ । कृले सरोजासम्भव इति चेदाह—स्थलपद्महासैहिति स्थल-कमलविकाशहित्यर्थः॥

३१-निशा-तुषाँरेर् नयनाऽम्बु-कल्पैः पत्रा-ऽन्त-पर्यागलदुच्छ-विन्दुः॥



उपारुरोदेव नदत-पंतङ्गः कुमुद्धतीं तीर-तरुर् दिनाऽऽदी. ॥ ४ ॥

निशेखादि—निशायां तुषारैः हिमैः । नयनाम्बुकल्पैः अश्रुतुल्पैः । नयनामुकल्पैः अश्रुतुल्पैः । नयनामुकल्पैः पन्नेषु स्थितत्वात् । तेहेंतुभूतैः पन्नान्तपर्यागळद्दछविन्दुः । पन्नान्तात्पर्यागळन्तः जच्छास्तुषारविन्दवो यस्य तीरतरोः । स दिनादी दिन्नारमे कुमुद्रतीमुपारुरोदेव आक्रन्दितवानिव भाति शक्षिवियोगादीहशी त्वं भूतासीति । रोदनिक्षयया आक्रन्दनिविश्या कुमुद्रत्या ईप्सितत्तमन्त्वात् रुद्दिः सकर्मकः । तदाक्रन्दनं योजयन्नाह—नद्त्यतङ्ग इति । कूजत्पक्षीन्त्यर्थः । 'पतेरङ्गच् पक्षिणि' इत्योणादिकः । कुमुद्रती '१३०६। कुमुद्रन्ड—।धारा८णा' इत्यादिना इमतुष् । '१८९८। झयः ।८।२।१०।' इति बत्यम् । अगित्वात् कीष् ॥

३२-वनानि तोयानि च नेत्र-कल्पैः पुष्पैः सरोजैश् च निलीन-भृङ्गैः॥ परस्परां विस्मय-वन्ति लक्ष्मी-मोलोकयाञ्चकुरिवांऽऽदरेण,॥ ५॥

वमानीत्यादि — वनानि पुण्यैर्निलीनमृङ्गैः स्थितस्रसरैः । लीयतेः '३०१९। खाद्य ओदितः ।८।२।४५।' इति निष्ठानत्वं । नेत्रकल्पैः नेत्रतुल्यैः । तोयानि च सरोजैः निलीनमृङ्गैनेत्रकल्पैः । विस्मयवन्ति जातविस्मयानि । परस्परा-मन्योन्यस्य लक्ष्मीं शोभाम् आलोकयाञ्चकृरिव । आद्रेण तात्पर्येण ॥

३३-प्रभात-वाताऽऽहति-कम्पिताऽऽकृतिः कुमुद्धती-रेणु-पिश्चङ्ग-विग्रहम् ॥ निरास भृङ्गं कुपितेव पद्मिनी, नै मानिनी संसहते ऽन्य-सङ्गमम्,॥ ६॥

प्रभातेत्यादि अभाते यो वातस्तत्यावातेन कम्पिता चालिता आकृति-राकारो यथाः पद्मिन्याः सा मुङ्गं निरास निरस्तवती । कुमुद्रतीरेणुना पिशङ्गः कपिशः विप्रहो यस भृङ्गस्य । कुपितेव । यथा अन्यया स्निया सहोधितं तदङ्गसंत्रान्तपरिमलकण्डमालमात्मद्यितं काचित् कृपिता निरस्पति तद्वत् । सा

१—-'१२२५। पतङ्गो **पश्चि**-स्यों च।' इति ना० अ०। २—'अत्राऽर्थान्तरन्या-माऽलंकारः। तल्लक्षणं जुनल्यानन्दकारिकायाम्— उक्तिरे**र्थान्तरन्यासाः** स्यात् सामा-न्य विश्वेषयो । इन्मानि धमतरद् दुष-करं कि

किमिति निरस्यति—यतो मानिनी मानवती अन्यसङ्गमम् अन्यया सह संगमं म सहते । आक्षमञ्जादन्यसङ्गमं न संसहते न क्षमते ॥

> ३४-दत्ताऽवधानं मधु-लेहि-गीतौ प्रशान्त-चेष्टं हरिणं जिघांसुः ॥ आकर्णयम्रुत्सुक-हंस-नादान् लक्ष्ये समाधिं न दधे मृगावित् . ॥ ७ ॥

द्त्तस्यादि—मधुलेहिगीताविति मधु लेढुं जीलमेषामिनि णिनिः। मधुले हृगीताविति पाठान्तरं तत्र लिहन्तीति लेहाः पचाद्यच् । मधुनो लेहा इति षष्टीसमासः। मधु लिहन्तीति वा कर्मण्यण् । दत्तावधानं दत्तमानसं हिरणं प्रशान्तचेष्टं जिघांसुः हन्तुमिच्छुरपि मृगावित् व्याधः । मृगान्विध्यतीति किए। '२४१२। अहि-ज्या—१६१९१६।' इत्यादिना सम्प्रसारणम् । '१०३०। नहि-वृति—१६१९१९।' इत्यादिना दीर्घः। लक्ष्ये वथ्ये समाधि चित्तेकाग्रतां व दघे न धारितवान् । जित्वात्तक् । लिटः कित्त्वे आतो लोषः। उत्सुकानां हंसान्तां नादानाकणयन् श्रण्वन् तत्राभिरतचित्तकत्वात् । वर्तमानकालो भूतेनाभिसम्बध्यमानः साधः। '२८२४। धातु-सम्बन्धे प्रस्याः। ११४।१।' इति च। आकर्णयिति 'प्रातिपिद्काद्धात्वर्थे बहुलम्' इति णिच् '३१०३। लक्षण-हेत्वोः—।३।१।१ २६। इति शत्ययः।

३५-गिरेर् नितम्बे मरुता विभिन्नं तोयाऽवशेषेण हिमाऽऽभमम्बम् ॥ सरिन्-मुखाऽभ्युच्चयमाँदधानं शैलाऽविपस्यांऽनुचकार लक्ष्मीम्.॥ ८॥

गिरेरित्यादि—गिरेः कस्यचित् नितम्बे मध्यभागे स्थितमञ्जं कर्तृ, महता विभिन्नं विद्वुलीकृतं तोयावदोषेण पयसोऽविश्विष्टतया हिमाभं हिमसदशं सरि-मुखानां गिरिनदीनिर्गमाणामभ्युचयं वृद्धिम् आद्धानं कुर्वाणं शैलाधिपस्य हिमदतः लक्ष्मीं शोभामनुचकार अनुकृतवत् ॥

३६-गर्जन् हेरिः साऽम्भसि शैल-कुञ्जे प्रतिष्वनीनातम-कृतान् निशम्य ॥



१—'९४। अभ्रं मेधो वारि-वाहः स्तनिवितुर् वलाहकः । वारा-धरो जल-धर्म् निट-स्वान् वारि-दोऽन्तु-मृत् ं रति ना० व० २ १३८३ यमाऽनिलेन्द्र चन्द्राऽकं विष्णु सिद्धा ऽञ्च-वाणिषु शुकाऽहि कपि मेकेषु हरिर् ना कपिके त्रिषु

क्रमं ववन्ध क्रमितुं स-कोपः प्रतर्कयर्त्रन्य-मृगुेन्द्र-नादान्, ॥ ९ ॥

गर्जिन्नित्यादि — हिरः सिंहः गर्जन् शब्दं छुर्वन् । क शैलिनिकुले गिरे-र्गहने । साम्मसि ससिल्ले । एवंतिषे प्रदेशे प्रतिध्वनीन् प्रतिशब्दान् आ-स्मकृतान् निशम्य छुत्वा सरोषः सकोपः कमं बवन्ध क्रमितुसुत्पतितुं यद् सामर्थ्यं तचकरित्यर्थः । अनेकार्थत्वाद्वात्नां बन्धिरत्र करणे वर्तते । किमिति प्रतक्षयन्तन्यमृगेन्द्रनादान् ॥

इदानीं रासं व्यापारेण वर्णयबाह-

३७-अद्दक्षतां उम्भांसि नवोत्पलानि, रुतांनि चां ऽश्रोषत षट्-पेदानाम्, ॥ आघ्रायि वान् गैन्ध-वहः सु-गन्धस् तेनांऽरविन्द-व्यतिषङ्ग-वांद्य च.॥ १०॥

अद्दश्नतेत्यादि — नवान्युत्पलानि चेप्वरभस्सु जलेषु तानि रामेणादक्षत दृष्टानि। इशेः कमिण लुङ्। '२३३६। मल इगुपधा—१६१९१५५।' इति प्रान्थस्य क्सादेशस्य '२४०७। न दृष्टाः—१६१९१४७।' इति प्रतिषेधात् '२२६९। इति वा—१३१९५७।' इति सिजेव मवति । तेन विकल्पेनाङो विधीयमानस्यात् '२३००। लिङ्लिजा—१९१९९।' इति किस्वे गुणाभावः ॥ पदपद्मां स्तानि अश्रोषत श्रुतानि । श्रुणोतेः कमिण लुङ्॥ वहतीति वहः एचाद्यम् । गन्धस्य वह इति कृद्योगे पष्टी समस्यते । गन्धवहो वायुराम्नाय आमातः । कमिण लुङ् । अरविन्देन पद्येन व्यतिपङ्गः संपर्कः सोऽस्ति यस्य वायोः सः। वातीति वाम् वातेः शतृप्रस्यः । सुगन्धः। श्रोभनो गन्धो यस्य सः । अरविन्दव्यतिपङ्गत्वात् '८७४। गन्धस्येदुत्-पूति-सु-सुरभि-स्यः । ५।४१९३५। इतीकारः समासान्तो न भवति । गन्धस्येत्वे तदेकान्तप्रहण-प्रिति वचनात् सुगन्ध आपणिक इति यथा ॥

१—(१९८। कोलाइल: कलकलस्, तिरश्चां वाशितं **रुतम्।** २—(५४९। मधु-ब्रतो मधु-करो मधु-लिण्-मधु-पाऽलिनः । द्वि-रेफ-पुष्प-लिल्-सङ्ग-**चट्ट-पद्-अ**मराऽल्यः ॥' ३—(६९। श्वसनः स्पर्शनो वायुर् मातरिन्धा सदान्यतिः । प्रपद्धो **गन्ध-वहो** गन्ध-वाहाऽनिलाऽऽञ्चनाः ॥' इति सर्वत्र ना० अ०।

३८-लताऽनुपोतं कुसुमोन्यगृह्णात् स, नेद्यवस्कन्दस्रेपास्पृशच् च, ॥ कुत्हलाच्, चारु-शिल्पोपेवेशं काकुतस्थ ईपत् समयमान आस्त, ॥ ११ ॥

हतेत्यादि—'३३७८। विशि-पति-पदि-स्कन्दां व्याप्यमानासेव्यमानयोः ।३। श्राप्दां इति द्वितीयान्त उपपदे णमुल्विधीयते । तत्र व्याप्यमाने द्वव्यवनस्य आसेव्यमाने च क्रियावचनस्य '३१३७। नित्य-वीप्सयोः ।८।१।४।'इति द्विषेच-नं विधीयते । अत्र तु समासेनैवोक्तत्वात् नोपयुज्यत इति स्थितम्। स काकुत्स्यो रामो गच्छन् छतां छतामनुपात्य कुसुमान्यगृक्कात् गृहीतवान् । छतामनुपात्या-नुपात्य च । '७८४। तृतीयाप्रभृतीन्यन्यतस्याम् ।२।२।२१। इति समासः । अन्हिल्छ् । श्वाप्तत्यस्य, अपिदिति क्तिचे '२४१२। महि-ज्या-६।१।१६' इत्यादिना सम्प्रसारणम् ॥ नववस्कन्दानित नदीं नदीम् अवस्कन्वसर्वा नदीमवस्कन्द्य वीकित्वा नदीं वा अवस्कन्द्यावस्कन्द्य, उपास्पृशत्, आचमनं कृतवान्। कुत्रहूला-दिति सर्वत्र योज्यम् ॥ चारुक्लिलोपवेशमिति चारुक्तिलाः चारुक्लिला उपविश्य चारुक्तिला उपविश्य स्थमानः ईषद्वसन् ॥

३९-तिग्मांश- रिशमच्-छुरितान्यं-दूरात् प्राञ्चि प्रभाते सिल्लान्यंपस्यत् ॥ गमस्ति-धाराभिरिव द्वतानि तेजांसि भानोर् भुवि संभृतानि.॥ १२॥

तिन्मांश्वित्यादि — अदूरात्समीपे सालिलान्यपश्यत् । इशेलिले '२१६०। पा-मा-१७१३।७८।' इति पश्यादेशः । तिग्मांशोरादिसस्य रिमिभः छुरितानि रिक्षतानि । तुक् । माज्ञि पूर्वस्यां दिशः अवस्थितानि । प्रपूर्वाद्वतेः '३७३। ऋत्विग्-१३।२।५९।' इत्यादिना किप् । अनुषङ्गलोपः । शिः । नपुंसकस्य नुम् । भानोरिव तेजांसि सुवि संभृतानि पिण्डीकृतानि । गभ-स्तिभिः रिश्मिभः धाराभिरिव दुतानि गलितानि । धारा प्रपात इति भिदा पाठाद्रष्टव्यम् ॥

१—'अर्ल-खल्बोः प्रतिषेथयोः प्राचां कत्वा (त्वा) । १।४।१८।। १३६६। समान-कर्त् कयोः पूर्व-काले — ।३।४।२१॥३३२०। जामीक्ष्ण्ये णामुल्यू (अम्) च— ।३।४।२२॥३३४३। समासे उनन-पूर्व क्त्वो ल्याप् (य) ७१३७३१३२ १ति पाणिनि वै० म० च

४०-दिग्-व्यापिनीर् लोचन-लोमनीया
मृजाऽन्वयाः स्नेहमिव स्रवन्तीः॥
ऋज्वाऽऽयताः शस्य-विशेष-पङ्कीस्
तुतोष पश्यन् वितृणाऽन्तरालाः॥ १३॥

दिग्ट्यापीत्यादि— शस्त्रिशाणां शास्त्रादीनां पङ्कीः पर्यंस्तृतोष तुष्ट्यान्। दिग्ट्यापिनीः सर्वदिग्ट्यापनशीलः । लोभयन्तीति लोभनीयाः । बहुलवचना- कर्तर्यनीयः । लोचनानां लोभनीया इति षष्टीसमासः । मार्जनं सृजा क्रुद्धः । '३२८९। षिद्धिदादिभ्योऽङ् ।३।३।१०४।' तया, अन्वयोऽनुगमो यासाम् । शुष्टानुगता इत्यर्थः । ततः स्रेहमिव स्वन्तीः । ऋजवश्च ता आयताश्च वितृणा- न्तरालाः उत्पाटितानि तृणानि अन्तराले मध्यभागे यासां ताः ॥

४१-वियोग-दुःखाऽनुभवाऽनभिज्ञैः काले नृपांऽशं त्रिहितं ददद्भिः॥ आहार्य-शोभा-रहितैरमायै-रैक्षिष्ट पुम्भिः प्रचितान् स गोष्ठान्॥ १४॥

वियोगेत्यादि — पुम्भः गोपेः प्रचितान् व्याप्तान् गोष्ठान् गावस्तिष्ठन्ति वेध्वित '२९१६। सुपि स्थः ।३।२।४।' इति कः । '२९१८। अम्बाम्ब।८।३।९७।' इत्यादिना मूर्थन्यः । तान् स राम ऐक्षिष्ट दष्टवान् । अनुदासेत्वातकः । इह । वियोगदुः वस्य योऽनुभवः अनुभवनं तस्यानिम्नेतः तेषां पुत्रदारैः
सहैव सर्वत्र गमनात् एतावता कालेन एतावदेयमिति विहितं कृतम् । द्यातेहिः । नृपांशं करं दद्किः । आहार्यां कटकादिमः आहरणीया या शोभा दीसिः तया रहितः । अमायैः ऋज्ञमिः । आहार्येति '२८७२। ऋ हलोर्ण्यत्
।३।११२४।' शोभयतीति शोभा पचावच् । '३२८४। ण्यासश्रन्थो युच्
।३।११०७।' इति युच् न भवति तस्य स्त्रीलिङ्गे भावे अकर्तरि च कारके विधानात् । नन्यादिपाठात् व्युनं भवति तस्य '२८३०। वाऽसरूपोऽस्त्रियाम्।३।१९४'
इति विकल्पितःचात् । अथवा शोभनं शोभा स्त्रीलिङ्गे भावे घद्म। '२८४१।
कृत्य-व्युटो बहुलम् ।३।३।१३१।' इति बहुलवचनादन्येऽपि कृतः प्राप्तमपि
स्वाभिधेयं व्यभिचरन्ति ॥

४२-स्त्री-भूषणं चेष्टितमं-प्रगल्भं चारूण्यं-वक्राण्यंपि वीक्षितानि॥ ऋजूंश्चं विश्वास-कृतः स्वभावान् गोपाऽङ्गनानां मुमुदे विलोक्य.॥ १५॥

स्त्रीभूषणमित्यादि-गोपाङ्गनानां चेष्टितं गमनायमनादि । अप्रगर्भं छ-जावत्। तच स्नीतिभूषणं स्नीणामरुङ्गारः। तथा वीक्षितानि विरोकितानि अवकाण्यपि कटाशादिरहितान्यपि चारूणि शोभनानि। स्वभावान् स्वाभिप्रायान् ऋजून् अङ्गटिलान् विश्वासङ्कतो विश्वासस्य जनकान् विलोक्य सुमुदे हृष्टवान्। स रामः । लिटोऽपित्वास्कित्वे गुणाभावः । कार्याणां दर्शनात् स्वभावानां दर्शनभिन्युक्तम् ॥

४३–विवृत्त-पार्श्वं रुचिर<u>ा</u>ऽङ्गहारं

समुद्रहच्-चारु-नितम्ब-रम्यम् ॥

आमन्द्र-मन्थ-ध्वनि-दत्त-तालं गोपाऽङ्गना-नृत्यर्मनन्दयत् तम्. ॥ १६ ॥

विवृत्तेत्यादि —गोपाङ्गनानां दिधमन्थनाय यत् स्थानं इतं तत् नृत्यमिवेति बोपाङ्गनानृत्यं कर्तृ तं रामम् अनन्दयत् सन्तोषितवत् । नन्देण्यन्तस्य लिङ रूपम् । विवृत्ते तिर्यक्चिति पार्थे यत्र नृत्ये । रुचिरः शोभनोऽङ्गहारोऽङ्गविक्षेपो

यत्र । समुद्रहता तिर्यंक् समुद्रच्छता चारुनितम्बेन कटिभागेन रम्यं मनोहरम् । आमन्द्र ईषद्रस्भीरो यो मन्यकृतो ध्वनिः तेन दत्तस्तालो यत्र ॥

४४-विचित्रमुंचैः प्रवमानमारात्

कुतूहलं त्रस्नु ततान तस्य ॥ मेघाऽत्ययोपात्त-वनोपशोभं

कदम्बकं वातमजं मृगाणाम्. ॥ १७॥

विचित्रमित्यादि ॥ सगाणां कदम्बकं वृन्दं तस्य रामस्य कौत्हलं ततान विस्तृतवत् । विवित्रम् कृष्णश्वेतःवात् । उचैः प्रयमानम् अर्ध्वं जिहानम्।आरात् समीपे । त्रल् त्रसनशीलम् । '३१२०। त्रसि-गृधि-।३।२।१४०।' इत्यादिना कः । सेवाल्येन सेवापगमेन उपात्तवनोपशोनम् । उपार्त्तं गृहीतं वनम् उपशोभा च चेनेति व्यधिकरणबहुनीहिः । वातमजति वातमजम् वातामिमुखं गच्छती-त्यर्थः । 'वात-शुनी-तिल-शर्घेषु--' इति सञ्च । '२९४२। असर्द्विष-।६।३।६७।' इति मुम् ॥

४५-सित<u>ा</u>ऽरविन्द-प्रचयेषु लीनाः

संसक्त-फेणेषु च सैकतेषु॥

कुन्दाऽवदाताः कलहंस-मालाः

प्रतीयिरे श्रोत्र-सुखैर् निनादैः. ॥ १८ ॥ ं प्रचयेषु समूदेषु ३२३१ पुरच् ३३५६' 'सङ्के चानौत्तराक्षर्ये ३३ ४२ श्रृति मञ्जूको न भवत प्राणितु



सङ्घश्चदस्य रूडत्यात् । लीनाः कलहंसमालाः । तथा संसक्तफेणेषु च सैकतेषु पुलिनेषु लीनाः सिकता येषु विद्यन्त इति । '१९१२। देशे लुबिल्को च ।पा११६०पा' इति चकारादण् । कुन्दावदाताः कुन्दमिवावदाताः शुक्काः।'७३४। उपमानानि—।२।१।२२।' इत्यदिना समासः । प्रतीयिरे ज्ञाताः । तेन रासेणेति विभक्तिविपरिणामेन सम्बन्धः । कर्मणि लिह् । '२४५५। इणो यण् ।६।४।८९।' ।'२२४३। द्विचेचनेऽचि ।१।१।५९।' इति स्थानिवज्ञावाद्विचेचनम् । श्रोत्रसुलैर्म- धुरैनिनादैः करणमूतैः । '३२४९ । नौ गद—।३।३।६४।' इत्यादिना घम् ॥ शरद्दणेनमुपसंहरनाह—

४६—न तज् जलं, यन् न सु-चारु-पङ्कजं, न पङ्कजं तद्, यर्द-लीन-पर्-पदम्,॥ न पर्-पदोऽसो, न जुगुझ यः कलं; न गुझितं तन्, न जहार यन् मनः. ॥१९॥

न तजालिमित्यादि ॥ किम्बहुनोक्तेन सर्वथा न तजालं यत् सुचारपङ्कजं न सभूव । पङ्कजमपि यदलीनषद्पदं तदपि न । असौ पद्पदोऽपि तथाविदो नाभूत्। यः कलं मधुरं न जुगुञ्ज न गुञ्जितवान् । '२१२। गुजि अव्यक्ते शब्दे' । '२२६२) इदितो नुम् धातोः ।७।१।५८।' इति नुम्नि लिटि रूपस् । गुजि-तमपि तत् नैवासीत् । यन्मनो न जहार न हतवत् रामस्य लोकस्य वा ॥

४७-तं यांयज्काः सह भिक्षु-मुख्येस् तपः-कृशाः शान्त्युदकुम्भ-हस्ताः,॥ यायावराः पुष्प-फलेन चौ ऽन्ये प्राणर्चुरेच्या जगदुर्चनीयस्.॥ २०॥

१—पन्नेऽसिन्नेद्वाचिट्यल्क्षारः । तल्लक्षणं काव्यप्रकाशे भट्टभम्मटः—'स्थाप्यते-ऽपोद्वाते वाऽषि यथा-पूर्व परं-परम् ॥ विशेषणतथा वस्तु यत्र, सैकावली द्विषा ॥' इति । स्थापने यथा—'युराणि यस्यां स-वराऽक्रनानि, वराऽक्रनारूप-पुरस्कृता-क्षयः, ॥ रूपं समुन्मीलित-सद्-विलासम्स्रं विलासाः कुमुमा-ऽऽयुधस्य ॥' किंवा—'स पण्डितो, यः स्व-द्विताऽर्ध-दर्शीः हितं च तद्, यत्र पराऽनपित्रया ॥ परे च ते, ये शित-साधु-भावाः; सः साधुता, यत्र चकास्त्रं माधवः ॥' अपोहने यथा—'निरत्ययं साम न दान-विजतः; न भूरि दानं विहरस्य सत्-क्रियाम् ॥ प्रवति तस्य विशेष-शालिनीः गुणाऽनुरोधेन विना न सत्-क्रियाः ॥' इति श्री-भारवि-किराताऽर्जुनीये—शहरा किं वा—'नाऽऽर्यः स, यो न स्व-द्वित समीक्षतेः न तद् हितं, यत् न पराऽनुतोषणम्॥ न ते परे, येर् नहि साधुता श्रिताः न साधुता सा, नहि यत्र मा-धवः ॥' २—'७१४। इज्या-शिलो यायजूकः ।' ३ '७४९ मिस्नु परिवाद कर्मन्टी पाराश्वर्यि मस्तरी ''

२८ भट्टिकाट्ये प्रथम प्रकीर्ण काण्डे लक्ष्मण रूप द्वितीयो वर्ग ,

तमित्यादि —यायज्काः, अत्यर्थं यजनशीलाः। '३१४६। यज-जप-दशां यङः ।३।२।१६६।' इत्युकः । '२३०८। अतो लोपः ।६।४।४८।' । '२६३१। यस्य इलः । हा ४। ४९। 'ते तपोवनस्थितासां राममागच्छन्तमानर्चः सुष्टु पूजितवन्तः । अ-चैंकिंटि द्विषंचनम् । '२२४८। अत आदेः ।७।४।७०।' इति दीर्घत्वम् ।'२२८८। तसालुङ् द्विहळः ।७।४।७९।' इति सुद् । सह मिश्चुसुस्यैः । मिक्षणक्रीला भिक्षवः परित्राजकाः। '३१४८। सनार्शसभिक्ष उः।३।२।१६८।' तेषां ये प्रधानास्तैः सह । तपः क्रुशाः तपसा दुर्बेछाः । शान्त्यर्थसुदकं तेन पूर्णः क्रुम्मः । '९९७। एकहळादौ-।६।३।५९।' इत्यादिना, उदकस उदभावः । स हस्ते येपासिति बहुबीहिः । परनिपातश्चात्र वाहितास्यादिदर्शनात् । प्रहरणार्थेभ्य इति वा । शान्युद्कुरभस्वहितनिवारणसाधर्मात् उपचारेण प्रहरणम् । ते शिरःसुदकदानेन प्राणर्जुः । अन्ये मुनयो यायावरा एकत्रानियतनिलयाः । यातेर्येङन्तात् । '१३५६। यश्च यङः ।३।२।९७६।' इति वरच् । अतो छोपादि । पुष्पफलेन माणर्जुः। पुष्पाणि च फलानि चेति '९१०। जातिरप्राणिनाम् ।२।४।६।' इत्येकबद्धावः । अर्च्या अर्चनाहीः । '२८२२। अर्हे कृत्य-।३।३।१६९।' अर्चनीयमित्यत्रापि। जगतां जगद्भिर्वा, अर्चनीयम् । '६२९। कृत्यानां कर्तरि वा।२।३।७१।'। इति पक्षे पष्टी, नतु '६२३। कर्तृ-कर्मणोः कृति ।२।३।९५।' इति षष्ठी ॥

४८-विद्यामेथैनं विजयां जयां च रक्षो-गणं क्षिप्तुर्म-विक्षताऽऽत्मा ॥ अध्यापिपद् गाधि-सुतो यथावन् निघातयिष्यन् युधि यातुधानान्.॥ २१ ॥

विद्यामित्यादि—तपोवनं प्राप्तः गाप्तिसुतः एनं रामं। '३५१। दितीयाटो—११४१४।' इत्येनादेशः। विद्यां नाम्ना विजयां जयां च। यथावत् यथाविधि ।
अध्यापिपत् पाठितवाद् । '२६०१। णो च संश्रकोः।६१११३१।' इति गाङमावपश्चे
रूपम् । अधिपूर्वादिङो हेतुमण्णिचि '२६००। क्रीङ्जीनां णो।६१११४८।' इत्यात्वम्। पुगादिविधवः । रक्षोगणम् । क्षिम्नं प्रेरपितारम् । '३१२०। क्रिसि-गृधि१३१२१४०।' इत्यादिना कुः । '६२७। न लोका—१२१३१६९।' इति पष्टीमितिपेधात्
दितीयव । अविक्षतात्मा रागादिभिरनिभभूतचित्तवृत्तिः । तस्य हि विद्या अमोद्याः
भवति । संप्रामे युद्धि । यातुधानान् रक्षांसि । निधातियिध्यन् मार्थिध्यन् ।
इन्तेहेंतुमण्णिच् । घत्वं । स्ट स्टः सदादेशः ॥

४९-आयोधने स्थायुकर्मस्त्रजात-समोघर्मभयर्ण-महाऽऽहवाय ॥

१ १०७५ निराकारिष्णु क्षियुः स्यात्



ददौ वधाय क्षणदाःचराणा तस्मै मुनिः श्रेयसि जागरूकः ॥ २२ ॥

आयोधन इत्यादि—स मुनिः तसे रामायास्रजातम्, अस्त्रसमूहं द्दी द्त्तवान् । द्वातेर्ल्टि । जल '१२०१। आत भे जलः ।०।१।२४।' आयुध्यन्ते अस्तिकिति वायोधनं संग्रामः । अधिकरणे ल्युद्द । तत्र स्थायुकं स्थितिकरणशी-लम् जयावहृत्वात् । '२१२४। लप-पत—१२।११५४।' इत्यादिना उक्त्य् । आतो यक् । अत एवामोधस् अवन्ध्यम् । अवृध्यमोक्षत्वात् । अभ्यणें निकटी महाह्वो यस्य तसे । अभिपूर्वाद्देनिष्टायास्, '२०६५। अभ्रेश्वाविद्र्यें ।०।२।२५।' इति नत्वम् । अभ्यणेः । आहव इति आह्यन्ते अस्मिन्युद्धायेति स्थतेराक्ष्य्वाते '२२५०। आङि युद्धे ।३।१।०३।' इति सम्प्रसारणम् । अप्प्रस्यः । गुणावादेशौ । वधाय क्षणदान्तराणामिति क्षणदा राज्ञिः तत्र चरन्तीति '२९३०। चरेष्टः ३।२।१६।' तत्र हि महाह्वे रामो राक्षसान् हनिष्यतीति । '३२५३। हनश्च वधः ।३।३।०६।' इति वधादेशः । हत्ययोगे क्षणदान्तराणामिति कर्माण पष्टी । श्रेयसि जागरूकः तत्कल्याणे सावधानः । जागर्तेरूकः ॥

५०-तं विप्र-दर्शं कृत-घात-यहा यान्तं वने रात्रिःचरी डुँढोंके, ॥ जिघांसु-वेदं धृत-भासुराष्ट्रस्रस् तां ताडकाऽऽख्यां निजधान रामः.॥ २३॥

तिमित्यादि—विद्यासखजातं चादाय यज्ञकर्मणि विद्योपश्यमनार्थं वने यान्तं रामम् राष्ट्रिचरी राक्षसी ताडकाभिधाना हुडौके ढौकते सा । ढौकतेरात्मनेप-दिनो छिटि रूपम् । तां च रामो निजवान निहतवान् । विप्रदर्शं इतघातय-बा विधान् बाह्मणान् दृष्ट्वा कृतमारणाभियोगा राष्ट्रिचरी । रामोऽपि जिघांसुवे-दं धतमासुराखः । जिघांसुं विदित्वा धतं भासुरं भासनशीलम् अस्तं येनेति बहु-बीहिः । विध्वर्शं जिघांसुवेदमिति '३३५०। कर्मणि दृश्-विदोः साकस्ये

५१-अर्था ऽऽहुँ होके हुत-धूम-केतु-शिखाऽञ्जन-स्तिग्ध-समृद्ध-शाखम् ॥ तपो-वनं प्राध्ययनाऽभिभूत-समुचरच्-चारु-पतित्र-शिञ्जम्, ॥ २४॥ अथेलादि—अथासौ रामो राक्षसी हत्वा तपोवनम् आहुहोके दृष्टवान् ।

।३।४।२९।' इति णमुख्।।

१—'१०१। ढौँकूं गत्यर्थः।' २—'७९। लोकूँ दर्शने।'

कथम्भूतम् । हुतभूमकेतुशिखाञ्जनिकाश्वसमृद्धसाखम् । हुतश्वासौ धूमकेतुरिमश्र हुतभूमकेतुः । तस्य शिखाञ्जनेन क्षिण्धाः समृद्धाश्च फलादिना शाखा यस्य
तपोवनस्य। प्राध्ययनेन वेदपाठेन अभिभूता तिरस्कृता समुचरन्ती चार्वी शोभना
पतित्रणां पश्चिणां शिक्षा ध्वलियेत्र। '१०९८ शिक्षि अन्यके शब्दे।' शिक्षनं
शिक्षा '२२८०। गुरोश्च हलः ।३।३।१०३।' इलाकारमत्ययः पतन्तं त्रायन्त इति
पत्रप्राणि पश्चाः। '२९१५। आतोऽनुपसर्गे कः।३।२।३।'। तानि वेषां सन्तीति
पतित्रणः । पतङ्गशिक्षाश्चिति पाठान्तरम्॥

५२-श्रुद्रान् न जश्चर् हरिणान् मृगेन्द्रा, विशश्यसे पक्षि-गणैः समन्तात्,॥ नन्नम्यमानाः फल-दित्सर्येव चर्काशिरे तत्र लता विलोलाः.॥ २५॥

सुद्रानित्यादि—तत्र तसिस्तिणोवने तपोधनानां सित्रभावात् क्षुद्रानित्रानिष हिरणान्मुगेन्द्राः सिंहाः न जक्षः न बाधितवन्तः । क्षुचन्त इति क्षुद्राः । स्फायितश्रीत्यादिना औणादिको रक् । '२४२४। लिट्यन्यतरसाम् ।२।४।४०।' इति अदेवेस्तः।'२३६३। गम-हन—१६।४।९८।' इत्यादिनोपधालोपः '१२१। सि च।८।४।५॥' इति चर्त्वम् । '२४१०। शासि-वासि—।८।३।६०।' हत्यादिना पत्वम् । पित्रिगणैः समन्तात्सर्वत्र विरुद्धरिष काकोल्रकादिभिः परस्परं विश्वश्रसे विश्वस्तम् । भावे लिट् । लताश्र विलोलाश्रपलाश्रकारिरे शोभन्ते सा। फलदित्सयेव मुनिम्यः फलं दानुमिच्छयेव नन्नम्यमानाः अत्यर्थं नमन्त्यः । दानुमिच्छा दिन्सा। दद्रातेः सन् । '२६५३। सनि मी-मा—।७।४।५३।' इत्यादिना इस् '२६२०। अत्र लोपो-ऽभ्यासत्य ।७।४।५८।' इति अभ्यासलोपश्रा'२३४२। सः सि—।०।४।४९।' इत्यादिना सकारस्य तकारः । '३२७९। अ प्रस्थयात् ।३।३।१०२।' इत्यकारप्रस्थयः । फलानां दिन्सिति कर्मणि पर्धा विधाय कृद्योगे समासः। नन्नम्यमाना इति नमे-र्थकि '२६४३। नुगतोऽनुनासिक—।०।४।८५' इति नुक् । यङताच्छानच् । अने मुक् ॥

५२-अपूपुजन् विष्टर-पाद्य-मॉल्ये-रातिथ्य-निष्णा वन-वासि-मुख्याः,॥ प्रत्यप्रहीष्टां मधुपर्क-मिश्रं तार्वासनाऽऽदि क्षितिःपाल-पुत्रौ.॥ २६॥



१—'६९४। कार्यं दीप्ता ।' २—'१३७८। विष्ट्रो विट्यी दर्भ-सुष्टिः पीठाऽऽय-मासनम्।' ३—'७३८। पार्चं पादाय वारिणि।' ४—'६९९। मार्ट्यं माठा-सनी मूर्प्त

अपूर्युजितिता मनवासिमुख्याः महर्षयो विष्टरादिभिः अपूर्यन् प्रितियन्तः । तौ क्षितिपञ्जावित्यर्थात् द्वितीयान्तेन योज्यम् । वनवासीति '९७६ क्षिम्बिसि । अर्।१८।' इलादिना विकल्पेन सप्तस्या अलुक् । पुनेः स्वार्थिकण्यन्तस्य णो चिक हस्यः । '२३१८ दीवीं लघोः । ।।।।।९४।' इति वन्यासस्य दीवैः । विष्टरमासनम् । '३२३३। वृक्षासनयोर्विष्टरः ।८।३।९३।' इति निपातनात् । पाद्यं पादार्थमुद्कम् ।२०५३। पादार्थाभ्यां च ।५।४।२५।' इति यत् । तदर्थत्वात्पद्वावाभावः । माल्यानि कुसुमानि । माल्यां साधूनि । '१६५०। तत्र साधुः ।४।४।९८।' इति यत् । आतिथ्य-निष्णाः अतिथ्यर्थम् आतिथ्यम् । '२०९४। अतिथेव्यर्थः ।५।४।२६। तत्र निष्णाः कुश्चलाः । '३०८२। नि-नदीभ्यां स्वातेः कैश्वले ।८।३।८९।' इति वत्वम् । तो च क्षितिपा- लपुत्रो रामलक्ष्मणो तदासनादि प्रत्यप्रहीद्यां प्रतिगृहीतवन्तो । प्रतिपूर्वोद् प्रहे॰ लुक् । तसस्ताम् । '२५६२। प्रहोऽलिटि—।७।२।३०।' इति दीर्घः । पत्वष्टुत्वे । मधुपर्कमिश्रम् मधुपर्वेण सहेत्यथः ॥

५४-दैत्या्ऽभिभूतस्य युवार्मवोढं मग्नस्य दीभिंर् भुवनस्य भारम् ,॥ हवींि संप्रत्यंपि रक्षतं, ती तपोन्धनैरित्थर्मभाषिषाताम्,॥ २७॥

दैत्येस्यादि — दितरपत्यानि दैसाः । '१००७। दिसादिसा—१४११८५।' इसा-दिना पयः । तैरिभभूतस्य मझस्य शरण्यस्य भुवनस्य भारिमितकर्तस्यतास्वक्ष-णं दोभिर्भुक्तैः युवामवोदम् अदयन्तौ । नरनारायणौ युवामित्युक्तौ । त्वं च त्वं चेति एकशेषः । अवोदिमिति वहेर्सुङ् । थसस्तम् । इस्त्रतस्वकाणा बृद्धिः । सिज्लोपः । '२३५७। सिह-वहोः—।६।१११२।' इस्रोत्यम् । दत्वष्टुत्वदलोपाः । दोरिति दमेडोंसिस्पाणादिको होस् । हर्द्योषि होतन्यानि । सम्प्रस्यपि रक्षतम् । अचिरुत्विहुस्यिच्छादिच्छिद्भिय इसिरिस्याणादिक इसिः । राक्षसैरुपहन्यमाना-नि रक्षतम् । प्रार्थनायां लोद । शप् । थसस्तम् । इस्थमिति '१९६५। इदमस्यमुः ।५।३।२४।' अनेनोक्तप्रकारेण । तपोधनैस्तप एव धनं येषामिति । अभाषिपाताम् अकिहितौ । भाषतेः कर्मणि सुङ् । सिजिटौ ॥

> ५५-तान् प्रत्यवादीर्दथ राघवोऽपि—, यथे्प्सितं प्रस्तुत कर्म धर्म्यम्,॥

१--- '६४४ 'मुज-बाह् प्रवेष्टो दोः।'

तपो-मरुद्धिर् भवतां शराऽग्निः संधुक्ष्यतां नोऽरि-समिन्धनेषु. ॥ ^१२८ ॥

तानिस्वादि—अथैतसिन् प्रसावे राघवोऽपि रघुसुतः तान्मुनीन् प्रसावादीत् । '२२६७। यद-वज्ञ—। ७।२।३। 'इसादिना वृद्धिः । यथेप्सतं यथाभिमतम् ।
आप्नोतेः '२६१९। आप्-इप्युधामीत् । ७।४।५५। 'इतीस्वम् अभ्यासलोपश्च ।
सन्ननताकर्मणि निष्ठा । धर्मादनपेतं धर्मम् यागादि कर्मे । प्रस्तुत प्रारमध्यम्।
प्रपूर्वः सौतिः प्रारम्भे वर्तते । तस्मान्निमञ्चणे नियोगकरणे लोद । थस्य तः। शपौ
लुक् । तपांसि महत इव तपोमहिन्दः । भवतां तपोमहिन्ननीऽस्थाकम् । '४०५।
बहुवचनस्य वस्-नसौ ।८।१।२१।'इति नसादेशः । शराग्निः शरोऽग्निरिव ।
संप्रस्थतां दीप्यताम् । '६४४। ध्रुक्ष, विक्ष्म, सन्दीपन-क्लेदन-जीवनेषु ।' तस्माकर्मणि लोद्द । अरिसमिन्धनेषु अरिकाष्ठेषु । समिध्यते एभिरिति समिन्धनानि ।
करणे लुद्द । अरयः समिन्धनानीव ॥

५६-प्रतुष्टुद्धः कर्म ततः प्रक्कृप्तेस् ते यज्ञियेर् द्रव्य-गणेर् यथावत्, ॥ दक्षिण्य-दिष्टं कृतमीर्त्विजीनैस् तद् यातुधानैश् चिचिते प्रसर्पत्.॥ २९॥

प्रतुष्टुवुरित्यादि—ततो रामवचनादनन्तरं तपोधनाः कर्म यागृक्षियां प्रतु-ष्टुदः। यथावत् यथाविधि प्रारच्धवन्तः। यज्ञियैः यज्ञकमीहैंः द्रव्यगणैः प्रक्रुप्तैः मिलितैः। '२३५०। कृपो रो लः ।८।२।१८।' दक्षिणामईन्तीति दक्षिण्याः महामुनयः '१७३३ । कड्कर-दक्षिणाच्छ च ।५।१।६९।' इति चकाराधत्। तैर्दिष्टमुक्तम् । कृतमार्त्विजीनैः ऋतिकर्माहैरनुष्टितम्। ऋत्विजश्च ब्रह्माद्यः षोडश पिताः। तच कर्म प्रसर्पत् वृद्धिं गच्छत्। यातुधाने राक्षसैः विचिते ज्ञातम्। '३९ । चिती" संज्ञाने श्वरस्थात् कर्मणि लिह् । यज्ञियैरा-

५७-आपिङ्ग-रूक्षोध्रव-शिरस्य-वालैः

शिराल-जङ्घेर् गिरि-कूट-दन्नैः॥

र्श्विजीनैरिति '१७३५। यज्ञर्त्विग्म्यां घसत्रौ ।५।९।७१।' इति तत्कर्माईतीति ॥

१—पथेऽसिन् स्प्ताऽलंकारः । तल्लक्षणं का० प्र० मन्मटः—'तत् स्प्कमभेदो य उपमानापुनेवयोः॥' इति । यथा—'एव मनः-स्वैर-पशुर् धावति पर-कनक-कामिनीनिकटम्, ॥ तसाद् विवेक-पाशैः कण्ठे वैराग्य-काष्ट-मावव्यम् ॥' कि वा—'दुष्यन्तसञ्च-पद्यं सा स्त्री-श्रीः कण्व-मानु-शिष्य-करैः । नीता स-सुत-सुगन्धा सद्-धर्म-नयाऽम्युपूर्ण पुर सरसि स्वकृत-संस्कृत पद्य २ १४३४ स्व्यस्स्
त्वे प्रेम्ण्य-चिद्याणे इति ना० स० २०५६ स्व्यु पारुष्ये इति धा०पा०

ततः क्षपाऽटैः पृथु-पिङ्गलाऽक्षैः स्रं प्रावृषेण्यैरिव चांऽऽनशेऽब्दैः.॥ ३०॥

आपिक्नेत्यादि—ततः कर्मप्रवर्तनादनन्तरम् । क्षपाटैः निशाचरैः । अटन्तीलटाः पचाचच् । क्षपायामटा इति । सप्तमीति योगविभागात् समासः ।
लमाकाशमानशे व्यासम् । अश्रोतेः कर्मणि छिट् । '२५३३। अश्रोतेश्व । ७।४।७२।'
इति छुङ् ॥ शिरसि जाताः शिरसाः । '१६६६। शरीरावयवाचत् ।५।१।६।'
आपिक्वा आ समन्तात् पिक्वा विद्युदिव । रूक्षाः सूक्ष्माः कर्ध्वशिरस्या बाला येषां
तैः । अन्योऽपि शिरस्यो भवति इति वालग्रहणम् । अमक्तल्वाला इत्यर्थः । शिराः
सन्ति यासामिति '१९०३। प्राणिस्थादातो छजन्यतरस्याम् ।५।२।६६।' इति
छच् । शिराला जङ्वा थेषां तः । गिरिकूटद्वेगिरिकूटश्माणैः । '१८३८ ।
प्रमाणे ह्रयसच्-।५।२।३७।' इति द्वन् । प्रथृति विस्तीर्णानि पिक्वलानि चाञ्चीणि येषां तैः । '८५२। बहुवीहो सन्थ्यक्षणोः-५।५।११३।' इति चच् । प्रावृवेण्येरिवेति '१३८८। प्रावृष एण्यः ।४।३।१७।' अब्दैमेंघैः कृष्णसाधम्यात् । अपो
ददतीति अब्दाः । चकारः पादपूरणार्थः ॥

५८-अधि-ज्य-चापः स्थिर-वाहु-मुष्टि-रुद्खिताऽक्षोऽखित-दक्षिणो्रुः॥ तान् लक्ष्मणः सन्नत-वाम-जङ्घो जघान द्युद्धेषुर्र-मन्द-कर्षाः॥ ३१॥

अधीत्यादि—तान् क्षपाटान् गगनस्थान् छक्षमणो जघान हतवान् । की-हशः अधिज्यचापः । अध्याक्ष्ठा उत्किलिता ज्या गुणो यस्य चापस्य तद्धिज्य-म् । प्रादिश्यो धातुजस्येति समासः । अधिज्यं चापं यस्य छक्ष्मणस्य । स्थिरो निश्चलो बाहुर्मुष्टिश्च यस्य । उद्ज्ञिते उत्कित्ते अक्षिणी येन स उद्ज्ञिताक्षः । आका-शस्यापितदृष्टिरित्यर्थः । अञ्चितः सङ्गोचितो दक्षिणोस्त्र्येन सोऽञ्चितदृक्षिणोसः । अञ्चेः प्जायामितीदोऽनुत्पन्नत्वात् ण्यन्तस्य रूपम् । न चात्र प्जा गम्यते किन्तु गतिविशेष एव । अनुषङ्गलोपोऽपि न भवति णिलोपस्य स्थानिवद्भावात् । समन्तात् नता वासजङ्गा यस्य स सञ्चतवामजङ्गः । शुद्धेषुः निशितबाणः । अमन्दमत्यन्तं कष्टुं शीलमस्यासावमन्दकर्षा । कर्णान्ताकृष्टचाप इत्यर्थः ॥

५९-गाधेय-दिष्टं विन्तसं रसन्तं रामो ऽपि मायान्चणर्मस्त्र-चुद्धः॥ स्थास्तुं रणे स्मेर-मुखो जगाद मारीचर्मुचैर् वचनं महाऽर्थम्.॥ ३२॥

१ '१११८' स्थासु स्थरन्तर स्थेयान्।'

गाधियेत्यादि—गाधिरपत्यं गाधियो विश्वाप्तितः। स्यच इत्यनुवर्तमाने '११२५। इस्रह्मातिनः। ४।१।१२२।' इति ढक् । तेन दिष्टं कथितं मारीचं नाम राक्षसं रामो जगाद गदितवान्। रसन्तम् वदन्तम् । विरसमश्राच्यमिति क्रियाविशेषणम्। मायाचणं मायया वित्तम् अखनुकुः अखैः प्रतीतो रामः। '१८२७। तेन वित्तश्रुक्षपुचणपौ ।५।२।२६।' इति । स्थाखं रणे स्थितिशीठ-म्। तस्य सेनापतित्वात् । स्थेरमुखः चित्तस्याक्षोमादीषद्यसम्बर्शिष्वदनः। '११४७। नमिकम्पि ।१।२।१६७।' इत्यादिना रः। उचैस्तरां जगादेति किया-विशेषणम्। वचनं वश्यमाणं महार्थं प्रधानार्थम्। ब्रुविशासीत्यत्र जुवीत्यर्थेय-हणाद्विकर्मकता । सारीचं वचनं च॥

६०-आतमम्=भरिस् त्वं पिशितैर् नराणां फले-ग्रेहीन् हंसि वनस्-पेतीनास्,॥ शौवस्तिक-त्वं विभवा न येषां वजन्ति, तेषां दयसे न कस्मात्.॥ ३३॥

आरमेखादि—नराणां पिशितैर्मांसेः आत्मानं बिभिषं पुरणासि । मान्यद्पि शरीरस्थितिहेतुर्भवतीति भावः। स त्वमात्ममपिः आत्मभरणाय फलानि गृह्वन्ति ये वनस्पतीनां तान् फलेब्रहीन् फलाशिनो सुनीन् हंसि मारयसि । शपो लुक् । '२९४०। फलेब्रहिरात्मम्भिष्टि । १।२।२६।' इति निपातितौ । श्रो भिवतारः शौवित्तिकाः । '१६८५। श्वसस्तुद्ध च ।४।३।१५।' इति ठम् तुहागमश्च । हारादित्वादैजागमः । शौवित्तिकत्वं तथेषां विभवा न मजनित तेषामश्वस्तिकवृत्तीनां कस्मान्न द्यसे न एक्षसि । '६९३। अधीगर्थ-द्येशाम्—। २।३।५२।' इति कर्मणि षष्टी ॥

६१-अझो द्विजान्, देवयजीन् निहन्मः, कुर्मः पुरं प्रेत-नराऽधिवासम्,॥ धर्मो ह्ययं दाश्चरथे ! निजो नो, नैवाऽध्यकारिष्महि वेद-वृत्ते.॥ ३४॥

अद्मा इत्यादि—राक्षसः प्राह ! दिजान् ब्राह्मणक्षत्रियवेश्यान् अभो भक्षयामः । देवयजीन् देवान् यजन्ति आराधयन्ति ये ताम्निहन्मः । 'अच इः' इत्यनुवर्तमाने सनीत्यादिषूद्यमानेष्वौणादिकेषु सूत्रेषु यसपि यजिर्व पठितस्तथापि यजेरिः

१—'१०६६। उमौ त्यांतमम् भिरः कुक्षिम् भिरः स्वोदर-पूरके-॥'२—'३५४। वानस्पलः फल्टैः पुष्पात्, तैरं-पुष्पाद् वनस्पतिः, ॥ ओषध्यः फल्ट-पाकाऽन्ताः स्युरं-वच्य फल्टेन्यहिः ॥' इति सर्वत्र ना० व० ३ १३४७ धर्मा पुण्य-यम न्याय ऽऽचार सोम पा पति ना० व०

प्रकृतेश्व तद्द्वमिति वचनात् । '६१७। जासि-निप्रहण-।२।३।५६।' इस्यत्र सङ्घातिविगृहीतिविपर्यस्त्रप्रहणात् षष्टी प्राप्तापि न भवति । कर्मणः शेषत्वेनाविविश्वतत्वात् । पुरं नगरं प्रेतनराणां सृतनराणाम् । अधिवासमवस्थानं कुर्मैः ।
निस्यहननेन सम्मानतुल्यमित्यर्थः । कस्मादेविमित्याह-धर्म इति । दशरथस्यापत्यं
दाशरथिः । '१०९५। अत इच् ।४।१।९५।' । हे दाशरथे । हि यस्माद्वेवि
वर्तते । यस्पाद्यं धर्मः आचारः । निजो निस्यः । न इस्यस्थाकम् । वेद्विद्यः
इति चेत्-नैवाध्यकारिष्महि वेद्वृत्ते । वेद्विहितं वृत्तमिति मध्यमपदलोपी समासः । यद् ब्राह्मणानामुक्तमनुष्ठानं तत्र वयं नैवाधिकृता इस्यर्थः ।
अधिपूर्वास्करोतेः कर्मणि छङ् । '२७५७। स्वसिच्-।६।४।६२।' इत्यादिना
चिण्वदिदः ॥

६२-धैमों ऽस्ति सत्यं तव राक्षसांऽय-मृन्यो व्यतिस्ते तु ममांऽपि धर्मः, ॥ ब्रह्म-द्विषस् ते प्रणिहन्मि येन, राजन्य-वृत्तिर् भृत-कार्मुकेषुः.॥ ३५॥

भ्रमें इत्यादि—रासः प्राह । हे राक्षस रक्ष एव राक्षसः । प्रज्ञादित्वादण् । स्वार्थिका अतिवर्तन्त इति पुँछिज्ञता । तवाणं पूर्वोक्तः पराभिद्रोहरूक्षणो
धर्मोऽस्तीति सत्यमेतत् किन्तु ममापि रामस्य अन्यो धर्मोऽशिष्टनिप्रहरूक्षणो
ध्यतिरते व्यतिभवते । इद्मुक्तं अवति—यधण्येवंप्रकारस्वद्धमों भविष्यति
तथापीदानीमेव या त्वद्धमेण विद्यमानत्या निष्पाद्या सा अक्षद्धमेणैव निष्पादकत्वेन व्यतिरते । ततश्चान्यसम्बन्धिनीं कियामन्यः करोति इत्तरसम्बन्धिनीमितर इति धर्मच्यतिहारसम्भवात् । अस्तेः '२६८०। कर्मच्यतिहारे ।११३११।'
तङ् । तथाहि यो यद्वसरे यां कांचित् कियां करोति स तिक्वयाकारीत्युपचाराह्णोक उच्यते । येन धर्मेण हेतुना ब्रह्मद्विषस्ते प्रणिहन्मि मारयामि स व्यतिस्ते इति योज्यम् । '२२८५। नेर्गद्—।८।१९७।' इत्यादिना णत्यम् । '६९७।
ज्ञासि-नि—२।३।५६।' इत्यादिना कर्मणि षष्टी । तथा कथं तव धर्म इति चेदाह—
राजन्यवृत्तिरिति । क्षत्रियदृत्तिः । ततो राज्ञोऽपत्यम् । '१९५३। राजश्वद्युराचत्
।१।११६७।'। '१९५१। ये च ।६।४।६६८। इति प्रकृतिभावः। धतं कार्मुकम् इषवश्च येन सः । यतः अहं राजन्यवृत्तिः ततोऽहं धतकार्मुकेषुरिति । 'धतकार्मुकेषु'
इति पाठान्तरम् । क राजन्यवृत्तिः सायुधेष्वस्थिः ॥

६३-इत्थं-प्रवादं युधि संप्रहारं प्रचकत् राम-निशा-विहारौ,॥

तृणाय मत्वा रघु-नन्दनो ऽथ वाणेन रक्षः प्रधेनान् निरास्थत्.॥ ३६॥

इत्थिमित्यादि — इत्थम् अनेन प्रकारेण प्रवादः अन्योग्याभिघातो यत्र संप्रहारे तं संग्रहारं परस्पराभिभवलक्षणं प्रकृतवन्तो । युधि रणभूमो । युध्यन्ते
अस्यामिति । सम्पदादित्वादिषकरणे किए । रामनिशाविहारो । रामो निशाविहारो निशाचरो मारीचश्रेत्यर्थः । निशायां निहारो यस्येति समासः । अथानन्तरं
रधुनन्दनो रधुवंशस्य नन्द्यिता रामो मारीचं वाणेन तत्सम्बन्धिनि सत्यिष
तृणाय मत्वा तृणमिव अवमत्य-। '५८४। मन्यकर्मण्यनादरे-।२।३।१७।' इति
चतुर्थी । तत्र प्रकृष्टकुत्सितप्रहणं कर्तव्यम् । इह मा भूत् । तृणं मत्वेति । प्रथनात् संग्रामात् निरास्थत् अपनीतवान् ॥

६४-जग्मुः प्रसादं द्विज-मानसानि, द्यौर् वर्षुका पुष्प-चयं वभूव,॥ निर्व्याजिमिज्या ववृते. वचरा च भूयो बभाषे मुनिना कुमारः-॥ ३७॥

जग्मुरिखादि—यागविव्वकारिषु निरस्तेषु द्विजानां मानसानि मनांखेव मानसानि। '२१०६। प्रज्ञादि—पाष्ठाइट।' इत्यण्। प्रसादम् अञ्चाकुलत्वं जग्मुः गतानि। '२३६३। गम-६।२।९८।' इत्युपघालोपः। चौः पुष्पचयं वर्षुका वर्षण-शीला बभूव भवति स्म । '३१३४। लघ-पत-पद—३।२।१५४।' इत्यादिना उकन्म। '६२७। न लोका—२।३।६९।' इति पष्टीप्रतिषेधः। निव्यां निर्विव्यम्। इन्यायागः। '३२७५। व्रज-यजोर्भावे—३।३।९८।' इति क्यप्। ववृते। वृतः लिद्। भूयः पुनरिष मुनिना गायेयेन। कुमारः । अकृतदारकर्मत्वात्। वची वक्ष्य-माणं बमाषे। कर्मणि लिद्। बुवीत्यर्थमहणात् द्विकर्मकता वचः कुमारश्च॥

> ६५-महीय्यमाना भवता ऽतिमात्रं सुराऽध्वरे घस्मैर-जिंत्वरेण ॥ दिवोऽपि वज्राऽऽयुध-भूषणाया हिणीयते वीर-वती न भूमिः,॥ ३८॥

१—'८६९ । बुद्धसायोधनं जन्यं प्रधनं प्रविदारणम् ॥ मृधमास्कन्दनं संख्यं समीकं साम्परायिकम् ॥ इति ना० अ० । २—'१२३६ । दन्तः विप्राः उण्डः जिल्लाः ।' इ १०६५ मक्षको घसमरो ऽणर ४ ८४२ जेता जिल्लाग्रः च जित्वरः।' इति सर्वत्र ना० अ०

महीत्यादि-भवता भूमिः पृथिवी महीय्यमाना पूज्यमाना । अतिमात्रं सुष्टु सम्यक् पालनाहिबोऽपि स्वर्गस्य न हिणीयते न लजाते किंतु प्रतिस्पर्धत इति भावः। '२१३८। हिणी महीङ्' इति कण्ड्वादिपाठाचक्। ङित्वात्तङ् । अवयमे कृतं लिङ्गं समुदायस्य विशेषकं भवतीति महीयशब्दात्कर्मणि लकारः । शानच् । यक् । अतो लोपः । सुक् । महीय्यमानेति रूपम् । सुराध्वरे सुरानुहिस्य योऽध्वरो यज्ञः कियते तत्र । ये घस्मराः अदनशीला राक्षसाः । '३१४०। सूब-स्यदः वमरच् ३।२।१६०।' तेषां जित्वरेण जयशीलेन भवता । '३१४३ इण् नज्ञ-जि-३।२।१६३।' इत्यादिना करप्। वज्रायुधभूषणायाः शक एवारुङ्कारो यस्याः दिवः । वीरवती त्वद्विधो बीरो यस्यां भूमाविति ॥

संक्षेपेण स्तुतिमाह—

६६—त्रलिर् बबन्धे, जलधिर् ममन्थे, जहेऽमृतं, दैत्य-कुलं विजिग्ये, ॥ कल्पाऽन्त-दुःस्था वसुधा तथीहे येनै्प भारोऽति-गुरुर् न तस्य. ॥ ३९ ॥

वलिरित्यादि-येन भदता बलिर्बवन्धे बद्धः। जल्धिर्मसन्थे मथितः। सन्दरं दोभिर्गृहीत्वा । '४३। मन्य विलोडने ।' इत्यस्य रूपम् । संयोगान्तत्वा-क्षिटोऽकित्वे अनुनासिकछोपो न भवति । जहेऽमृतम् । श्वीरूपधारिणा । दैत्य-कुलं विजिग्ये विजितमनेकथा। '२३३३। सन्-लिटोर्जेः ७।३।५७।' इति कुव्यम्। '२७२। एरनेकाचः ६।४।८२।' इति यणादेशः । तथा कल्पान्ते प्रलये दुःस्था दुःस्थिता वसुधा पृथिवी । ऊहे उद्धृता । वराहरूपिणा । वहेर्यजादित्वात् संप्र-सारणम्। तस्य भवत एष भारो मुनिजनरक्षणम् अतिगुरुने भवति । सर्वेत्र कर्मणि लिद् ॥

६७–इति ब्रवाणो मधुरं हितं च तमां जिहन् मैथिल-यज्ञ-भूमिम्॥ रामं मुनिः श्रीत-मना मखाडन्ते यशांसि राज्ञां निजिघृक्षयिष्यन्. ॥ ४० ॥

इतीत्यादि-इति यथोक्तप्रकारेण मधुरं श्रोत्रसुखं हितं च खुवाणः अप्ति-द्धानः । '३१०३। लक्षण-हेल्वोः-३।२।१२६।' इति शानच् । मुनिः प्रीतमनाः मखान्ते बज्ञावसाने तं रामं मैथिलस यज्ञभूमिं आश्विहत् गमितवान् मिथि-लानां राजेति । '११८६। जनपदशन्दात् क्षत्रियात्व् ४।१।१६८।' इत्यत्र तस्य राजन्यपत्यवदित्यतिदेशाद्ञ्। '६७८ अहिँ गतौ।'। '२२६२। हृदितो नुम्-७।३। ५८।' प्रयोजकव्यापारे णिच् । लुङ् आह् चङि णिलोपः।'२२४३। द्विर्वचनेऽचि । १ शपर' इति स्थानिवज्ञावास् '२१७६। कि द

३८ भद्रिकावये - प्रथमे प्रकीर्ण-काण्डे लक्षण-रूपे द्वितीयो वर्गः,

बदस्य द्विवेचनम् । '२४४६। न न्द्राः—६। १।३।' इति नकारस्य प्रतिषेधः । अभ्या-सकार्यम् । आक्षिहदिति रूपम् । राज्ञां यशांसि निजिधृक्षयिष्यन् निप्रहीतुम-मिभवितुमेषयिष्यन् । प्रहेः सन् । '२६१०। सनि प्रह-गुहोश्च । ७।२।१२।' इति इद्यतिषेधः । द्विवेचनादि । '१६०९। रुद्-विद्—।१।२।८।' इत्यादिना सनः कित्त्वम् । '२४१२। प्रहि-ज्या—।६।१।१६।' इत्यादिना संप्रसारणम् । द्वत्यभष्भावी । गकारस्य धकारः । कत्वपत्ये । पश्चाण्णिच् । तद्नताद्विष्यत्सामान्यविवक्षायां इद् । तेन भविष्यदन्यतने छद्द न भवति ॥

६८-एतौ सा मित्रान्वरुणौ किमेतौ, किमेश्विनौ सोम-रसं पिपासू,॥ जनं समसं जनकाऽऽश्रम-स्थं रूपेण ताबौजिहतां नृ-सिंहौ,॥ ४१॥

एतावित्यादि — एतौ तत्रागतौ नृसिंहौ नरी सिंहाविव। जनकाश्रमस्थं जनं रूपेण स्वरूपतया औजिहतां वितर्कं कारितवन्तौ। सिंहाविव। '६९५। ऊहँ वितर्कं ।' इत्यसाद्धातोः ण्यन्तात् कर्तुः कियाफलाविवक्षायां '२५६४। णिचश्र। ११३। ७४।' इति तरू न भवति। चि णिलोपस्य स्थानिवज्ञावात्। '२१७६। अजादेर्द्वित्तीयस्य। ६। १।२। देति द्विवंचनम् । ऊहमाह — सित्रावरुणौ आदित्यवरुणौ। '९२२। देवता-द्वन्दे च। ६। ३।२६। दृश्यानङ् । तयोर्महानुभावत्वात्। सोमरसं पिपास् पातुमिन्छू। '६२७। न लोका – । २। ३।६९।' इति पष्टीप्रतिषेधः। एतावाग्यतौ। आङ्पूर्वस्येणो निष्ठायां रूपम्। किमिश्वनौ अधिनीकुमारौ सोमरसं पिपास् एताविति। एवं जनम् औजिहताम्। सुशब्दपाठे एतौ सुमित्रेति पाठः। एतौ सामित्रेति स्थाब्दो निपातः पादपूरणार्थः॥

६९-अजिबहत् तं जनको धनुस् तद् 'येनाऽर्दिदर् दैत्य-पुरं पिनाकी', ॥ जिज्ञासमानो वलमेस्य बाह्वोर्. हसन्नेभाङ्गीद् रघु-नन्दनस् तत्.॥ ४२॥

अजिग्रहदित्यादि—येन धनुषा देखपुरं पिनाकी महादेव आर्दिदत् हिंसि-तवान् । अर्देः स्वार्थिकण्यन्तात् चिक्षः । '२१७६। अजादेर्द्वितीयस्य ।७।१।२।'इति दिशब्दो द्विरुच्यते । रेफस्य प्रतिषेधः।तस्तुनुः तं रामं जनकः अजिग्रहत् योधितवान्।

१—नृ-सिंदावित्युपमान-पूर्वपदः कर्मधारय-समासस्तत्रोदाहरणं समास-कुसुमावल्याम् '—रामोऽयं पुरुष-व्यात्रः संदृतः क्रिपि-कुञ्जरेः ॥ हनिष्यति वलाद् युद्धे रावण-राक्षस-र्वमम् १७ ' खुरं चरपदे व्यात्र-पुन्नन र्यम-कुन्नरा ॥ १२०५ ऽऽथा पुनि क्रेक्षाऽर्थनोचरा शिंत ना० अ०

अनेन धनुषा त्रिपुरं दग्धमिति । अहेर्हेतुमण्यन्ताबिक णिलोपः । '२३१४। णोचक्-।७।४।१।' इति हस्तः । सन्वज्ञावादित्वम् । अहेश्च बुख्धर्यत्वात् । '५४०। गतिबुद्धि--।१।४।५२।' इत्यादिना रामस्य कर्मसंज्ञा । अस्य रामस्य बाह्वोर्भुजयो-बेलं जिज्ञासमानो जनकः ॥ एवंभूतं धनुः हसन् सम्यमानो रघुनन्दनो रामः अभाङ्कीत् भग्नवान् । भक्षेर्लुकि सिचि हलन्तलक्षणा वृद्धिः । तत्र हि हल्-ग्रहणं समुदायगतिपस्यर्थभित्युक्तम् ॥

> ७०-ततो नदीःणान् पथिकान् गिरिःज्ञा-नांह्वायकान् भूमि-पतेरंयोध्याम् ॥ दित्सुः सुतां योधःहरैस् तुरङ्गेर् व्यसर्जयन् मैथिल-मर्त्य-मुख्यः.॥ ४३॥

तत इत्यादि—धनुर्भेङ्गादनन्तरं महानयमिति ज्ञात्वा जनकः सुतां दृहितरं दित्सुः दातुमिच्छः । ददातेः। '२६२३। सनि मी-मा-।७।४।५४।' इत्यादिना अच इसु । द्विवेचनम् । '२६२०। अत्र लोप-।७।४।४८।' इसम्यासलोपः । '२३२७। सः सि–७।४।७९।' इति तत्वम् । '३१४८। सनाशंस भिक्ष उः । ३।२। १६८।' भूमिपतेर्दशरथस आह्वायकान् आह्वयन्ति आकारयन्तीति कर्तरि ण्वुस । '२०६१। आतो युक्-।७।३।३३।' कुष्पयोगे भूमिपतेः कर्मणि पद्यी। तान् अयोध्यां व्यसर्जयत् विसर्जितदान् । विपूर्वस्य सुजेईतुमण्यन्तस्य लङि रूपम् । गत्यर्थस्वात् द्विकर्मकता । नचां स्नान्तीति नदीष्णाः । '२९१६। सुपि स्थः।३।२। था' योगविभागात्कः । '२३७२। आतो स्रोपः-।६।४।६४।' । '३०८२। नि-नर्दा-भ्यां स्नाते:-।८।३।८९।' इति पत्वम् । नदीं तरीतुं कुशलानिसर्थः । पथिकान् पथि कुशलान् । '१८६३। तत्र कुशलः पथः ।५।२।६३।' इति ठकु । गिरिज्ञान्। यथाप्रदेशं गिरिज्ञान् । '२८९७। इगुपध-।३।३।३३५।' इत्यादिना कः । तुरङ्गेः अक्षैः करणभूतैः । युध्यन्त इति योघाः । पचाद्यच् । तानाहर्तुं क्षमैः । '२९२४। वयसि च ।३।२।१०।' इत्यच् । 'हसिमृश्रिण्वामिद्मिल्पूधूर्विभ्यसान्' इत्यौणादि-कस्तन् । स्त्रियन्ते प्राणिनोऽस्मिश्चिति मर्खा भूळींकः । तत्र भवा मर्खा मनुष्याः । दिगादेशकृतिगणस्वात् यद् । आकृतिगणस्वस्य छिङ्गं देवमनुष्यपुरुपपुरुमंसँभ्य इति निर्देशः। मुखमेव मुख्यः प्रधानम् । '२०५८। शास्त्रादिभ्यो यत्।५।३।१०३।'। मर्खानां मुख्यो मर्खमुख्यः । मैथिछश्रासौ मर्खमुख्यश्चेति विरोवणसमासः । जनक इत्यर्थः ॥

> ७१-क्षिप्रं ततों ऽध्वन्य-तुरङ्ग-यायी यविष्ठ-वद् वृद्ध-तमो ऽपि राजा ॥ आख्यायकेभ्यः श्रुत-सूनु-वृत्ति-र्र-ग्टान-यानो मिथिलामंगच्छत्.॥ ४४॥

> ७२-वृन्दिष्ठमांचींद् वसुधाऽधिपानां तं प्रेष्ठमेतं गुरु-वद् गरिष्ठम् ॥ सदृङ्-महान्तं सुकृताऽधिवासं वंहिष्ठ-कीर्ति यशसा वरिष्ठम् ॥ ४५ ॥

वृत्तिद्षुसित्यादि — तं राजानमेतमायान्तं जनक आर्चीत् पूजितवान् । अर्चेकुंिङ रूपम् । वृत्तिद्षं वृन्दारकतमम् । प्रशस्ततममित्यर्थः । केषां वसुधाधिपानां
पृथ्वीपतीनाम् । प्रेष्टं प्रियतमम् । गुरुवत् गुरुणा तुल्यं वर्तमानं गरिष्टम् गुरुतमम् । सदक् समानान्ययोश्चेत्युपसंख्यानाद् दशेः किष् । रूढिशब्दश्चायम् । नात्र
दर्शनिक्रया विद्यते । अभिजनादिभिस्तुल्यो जनक इत्यर्थः । महान्तं महानुमावं
सदशां मध्ये महान्तम् । सुकृताधिवासं सुकृतनिलयम् । अधिवसत्यस्मिन्निति
अधिकरणे घत्र । बंहिष्ठा बहुलतमा कीर्तियस्य स बंहिष्ठ-कीर्तिः । यशसा वरिष्ठं
गुरुतमम् । अत्र वृन्दारकप्रियगुरुबहुलोङ्णामिष्ठनि यथासंख्यं '२०१६ ।
प्रियस्थिर-।६।४।५५०। इत्यादिना वृन्दप्रगर्वहवर इत्यते आदेशा भवन्ति ॥

७१-त्रिःवैर्ग-पारीणर्मसौ भवन्त-र्मध्यासयन्नोसनमेकप्रिनद्रः॥

१—'११५७। क्षेपिछ-क्षोदिछ-**प्रेष्ठ-चरिछ-**स्वविष्ठ-**बंहिछाः**॥ क्षित्र-क्षुद्राऽभीष्सित-पृथु-पीवर-बहुल-प्रकर्पाऽयाः॥११५८। साधिछ-द्राधिछ-स्पेष्ठ-गरिछ-ह्यसिछ-**दृत्विछाः।** बाठ-व्यायत-बहु-गुरु वामन रि ना० अ० २ त्रि-खर्गो धर्मकामाऽसेंग्र, चत्र्-चर्ग सामोछ-कै ७६६ स-वर्टेस् तैश्र ।'

विवेक-दृश्व-त्वर्मगात् सुराणां, तं मैथिलो वाक्यमिदं बभाषे.॥ ४६॥

त्रिवर्गेत्यादि—तं दशरथं मैथिलो जनकः वानयमिदं बथापे । त्रवीत्यर्थमहणान् द्विकर्यकता । किं तद्वानयमित्याह—असाविन्द्रो भवन्तम् एकासनमध्यासयन् आरोपयन् विवेकदश्यत्वमगादिति संबन्धः। आसनस्य '५४२। अधिशीङ्191818६।' इत्यादिना अधिकरणे कर्मसंज्ञा । भवन्तमिति '५४०। गति—बुद्धि—
19181५२' इत्यादिना अस्तरण्यन्तावस्थायामकर्मकत्वात्। पारंगामीत्यस्मिन्वाक्ये
'१८१२। अवार-पार—१५१२।१९।१इत्यादिना पारशब्दात् खः। तत्र विगृहीतविपर्यस्त्रमहणात् । तिवर्गस्य धर्मार्थकामस्य पारीणमिति पष्टीसमासः । त्रिवर्गपारीणं
भवन्तम् । सुराणां मध्ये स एवको विवेकदश्यत्वं विवेकज्ञतामगात् । '२४५८।
इणो गा छुङि ।२१४१४५।'। '२२२३। गाति-स्था—।२१४१७०।' इत्यादिना सिचो
छुक् । दिवेकं दृष्टवानिति दृशेः कनिष् ॥

७४-हिरण्मयी साल-लतेत्र जङ्गमा च्युता दिवः स्थास्त्रुरिवाऽचिर-प्रभा ॥ शशाङ्क-कान्तेरेधिदेवताऽऽकृतिः सुतौ ददे तस्य सुताय मैथिली.॥ ४७ ॥

हिरणमयीत्यादि — तस दश्यस्य सुताय रामाय । स्यत इति सुतः । '१००७। पु प्रस्वेष्वयंयोः' इत्यस्मात् कर्मणि निष्ठा । सुता मेथिली सीता द्दे जनकेनेत्यर्थात्। कर्मणि लिह् । मेथिलस्यापत्यं '१०९५। अत इत्र ।४।१।९५।' तद्वन्तान् '५२०। इतो मनुष्य-जातेः ।४।१।६५।' इति क्षीप् । रामस्य ज्येष्टत्वात्तस्य किवना परिणय उक्तः न रोषाणास् । तेन अन्या अपि तदैव दुहितरो दत्ताः । हिरण्यविकार इति मयदि '११४५। दाण्डिनायन—।६।४।१७७१ 'ह्लादिना यलोपनिपातनम् । जंगमा संचारिणी नतु स्थावरा। अलर्थं गच्छतीति यक्ति '२६४३।नुगतः—।७।४।८५।' इति नृक् । यङ्कतात्पचाद्यचि '२६५०। यङोऽचि च ।२।४।७४।' इति यङो लुक् । च्युता दिवः आकाशात्पतिता । अचिरमभेव विद्यदिव तेजस्तित्वात् तन्वीत्वाच । किन्तु स्थासुरचञ्चला । सा तु चञ्चलेति व्यतिरेकः । '५२१। जङ्कतः ।४।१।६६।' इति अक् न भवति क्रियाशब्दवात्। तत्र सनुष्यजातेरिति वर्तते। शशाङ्कानते- र्याधिदेवता अधिष्टात्री देवता तस्या आकृतिर्यस्यः।सौम्यत्वात् । आक्रयते अनये- स्याकृतिः संस्थानम् । '३१८८। अकर्तरि च कारके—।३।३।१९।' इति स्थियां किन् ॥

१—'आत्मःजस् तनयः सुनः सुतः पुत्रसः, स्त्रियां त्वैमी ॥५९१। आहुर् दुहितरं सर्वे ऽगस्य तोक तयो समे इति सर्वत्र ना० अ०

७५-लब्धा ततो विश्वजनीन-वृत्तिस्-तामात्मनीनामुद्वोढ रामः ॥ सद्-रत्न-मुक्ता-फल-भर्म-शोभां संबंहयन्तीं रघु-वर्ग्य-लक्ष्मीम्, ॥ ४८॥

हन्धासित्यादि—ततो दानानन्तरम् हन्धां तामात्मनीनाम् आत्मने हिताम्। १६७०। आत्मन्विश्व-।५।१।९। दिति खः। रामः उत्वोह । वहेः स्वरितेस्वात्कर्तुः
क्रियाफलिवक्षया तङ्ग्विश्वजनीना विश्वजनाय हिता वृत्तिः प्रवृत्तिर्यस्य रामस्य सः
पूर्ववत् सः। सती उत्कृष्टा रलादिशोभा यस्याः। तैरलंकृतत्वात्।तां सद्वसुक्ताफलभर्मशोभाम् । भर्म स्वर्णम्। सर्वधानुभ्यो मनिन्। भर्मभूषाम् दिति पाठान्तरम्।
सद्वलादिभूषा अलंकारो यस्या इति योज्यम्। '३२८०। गुरोश्च हलः ।३।३।१०३।'
इत्यकारः। संबंहयन्तीं संबहुलामतिस्थिरां कुर्वाणाम्। वहुलशब्दात् 'तत्करोति—'
इति णिचि इष्टवज्ञावात् '२०१६। प्रिय-स्थिर—।६।४।१५७।' इत्यादिना बंहादेशः।
पश्चात्तवन्तस्य संपूर्वस्य साधनेन योगः। क्रामित्याह—रशुवर्यलक्ष्मीमिति । रशुवर्गे
भवां विभूतिम्। '१४४२। वर्गान्ताच ।४।३।६३।' इत्यनुवृत्तौ '१४४३। अशब्दे
यत्स्वावन्यतस्याम् ।४।३।६४।' इति यत् ॥

७६-सु-प्रातमीसादित-संमैदं तद् वन्दारुभिः संस्तुतमेन्ययोध्यम् ॥ अश्वीय-राजन्यक-होस्तिकाऽऽह्य-भेगात् स-राजं बलमेध्वनीनैस्.॥ ४९॥

सुप्रातेति—विवाहं निर्वर्तं प्रभाते अयोध्याभिमुखं तद्वछं द्वारथस्यागात् गतवत् । सुप्रातं निरुपद्ववत्वात् । शोभनं प्रातर्दिनमुखं यस्य बलस्य । '८६०। सु-प्रात-सुश्व-। पाष्ठ । १९६०। इत्यादिना समासान्तष्टिलोपश्च निपालते । आसादितसंमदं प्राप्तहर्षम् । '३२४५। प्रमद्-संमदौ हर्षे ।३।३।६८।' इति निपातनम् । वन्दारुभिः संस्तुतं कृतस्वम् । अभ्ययोध्यम् अयोध्याभिमुखम् । '६६८। लक्षणेनाऽभि-प्र-ती आभिमुख्ये ।२।१।१४' इति अव्ययीभावः । अश्वानां समूहो अश्वीयम् । '१२५७। वेशाश्वाभ्यां यञ्छो—।४।२।४८।' इति छः। राजन्यानां क्षत्रियाणां समू-

१— '९८० । स्वर्ण स्रवर्ण कनकं हिरण्यं हेम हाटकम् । तपनीयं शातकुम्भं गार्क्षयं मर्म कर्त्रुरम् ॥' इति ना० अ०।२— 'सुत् प्रीतिः प्रमत् हर्षः प्रमीदाऽऽमोद-संमद्राः॥ १४७। स्वादीनन्दश्रीनन्दः शर्म-शात-सुखानि च.।' १— '८१३। वृन्दे त्वेश्वीयमार्थ-वत् ॥' ४— '७६९। अथ राजकम् । राजन्यकं च नृपति-क्षत्रियाणां गणे क्रमात्॥' ५ ८०० हास्तिक गजता वृन्दे ५ ७८२ ऽध्वन्य पाय प्रिक श्विप

हो राजन्यकम् । '१२४६। गोत्रोक्ष-।४।२।३९।' इस्राद्दिना वृज् । 'प्रकृत्याके रा-जन्यमनुष्ययुवानः' इति प्रकृतिभावादपत्यकारछोपो न भवति । इस्तिनां समू-हो हास्तिकम् । '१२५६। अचित्त-हस्ति-।४।२।४७।' इति उक् ।एषां सेनाङ्गत्वात् इन्द्र एकवद्भावः । तेनाक्यमुपचितमिति तृतीयेति योगविभागात् समासः। सह राज्ञेति विगृद्ध साकस्यवचने योगपचे वाव्ययीभावः। '६६०। अव्ययीभावे चा-काले-।६।३।८९।' इति स-भावः। '६७८। अनश्च-।५।४।१०८।' इति टच् समा-सानतः । अध्वनीनमध्वानमलंगासीति '३८९७। अध्वनो यत्-स्तौ ।५।२।१६।' । '१६७९। आत्माध्वानो स्त्रे ।६।४।१६९।' इति प्रकृतिस्रावः॥

> ७७—विजैङ्कटो वक्षसि बाण-पाणिः संपन्न-ताल-द्वयसः पुरस्तात्॥ भीष्मो धनुष्मानुपजान्वरित-रैति स्म रामः पथि जामदश्यः॥ ५०॥

विशक्कटेल्यादि—एवमस्य गच्छतः पथि मार्गे ! सप्तम्यां '३६८। मस्य टेलेंपः ।७।१।८८।' पुरस्ताद्यतः । '१९७६। अस्ताति च ।५।३।४०।' इति पूर्वस्य पुरादेशः । रामो जामदृश्यः । जमदृशेरपत्यं रामोऽयम् । गर्गादिपाठायत् । स ऐति सा आगतवान् । आङ्पूर्वादिणो छद्र । '७३। एत्येषत्यूरसु ।६।१।८९।' इति चृद्धिः । विशक्कटो वक्षसि विशाङ उरसि ।'१८२९। वेः शालच्छक्कटचो ।५।२।२८।' इति शक्कटच् । वाणः पाणावस्येति बाणपाणिः। 'प्रहरणार्थेभ्य' इत्यादिना सप्तम्यन्त-स्य प्रतिपातः। संपन्नो निष्पन्नो यस्तालवृक्षः स प्रमाणं यस्य स तथोक्तः। '१८६८। प्रमाणे ह्यसच्—१५।२।३७।' भीयते अस्मादिति भीष्मः । 'मियः पुग्वा' इति जोणादिको मनप्रत्ययः । वा पुगागमश्च । '१९७३। भीमादयोऽपादाने ।३।४।७४।' इत्यपादाने साधः । धनुष्मान् बनुषा युक्तः । संसर्गे मतुष् । जानुनोः समिष्मुप्तानु । सामिष्येऽव्ययीभावः । उपजानु अर्लिर्थस्य स तथोक्तः प्रलख्यवाहुरित्यर्थः ॥

७८-उच्चैरसौ राघवमाह्नतेवं घनुः स-वाणं कुरु, माऽतियासीः.॥ पराक्रम-ज्ञः प्रिय-सन्ततिस् तं नम्नः क्षितीन्द्रो ऽनुनिनीषुर्रूचे.॥ ५१॥

उच्चेरित्यादि - उच्चेर्महता ध्वनिना राघवं दाशर्श्य एवं वध्यमाणमाह्नस

१—'११०६ । विशङ्करं पशु गृहद् विशासं पशुलं महत्।'इति सर्वत्र ना० अ०। २—'भूम-निन्दा-प्रशंसा-सु निल-योगेऽति—शायने ॥ संसमें ऽस्ति-विवक्षायां भवन्ति मतुबास्य १ प्रति वै० म० ३ 'रामम्' प्रति वा मन्तित्पाठ आहृतवान्। '२७०४। स्पर्धायामाङः । १।३।३१।' इलात्मनेपदम् । '२६९६। आत्मनेपदेप्वन्यतरस्याम्।२।४।४४।' इति च्लेरङ् । धनुः सवाणं कुरु । धनुषि बाणमारोप्य युद्धाय सजीभवेल्यथः । मातियासीः मातिकम्य गमनं कार्षाः । यातेमाङि लुङ् । अडभावः। '२३७७। यम-रस-नमातां सका।०।२।०३।' इति इद् ।'
'२२६६। इट ईटि—।८।२।२८।' इति सिचो छोपः । अथ क्षितीन्द्रो दशरथः तमूचे ।
'२४५३। त्रुवो विचः ।२।४।५४।' । आदेशस्य स्थानिवद्धावेन कर्तुः कियाफलविवक्षायां तक् न। वचेः परस्पेपदित्वात्। '२४०९। विचस्वपि—।६।१।१५।' इत्यादिना
संप्रसारणम् । पराकमज्ञः यतसस्य पराकमं जानाति राजा । प्रियसन्तिः प्रिया
सन्तितर्थस्य । रामे ध्यापादिते मा भृत्सन्तानविच्छेद इति नम्नः प्रणतो भूत्वा
अनुनिनीषुः अनुनेतुमिच्छुः ॥

तदनुनयमाह—

७९-अनेक-शो निर्जित-राजकंस् त्वं, पितृनंताप्सीर् नृप-रक्त-तोयैः,॥ संक्षिप्य संरम्भमं-सद्-विपक्षं, का ऽऽस्था ऽर्भके ऽस्मिस्तंव राम! रामे. ५२

अनेकहा इत्यादि संरम्भं कोधं संक्षिण्य उपसंहर । क्षिपेः लोटि मध्य-मैकवचने रूपम् । इयन् । एकमेकिमिति विगृद्ध । '२११०। सङ्क्ष्यैकवचनाच-।५।४।४३।' इति शस् । पश्चाष्ठ्यसमासः । अनेकशोऽनेकप्रकारमिति कियावि-शेषणमेतत् । निर्जितं पराजितं राजकं राज्ञां समूहो चेन स निर्जितराजकः । '१२४६। गोत्रोक्ष-।४।२।३९।' इत्यादिना तुच् । त्वं पुनः पितृनताप्सीः प्रीणि-तवानित । कै:-नृपरकतोयैः । '१२७१। तृप प्रीणने ।' इत्यसाछुङ् । सिच् । हलन्तलक्षणा वृद्धिः । असद्विपक्षम् असन्नविद्यमानो विपक्षो यसिन् संरम्भे । निर्जितराजकत्वात् । रामो विपक्ष इति चेदाह-कास्थार्भकेऽस्मित्तव राम रामे । हे परशुराम अभेके बालके रामे तव का आस्था क आदरोऽस्ति । नैवेत्यभिष्रायः ॥

> ८०-अजीगणद् दाशरथं न वाक्यं यदा स द्पेण, तदा कुमारः॥ धनुर् व्यकाक्षीद् गुरु-बाण-गर्भ, विजितांश्चे तस्य.

181315२०1' इत्यण्। वाक्यं वचनम्। यदा द्षेण मदेन हेतुना स जामदइयः नाजीगणत् न गणितवान्। '१९९६। गण संख्याने।' इत्यस्यादनतत्वात्त
वृद्धिः। '२३१५। चिक्व ।६१९११।' इति द्विवेचनम्। '२५७३। ई च गणः।
10181९७।' इति अभ्यासस्येकारः। तदा कुमारो रामो धनुव्येकाक्षींत् आकुहवान्। '१०५९। कुष आकर्षणे।' स्पृशसृशेत्यादिनोपसंख्यानेन सिचि पक्षे
रूपम्। इलन्तलक्षणा वृद्धिः। '२९५। प-ढोः कः सि ।८१२।४१।' इति
कत्वम्। इतदारकर्मापि पुत्रः पितरि जीवति कुमार इति व्यपदिश्यते।
गर्भयतीति गर्भः। गुरुवीणो गर्भो यस्य धनुषः। लोकांश्च स्वप्रभावाद्विजितान्। तस्य परशुरामस्य। अलावीत् लिश्चवान्। लुनातेलुं सिचि वृद्धौ
रूपम्। समुच्लियन्तामस्य लोका इति अमोधमस्यं मुक्तवानिसर्थः। ततःप्रभृति
तस्य सर्वं तेजोऽपहृतम्॥

८१-जिते नृगाऽरौ, सुमनीभवन्ति शब्दायमानान्यं-शनैरं-शङ्कम् ॥ वृद्धस्य राज्ञो ऽनुमते बलानि जगाहिरे ऽनेक-मुखानि मार्गान्.॥ ५४॥

जित इत्यादि—जिते नृपारो । परशुरामे बलानि सैन्यानि मार्गान् पथः । जगाहिरे अवष्टव्यवन्ति । जुद्धस्य राज्ञो दशरथस्यानुमते सति गच्छतेति । जामद्व्यसंरम्भादसुमनांसि सुमनांसि सन्ति सुमनीभवन्ति बलानि । '२१२१। अरुम्नि-।५१४।५१।' इत्यादिना च्वावन्त्यस्य लोपे '२११८। अस्य च्वा । । । । । । । इतित्वे रूपम् । शब्दायमानानि । अशनेः सुष्ठु शब्दं कुर्वाणानि । एवं जित-स्वथा जितो नृपारिरिति । '२६७३। शब्द-वैर-।३।११७।' इत्यादिना क्यङ् । अशक्तं निर्भयं जगाहिर इति क्रियाविद्योषणम् । अनेकमुखानि पृथग्भृतानि पूर्वं भयेन बहुर्छामूतत्वादनीकानां बहुवचनमिति ॥

८२-अथ पुँरु-जन-योगान् नेदयद् दूर-संस्थं दवयदंति-रयेण प्राप्तमुंचीं-विभागम् ॥ क्कम-रहितमंचेतन् नीरजीकारित-क्ष्मां, वलमुंपहित-शोभां तूर्णमायादंयोध्याम् ॥५५॥

१— 'प्रमूतं प्रचुरं प्राज्यमेदअं बहुलं बहु ॥ ११०९। पुरुह्यः पुरु भ्विष्टं स्कारं भूयश् च भूरि च. ।' २— 'ऽध शीष्टं स्विरितं लघु क्षिप्रमेरं हुतम् ॥ ७३। सत्वरं चपलं तूर्णमे-विलम्बतमाशु च. ॥' ३— पचेऽस्मिन्द्रतं मालिनी । तल्रक्षणम्—वाम-मागीय पिद्वेशितवमाह्य(२६)-पष म्।

The state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the state of the s

अधेरयादि अधेलानन्तर्ये । वर्लं दाशरथस् । तूर्णं शीव्रम् । '३०६९ः रुध्यमत्वर-।७१२१२८।' इत्यादिना पक्षे इदभानः । '२६५४। ज्वर-स्वर-।६।४।२०।' इति वकारोपधयोरूर् । '३०१६ । र-दास्याम्-।८।२।४२।' इति नत्वम् । अयोध्यामायात् आगतम् । आङ्पूर्वाधातेर्छक्टि रूपम् । पुरुर्महान् वेगो जवः तेन योगात्। पूर्वते वर्धते इति पुरः । 'कुर्अश्च' इत्यिष्टहत्य 'पृ-भिदि-व्यथि-' इत्यादिना कुप्रत्ययः । दूरसंस्थं दूरे सन्तिष्टत इति कः । उर्वी-विभागम् । नेदयन् अन्तिकं कुर्वन् । अन्तिकशब्दात् समीपवाचिनः तत्करोतीति णिच् । इष्टवज्ञावास् '२०१४। अन्तिक-बाढयोनैदसाधौ ।५।३।६३।' इति नेदादेशः पश्चाह्नह । शत्तरि शप् अयादेशः । प्राप्तं विषयीकृतं चोर्जीवि-भागं भूविभागम् । अतिरयेण अतिथेगेन । दवयत् दूरीकुर्वत् पश्चाद्धा-गेन । दूरशञ्दात् पूर्ववण्णिचि इष्टवद्धावे च '२५६५। स्थूल-दूर–।६।४।-९५६।' इलादिना यणादिपरछोषः प्वस्य च गुणः । पश्चात्तथा एव छडादयः । इमरहितम् अपगतश्रमम् । अचेतत् कियद्रमागतोऽहमित्यबुध्यमानम् । '३९। चितीं संज्ञाने ।' इत्येतस्य शति रूपम् । अनीरजा नीरजाः कारि-तेति '२१२१। अहर्मन-।५।४१।५१।' इत्यादिना च्वावन्यलोपः । '२११८। अस्य च्वौ ।७।९।३२।' इतीस्वम् । नीरजीकारिता ६मा भूमिर्यस्यामयोध्यायां ताम् । सिक्तसंसृष्टभूतलामित्यर्थः । उपहितशोभाम् अत्रध्वजपताकाभिरारोपि-तशोभाम् ॥

इति श्री-जयमङ्गलाऽऽस्यया व्यास्यया समलंकते श्री-भट्टिकाटये-प्रथमे प्रकीर्ण-काण्डे लक्षण-रूपे द्वितीयः परिच्छेदः (वर्गः), तथा लक्ष्य-रूपे कथानके श्री-सीता-परिणयो नाम द्वितीयः सर्गः पर्यविसितः।

> तृतीयः सर्गः— ८२-वधेन संख्ये पिशिताऽशनानां क्षत्राऽन्तकस्यां ऽभिभवेन चैव॥ आद्यंभविष्णुर् यशसा कुमारः प्रियंभविष्णुर् न स यस्य नांऽऽसीत्.॥ १॥

वधनेत्यादि'—संख्ये संमामे पिशिताशनानां राक्षसानाम्। पिशितं मांसम् अशनं येषामिति। तेषां वधेन हननेन। '३२५३। हनश्च वधः ।३।३।७६।' इति अप् प्रस्ये वधादेशः। इत्ययोगे कमेणि पष्टी। क्षत्रान्तकस्य परशुरामस्य। अभिभवेन पराजयेन च '३२३२। ऋदोरप् ।३।३।५७।' चैवशब्दो निपातंसमु-दायः समुच्यये। तेन हेतुमूतेन। यशसा आढधंभविष्णुः। अनाद्य आढधो मूतः। '२९७२। कर्तरि मुव-।३।२।५७।' इति सिष्णुच्। '२९४२। कर्हदिषत्-।६।

३। ६ ७। 'इति सुम्। कुमारो यस स प्रियंभविष्णुः । यसापि प्राक् प्रियो न जातः पश्चाद्पि तथैव न प्रियो भूतः स नासीत् न वभूव ॥

८४-ततः सुचेतीकृत-पौर-भृत्यो
'राज्ये ऽभिषेक्ष्ये सुतीमित्यं-नीचैः ॥
आघोषयन् भूमि-पतिः समस्तं
भूयोऽपि लोकं सुमनीचकारः ॥ २ ॥

तत इत्यादि—ततः प्रियंभविष्णुताया अनन्तरं भूमिपतिदैशस्थो होकं सुमनीचकार। किमयं सम्यक् पालयिष्यति न वेति असुचेतसः पौरा भृत्याश्च जाताः ते सम्यक्पालनात् सुचेतसः कृता धेन स सुचेतीकृतपौरभृत्यः। भूयोऽपि पुनरिप होकं समस्तं सुमनीचकार। कथिमत्याह—राज्ये राजकर्मणि पालनलक्षणे सुतं रामं अभिषेक्ष्ये तदिभवेकं करिष्यामीति। सिचेक्सयपित्वा-तङ्। अनीचेर्महता ध्वनिना। आधोषयन् घोषणां कारयन्। सुचेतीसुमनीक्ष-वही '२१२१। अक्मन—।५।४।४९।' इत्यादिना साधू॥

८५-आदिक्षद्यित्तात-कृशानु-कर्त्यं सिंहासनं तस्य स-पादःपीठम् ॥ सन्तप्त-चामीकर-वर्त्यु-वज्रं विभाग-विन्यस्त-महार्घ-रत्नम्, ॥ ३॥

आदिश्विदित्यादि—तस्य रामस्य सिंहासनमादिश्चत् आदिष्टवान् एवंविधं कारयेति । दिशेः स्वरितेतो लुङि '२३३६। शल इगुपधात्–१३११४५।' इस्रादि-ना च्लेः वसः । अकर्तृगामिकियाफल्कात्तिप् । आदीसक्वकानुकर्षं ज्वलितामि-तुर्यम् । तस्य कारणमाह—सन्तसचामीकरवर्णाने उत्तससुवर्णवर्णाने वञ्चाणि यसिन् । तथा विभागेषु विन्यस्तानि अतिमहार्थाणे रत्नानि पञ्चरागादीनि यत्र । सपादपीठं सह पादपीठेन ॥

> ८६-प्रास्थापयत् पूग-कृतान् स्व-पोषं पुष्टान् प्रयहाद् दृढ-गात्र-बन्धान् ॥ स-भर्म-कुम्भान् पुरुषान् समन्तात् पत्काषिणस् तीर्थ-जला्ऽर्थमां छ. ॥ ४ ॥

प्रास्थेत्यादि—तीर्थनलार्थं पुरुषान् प्रयतात् आदरेण । समन्तात् सर्वासु दिश्च । आञु शीव्रं प्रास्थापयत् प्राहिणोत् । प्रपूर्वस्तिष्ठतिर्गमने वर्तते तस्य हेतुम-ण्णयन्तस्य लक्षिरूपम् । पूगकृतान् अपूगाः पूगाः कृता इति । 'श्रेण्यादिषु च्यार्थ-

श्र टीकनं (टिप्पणं) नोत्सहे कर्तुं प्रवासे नायकस्य मे ॥

वचनम्' इति समासः । सङ्घीकृतानित्यर्थः । स्वपोवंपुष्टान् । '६३६१। से पुषः । ११४१४०' इति णमुद्ध । '७८३। अमेवाव्ययेन ।२।२।२०।' इति समासः यथाविध्यनुप्रयोगश्च । दढो गात्रबन्धो येषां तान् । संयतकायान् । महाभारो द्वहनक्षमत्वात् सममेकुम्भान् ससुवर्णकळशान् । पत्काषिणः । पादौ कषित्ं हिंसितुं शीळं येषामिति । '२९८८। सुप्यजातौ णिनिः—। ३।३।७७।' । '९९२; हिमकाषिहतिपु च ।६।३।५४।' इति पदादेशः । पदातीनित्यर्थः । आश्विति 'कृवापाजि—' हत्यादिना उण् ॥

८७-डक्षान् प्रचकुर् नगरस्य मार्गान्, ध्वजान् बवन्धुर्, मुमुचुः ख-घूपान्,॥ दिशश्चं पुष्पैश्चंकरुर् विचित्रै-रंथेंषु राज्ञा निपुणा नियुक्ताः॥ ५॥

उक्षानित्यादि — ये निपुणा अर्थेषु कार्येषु राज्ञा दशरथेन नियुक्ताः अधिकृतास्ते नगरस्य मार्गान् पथः । उक्षान् सेकवतः प्रचक्षः । उक्षणमुक्षा । १२८०।
गुरोश्च हलः ।३।३।१०३।' इत्यकारः । सा विद्यते येषापिति '१९३३। अर्शकादिस्योऽच् ।५।१।१२७।' '२२३७। इजादेश्च गुरुमतः—।३।१।१६।' इत्यादिनाः
आम्प्रस्यये प्रचकुरित्यनुप्रयोगो न घटते । '२२३९। ख्रञ्चानुप्रयुज्यते ।३।१।४०'
इत्यनुशब्दस्य व्यवहितनिवृत्त्यर्थत्वात् । ध्वजान् यवन्षुः उच्छ्रासितवन्तः। मुमुचुः खभूपान् आकाशे घटिकादिभिर्भूपान्मुमुचुः प्रमुक्तवन्तः। दिशश्च पुष्पेश्चकरः
छादितवन्तः । '१५०३। कृ विक्षेषे ।' इत्यस्य लिटि '२३८३। ऋच्छत्यृताम् ।७।
४।१९।' इति गुणः । विचिन्नैः नानाप्रकारेः ॥

८८-मातामहाऽऽवासमुंपेयिवांसं मोहार्द-पृष्ट्वा भरतं तदानीम् ॥ तत् केकथी सोढुर्म-शक्तुवाना ववार रामस्य वन-प्रयाणम्, ॥ ६ ॥

मातेत्यादि — तत्पूर्वोक्तमिपकसंविधानं सोहुमशक्नुवाना असहमाना केक-यी रामस्य वनप्रयाणं ववार प्रार्थितवती राज्ञ इस्तर्थात् । सहेः शक्नोतालुप-पदे '३१७७। शक-एप-।३।४।६५।' इस्तादिना तुमुन् । तत्र नजा शक्त्यर्थस्य प्रतिषेधेऽपि न दोषः प्रतिपेधस्य बहिरङ्गत्वात् । शक्नोतेः परस्पेपदित्वात् शानज् नास्ति । '३१०६। ताच्छील्यवयोवचन-।३।२।१२९।' इत्यादिना चानज्ञ । स्वादित्वाच्छः । '२७१। अचि श्रु-धातु-।६।४।७७।' इत्यादिना उवद् । किं कृत्वेस्याह तदानीं देश किमेन क्रियते न वेति

दशैयसाह

वासमिति

न भरत पृष्टवती

मातुः पिता मातामहः । '१२४२। पितृच्यः मातुल-।४।२।३६।' इत्यादिना ति-पातनात् डामहच् । आवासः निलयम् । आवसलस्मित्रिति अधिकरणे धन् । उपेयिवांसम् । '३०९८। उपेयिवाननाश्चानन्चानश्च ।३।२।१०९।' इत्यादिना निपातितः । मोहाद्ज्ञानात् । दूतप्रेषणेनाष्ट्रष्ट्वा । रामस्येति कर्तरि पष्टी । वनाय प्रयाणं गमनमिति । चतुर्थीति योगिवभागात् समासः । '५८५। गलर्थकर्मणि-।२।३।१२।' इत्यादिना चतुर्थी । परत्वात्कृञ्जक्षणया पथ्या भवितव्यमिति चेत् न । पुनिर्द्वितीयाग्रहणात्परामपि पष्टीं बाधित्वा द्वितीयेव यथा स्यादिति । यधेवं द्वितीयेव स्थात् न चतुर्थी । नेष दोषः । द्वितीयाग्रहणस्योपलक्षणार्थ-त्वात् । तथा च वृत्ताद्वभयमुक्तं—प्रामं गन्ता ग्रामाय गन्तेति ॥

> ८९–कर्णे-जपैर्राहित-राज्य-लोभा स्त्रैणेन नीता विकृतिं लघिम्ना॥ राम-प्रवासे व्यमृद्यन् न दोपं जनाऽपवादं स-नरेन्द्र-मृत्युम्.॥ ७॥

कर्ण इत्यादि — कर्णे जपन्ति कर्णेजपाः स्चकाः मन्धरादयः। '२९२७। स्तम्ब — कर्णथोः — ।३।२।१३। 'इत्यस्। '९७२। तत्पुरुषे कृति बहुलम् ।६।३।१४। 'इति सप्तम्या अलुक्। तराहितः आनायितो राज्यलोभो यस्याः सेवम्। स्रेणेन स्त्रिया अयम्। '१०७९। स्त्री-पुंसाभ्यां नल्-स्रजी — ।४।१।८७। 'इति नल्। लघो-र्मावो लिविमा। '१७८४। पृथ्वादि — ।५।१।१२२। 'इत्यादिना इमनिस्। टिलोपः। तेन विकृतिमन्यथात्वं नीता केकयी रामप्रवासे सति दोषं न व्यमृशत् नालो-चितवती। '१५९९। मृश आमर्शने। 'इति तौदादिकस्य लिक स्पम्। किंस्वरूपं दोषम् — जनापवादं लोकवेमुस्यम्। राज्याहों ज्येष्टः पुत्रोऽनया प्रवाजित इति। नरेन्द्रस्य दशरथस्य मृत्युना सह वर्तमानम्॥

९०-वसूनि देशांश्चं निवर्तियिष्यन् रामं नृपः संगिरमाण एव ॥ तया ऽवजज्ञे, भरताऽभिषेको विषाद-शङ्कश्चं मतौ निचस्ने.॥ ८॥

वस्नीत्यादि—रामं निवर्तयिष्यम् रामं निवर्तयितुं वस्नि इच्याणि देशांश्च सङ्गिरमाण एव प्रतिज्ञानान एव दास्यामीति नृपो राजा कैकेय्या तद्नङ्गीकरणाद्वज्ञचे अवज्ञातः। ज्ञा इत्ययं भातुरवप्नोंऽवज्ञाने वर्तते। तस्मात्कर्मणि
तिहः। '२३६३। गम-इन-१६१४९८।' इत्युपभालोपः। तत्र वृतेईतुमण्यन्तात् कियार्थोपपदे लद् । सङ्गिरणं च क्रिया। गिरेस्तौदादिकात् '२७२४। अवाद्यः। १।
३।५१।' इति अधिकृत्य '२७२५। समः प्रतिज्ञाने। १।३।५२।' इति तङ् । शानम्।
'२६९०। ऋत तत् । ७।१।१००।'। '३१०६। आने मुद्दा । ।।२।८२।' इतं चापर- मनुष्टितं तथा भरतो राज्येऽभिषिच्यतामिति भरताभिषेको मतौ मनसि निच-खे निखातः। कमीण लिह। '२६६६। गमहन-।६।४।९८।' इत्यादिना उपधा-लोपः। तथा विषादः शङ्कृरिव शल्यमिव निचले । ज्येष्टत्वात् नायं समभिषि-च्यत इति विषादः। संमामात्किल परिश्रान्तमानतं दशरथं केकथी परिचचार तैन परिनुष्टेनोक्तं किं ते दास्यामीति। सा प्राह यदार्थयिष्यते तदा यूयं दास्यथेति सा तदवसरं बुद्धा वरह्रयं प्रार्थितवती । एको रामस्य वनगमनं द्वितीयो राज्ये भरतोऽभिषच्यतामिति ॥

> ९१-ततः प्रविवाजियषुः कुमार-मीदिक्षदेस्यो ऽभिगमं वनाय ॥ सौमित्रि-सीताऽनुचरस्य राजा सुमन्त्र-नेत्रेण रथेन शोचन्. ॥ ९ ॥

तत इत्यादि — केकयीपार्थनानन्तरं राजा कुमारं रामं प्रविद्याजयिषुः प्रमजन्तमेनं प्रज्ञाजयितुमिच्छुः व्रजेईतुमण्ण्यन्तात्सन् । अस्य कुमारस्य । रथेन वना-िमममिमममम् । '३२३४।प्रह-वृ-द-निश्चि-गमश्च ।३।३।५८।' इत्य । आदि-ध्यत् आदिष्टवान् । अस्येति कर्तरि षष्ठी । वनायेति । '५८५। गत्यर्थकर्मणि—।२।३ ।३२। इति चतुर्थी । सीप्तित्रसीतानुचरस्य लक्ष्मणसीतासहायस्य । सुमित्राया अपत्यम् । बाह्मादित्वादित्य । सहचरत्वेनाम्यार्हेतत्वात् पूर्वनिपातः । अनु पश्चाच-रतीति अनुचरः । '२९३। मिश्चा-सेनादायेषु च ।३।२।१७।' इति चकारस्यानु-कसमुच्यार्थत्वात् दः । अनुचरश्चानुचरी च । '९३३। प्रमान् स्त्रिया ।१।२।६७।' तावनुचरो सीमित्रिसीते अनुचरौ सहायौ यस्य । कालापिकास्ततोऽन्यत्रापि पटन्ति अन्धिकरणोपपदे चरेष्ट इत्यर्थः । नीयतेऽनेनेति नेत्रं लोचनम् । '३१-६२। दास्रो—।३।२।१८२।' इत्यादिना हुन् । सुमन्त्रनामा स्थवाहको नेत्रामिव यस्य स्थस्य तहशात्तस्य प्रवृत्तेः । शोचन् परिदेवयमानो राजा ॥

९२-केचिन् निनिन्दुर् नृपर्म-प्रश्नान्तं, विचुकुशुः केचन साऽस्रमुंचैः,॥ जचुस् तथा ऽन्ये भरतस्य मायां, धिक् केकयीर्मिर्लंपरो जगाद.॥ १०॥

केचिदित्यादि—राज्ञा वनगमने समादिष्टे सति केचिळवा वृषं तिनिन्दुः कुल्सितवन्तः। '६८। णिदिं कुत्सायाम् ।' अप्रशान्तं वृद्धभावेऽपि स्नीवशम् । केचन केचित्सालं सवाष्पमुचैः सुष्ठ विचुकुशुः सुतरामाकन्दितवन्तः। तथान्ये भरतस्य मार्था शास्त्रमुचुः उक्तवन्तः। तत्कृतीयं प्रयोगो वेनात्मरक्षणार्थं माता-महिनवासे स्थित इति। अपरो धिक्षेक्यीं यथैवमनुष्टितिमिति जगान् गदितवान्। 'धिगुपर्यादिष्ठ तिष्ठा' इति विग्योगे द्वितीमा ॥



९३—'गतो वनं श्वो भवितेति रामः,' शोकेन देहे जनता ऽतिमात्रम्, ॥ धीरास् तु तत्र च्युत-मन्यवो ऽन्ये दधुः कुमाराऽनुगमे मनांसि.॥ ११॥

गत इत्यादि — श्र शागामिनि दिवसे वनं गतो रामो भवितेति तास्। जनता जनसमूहः । '१२५१। प्राम-जन-बन्ध-।४।२।१३।' इत्यादिना तल्। देहे दृग्धा । कर्मणि लिह । '२२६०। अत एकहल्-।६।४।१२०।'इत्येत्वाभ्यासलोपो। गत इति भूतकालः श्रोमिवेति भविष्यःकालेन संबध्यमानः साधः। '२८२४। धातु-संबन्धे प्रत्ययाः ।३।४।१।' इति । ये तु तत्र धीराः ते च्युतमन्यवो विगत-शोकाः सन्तः कुमारानुगमे कुमारत्य पश्चाद्रमननिमित्तं मनांसि दृष्ठः कृतवन्तः। राममनुव्रजाम इति । निमित्तात्कर्मसंयोगे सम्मीति । मनांसीति कर्मणा योगात्॥

९४-प्रस्थास्यमानार्चुपसेतुषस् तौ शोशुच्यमानानिदमूचतुस् तान्,॥ 'किं शोचतेहां ऽभ्युदये बतां ऽस्मान् नियोग-लाभेन पितुः कृता॒ऽर्थान्,॥ १२॥

प्रस्थेत्यादि — तो रामलक्ष्मणो प्रस्थात्यमानी गमिष्यन्तो । '२६८९। सम-व-प्र-वि-स्यः स्थः।११३१२२।' इति तक् । जनान् इदं वक्ष्यमाणमूचतुः उक्तवन्तो । भ्रुवीत्यर्थप्रहणात् वचेद्विंकमेकता । उपसेदुषस्तो होकितवतः जनान् । '३०९७। भाषायां सद्-वस—।३।२।१८०।' इत्यादिना क्रमुः। शोश्चच्यमानान् अत्यर्थ शोकं कुर्वतः । भृशार्थे यक् । किम्चतुरित्याह—किं शोचतेति । हे जनाः । कस्पादस्मान् शोचत परिदेवयध्वम्। विधावपूर्वार्थप्रकाशने लोटा इहाभ्युद्ये वतशब्दो विस्मये। तस्मिन् आश्चर्यभूते अभ्युद्ये वृद्धो सत्याम् । कुत इत्याह—पितुर्नियोगलाभेन वनगमनाज्ञालाभेन कृतार्थान् लक्ष्यप्रयोजनान् । कृतार्थरवादशोच्या वयमित्यर्थः॥

> ९५-असृष्ट यो, यश्चे भयेष्वरक्षीद्, यः सर्वदा ऽस्मानंपुपत् स्व-पोषम्,॥ महोपकारस्य किर्मस्ति तस्य तुच्छेन यानेन वनस्य मोक्षः,॥ १३॥

असृष्टेत्यादि — असष्ट जिततवान् । स्जेरैंवादिकसात्मनेपदित्वात् लुङि रूपम् । न तौदादिकस्य परसौपदित्वात् '२४०५।सजि-दशोः—।६।१।५८।'इसम् । यक्ष भयेषु सत्सु अरक्षीत् पालितवान् । '७०६। रक्ष पालने ।' इसस्य लुङि



रूपम् । यः सर्वदा सर्वकालम् । '१९६४। सर्वेकान्य-।५।३।१५।' इत्यादिना दाप्र-त्ययः । यश्चापुषत् पुष्टवान् । स्वपोषं धनेनास्मानपुषत् । पुषेर्लुङि रूपम् । १३३-

42

४३। पुपादि—।३।१।५५।' इसङ् । '३३३१ । स्वे पुपः ।३।४।४०।' इति णस्तः '७८३। अमैवाव्ययेन ।२।२।२०।' इति समासः ।'२८२७। यथाविध्यनुप्रयोगश्च

। ३। ४।४। 'तस्य पितुः संबन्धिनो महोपकारस्य किमस्ति मोक्षः प्रत्युपकारो नेवेति भावः । केनेत्याह-नुच्छेन असारेण वनस्य यातेन । यातेर्भावे स्प्रह । वनस्येति होषसामान्ये षष्टी । कुछक्षणायास्तु षष्ट्या गत्यर्थकर्मणि चतुर्थ्या बाध्यमानत्वात ॥

९६-विद्युत्-प्रणाशं स वरं प्रनष्टो, यद्वीर्ध्व-शोषं तृण-वद् विशुष्कः,॥ अर्थे दुरापे किमुत प्रवासे न शासने ऽवास्थित यो गुरूणाम्. ॥ १४ ॥

विद्युदित्यादि - अर्थे कार्यविशेषे दुरापेऽपि कुच्छ्माप्येऽपि । १३३०५। ईप-दुःसुषु । इ। १२६। ' इत्यादिना खल् । गुरूणां यच्छासनमादेशः तस्मिन् यो नावा-स्थित नावस्थितवान्। अवपूर्वातिष्ठतेर्छुङ्। '२६८९। समव-।१।३।२२।'इत्यादिना तङ् । २३८९। स्था-च्चोरिच ।१।२।१७। 'इति कित्वमित्वं च । '२३६९। हस्वा-दङ्गात् ।८।२।२७।' इति सिचो छोपः । स वरं विद्युत्मणाशं प्रनष्टः । विद्युदिवो-त्यत्यनन्तरमेव विनाशं गतः । ३३६६। उपमाने कर्मणि च ।३।४।४५।' इति चकारात् । '३३६४।कत्रींजींव-पुरुषयोः ।३।४।४३।' इत्यतः कर्तृशहणानुवृत्तीः कर्तृ-वाचिनि विद्युच्छब्द उपपदे णमुद्ध । '२२८७। उपसर्गादसमासे-।८।४।१४' इस्रा-दिना णत्वम्। यहेत्यथवा। स अध्वैशोषं कृणवहिञ्जव्यः ।३३६५। अध्वै शुषि-।३।४।४४। इसादिना णमुद्ध । उभयन्नामैवेसादिना समासः । '२८२७। यथा-विध्यनुप्रयोगश्च ।३।४।४। किमु अवासे किन्दुनः प्रवासविषये यच्छासनं तत्र ताबदनवस्थितस्य सतरामेव पूर्वोक्तं प्रयुज्यते ॥

९७-पौरा ! निवर्तध्वर्मिति न्यगादीत् , 'तातस्य शोकाऽपनुदा भवेत,॥ मा दर्शतांऽन्यं भरतं च मत्तो,' निवर्तर्येत्याह रथं स्म सूतम् ॥ १५ ॥

पौरा इत्यादि—हे पौराः ? यथागतं निवर्तध्वम् । विधौ लोद। इति तान् न्यगादीत् उक्तवान् रामः । गदेः '२२८९। अतो हलादेः ।७।२।७।' इति वृद्धिः । '२२६६। इट ईंटि ।८।२।२८।' इति सिचो छोपः । तातस्य पितुः । शोकापनुदाः शोकस्यापहर्तारो भवेत । तुन्दशोकयोरित्यादिना कः । भवतेर्विधौ प्रार्थनायां वा भरतं च मत्तो मत्त छिङ् । मध्यम ५३७' १३३७ प्रस्यवोत्तरपद्योश्र 43 ७२९८

मदादेशः । अन्यं भरतं सा दर्शत मा द्रष्टारः स्थ । अपि तु योऽहं स एव भरतः स च प्रतिष्टितः राज्यं पालयिष्यतीत्येव न्यगादीत् । दर्शमां ि लुङ् । '२२६९। इरितो वा ।३।१।५७।' इत्सङ् । '२४०६। इर-इशोऽङि गुणः ।७।४।१६।' निवर्तय रथमिति सूतं च सुमझमाह सा । '२७७८। लट्ट स्मे ।३।२।१९८।' इति लट्ट । '२४५० । ब्रुवः पञ्चानाम्—।३।४।८४।' इताहादेशः। तिपो णल् ॥

९८-ज्ञात्वेङ्गितैर् गत्वरतां जनाना-मेकां ज्ञयित्वा रजनीं स-पौरः॥ रक्षन् वने-वास-कृताद् भयात् तान् प्रातश् छलेनां ऽपजगाम रामः॥ १६॥

श्चात्वेत्यादि — निवर्तं ध्वासित्युक्ते थे तत्रानिष्ट्रताः तेषां जनानां रामो गत्व-रतां गमनशीलतां ज्ञात्वा । '३१४४। गत्वरश्च ।३।२।१६४।' इति निपातितः । तैरिङ्गितेरभिण्रायस् चकेश्चेष्टितः । इङ्गतेर्मावे निष्ठा । यनेवास इति सप्तमीति योगविभागात् समासः । '९७६। शय-वास-वासिषु ।६।३।१८।' इति विभावा-सप्तम्या अलुक् । तेन कृतात्तिहादिभयात् रक्षन् पाल्यम् तान् पौरान् सपौरः पौरः सह एकां रजनीं शयित्वा । '५५८। कालाध्वनोः—२।३।५।' इति द्वितीया। शयित्वेति '३३२२। न क्ता सेट् ।१।२।१८।' इति । कित्त्वप्रतिषेधात् गुणो सवति । प्रातः प्रातःकाले। छलेन सन्ध्यावन्दनादित्याजेन अपजगाम गतवान्॥

९९-अस्राक्ष्यं करुणं रुवन्तो,
मुहुर्मुहुर् न्यश्वसिषुः कवोष्णम्,॥
हा राम ! हा कष्टमिति बुवन्तः
पराङ्-मुखैस् ते न्यवृतन् मनोभिः.॥ १७॥

अस्तासुरित्यादि—ते पौरा राममपश्यन्तः । करुणं स्वन्तो विल्पन्तः । '११००। र शब्दे ।' इलस्य शति रूपम् ।असम् अश्व । अस्ताद्धः मुक्तवन्तः । स्जे-स्तौदादिकस्य परस्पेपदिनः सिचि '२४०५। स्विन्दशोः—।६।१।५८।' इत्यम् । एवन्तलक्षणा यृद्धिः । '३२८। चोः कुः ।८।२।३०।' । '१३६। खरि च ।८।४।५५।' ृति चर्त्वम् । मुहुर्मुहुः भूयोभूयः कवोष्णमीषदुष्णमन्तःसन्तापात् ।'१०३३। कवं चोष्णे ।६।३।१०७।' इति कोः कवादेशः । न्यश्वसिषुः । श्वसेर्लुङ् । '२२-९६। स्तो हलादे-९६। ह्यादिना श्वसेर्नुद्धिप्रतिषेधः । '२२८६। अतो हलादे-९६। ।।२।७।' इति विकरपस्य प्राप्तत्वात् । हा राम हा कष्टं कुष्ल्यमिति झवन्तः । पराक्ष्मुसैः येन गतो रामस्तेन गत्तमिनोमिरित्यंमूतैः । न्यवृतम् निवृत्तवन्तः । '२३४५। स्त्रचो लुक्ति ।१३।९१।' इति परसीपद्विकरपात् । स्वति वृत्तवन्तः ।

१००-सूतो ऽपि गङ्गा-सिल्लैः पवित्वा सहाऽऽश्वमात्मानर्मनत्प-मन्युः ॥ स-सीतयो राघवयोर्रधीयन् श्वसन् कदुष्णं पुरमाविवेश.॥ १८॥

स्ता इत्यादि स्तोऽपि सुमग्नः सहाश्वमश्वः सह। अनस्पमन्युः प्रवृद्धरोकः । राघवयोः रामलक्ष्मणयोः । '१८८। सरूपाणां—११।२।६४।' इत्येकशेषः।
ससीतयोः सीतासहितयोः । अधीयन् स्मरन् । '११२०। इक् स्मरणे ।' इत्यस्य
शति रूपम् । यणादेशः । '६१३। अधीगर्थ—।२।३।५२।' इति कर्मणि पष्टी ।
श्वसन् । कदुष्णं ईषदुष्णम् । '१०३३। कवं चोष्णे ।६।३।१०७।' इति चकारात्
कदादेशः । गङ्गातरास्त्रतिनिवृत्य पुरमयोध्यामाजगाम आगतवान् । गङ्गासिल्ङैः
आत्मानं वाह्यमाभ्यन्तरं च पवित्रीकृत्य । '३०५०। पृङ्श्च।७।२।५९।' इति विकहपेनेद्द । '२०५१। पृङः क्त्वा च ।१।२।२२।' इति कित्वप्रतिषेधात् गुणः ॥

१०१-मतीय सा पूर् दहशे जनेन घौर् भानु-शीतांग्य-विनाकृतेव ॥ राजन्य-नक्षत्र-समन्विता ऽपि शोकाुऽन्धकार-क्षत-सर्व-चेष्टा. ॥ १९ ॥

प्रतीयेत्यादि जनेन रामानुयायिना प्रतीय प्रतिनिष्ट्य । पूरवोध्या दृहशे हृष्टा । कर्मणि लिट । प्रतीय इति ईक् गतावित्यस्य रूपं न पुनरिणः । तस्य हि नुकि प्रतीरयेति स्यात् । '३३३३। षत्वतुकोरसिद्धः ।६।९।८६।' इत्येकादेशस्या-सिद्धत्वात् । प्रतियुषा सा दृहशे इति पाठान्तरम् । प्रतिनिष्ट्यतेन सा पूर्वहशे हृष्टेत्यर्थः । अस्मिन् पाठे तु '३०९८। उपयिवान् ।३।२।१०९।' इत्यादिना हृणः कसौ रूपं दृष्ट्यमत्रोपसर्गस्यातन्त्रत्वात् । शोकोऽन्धकार हृव शोकान्धकारः । तेन क्षता नीतानुष्टेयकर्मणि चेष्टा परिस्पन्दो यस्यां पुरि सा तथोक्ता । राज्ञो-ऽपत्यानि ।'१९५२। राज-श्वश्चराद्यत् ।शाश ३०।'राजन्याः क्षत्रियाः । '१९५४। ये चाभावकर्मणोः ।६।४।९६८।' इति प्रकृतिभावः । राजन्याः नक्षत्राणीव तैः समन्वितापि द्यौः भानुश्वीतांशुविनाकृतेव द्यौराकाशः यथा नक्षत्रसमन्वतापि रात्रौ भानुचन्द्राभ्यां विनाकृता रहिता अन्धकारस्थुतसर्वचेष्टा तहत्सापि भानुचन्द्रस्थानीययोः राधवयोविंरहात् ॥

१०२-विलोक्य रामेण विना सुमन्न-मंच्योष्ट सत्वान् नृ-पतिश् च्युताऽऽशः॥ मधूनि नैषीद् व्यलिपन् न गन्धेर्, मनो-रमे न व्यवसिष्ट वस्त्रे. २० त्रिलोक्येत्यादि—रामेण विना सुमझं विलोक्य द्या नृपतिर्देशस्थः सत्वात् स्वभावाद्य्योष्ट च्युतः । च्यवतेरकर्मकाल्लुङ् । गतोऽपि महचनमतिकम्य आगण्डेदाम इति अस्य या आशा सा च्युता यस्य स च्युताशः । सत्वात् च्युतश्च मधूनि पातुं नैषीत् नेष्टवान् ।'२२६८। नेटि ।७।२।४।' इति सिचि वृद्धि-प्रतिषेधः । गन्धेश्चन्द्नादिभिनीलिपत् । लिपेः '२४९८। लिपि-सिचि-ह्मश्च ।३।१। ५३।' इसङ् । मनोरमे चेतोहारिणी वस्ने न व्यवसिष्ट न परिहितवान् । '१०९२। वसँ आच्छादने ।' इसस्मात् छङ् । अनुदान्तेस्वानङ् ॥

१०३-आसिष्ट नैंकत्र ग्रुचा, व्यरंसीत् कृताऽकृतेभ्यः क्षिति-पाल-भाग्-भ्यः, ॥ स चन्दनोशीर-मृणाल-दिग्धः शोकाऽग्निना ऽगाद् झु-निवास-भूयम्,॥२१॥

आसिष्टत्यादि—एकत्र स्थाने शुचा शोकेन नासिष्ट नोपविद्यः। आसेरात्म-नेपित्नो लुङ् । हृतानि चाह्रतानि चेति । '७३९। केन नज्विशिष्टेनानञ्ज् ।२।१।६०।' इति समासः । असमापितेभ्य इत्यर्थः । क्षितिपालं भजन्ते यानि दूत्रत्रेपणादीनि तेभ्यः क्षितिपालमाभ्यः । व्यरंसीत् विरतः । विमुखोऽभूदि-त्यर्थः । जुगुप्साविरामप्रमादार्थानामुपसंख्यानमिति अपादानसंज्ञा । रमेर्लुङ् । '२७५९। व्याङ्-परि-भ्यो रमः ।१।३।८३।'इति तिप् । '२३७७। यम-रम—।७।२। ७३।' इत्यादिना सगिटो । स एवम्भूतो राजा चन्दनोशीरमृणालैः शोकाग्निपती-कारभूतैर्दिग्व उपलिमोऽपि बहुगाग्निनेव शुनिवासभूयं देवत्वमगात् गतवान् । दिहेनिष्ठायां '३२५। दादेर्घातोर्घः ।८।२।३२।' इति घः । '२२८०। झषस्तयो-धां घः ८।२।४०।'। '५२। झलां जश्च झिरा ।८।४।५३।' इति जश्चनम् । दिनि निवासो येषां ते शुनिवासाः देवाः तेषां भाव इति । '२८५५। भुवो भावे ३।५।३०॥' इति क्यप् ॥

१०४-विचुकुशुर् भूमि-पतेर् महिष्यः, केशाँळ् छुछुञ्जुः, स्व-वर्पूषि जघ्नुः,॥ विभूषणान्युनमुमुचुः, क्षमायां पेतुर्, बभञ्जुर् वलयानि चैव.॥ २२॥

विचुकुशुरित्यादि—भूमिपते राज्ञो महिन्यः पत्न्यः। 'अविमद्धोष्टिषच्' इत्योणादिकष्टिपच्। विचुक्कुग्रः रुदितवत्य इत्यर्थः। हा स्वामिष्टिति । तथा केशान् लुलुञ्जः उत्पादितवत्यः। स्ववप्ंषि स्वशरीराणि जद्युसाडितवत्यः। विभू-षणानि हारादीनि उन्युग्रुचुर्गुक्तवत्यः। क्षमायां भुवि पेतुः। वल्यानि अवैध-व्यचिद्वानि वमञ्च पूर्णितवत्व एते लिबन्ता ५६ महि-काट्ये-प्रथमे प्रकीर्ण-काण्डे छ**क्षण-**रूपे तृतीयो वर्गः,

१०५-ताः सान्त्वयन्ती भरत-प्रतीक्षा तं वन्धु-ता न्यक्षिपदां हु तैले,॥ दूतांश्चे राजाऽऽत्मजमानिनीषून् प्रास्थापयन् मन्त्रि-मतेन यूनः.॥ २३॥

ता इत्यादि—वन्धता वन्धुसमूहः । '१२५१। धाम-जन-वन्धु-भ्यस्तळ् १४१२१४३।' ता महिषीः सान्त्वयन्ती संस्थापयन्ती । सान्त्वं करोतीति णिच् नं दशरथं मृतं तैले ज्यक्षिपत् निक्षित्तवती । आशु शीघ्रं । मा भूत्पृतिरिति क्षिपेर्लुङ् । '२३४३। पुषादि—१३।११५५।' इत्यङ् । कस्मात्तमक्षिपदित्याह—भर-नप्रतीक्षा तेन संस्कारः कर्तव्य इति सा भरतं प्रतीक्षते । 'ईक्षि-क्षमिभ्यां च ।' इत्युपसंख्यानाणणः । दूतान् प्रास्थापयत् प्रहितवती । राजात्मजं भरतमानिनी-पून् आनेतुमिष्ट्यून् । अन्यथा केकथीवैमुख्याद्भरतेऽपि वैमुख्याद्भता अपि नाने-तुमिष्टिन्त । तन्नापि मिष्टिमतेन न स्वमतेन । यूनः तेषां गन्तुं समर्थत्वात् ॥

१०६-'सुप्तो नभक्तः पतितं निरीक्षां-चक्रे विवस्वन्तर्मधः स्फुरन्तम्,'॥ आख्यद् वसन् मातृ-कुले सिवभ्यः पत्रयन् प्रमादं भरतो ऽपि राज्ञः.॥ २४॥

सुप्त इत्यादि—भरतोऽपि मानुकुले वसन् सखिभ्यो मित्रेभ्यः आख्यत् कथि-तवान् । ख्यातेर्जुङ् । '२४३८। अस्यति-विक्त—।३११५२।' इत्यादिना अङ् । क्रियाग्रहणं कर्तव्यमिति संप्रदानसंज्ञायां चतुर्थी। किमाख्यदिखाह—अहं सुप्तःसन् नभस्तो नभस्तलात् आकाशात्पतितं विवस्वन्तमादिलं स्फुरन्तं चल्न्तं निरीक्षांचके निरीक्षितवान् । ईक्षेः '२२३०। इजादेः—।३।१।३६।' इलाम् । उत्तमविषये सुप्त-प्रमत्तावस्थायां चित्तव्याक्षेपात् परोक्षे लिद् । पश्यन् विलोकयन् । राज्ञो दशर-थस्य । प्रमादमनिष्टम् ॥

१०७-अशिश्रवन्नात्ययिकं तमेत्य दूता यदा ऽर्थं प्रयियासयन्तः, ॥ आंहिष्ट जाताऽञ्जिहिषस् तदा ऽसा-वृत्कण्डमानो भरतो गुरूणाम्, ॥ २५॥

ठच्। पिता ते म्लानस्वां द्रष्टुमिच्छतीति आत्ययिकं वचनम्। तमिति '५४०। गित-बुद्धि—।१।४।५२।' इत्यादिना कर्मसंज्ञा। ग्रुणोतेः शब्दकर्मत्वात् अर्थमिति। '५३५। कर्तुरीप्सिततमं—।१।४।४९।' इत्यनेन। प्रयिथासयन्तः प्रयातुमिच्छन्तं भरतं प्रयोजितवन्तः। सज्ञन्तण्यन्तोऽयम्। तदा असौ भरतो जाताक्षिहिषः। जाता अक्षिहिषा गमनेच्छा यस्य सः। '१९३३। अहिँ गतौ।'२२६२। इदितो नुम्—।७।१।५८।' तस्मादंहिनुमिच्छतीति सन्। इद् । '२१७६। अजादेद्विती-यस्य ।६।१।२।' इति हिशव्दो द्विस्च्यते। नकारस्य '२२४६। न न्द्राः—।६।१।३।' इति प्रतिषेधः। अभ्यासकार्यम् अनुस्तारपरसवणों। ३२७९। अः प्रत्यया ।३।३।०२।' इत्यकारप्रत्ययः। टाप्। आंहिष्ट गतवान्। तस्मादेवास्मनेपदिनो छङ्। उत्कण्टमानः सरन्। '२०२। मिठ्ठँ, २७३। किठ्ठँ शोके।' इस्यसादास्मनेपदिनो रूपम्। अनेकार्थत्वाद्धात्नाम् । गुरूणां पितामहादीनाम्। '६१३। अधीगर्थे—।२।३।५२।' इति कर्मणि पष्टी॥

१०८-बन्धूनेशङ्किष्ट समाकुलत्वा-दांसेदुषः स्नेह-वद्यादंपायम् , ॥ गोमायु-सारङ्ग-गणाश् च सम्यङ् नां ऽयासिषुर्, भीमर्मरासिषुर्श्व. ॥ २६ ॥

वन्धूनित्यादि — दुःस्वभदर्शनेन अकसाच पितृदूतागमनेन स्नेहवशात् चेतिस समाकुलत्वाद्वरतो बन्धूनशिक्ष्ण शिक्षत्वान् उत्प्रेक्षितवानित्यर्थः । शङ्क-तेरात्मनेपितृनो लुक्ति रूपम् । कीदशान् — आसेदुषः अपायं विनाशं गतवतः । '३०९७। भाषायां सद-वस-।३।२।१०८।' इत्यादिना क्रसुः । '२२६०। अत एक-हल्-।६।४।१२०।' इत्येत्वाभ्यासलोपौ । अस्मद्वन्धुः कश्चित् व्यसनमापन्नो-ऽसूदिति । गच्छतस्तस्य गोमायुसारङ्गगणाः शृगालमृगगणाश्च सम्यगनुकूलं नायासिषुः नागताः । यातेर्लुकि '२३७७। यम-रम-।७।२।७३।' इति सिगदौ । शृगालाः प्रदक्षिणं गताः मृगाश्च सव्यमित्यर्थः । भीमसुद्वेगकरमरासिषुः रसिताः। रसेः परस्पेपदिनो लुङ् । '२२८४। अतो हलादेः-।७।२।७।' इति वृद्धौ रूपम् । न रासेः तस्यात्मनेपदित्वात् ॥

> १०९-स प्रोषिवानैत्य पुरं प्रवेक्ष्यन् शुश्राव घोषं न जनौध-जन्यम् , ॥ आकर्णयामास न वेद-नादान् , न चौपलेभे वणिजां पणाऽयान् ॥ २७॥

स इत्यादि—स भरतः शोषिवान् मातामहकुळात् प्रोषितः सन्। '३०९७। भाषायां–।३।२।१०८।' इत्यादिना कसुः। यजादिन्वात् सम्प्रसारणं द्विवैचनम्। '३०९६ ।७२६७ इति इद क्यन् गृहमिल्यांत् पुरं प्रविष्टः। घोषं शब्दं न शुआव न शुतवान्। जनीयः जन्यं जनसम्हेन जन्यमुत्पाद्यम्। 'शिक-शिस-चित-यिति—।' इति जनेयंत् । तथा वेद्ध्वनीम्नाकणयामास न श्रुतवान्। प्रातिपदिकाद्धात्वर्थं इति णिच्। तद्वतात् लिट्यामि।'र।३।१। अयामन्त—।६।४।५५।' इत्यादेशः। न चोपल्मे नोपल्डधवान्। वणिजां पण्यजीविनाम्।पणायान् पणलाभान्। क्रयविक्रयरूपः व्यवहारस्योन्छम्नत्वात्। पणन्ते इति वणिजः पणिरिजालेश्च व इत्यौणादिकः। पण्यन्त इति पणाः। '३२४३। नित्यं पणः परिमाणे।३।३।६६।' इत्यप्। व्यवहारस्योन्छम्नते वणिमिरित्ययः लामाः। '३२३१। एरच्।३।३।५६।' इति इणः कर्मणि अच्। पणानामयाः पणायाः तान्। पणायामिनि पाठान्तरम्। वणिजां स्तुति संज्यवहारविषयां नोपलेभे। संव्यवहारकुशलाः साधव इति गुपादिषु स्तुत्यर्थपणिना साहचर्यात् पणेरपि तदर्थादेवायप्रत्ययः। '३२७९। अः प्रत्यात् ।३।३।९०२।' इत्यकारः। टाप्। वणिजां प्रलापानिति तृतीयः पाठः। वणिक्प्रसारकल्हानित्यर्थः॥

११०-चक्रन्दुर्रुचैर् नृ-पतिं समेत्य तं मातरो ऽम्यर्णमुपांगताऽस्नाः,॥ पुरोहिताऽमात्य-मुखाुद्य च योधा विवृद्ध-मन्यु-प्रतिपूर्ण-मन्याः.॥ २८॥

चक्रन्दुरित्यादि—तं भरतं गृहगतमभ्यणं समीपीभूतं समेत्य होकित्वा मातरः कोश्राव्याद्याः नृपतिमुचैरत्यथं चक्रन्दुः क्रिन्दितवत्यः। हा स्वामिन् ? हा राजन् ! क गतोऽसीति । उपागतं मासमस्रमञ्जलं यासां ताः पृवंविधाः। युध्यन्त इति योधाः पचादित्वादम् । ते च तं समेत्य नृपतिं चक्रन्दुः।पुरोधी-यत इति प्रोहितः। '८९९। निष्ठा।२।२।३१३।' '३०७६। द्यातेर्हिः।७।४।४२।' अमाशब्दः सहार्थे। सह राज्ञा कार्येषु भवतीत्यमात्यः। 'अमेहकतिमेत्रभ्यः' इति निपातात्। पुरोहितामात्यमुखाः। अमात्यस्याजाचदन्तत्वेऽपि पुरोहितस्याभ्यहितत्वात् पूर्वनिपातः। विवृद्धमन्युना शोकेन प्रतिपूर्णे मन्ये गळिशरे येषामिति॥

११**१**—दिदृक्षमाणः परितः स-सीतं रामं यदा नैक्षत लक्ष्मणं च,॥ रोरुचमानः स तदाऽभ्यपृच्छद्, यथावदांख्यन्नेथ वृत्तमंसी.॥ २९॥

विद्यसमाण इत्यादि स्य भरतो यदा ससीतं रामं छक्ष्मणं च परितः सर्वतो विश्वसमाण ब्रष्टुमिच्छन् २७३१ झा-श्रु स्य-रुशा सनः १३५७ 'इति तक् '२६१३ १२१०' इति तक् '२६१३ १२१०' इति सन किरवे '२४०५ स्जिन्ट-

हो:-।६।१।५८।' इसम् न भवति । नैक्षत न दृष्टवान् । तदा रोरुवमानः असर्थं रुद्न् । यिक रूपम् । अभ्यप्रच्छत् पृष्टवान् । ऐक्षताभ्यप्रच्छदिति भूतसामान्य-विवक्षा छङ् । अन्यथा कवेः परोक्षत्वात् छिद् स्थात् । अथैतस्मिन् प्रस्तावे यथावत् यादशं वृत्तं भूतं तथावत् आख्यन् कथितवन्तः पुरोहितामास्यमुखा अस्मै भरताय । ख्यातेः '२४३८। अस्मति-।३।१।५२।' इत्यादिना च्लेरङ् । आतो लोपः ॥

११२-आबद्ध-भीम-श्रुकुटी-विभङ्गः श्रेश्वीयमानाऽरुण-रौद्र-नेत्रः ॥ उच्चैर्रुपालब्ध स केकयीं च, शोके मुहुश् चीविरतं न्यमाङ्गीत्.॥ ३०॥

आबद्धेत्यादि—स भरत उच्चैमेहता ध्वनिना केकगी च मुहुमुंहुभूंयो भूय उपालब्ध उपालब्ध वालब्ध वालब

तनुपालस्भमाह—

११३—नृपाऽऽत्मजौ चिक्किशतुः स-सीतौ, ममार राजा, वि-घवा भवत्यः,॥ शोच्या वयं, भूरं-तृपा, लघुत्वं केकय्युपज्ञं वत वह्वनर्थम्.॥ ३१॥

स्थेत्यादि नृवासन्तौ रामलक्ष्मणौ ससीतौ सीतया सह चिक्किशतुः किष्टौ। समार सतो राजा। '२५३८। म्रियतेर्लुक्-िक्कोश्च ।११३६१।' इति नियमाच-डोऽसादः । विश्ववाः धवो भर्ता तेन विना भवत्यो जाताः । शोच्याः शोचनीया वयम् अयशोसाजनत्वात् । '२८७२। ऋ-हकोण्येत् ।३१९१९२४।' शक्का इति पारान्तरम् । शङ्कनीया वयम् । एतःकृतोऽयं प्रयोग इति । भूक्षानुपा न विद्य-ते नृषो यस्यामिति नन्नोऽस्त्यर्यानामिति बहुवीहि कमुत्वं राज्यप्रार्थनाकक्षणं केक्य्युपज्ञम् । केक्य्याः प्रथमतो ज्ञातं नान्यस्य कस्यचित्पूर्वं ज्ञातम् । उपज्ञायत इत्युपज्ञम् । '२८९८। आतश्चोपसर्गे ।३।११३६।' इति ख्रियामङ् । कुछक्षणा पष्ठी केक्य्या उपज्ञेति समासः । '८२४। उपज्ञोपकमं-।२।४।२१।' इति नपुं-सकता । वत्त कप्टम् । बह्वनर्थं बहुदोपम् । क्षेत्रमरणाद्यतिष्टानां सम्भवात् ॥

भरतकृत एवायं प्रयोग इत्येतस्परिहरन्नाह—

११४-नैतन् मतं मत्कर्मिति बुवाणः सहस्र-शो ऽसौ शपथानश्चित् ॥ उद्वारयमानः पितरं स-रामं

लुक्यन् स-शोको भुवि रोरुदाःवान्.॥ ३२॥

नैतिद्त्यादि—यदेतत्केकच्यनुष्टितं मतमिम्रायः । न मत्कृतं तत् । नाह-मस्य ग्रामणीर्न प्रभुरिति । अस्यच्छन्दात् '१८७८। स एषां ग्रामणीः। ११२१०८।' इति कन् । '१३७३। प्रत्ययोत्तरपदयोश्च ।७।२।९८।' इति मपर्यन्तस्य मादेशः । नास्यन्मतादनुष्टितमनयेस्पर्थः । इत्येवं नुवाणः सहस्रको बहुवारानसौ भरतः शपथान् सम्प्रत्ययकारणवचनानि अशप्यत् कृतवान् । अनेकार्थत्वाद्धात्नां शपे-देवादिकस्य उभयपदिनो लिङ रूपम् । उद्घाश्यमानः आह्मयन् । '१२३८। वाश्य शब्दे ।' दैवादिकः । अनुदात्तेत् । पितरं सरामं हा तात ! हा रामेति । लुष्टान् भृवि लुटन् । '१६०१। लुटँ विलोडने ।' दैवादिकः परसौपदी । सशोक इति शास्त्रपरिहारार्थम् । रोस्दावान् अस्पर्थं रोदनं कुर्वन् । यडन्तात् '३२७९। अप्र त्ययः ।३।३।१०२।' इत्यकारः '२३०८। अतो लोपः ।६।१।४८।' '।२६३९। यस्य हलः ।६।४।४९।' ख्रियामतष्टाप् । सा विद्यते यस्येति मतुप् ॥

> ११५-तं सुस्थयन्तः सचिवा नरे्न्द्रं दिघक्षयन्तः समुदूहुरारात् ॥ अन्त्याऽऽहुतिं हावयितुं स-विष्राह्य चिचीषयन्तोऽध्वर-पात्र-जातम् ॥ ३३ ॥

तमित्यादि—सचिवा अमात्याः। कार्येषु सचन्ते समवयन्तीति सचिरिव-वित्योणादिक इवन् । तं भरतं सुस्थयन्तः सुस्थं कुर्वाणाः। तत्करोतीति णिच् । नरेन्द्रं दशरथं। समुद्रुहुः उद्घादित्वन्तः। शिविकायामारोज्य । विद्यस्यन्तः। तण्यर्थोऽत्र दृष्टयः। यजादित्वात्सम्प्रसारणम् । आरात् नातिदूरे। दिषक्षयन्तः। दृग्धुमिच्छन्तं भरतं प्रयोजितवन्तः। दृद्देः सनि '३२५। दादेर्घातोर्वः।८।२।३२।' भष्भावचन्त्रं । प्रयोजकव्यापारे णिच् । अन्ते दिनाशे मत्रा या आहुतिः। '१४२९। दिगादि—।४।३।५४।' इति यत् । तामन्त्याहुति । हावयितुमसौ प्रथे-पयितुं। सविमाः नाक्षणे सहिताः सविवाधिचीपयन्तः चेतुं निपातुमिच्छन्तः

। किंतत् सूवादीना समूहम् ।

११६-उदक्षिपन् पद्द-दुक्ल-केतू-न्वादयन् वेणु-मृदङ्ग-कांस्यम्,॥ कम्बृंद्यं च तारानंधमन् समन्तात्, तथाऽऽनयन् कुङ्कम-चन्दनानि,॥ ३४॥

उदेत्यादि—पद्दुक्छविरचितान् केत्न् ध्वजानुदक्षिपन् उच्छितवन्तः ये नियुक्ताः । क्षिपेस्तौदादिकस्य ग्रहणम् । वेणुमृदङ्गकांस्यं वंशमुरजकांस्यतालमवा-द्यन् वादितवन्तः । वदेण्यंन्तस्यैव प्रयोगः । '९१० । जातिरप्राणिनाम् ।२।४।६।' इत्येकवद्गावः । न पुनस्तूर्योङ्गत्वात् । तत्रहि प्राणिनां तूर्योङ्गाणां द्वन्द्वेकवद्गावः । यथा मार्देङ्गिकपाणविकमिति । वृ'-तृ-वदि-हित-कमि-किष-भ्यः सः ।' इत्योणा-दिकः कंसशब्दः । तद्र्याय हितं कंसीयम् । त्रपुणा हदद्रव्यम् । प्रकृतिविकार-भावे छः । तस्य विकार इति । '१५४७। कंसीयपरशव्ययोर्यञ्ञलो छक् च ४।३।१६८।' इति छस्य छक् यञ्च च प्रस्ययः । कम्बून् शङ्कान् । तारान् उचै-स्तरध्वनीन् । अधमन् शव्दितवन्तः । '२३६० । पा-ग्रा-।७।३।७८।' इस्रादिना धमादेशः । तथा कुङ्कुमचन्दनानि आन्यन् आनीतवन्तः । सर्वन्न छि रूपम् ॥ अन्त्येष्टि दर्शयन्नाह—

> ११७-श्रोत्नाऽक्षि-नासा-वदनं स-रुक्मं कृत्वाऽजिने प्राक्-शिरसं निधाय ॥ सञ्चित्य पात्राणि यथा-विधान-मृत्विग् जुहाव ज्वलितं चिताऽग्निम् ॥ ३५॥

श्रोत्रेत्यादि अजिने कृष्णसारचर्मणि प्राक् पूर्वं किरो सूर्धा यस्रोत तं प्राक्किरसं शवं निधाय स्थापित्वा पश्चात् श्रोत्राक्षिनासावदनस् । प्राण्यक्ष- त्वादेक्वज्ञावः । वृत्वदीत्यादिस्त्रस्थानन्तरं नयतेराचेति प्रकृतेराकारे नासेत्यौ-णादिकं रूपम् । सरुक्तं ससुवर्णं कृत्वा । सिक्चित्र विन्यस्य अङ्गप्रसङ्गेषु । पात्राणि सुगादीनि । यथाविधानं यादशं विधानसुक्तं गृह्यशास्त्रे । ऋत्विग्याजकः । ऋतौ यज्ञतीति '३७३। ऋत्विग्-द्धग्—।३।२।५९।' हस्यादिना निपातितः । ज्वलितं वितासिम् । ज्वलनं चितं तदर्थमित्रं ज्ञहाव ज्ञहोति स्व ॥

११८-कृतेषु पिण्डोदक-सञ्चयेषु, हित्वाऽभिषेकं प्रकृतं प्रजाभिः॥ प्रत्यानिनीषुरू विनयेन रामं प्रायार्दरण्यं भरतः स-पौरः,॥ ३६॥

कृतेविवस्यादि—पिण्डोदकदानास्थिसञ्जयेष्वनुष्ठितेषु प्रजाभिः प्रकृतं प्रस्तु-तमिनेकमादिकमीणे क हिस्ता ३३३१ जहातेश्र विस्य ७४४३ '

इति हिरादेशः। रामं प्रत्यानिनीषुः प्रत्यानेतुमिच्छुः। विनयेन प्रसादनयान मग्रादरण्यं वनं प्रायात् गतवान् । भरतः सह पौरैः । अयोध्याभवैर्जनेर्मयैकेन त्रसाद्यमानः कदाचित्रागमिष्यतीति ॥

११९-इाघायमाणैः ककुभोऽश्रुवानैर् जनैरं-पन्थानमुपेत्य सप्तैः॥ शोकार्द-भूषेरंपि भूश् चक<u>ा</u>सा-ऋकार नागेन्द्र-रथाऽश्व-मिश्रैः. ॥ ३७ ॥

इोब्रित्यादि-जनैहेंतुभूतैर्भूश्रकासाञ्चकार शोभते स । कर्तुः क्रियाफल-योगेऽपि नात्मनेपद्म् । आम्प्रत्ययवदित्यत्र पूर्वप्रहणानुवृत्तेः । चकासेश्च परसी-परित्वादिति विधितियमौ स्थितौ । शीबायमाणैः अशीबैः शीबैर्भवद्विक्षेटिति गच्छद्भिरित्यर्थः। '२६६७। भृशादि-।३।१।१२।' इति क्यङ् । क्तिवात्तङ् । कुकुभोऽश्रुवानैः दिशो व्याप्तवद्भिः । अश्रोतेः सौवादिकस्य आस्मनेपदिनो रूपस् । अपन्थानभुपेल सप्तेः बहुत्वादमार्गमपि गत्वा गतैः। '९४०। ऋवप्-।५।४।७४।' इत्यादिना समासान्तः प्राप्तो '९५६। नञ्खल्पुरुपाद् ।५।४।७३।' इति प्रतिषिद्धः सन् '९५०। पथो विभाषा ।५।४।७२।' इति विकल्पितः । शोकाद्धेतोरभूषैरन-छङ्कारैरपि चकासाञ्चकार । सू: सूमि: । सूपेति '३२८०। गुरोश्च हल: ।३।३। १०३।' इसकारप्रस्ययः । '११४८। चकासः दीसौ' इस्रसात् कास्यनेकाज्यहणं चुलुम्पाद्यर्थमित्याम् । नागेन्द्रस्थाश्वमिति द्वन्द्वे एकवद्भावः । अल्पाच्तरस्य न पूर्वनिपातः । 'बहुष्वनियमः ।' इति वचनात् । तेन सेनाङ्गत्वात् कृतैकवकावेन मिश्रेर्युक्तैः।'६९३। पूर्व-सदश-।२।१।३१।' इत्यादिना नृतीयासमासः ॥

> १२०-उच्चिक्यिरे पुष्प-फलं वनानि, सस्तुः, पितृन् पित्रियुरांपगासु, ॥ आरेद्वरित्वा पुलिनान्यंशङ्कं, छायां समाश्रित्य विश्वश्रमुश्चं.॥ ३८॥

उच्चीत्यादि—ते जनाः गच्छन्तः पुष्पफलं पुष्पाणि फलानि चेति '९१०। जातिरप्राणिनाम् ।२१४)६।' इत्येकनद्रात्रः । उच्चितियरे उच्चितवन्तः। जित्वासङ् कर्तुः कियाफलयोगात्। '२५२५। विभाषा चेः। ७।३।५८।' इति धातोः कुल्बस् । '२७२। प्रनेकाचः-।६।४।८२।' इति यणादेशः । उच्चिच्यर इति पाठान्तरं युक्तम् । वनानीति हेतुरवेन '५३९। अकथितं-।१।४।५१।' कर्म । वनानि विध-इयन्तः फलानि जगृहुरित्यर्थः । ततः सम्नः स्नातवन्तः । स्नातेर्लिटि '२२१४। उस्पदान्सात् ।६।१।९६।' इति पररूपम् । पितृन् पिप्रियुः उदकाक्षिलिना तर्षि-प्रीणातेळिटि इयसदेश आपगासु नदीषु एतद् ऋत्वा पुक्रिनानि सैकतानि इत्वा आरेट्ट आरटिता आरेमुरिति पाठान्तरम्

कियन्तमपि कालमारमन्ति स्म । '२७४९। व्याङ्परि-भ्यो रमः ।१।३।८३।' इति परसैपदम् । अशङ्कं विस्नव्यम् । छायां समाधित्य विशश्रमुः विश्नान्ताः ॥

१२१—संप्राप्य तीरं तमसाऽऽपगायां गङ्गाऽम्बु-सम्पर्क-विद्युद्धि-भाजः ॥ विगाहितुं यामुनमम्बु पुण्यं ययुर् निरुद्ध-श्रमवृत्त्यस् ते.॥ ३९॥

संप्राप्येत्यादि — तमसापगायाः तमसाख्यायाः आपगायाः नद्याः । अख-वि-चमि-तमि-तमि-रभि-छभि-तपि-पति-जिन-पणि-गिह-भ्योऽसच् । यस्याः सरणात्पापं ताभ्यति सा तमसा । तरसा इति पाठान्तरम् । तत्र तरसा वेगेन आपगाया अर्थात्तमसाया नद्या गङ्गाम्बुसम्पर्कात् विद्युद्धिं पवित्रतां अजते या तस्या-स्तीरं कूळं सम्प्राप्य गत्वा ते जना निरुद्धश्रमञ्चत्यः ययुः गताः । गङ्गिति गन् गम्यद्योरित्यौणादिको गन् । विगाहितुं विगाहिष्यामह इति कृत्वा । यासुनमम्बु यसुनाया इदं यसुनासम्बन्धि जलम् । पुण्यं पुण्यहेतुत्वात् पुण्ययुक्तत्वाद्वा ॥

१२२-ईयुर् भरद्वाज-मुनेर् निकेतं, यस्मिन् विशश्राम समेत्य रामः॥ च्युताऽशनायः फलवद्-विभूत्या व्यस्यस्नुदन्यां शिशिरैः पयोभिः॥ ४०॥

ई्युरित्यादि—भरद्वाजमुनेर्निकेतं आश्रममीयुः गताः । '२४५५। इगो यण् ।६१४८१।' इति यत्वम् । अभ्यासस्य '२४५६। दीर्घ इणः किति । ७१४१६।' इति दीर्घन्तम् । यस्मिन्नकेते रामो विश्वश्राम विश्वान्तः । समेस्य मिलित्वा । तमीयुर्जना इति योज्यम् । फलवद्विभूत्या फलवतां वृक्षाणां समृद्धा हेतभूत्या स्युताशानायोऽपगतव्रमुक्षः । '२६६२। अञ्चनायो—१७१३६।' इत्यादिना निपातितः । व्यस्यन् उदन्यां वारयन् । असेदैंवादिकस्य रूपम् । उदन्यां पिपासां शिशिरः शीतलैः पयोभिः ॥

१२३-वाचं-यमान् स्थण्डिल-शायिनश् च युयुश्रमाणानंनिशं मुमुक्षून् ॥ अध्यापयन्तं विनयात् प्रणेमुः पद्गा भरद्वाज-मुनिं स-शिष्यम्,॥ ४१॥

वाचिमित्यादि ते भरहाजसुनिं सिक्षाब्यं शिष्यैः सह वर्तमानं प्रणेसुः प्रण-मन्ति सा । विनयात् विनयेन । अत एव पदाः पदातयः पादाभ्यां गच्छन्तीति । '३०११। अन्येष्वपि दृश्यते ।३।२।३०९।' इति दः । '९९२। हिमकाविहतिष्ठ । प ६३५४ दिति गमोत्तरपदे पदादेश पदिति योगविभागाद्वा। कीदशम्। अध्यापयन्तं पाठयन्तम्। कान् वाचंयभान् मौनवन्तान्। '२९५६ वाचि यमो वते। ३।२।५०।' इति खच्। '२९५७। वाचंयम-पु-रंदरी च।६।३।६९' इति निपातनात् पूर्वपदस्य अमन्तता । स्थण्डिळशायिनः भूशायिनः।'१२१६। स्थण्डिळाच्छयितरि वते। ४।२।१५।' इति णिनिः। युयु-क्साणान् योक्तुमिच्छतः। योगाभ्यासनिष्टानिल्यर्थः। अनिशमविच्छेदेन सुसुक्षु-क्सोक्षाभिळाषिण इल्रर्थः। अतएव योगाभ्यासमिच्छून्॥

१२४—आतिथ्यमेभ्यः परिनिर्विवप्सोः कल्प-द्वमा योग-वलेन फेल्डः, ॥ धाम-प्रथिम्नो मदिमा्ऽन्वितानि वासांसि च द्राधिम-वन्त्युंदूहुः ॥ ४२ ॥

आतिथ्यभित्यादि—अतिथ्यर्थमातिथ्यमञ्जानादि । '२०९४। अतिथेर्ब्यः १५।४।२६।' एम्यो भरतादिजनेभ्यः इति संप्रदाने चतुर्था । परिनिर्विवप्तोः निर्व-सुप्तिच्छोदांतुप्तिच्छोरित्यर्थः । निर्पूर्वो विपदाने चत्ते । धामप्रथिमः । धाम्ना तेजसा प्रथिमा पृथुत्वं यस्य । तेजसो बहिनिर्गतत्वात् अरिरस्य पृथुत्वं जायते । तस्य भरहाजसुनेर्योगबलेन समाधिबलेन ।'१२५३। युज समाधी ।' इत्यस्य रूपम् । कृष्युमाः फेल्वः फिलताः । भक्ष्याजपानादिकमित्यर्थः ।'२३०१। तृ-फल-भजन्वपश्च ।६।४।१२२' इत्येत्वमभ्यासलोपश्च । वासांसि च बद्याणि उद्गुद्धः उद्गह-नित सा । यजादित्वात् संप्रसारणम् । मृदिमान्वितानि मृदुत्वसुपगतानि । द्राधि-भवन्ति दैर्ध्ययुक्तानि । पृथुमृदुद्दीर्घशब्देग्यसस्य भाव इत्यर्थे '१७८४। पृथ्वादिभ्य इमनिच्—।५।१।१२२।' । पृथुमृदुशब्द्योः '१७८५। र ऋतो हलादेः । ६-।४।१६१। इति रादेशः । दीर्घशब्दस्य '२०१६ प्रिय-स्थिर—।६।४।१५७। इत्यादिना द्वावादेशः पश्चान्मतुष् ॥

१२५-आज्ञां प्रतीषुर्, विनयादुंपास्थुर्, जगुः स-रागं, ननृतुः स-हात्रम्, ॥ स-विश्वमं नेमुरुंदारमूंचुस् तिलोत्तमाऽऽद्या वनितार्श्वं तस्मिन्, ॥ ४३ ॥

आज्ञामिति—तसिस्तपोवने तिलोत्तमाचा वनिता दिव्यक्षियः आगता आज्ञामादेशं सुनेः प्रतीषुः प्रतीष्टवलः । चेटीभवल इत्यर्थः । प्रतिपूर्व इपिर्प्रहणे वर्तते तत्य लिटि रूपम् । विनयादुपास्थुः उपस्थिताः । पादप्रश्चालनादिवानेन उपस्थानं कृतवलः । उपपूर्वत्विष्ठतेर्लुक्षि सिन्द्र। '२२२३। गाति-स्था—।२।४।७७' इति सिन्धे हुक् '२२२६ सिनम्यस्वविदिम्मस्य ३४१०९ इति सेर्बुस् । '२२१४ ६१९६ इति पररूपम् जगु सराग सरकः गीत चलः । नमृतुः सहावं सञ्चलारचेष्टं नर्तितवलः । सविश्रमं नेसुः सविकासं प्रणताः । उदारमुचः अग्राम्यमुक्तवलः ॥

> १२६-वस्त्राऽन्न-पानं शयनं च नाना कृत्वाऽवकाशे रुचि-संप्रकृप्तस् ॥ तान् प्रीति-मानांह मुनिस् ततः स्म-'निवध्वमांध्वं, पिबत्रांऽत्त शेध्वम्.'॥ ४४॥

वस्त्रेत्यादि — ततो वितिषिस्थानानन्तरमवकारो प्रदेशे यथाभिमते वस्ताद्य-पानम्। सर्वो द्वन्द्वो विभाषेकवद्भवतित्येकचद्भावः। शयनमित्यधिकरणे व्युद्धः। नाना कृत्वा पृथक् कृत्वा। रिवसंप्रकृष्तम्। यस्य यावद्भिरुचितं तत्त्रथैव संपा-दितम्। '२३५०। कृषो रो छः। ८।२।१८।'। प्रीतिमान्मुनिस्तान् भरतादीनाहः स्म उक्तवान्। किमाह—निवध्वं परिधत्त वस्त्राणि। '१०९२। वसँ आच्छादने।' इत्यस्य विधौ छोदः। '५२। झलां जश् झिशा ।८।४।५३' इति सकारस्य दकारः। आध्वं उपविशत। आसेः पूर्ववत् दादेशः। अत्त स्वादत अन्नादिकम्।'१०८०। अद् भक्षणे।' इत्यस्मात् छोदः। पानादिकं पिवतः। पिवतेः '२३६०। पा-म्रा— १३।७।७८।' इति सूत्रेण पिवादेशः। शेध्वम् स्विपत शयने। सर्वत्र विधौ छोदः॥

> १२७-ते भुक्तवन्तः सु-सुखं वसित्वा वासांस्युंषित्वा रजनीं प्रभाते ॥ द्वतं समध्वा रथ-वाजि-नागैर् मन्दाकिनीं रम्य-वनां समीयुः, ॥ ४५ ॥

ते भुक्तेत्यादि—ते भरताद्यः सुसुखमिति क्रियाविशेषणम् । भुक्तवन्तः सन्तो वासांसि । वसित्वा परिधाय । रजनीमुषित्वा रजनीं रात्रिं ।'३०४६। वसित्वा परिधाय । रजनीमुषित्वा रजनीं रात्रिं ।'३०४६। वसित-सुधोः—।७।२।५२।' इति हि-तीया । दुतं शीव्रं प्रभाते मन्दाकिनीं नदीं समीयुः संभूय गताः । समध्या अविच्छिन्नाध्वानः । सङ्गता अध्वन इति प्रादिसमासः । '९५३। उपसर्गादध्वनः ।पाधाटपा' इति समासान्तष्टम् । रथवाजीति हन्हैकवद्मादः । तेन सहिता नागा इति शाक्षपर्थिवादित्वात् समासः । अन्यथा सेनाङ्गत्वात् समुदायस्यैकवन्द्रावः स्थात् । रम्यवनां रमणीयकाननां रमणीयज्ञां वा ॥

१२८-वैखानसेभ्यः श्रुत-राम-वार्तास् ततो विशिञ्जान-पतत्रि-सङ्घम् ॥ अभ्रं-लिहाऽयं रवि-मार्ग-भङ्गम् आनंहिरे ऽद्रिं प्रति चित्र-कूटम्, ॥ ४६ ॥

वैस्नानसेस्पादि—वनो

भ्यः । चित्रकृटे रामोऽस्तीति श्रुतरायवार्ताः । चित्रकृटनामानमि पर्वतं प्रति
'५५२। लक्षणित्थमभूताख्यान—।११४।९०।' इतादिना कर्मप्रवचनीयसंज्ञा ।
'५४८। कर्मप्रवचनीययुक्ते—।२१६।८।' इति द्वितीया । तं लक्ष्यीकृत्य आनंहिरे
जम्मुः । अंहतेलिटि द्विषेचनम् । '२१७९। हलादिः शेषः ।७।४।६०।' । '२२४८।
अत आदेः ।७।४।७०।' इति दीर्घः । '२२८८। तस्मानुष्ट् द्विहलः ।७।४।७९।'
इति तुद्र । विशिक्षानपतित्रसंघं कृजत्यक्षिगणम् । अभंलिहामं अभरपृक्शिसरम् । '२९४०। वहाऽभे लिहः ।३।२।६३।' इति स्तर् । '२९४२। अहिष्य।५।४।५१। इत्यादिना सुम् । रित्रमार्गमङ्गम्। उत्तैस्तरत्वात् स्वेर्मार्गभङ्गो यसिक्रद्माविति ॥

१२९–दृष्ट्वीर्णुवानान् ककुभो वलौ्घान् वितत्य शार्ङ्गं कवचं पिनह्य ॥ तस्यौ सिसंधामयिषुः शितेषुः सौमित्रिरक्षि-स्रुवमुंजिहानः ॥ ४७ ॥

ह्येस्यादि— बलौवान्ट्या सौमित्रिस्तस्थी स्थितः । अभ्यासस्य '२२५९ शर्पूवीः खरः । ७।८।६१।' इति खरः शेषः । कीदशः ककुमो दिश ऊर्णुवानान् आच्छाद्यतः । ऊर्णोतेरदादिकस्योभयपदिनः शानिच उवडादेशे च रूपम् । शार्क्ष श्रङ्गस्य विकारं धनुर्वितस्य आरोपितगुणं कृत्वा । '१२३४। वा स्थपि ।६।४।३८।' इस्रजुनासिकस्रोपः । कवचं पिनझ बद्धा । '१२४१। णहँ बन्धने ।' इस्रस्य स्थपि । अपिशब्दाकारस्रोपस्तु—'विष्ट भागुरिरस्रोपमयाप्योस्पर्सर्गयोः । धालकुनोस्तिनद्योश्च बहुस्त्वेन शौनिकः ॥' इति । सिसंप्रामिथेषुः संप्रामियेगुमिन्द्यः । '२०७१। संप्राम युद्धे ।' इति चौरादिको णिन् । तदन्तस्य सनि प्रथमस्यैकाचो द्विवचनम् । शितेषुः तीक्ष्णक्षरः । अक्षिणी च स्रवौ च अक्षिभुवम् । '१४५ अचतुर—।५।४।७७।' इस्रष्ट निपातितः । उजिहानः कर्ध्वं नयन् । '११६४। ओ हान्स् गतौ ।' इस्रस्य जुहोसादिकस्य '२४९६। भुन्नामित् ।७।४।७६।' इतीत्वम् ॥

१३०-शुक्कोत्तरासङ्ग-भृतो वि-शस्त्रान् पादेः शनैरापततः ग्रं-मन्यून् ॥ औहिष्ट तान् वीत-विरुद्ध-बुद्धीन्

विवन्दिषून् दाशरिथः स्व-वर्ग्यान्, ॥ ४८ ॥ गुक्केत्यादि—दाशरिथतान् स्ववर्गाम् स्ववर्गे भवान् । '१४४३। असन्दे यस्को ।भा३।६४।' इति यत् । आसीया अपि कदाचित् दुष्टबुद्धयो भवन्तीसा-

थरका ।शहादश हात यत् । आत्माया आपं कदाचित् दुष्टबुद्धयो भवन्तीत्या-ह—वीतविरुद्धबुद्धीन् । औहिष्ट ऊहितवान् । ऊहतेरात्मनेपदिनो छुङि आह वृद्धिः । तदेवाविरुद्धञ्चद्धिःवं दर्शयकाहः—शुक्कोत्तरासक्षभृतः शुक्को य उत्तरा-सन्नः उत्तरीयं तं विश्वतीति किए । विशक्षान् निरायुधान् । पादैरापतत आग-च्छतो मुक्तवाहनत्वात् । शनैर्नं त्वरया । प्रमन्यून् प्रकृष्टशोकान् आगतशोकान् वा । विवन्दिपून् वन्दितुमिच्छून् ॥

१३१-स-मूल-काषं चकषू रुदन्तो
रामारामा
शिव्यन्तः ब्रंहित-मन्यु-वेगाः ॥
आवेदयन्तः क्षिति-पालमुंचैःकारं मृतं राम-वियोग-शोकात् ॥ ४९ ॥

सम्लेखादि—ते रामान्तिकं रामसमीपं प्राप्ताश्चकषुः विष्टवन्तः। सम्लक्षणं समूलं कवित्वा भूमेरधोभागमुत्खन्य। '३३५५। निमूल-समूलयोः कषः ।३।४।३४। इति कषेणंमुल् । '३३६७। कषादिषु यथाविध्यनुप्रयोगः ।३।४।४। रहन्तः रोदनं कुर्वन्तः बृहितमन्युवेगा विवृद्धशोकवेगाः। '७८६ वृहिं वृद्धौ।' इत्यस्य रूपम् । रामवियोगशोकात् कारणात् क्षितिपालं दशरथमुचैःकारं कृत्वा। मृतं निधनंगतं आवेदयन्तः। '३३८१। अव्यये यथामिप्रेताल्यान—।३।४।५९।' इति कृत्रो णमुल् । एतद्यथामिप्रेताल्यानमिति नीचैराल्यानुमभिप्रेतत्वात् उचैन्रावेदयन्ति ॥

१३२-चिरं रुदित्वा करुणं स-शब्दं गोत्राऽभिधायं सरितं समेल्य ॥ मध्ये-जलाद् राघव-लक्ष्मणाभ्यां प्रतं जलं क्राञ्जलमंन्तिकेऽपाम्. ॥ ५०॥

चिरमित्यादि—चिरं महान्तं कालं करणं समन्यु सशब्दं प्रतिकृत्य रुदिन्ता। '२६१७। र-लो-ब्युपधाद्धलादेः—।१।२।२६।' इति किर्त्वे विकल्पिते '२६०६। रुद्-चिद्-।१।२।८।' इत्यादिना किरवम् । सितं समेल नदीं संभूय गत्वा । मध्येजलात् जलस्य मध्यात् तस्माद्वा स्नात्वोत्थाय अवतीर्थ । स्थळ्येपे पञ्चमी । '६७२। पारे मध्ये घष्ट्या चा ।२।१।१८।' इत्यव्ययीभावः । अपञ्चम्या इति प्रतिवेधात् अस्र भवति । नाव्ययीभावादिति लुक्पतिवेधश्च । राघवलस्मणा-भ्याम् । अपमान्तिके समीपे जलंभत्तं दत्तम् । '३०७८। अच उपसर्गातः ।७।१। १७०।' गोत्राभिधायं नामाभिधायम् । '३९०। द्वितीयायां च ।७।२।८०।' इति णमुल् । ब्रञ्जलमिति । अञ्चलिपरिच्लिसम् । जलमञ्जली द्वौ विगृद्ध । तद्धितायं समासः '८०४। द्वि-त्रिभ्यामञ्जलेः ।५।१।१०२।' इति टच् । ताभ्यां प्रत्येकमञ्जलिपदानात् द्वावञ्जली प्रमाणसस्थेलस्मिन्वावये प्रमाणप्रस्थस्य प्रमाणे लुक् द्विगो-विग्रियिति लुक् तत समासान्तो न प्रामोति

६८ भट्टि-काट्ये - प्रथमे प्रकीर्ण-काण्डे लक्षण-क्षे तृतीयो वर्ग ,

११३—'अरण्य-याने सु-करे पिता मा प्रायुङ्क, राज्ये वत दुष्-करे त्वाम्,॥ मा गाः ग्रुचं वीर !, भरं वहां ऽमुम्,' आभाषि रामेण वचः कनीयान्.॥ ५१॥

अरण्ययान इत्यादि अरण्याय यानं अरण्ययानं तिसान् सुकरे सुखसाध्ये पिता मां प्रायुद्ध नियुक्तवान् । युजे रोधादिकस्य छिछ छपम् । क्रत्रेसिप्राये '२०६५। प्रोपाम्यां यजेः—१३।३।६४।' इत्यात्मनेपदम् । राज्ये दुष्करे दुःखसाध्ये त्वां प्रायुद्ध । एवं च सित हेवीर, युचं शोकं मा गाः । सा कार्षोरित्यर्थः । '२४५८। इणो गा छिछ । राधाध्या' । '२२२३। गाति-स्था—।२।४।७७।' इति सिचो छुछ । वत इति खेदे । किन्तु भरममुं पितुर्नियोगम् । '९६४। मृ-ज भरणे ।' इत्यस्मात् '३२३२। ऋदोरप् ।३।३।५७।' वह संपादय । विधी छोट् । एवं वचः रामेण कनीयान् अनुजो आता भरतः आभाषि भाषितः । कर्मणि छुछ् । ब्रुवीनसर्थे अहणात् द्विकमेकता। अल्पशब्दादीयसुनि '२०१९। युवाल्पयोः—।५।३।६४।' इत्यादिना कनादेशः ॥

१३४-'कृती श्रुती वृद्ध-मतेषु घीमांस् त्वं पैतृकं चेद् वचनं न कुर्याः, ॥ विच्छिद्यमाने ऽपि कुले परस्य पुंसः कथं स्यादिंह पुत्र-काम्या, ॥ ५२ ॥

कृतीत्यादि — वृद्धानां पण्डितानां मतेषु श्रुतानि कृतानि चानुष्टितानि येनेति । श्राद्धमनेनेत्यिषकृत्य '१८८८। दृष्टादि ।पारा८८।' इतीतिः । कर्त्येन्विपयस्येति कर्मणि सप्तमी । स्वमते भावक्तान्ताद्रस्त्यर्थे इन् । स त्वमेवंविधः धीमान्
पैतृकं पितुरागतम् । '१४५८। पितुर्यच ।४।३।७९।' इति चकाराद्दष्टिनि '१२२१।
इसुस्कान्तात्कः ।७।३।५१।' चेद्यदि वचनं न कुर्याः । मध्यमपुरुषेकवचने छिकि
रूपम् । तदा विच्छिद्यमाने कुळे वंद्ये परस्यापि अन्यस्यापि पुंसः । अपिन्नब्दो
भिन्नकमः । कथं स्यादिह छोके पुत्रकाम्या आत्मनः पुत्रेच्छा नैवेत्यर्थः । द्वात् ।
वदात् '२६६३। काम्यच ।३।९।९।' इति काम्यच् । तदन्ताद्प्रस्ययः । टाप् ॥

१३५-अस्माकर्मुक्तं बहु मन्यसे चेद्, यदीशिषे त्वं न मयि स्थिते च,॥ जिहेष्यं-तिष्ठन् यदि तात-वाक्ये,

जहीहि शङ्कां, व्रज, शाधि पृथ्वीम्.'॥ ५३॥ असाकमित्यादि क्यां के विद्यक्षि बहु मन्यसे बादियसे। पिरुद्धस्त्रो जाता क्यांनित यदि

च मि स्थिते नेशिषे न प्रभुत्वं करोषि। प्रभुस्त्वमहं त्वदाज्ञाकर इति। ईशोरादादिकस्य '२४३९। ईशः से ।७।२।७७।' इतीडागमः। गुरुवचनमनिकमणीयं
विशेषतस्तातवाक्यं तस्मिन्नतिष्ठन् वचनमञ्जवीणः यदि जिहिषि सज्जसे। '२४९०।
श्री।६।१।९०।' इति द्विचनम्। एतिबश्चित्याह—जहीहि शङ्कां स्पन्न विकदणम्। वज गच्छ अयोध्याम्। शाधि पालय पृथ्वीम्। '२४९८। जहातेश्च।
१६।४।१६।' इति इत्वे विकल्पिते। '२४९७। ई हस्यवोः।६।४।११३।' इतीत्वम्।
शासेः '२४८७। शा हो।६।४।६५।' इति शाभावः। तस्तानीयत्वेनासिद्धत्वात्
'२४२५। हु-झल्म्यो हेर्षिः।६।४।१०१।'॥

१३६-'वृद्धौरसां राज्य-घुरां प्रवोढुं कथं कनीयानेहर्मुत्सहेय,॥ मा मां प्रयुक्धाः कुल-कीर्ति-लोपे,' प्राह स्म रामं भरतोऽपि धर्म्यम्,॥ ५४॥

मुद्धीरसामित्यादि—भरतः प्राह । धूर्वहनशीला धूर्नयनशीला इत्यर्थः । अनेकार्थत्वाद्धात्नाम् '३१५७। आज-भास—१३११७७।' इति किए । '२६५५ राष्ट्रोपः ।६१४१२१।' इति वलोपः । राज्यत्य सप्ताङ्गस्य धूर्धात्री । प्रकृतिरिति विगृद्धा । '९४०। ऋक्-पूर्—५१४।७४।' इत्यकारप्रत्ययः । '८१२। परविद्धः निश्च । १६४।' इति धूरिति खीलिङ्गम् । ततष्टाप् । कीहशीं वृद्धौरसां वृद्धौ ज्येष्ठः औरसः पुत्रो यत्याम् । उरसा निर्मित इति छन्दसो निर्मित इत्यजुवृत्तो '१६४६। उरसोऽण् च।४११।९४।' इत्यण् । तां तिष्ठति रामे प्रवोद्धं कथमुत्सहे । कनीयान् सन् । नेवत्यर्थः । '३१०७। शक-धव—१३१४६५।' इत्यादिना वहेः सहावुपपदे तुमुन् । गर्हायां लडपिजात्वोरित्यनुवृत्तो '२८००। विभाषा कथिमि लिङ् च १३१३१४३।' इति लिङ् । सहेरूत्वत्य आत्मनेपदित्वात् सीष्ठह । '२२५७। इटोऽत् ।३१४१०६।' । '२३११ लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य ।७१२७९।' ॥ अतो मा मां प्रयुक्थाः मा नियोजय । '२२१९। माङि लुङ् ।३१३१७५।' । '२२८१। झलो झलि ।८।२।२६।' । इति सिचो लोपः । कुलकीर्तिलोपे । लोपयतीति लोपः पचाद्यम् । रघुवंशस्य या कीर्तिः तस्या लोप इति समासः । पूर्वेरनाचरितत्वात् । पूर्वं च धर्म्यं धर्मादनपेतं भरतोऽपि प्राह स्म उक्तवान् ॥

युनश्चाह---

१३७-'ऊर्जस्वलं हस्ति-तुरक्कमेतर्, अमूनि रह्नानि च राज-भाञ्जि,॥ राजन्यकं चैतदृहं क्षितीन्द्रस् त्विय स्थिते स्यामिति शान्तमेतत्.'॥ ५५॥

ऊर्जेत्यादि

- दर्जस्वर बरवप्

ऊर्जनसूर्क् । संपदादित्वात् किए । सा विद्यते यस्येति । '१९२१ । ज्योत्सा-त् मिसा-।५।२।११४।' इलादिना वलच् । असुगागमश्च । असूनि च रतानि राज साक्षि राजगृह्याणि । एतच राजन्यकं क्षत्रियसभूहः । क्षितीन्द्रो राजा आ त्विय स्थिते स्थासिति भवामीति शान्तसेतत् । स्थासिति निमञ्जणे नियोगकः रणे लिङ् ॥

१३८-इति निगदितवन्तं राघवस् तं जगाद-'त्रज भरत ! गृहीत्वा पादुके त्वं मदीये,॥
च्युत-निखिल-विशङ्कः पूज्यमानो जनौष्टैः
सकल-भुवन-राज्यं कारयां ऽस्मन्-मतेन' '॥५६॥

इतीत्यादि—इति एवं निगदितवन्तं उक्तवन्तं तं भरतं राघवो रामो जगाद उक्तवान्। किमित्याह—हे भरत मदीये पादुके उपानहौ गृहीत्वा त्वं ब्रज गच्छ । विधौ लोद । असादस्त्यदादित्वे '१३३६। त्यदादीनि च ।१।१।७४।' इति वृद्ध-संज्ञायां तस्येदमर्थे '१३३७। वृद्धाच्छः।४।२।१३४।' '१३७३। प्रत्ययोत्तरपद्योश्च ।७।२।९८।' इति मदादेशः । ततश्च पूज्यमानो जनौधेर्जनसमृहैः । च्युत्तनित्वि-लविशक्षः अपगताशेपविकत्यः । सक्त्यभुवनराज्यं सर्वत्र भूमण्डले राज्यं कारय अनुष्ठापय । पादुके इति योज्यम् । अस्तम्मतेन अस्ताकमित्रायेण । अत्र मदादेशो न भवति अस्तदो बहुवचनान्तत्य विविक्षतत्वात् । तत्र ह्यक्वचन इति वर्तते । ननु कथं मदीय इत्यत्र मदादेशः बहुवचनान्तत्वादिति विरोधः । पादुके रामस्येव तद्येस्तन्यतेन इत्यत्रापि एकवचनम् । आवयो रामलक्ष्मणयोर्मतेनेति पष्टीसमासे न दोषः ॥

इति श्री-जयमङ्गलाऽऽल्यया व्याल्यया समलंकते श्री-भट्टिकाट्ये-प्रथमे प्रकीर्ण-काण्डे लक्षण-रूपे तृतीयः परिच्छेदः (वर्गः), तथा लक्ष्य-रूपे कथानके श्री-राम प्रवासो नाम तृतीयः स्वर्धाः पर्यवसितः।

चतुर्धः सर्गः—

१३९-निवृत्ते भरते धी-मानंत्रे रामस् तपो-वनम् ॥

प्रपेदे, पूजितस् तस्मिन् दण्डकाऽरण्यमीयिवान्. ॥१॥

निवृत्त इत्यादि धीमान् बुद्धिमान् अत्र स्थिते मयि कदाचिद्धरतः पुनरेष्यतीत्येवं बुद्धिमान् रामः अन्नेर्महर्षेत्रपोवनं प्रपेदे गतः । तस्मित्र तपोवने अर्थपाद्यादिभिः पूजितः । दाण्डक्यो नाम भोजो भागवकन्यामहरत् । तच्छा-पात् पांसुवर्षेणाक्रान्तः सवन्धुराध्विनाक्षो यिमन् स्थाने तस्वोपलक्षितम्

१—मालिनी-च्छन्द तद्यक्षणे (२६) खेकोक दीकन प्रेक्यम्

अरण्यमभूत् । तदीयिवान् गतवान् । '३०९८। उपेयिवान्—।३।२।१०९।' इस्रज्ञ उपसर्गस्यातव्रत्वात्केवलादपीणः कसुः ॥

१४०-अटाट्यमानो ऽरण्यानीं स-सीतः सह-लक्ष्मणः ॥ वलाद् बुमुक्षुणौत्क्षिप्य जहे भीमेन रक्षसा. ॥ २ ॥

अटाटयेत्यादि—सहदरण्यमरण्यानी । '५०५। इन्द्र-वरुण-1819:१९।' इत्यादिना हिमारण्ययोमेहरचे जीपानुको । तां अटाव्यमानः अत्यर्थमटन् रामः। 'सूचि—सूत्रि' इत्यादिना यङ् । ससीतः सहलक्ष्मणः '८४९। वोषसर्जनस्य ।५१३।८२।' इति विकल्पेन सभावः । बलात् बलवत्तया जहे हतः । गृहीत इत्यर्थः । कर्मणि लिद्द । उत्थिष्य उत्थाप्य हस्ताभ्यां केनापि रक्षमा । वैश्रवण-शापात् तुम्बुरुनामा गन्धर्वेण राक्षसी भूतेन विराधाल्येन बुभुश्रुणा भोत्तुमिच्छु-ना । भीमेन भयानकेन । 'भियः पुक्' इत्योणादिकषुगभावपक्षे रूपम् ॥

१४१-अवाक्-शिरसमुत्-पादं कृतान्तेनां ऽपि दुर्-दमम् ॥
भङ्क्त्वा भुजौ विराधाऽङ्यं तं तौ भुवि निचखतुः.॥ ३॥

अवागित्यादि—तं विराधाल्यं राक्षसं । इतान्तेनापि यमेनापि । दुईमं दुःखेन दम्यत इति खल् । तौ रामल्हमणौ सुनि निचलतुर्निखातवन्तौ । कीटशम् अवाक्शिरसं अधोमसकम् अवाक्शिरो यस्येति । कर्ध्वं पादौ यस्येति उत्पादम् । खुजौ अङ्दत्वा मोटयित्वा । '३३३०। जान्त-नशां विभाषा १६।४। ३२' इत्यनुनासिकलोपाभावपक्षे रूपम् ॥

१४२-आंहिषातां रघु-व्याघी शरभङ्गाऽऽश्रमं ततः॥ अध्यासितं श्रिया ब्राह्या शरण्यं शरणैषिणाम् ॥४॥

आंहीत्यादि— ततो विराधवधानन्तरं रघुव्यात्रौ शरभङ्गनाम्नो मुनेराश्रमम् आंहिषातां गतवन्तौ । अंहेर्लुकि रूपम् । अध्यासितं आश्रयीकृतम् । श्रिया छक्ष्म्या । ब्राह्म्या ब्रह्मसम्बन्धिन्या । ब्रह्मण इयमित्यण् । '११५८। ब्राह्मोऽजातौ दि।४।१७१।' इति निपातनात् टिलोपः । '४७०। ठिह्वाणञ्—।४।१।५।' इत्या-देना क्षीप् । शरणे अवस्थाने साधु अनुकूलं शरण्यम् । '१६५०। तत्र साधुः १४।४८।' इति यत् । शरणेषिणां शरणं त्राणमेषितुं शीलं येषाम् ॥

१४३-पुरो रामस्य जुहवाऋकार ज्वलने वपुः ॥

शरभद्भः प्रदिश्यांऽऽरात् सुतीक्ष्ण-मुनि-केतनम्॥५॥ पुर इत्यादि—शरभन्नो रामस्य पुरः अप्रतः वषुः शरीरं अवलने अन्नौ २४९। अन्हि मृन्दुवा ३१३९' इति बाम्र आपि शतुभावे द्विचनम् । किं कृत्वेत्याह-प्रदिश्य कथयित्वा । किम्-आरात् समीपे सुतीक्षणनाम्नो सुनेः केतनं आश्रमम् । तत्र वाससुपकल्पयेति ॥

तव किमन्नावस्थानमिति चेदाह-

१४४-'यूयं समैष्यथें,त्यंस्मि-न्नांसिष्महि वयं वने,॥ दृष्टाः स्थ, स्वस्ति वो, यामः स्व-पुण्य-विजितां गतिम्'॥ ६॥

यूयमित्यादि — अपि नाम यूयं समैष्यथ आगमिष्यथ । आक्र्पूर्व हण् आगमने वर्तते । '७३। एत्येधत्यृद्सु ।६। १।८९।' इति वृद्धिः । इत्यसात्कारणात् । असिन्वने वयमासिष्मिहि स्थिताः । आसेर्छुङि रूपम् । '८१८। असादो द्वयोश्च ।१।२।५९।' इति चकारस्यानुक्तसमुख्ययवादेकत्वे बहुवचनम् । असादागमने किं ते फलमि-ति चेदाह—हष्टाः स्थ अधुना दृष्टा भवथ । असोर्मध्यमपुरुषबहुवचने '२४६९। असोरह्योपः ।६।४।१९।' इत्यकारलोपः । स्वस्ति कल्याणम् । वः युष्मभ्यम् '।५८३। नमः स्वस्ति—।२।३।१६।' इत्यादिना चतुर्थो । '४०५। बहुवचनस्य वस्नसौ ।८।३। ।२१।' स्वपुण्येन विजितां लब्धां गति जन्म । यामः वजामः । रामरूपेण वि-च्युरवर्ताणेः तं हष्ट्वा यास्याम इत्यत्र वयं स्थिता इति ॥

१४५-तस्मिन् कृशानु-साद्-भूते सुतीक्ष्ण-मुनि-सन्निधौ ॥ उवास पर्ण-शालायां भ्रमन्नेनिशमांऽऽश्रमान्,॥७॥

तसिश्वित्यादि — तसिन् शरभङ्गे कृशानुसाद्भृते कात्स्येनाशीभूते । '२१। २२। विभाषा साति कात्स्ये । धारा श्रीः हित सातिः । रामः सुतीक्षणस्य सुनेः सिश्चिमे पर्णशालायां पर्णकुट्यामुवास उषितवान् । तत्र कृताधिवासस्य कृतिमाह—अमङानिशमाश्रमान् पर्यटन् सदा तपोवनानि मुनीन् उपासितुम् ॥

१४६-वनेषु वासतेयेषु निवसन् पर्ण-संस्तरः॥

शय्योत्थायं मृगान् विध्यन्नतिथेयो विचक्रमे ॥८॥

वनेष्वत्यादि—वासतेयेषु वसतौ साष्ठुषु । '१६५६। पथ्यतिथि—
१४१४१०६१' इत्यादिना ढज् । निवसन् शयानः । संसीर्थत इति संस्तरः ।
'३२३२। 'ऋदोरप् ।३।३।६७।' पर्णानि संस्तरो यस्येति पर्णसंस्तरः । शय्योत्थायं
शय्याया उत्थाय । उत्पूर्वात्तिष्ठतेः । '३३७३। अपादाने परीप्सायां ।३।६।५२।'
इति णमुद्ध । शय्यते अस्यामिति शय्या । '१२७६। संज्ञायां ।३।३।९९।' इत्यादिना
क्यप् । त्वरया मुखधावनादीन्यपि न कृत्वा । सृगान्विध्यन् ताडयन् । '२४।१२।
प्रहि-ज्या—६।११६।' इत्यादिना सम्प्रसारणम् । तन्नापि नात्मार्थं लुब्ध इत्याहः
-आतिथेयः अतिथा साष्टुः । पूर्ववत् दन् । विचक्रमे विहरतिसा ।
'२०१४ वे पाद-विहरणे १३४९' इति तक्

१४७-ऋग्-यजुषमंघीयानान् सामान्यांश्च समर्चयन् ॥ बुभुजे देव-सात्-कृत्वा शूल्यमुंख्यं च होम-वान्. ॥९॥

ऋद्ग्यजुषितियादि — ऋक् च यज्ञश्च ऋग्यज्ञषम् । '९१५। अचतुर।५११।७७।' इतादिना निपातितम्। '९३०। इन्द्राचु-द-ष-हाउन्तात् समाहारे
।५११।१०६।' इति टच्। ऋग्वेदं यज्ञ्वेदं च अधीयानान् पटतः । इङोऽधिपूर्वस्य लटि शानचि रूपम्। '६२७। न लोक-।२।३।६९।' इति पष्ठीप्रतिषेधः।
सामान्यांश्च सामसु साध्न द्विजान्। '१६५०। तत्र साधः।१।१।९८।' इति यत्।
'११५५। ये चाभावकर्मणोः।६।१।१६८।' इति प्रकृतिभावः। समर्चयन् पूज्यन्।
शूल्यमुख्यं च मांसं बुभुजे भुक्तवान्। शूले उखायां च स्थाल्यां संस्कृतम्।
'१२१८। ग्रूलोखाद्यत्।१।२।१७।'। '२७३७। भुजोऽनवने।१।३।६६।' इति
सङ्। किं कृत्वा-देवसात्कृत्वा देवेम्यो दत्वा। तद्वीनं कृत्वा। '२१२४। देवे
त्रा च ।५।१।५५।' इति चकारात् सातिश्च। होमवान् होमो विद्यते यस्येति।
कृतानिकार्य इत्यर्थः॥

र्युग्मम् (२)---१४८-वसानस् तन्त्रक-निभे सर्वाङ्गीणे तरु-त्वचौ ॥

काण्डीरः खाङ्किकः शाङ्की रक्षन् विप्रांस्तंनुत्र-वान् १०

वसान इत्यादि — असौ रामो वनेष्वानभ्र आन्तवानिति वद्दयमाणेन श्लोने सम्बन्धः । वसानः परिद्धानः । '१०९२। वसँ आच्छादने ।' इत्यसात् शानच् । तरुवचौ वरुकले प्रत्यमे । तन्त्रकः '१८७० । तन्त्राद्चिरापहृते ।पार ७०।' इति कन् । तन्निमे तन्तुल्ये । सर्वाङ्गीणे सर्वाङ्गाणे व्यामुवत्यौ । '१८०८ तत्सर्व—।पारा७।' इत्यादिना खः । काण्डीरः काण्डोऽस्यास्तीति । '१९१८। काण्डाण्डादीरचीरचौ ।पारा१११।'। खाङ्गिकः खङ्गोऽस्यास्तीति । '१९२२। अत इतिठचौ ।पारा११५।' खाङ्गिक इति पाठान्तरम् । तत्र खङ्गः । '१६०७ महरणं ।धाशपणा' इति ठक् । शाङ्गी सधनुः । तनुत्रवान् तनुं शरीरं त्रायत इति तनु- त्रम् । '२९१प। आतोऽनुपसर्गे कः ।३।२।३।'। संसर्गे मतुष् । पिनद्रकवच इत्यर्थः । स प्वंविधो विमान् वाह्मणान् रक्षन् ॥

१४९-हित्वाऽऽशितङ्गवीनानि फलैर् येष्वांशितम्भवम् , ॥ तेष्वंसौ दन्दश्काऽरिर् वनेष्वांनभ्य निर्म्भयः॥११॥

हित्वेस्पादि—आशितास्तृप्ता गावो येषु भवन्ति तृणप्रायत्वात् । '२०७९ अषडक्षा-।पाशांश' इत्यादिस्त्रेण खः पूर्वपदस्य च मान्तत्वं निपास्यते । तान्य-रण्यानि हिःवा येषु चनेषु फलैराशितम्भवमाशितस्य भवनं तृष्ठिवैर्तते

१—'द्वाभ्यां युग्ममिति प्रोक्तं, त्रिभिः श्लेकेर् विशेषकम्, ॥
कारापक चढार्मि सात् तद्रमं कुरुकं स्मृतम्, १४

98

।'२९६२। आशिते भुवः-।३।२।४५।' इत्यादिना भावे खच् । तेप्वानभ्र । '५९७। अभ्रँ, ५९८। वभ्रँ' इति गत्यथीं धातुः । छिटि '२२४८। अत आदेः ।७।४।७०।' इति दीर्घे '२२८८। तसाबुद्धिहरूः ।७।४।७१।' इति तुद् । दन्द्यूकारिः व्यास्तानां हन्ता ।'२६३५। सुप-सद्-।३।१२४।' इत्यादिना दंशेर्यक् । तदन्तात्

१५०-त्रातीन-व्याल-दीप्राऽस्त्रः सुत्वनः परिपूजयन् ॥

'३१४६। यज-जप-।३।२।१६६।' इत्यादिना जकः ॥

पर्षद्वरान् महा-ब्रह्मैरांट नैकटिका॒ऽऽश्रमान्, ॥१२॥

वातीनेत्यादि —तेषु वनेषु अमन् वैकटिकाश्रमानाट गतवान् । अटेरभ्यासस्य '२२४८। अत आदेः ।७।४।००।' इति दीर्घत्वम् । आमस्यान्तिके कोशमात्रं
स्यक्त्वा यतयो मिश्रवो ये निवसन्ति ते नैकटिकाः । '१६२४। निकटे वसित
१४।४।०३।' इति उक् । तेषामाश्रमांस्तपोवनानि । कीहराः । वातीनव्यालदीप्रास्तः ।
नानाजातीयाः अनियतवृत्तयः शरीरमायास्य थे जीवन्ति ते वातास्तेषां यत्कर्मः
तद्दापे वातं तेन जीवन्ति इति वातीनाः । '१८२२। वातेन जीविति ।५।२।२१।'
इति स्वस् । तेषां व्याला हिंस्ताः उपघातकाः तेषु दीप्रास्तः व्यलदायुधः । ससमीति योगविभागात्सः । सुत्वनः सुतवतः परिपूजयम् । सोमपायिन इत्यथः ।
'१०९१ । सुयजोर्ङ्वनिष् ।३।२।१०३।' तुक् । '३५५। न संयोगात्—६।४।१३७।'
इत्यल्वोपो न । पर्षद्वलानिति । 'पर्ष सेहने' अस्मात्पर्पते सिद्धतीति । दृष्णसो
दिरिस्तत्र पर्वेर्वाहुलकादौणादिको दिः पर्पत् । तत्व यदि '३९१९। रजः-कृष्यासुति-पर्पदो वलक् ।५।२।१११।' इति तदा पर्पत् विद्यते येषां सुत्वनामिति
वलक् । अत्र परिषदितीति परिषद् किनन्तो यया 'परिषद्व्येषा गुणम्राहिणी'
तदा परिषद्वं सहायो येषामिति बहुवीहिः । महाबह्यमेहावाह्यणैः '८०६।
कुमहन्द्यामन्यतरस्याम् ।५।४।१०५।' इति टक्ष् । तैः सहाटः ॥

युग्मकम् (२)—

१५१-परेद्यव्यंद्य पूर्वेद्युरंन्येद्युश् चांऽपि चिन्तयन् ॥

वृद्धि-क्षयौ मुनीन्द्राणां प्रियं-भावुक-तामंगात् ॥१३॥

परेद्यवीत्यादि—परेदावि परिसन् आगामिनि दिवसे इत्यर्थः । अद्यैतसिन ब्रह्मि । पूर्वेषुः पूर्वेसिक्षहमि अन्येद्युरन्यसिक्षहमि चिरातिकान्ते चिरगामिनि दिवसे परेद्यवीत्यादिषु दिवसेषु मुनीन्द्राणां वृद्धिक्षयौ उद्यापचयौ चिन्तयन् । प्रियम्माद्युकतां पूर्वं प्रियाप्रियस्वभावनिर्मुक्तत्वाद्तथाभूतः सन् प्रियो भवतीति प्रियम्भाद्युकः । आस्त्रसुभगेत्यधिकृत्य (२९७४। कर्तरि भ्रुवः विष्णुच् सुकन्नौ ।

।३।२।५७।' इति खुक्क । तद्वादः । तामगात् गतः । अर्थान्मुनीन्द्राणामेव । परेचव्याद्यः शब्दाः '१९७०। सद्यः-परुत्-।५।३।२२' इत्यादिना निपातिताः ॥ ,

१५२-आ-तिष्टद्=गु जपन् सन्ध्यां प्रकान्तामायतीगवम् ॥

ं पतन्निस्यः प्रबुद्धः प्रणमन् रविम्. ११

आतीत्यादि — जपनमञ्जमिति सामध्येलभ्यम् । सन्ध्याकालोऽधिकरणम् । तेन अलन्तसंयोगे द्वितीया । सम्यक् ध्यायन्त्यस्यामिति । '३२८३। आतश्चो-पसर्गे ।३।३।९०६।' इत्यङ् । किमवधि सन्ध्यामित्याह-प्रकान्तमायतीगवम् । आयसः आयान्स्यो भवन्ति यस्मिन् काले गावः अस्मिन्नायतीगवं आरब्धाम् । '६७९। तिष्ठद्व-प्रभृतीनि—२।१।९७।' इत्यव्यवीभावसमासःवात्साधुः । '६५७। नाव्ययीमावात्-।२।४।८३।' इति ससम्यां अम्भावः । आङ्पूर्वादिणः शतिर '२४५५। इणो यण् ।६।४।८९।' इति यणि ङीपि च रूपं आयतीति । गावोऽपि गोचरात् गोष्ठमावान्ति दिवसस्यार्धनाडिकावशेषे सन्ध्यापि तहैव प्रवर्तते । कियन्तमेवं जपन्निसाह-आतिष्ठहु इति । तिष्टन्ति गावो यस्मिन् काले दोहाय । गावो हि रात्रिप्रथमयामस्य नाडिकायामतीतायां विश्रान्ताः सत्यः उत्थाप्य हुद्यन्ते । आतिष्टदिति '६६७। आङ् मर्यादाभिविध्योः ।२।१।१३।' इत्यव्ययी-भावः । '६७१। तिष्ठद्व-प्रभृतीनि च ।२।६।१७।' इति चकारसानुक्तसमुचयार्थ-त्वाद्व्ययीभावएव । पुनः समासान्तरं न भवति । प्रातस्तरामिति । प्रातिस्त-ब्ययं प्रभातवाचि। प्रकर्षविवक्षायां तरप्। तदन्तात् '२००४। किमेत्-।५।४।११। इत्वादिना आम् अतिप्रभाते । पतित्रभ्यः कुकुटादिभ्यः प्रथमं प्रवुद्ध उत्थितः । '६३९। पञ्जमी विभक्ते ।२।३।४२।' इति पञ्जमी । रविसादित्यं प्रणमन् यदा चरति तदा प्रियमभावुकतामगादिति पूर्वेण योज्यम् ॥

१५३-दृहरो पर्ण-शालायां राक्षस्या ऽभीकया ऽथ सः, ॥ भार्योद्वं तर्मवज्ञाय तस्ये सौमित्रयेऽसकौ. ॥ १५ ॥

दृदश इत्यादि—पर्णानां शालायां स्थितः स रामः राक्षस्या दृदशे दृष्टः । कीदश्या । अभीक्या कामुक्या। '१८७४। अनुकाऽभिका—।५।२।७४।' इत्यादिना निपातितः । दृशेः कर्मणि छिद् । अथ दृशेनानन्तरं भायों ढं ऊढभायेमूढा भायां यस्येति । आहिताइयादिषु दृशेनात् निष्ठान्तस्य परनिपातः । अवज्ञाय अनाद्य । सङ्गार्थत्वात् । असकौ राक्षसी पापासौ । कुत्सायां '२०२५। अव्यय-सर्वनामाः मक्ष्य ।५।३।७१।' सौमित्रये छक्ष्मणाय । '५३२। छाष-हुङ् ।१।४।३४।' इत्यादिना सम्प्रदानसंज्ञा । तस्थे स्वासित्रायं मेधुनायाविष्कृतवती । '२६९०। प्रकाशन-स्थेयाक्ष्ययोश्च ।१।३।२३।' इति प्रकाशने तङ् ॥

कलापैकम् (४)—

१५४-दधाना विल-भं मध्यं कर्ण-जाह-विलोचना ॥

वाक्-त्वचेनांऽति=सर्वेण चन्द्र-छेखेव पक्षतौ ॥ १६ ॥

द्धानेत्यादि—सा तं प्रार्थयात्रक इति वश्यमाणेन सम्बन्धः । कीदशी मध्यं स्तनजवनयोरन्तरम् । विल्भं वलयोऽस्मिन् सन्तीति । '१९४५। तुन्दि-बिल-वटेर्भः ।५।२।१३९।' दधाना धारयन्ती । कर्णजाहविलोचना । कर्णजाहं

१ (१४८) क्षेकोक्तं टीकनं प्रेक्ष्यम्।

कर्णमुख्समीपिसलर्थः । '१८२५। तत्य पाकमूळ-।५।२१२।' इत्यादिना जाहच्। कर्णजाह्योधिश्रान्ते विलोचने यत्या इति ससम्युपमानेलादिना उपपदलेपि बहुबीहिः। वाक्त्वचेन वाक् चत्वक् चेति प्राण्यङ्गत्वादेकवद्भावः। '९३०। हुन्द्राचु-दु-प-हान्तात्—।५।४।१०६।' इति टच्। अतिसचेंण अतिकान्तेन सर्वम्। अलाद्य इति समासः।'६५५। एकविभक्ति चापूर्वनिपाते।१।२।४४।' इति सर्वशब्दस्योप-सर्जनत्वेऽपि पूर्वनिपातो न भवति अपूर्वनिपात इति प्रतिषेधात् । वाक्त्वचेन वाक्ष्येन माधुर्येण माद्वेन चासाधारणेनोपछिक्षतेनेल्यधः। इत्यम्भूते तृतीया। चन्द्रहेस्वेत्र पक्षतौ तनुत्वात्। पक्षोऽत्रार्थमासः। तस्य मूळे प्रतिपदि। '१८२६। पक्षात्तः।५।२।२५५।'॥

१५५-सु-पाद् द्वि-रद-नासोक्स् मृदु-पाणि-तलाऽङ्कुलिः॥ प्रथिमानं दधानेन जघनेन घनेन सा॥ १७॥

सुपादित्यादि — शोधनी पादी यसाः असी सुपात् । '८७९। सङ्घासुपूर्वस्य ।५।४।१४०।' इति पादान्तलोपः '४५७। पादोऽन्यतरस्यां ।४।१।८।' इति
यदा कीप् नास्ति तदेत्यं रूपम् । द्विरदनासोरूर्दिरदनासे इव करिपोतकराविव
ऊरू यसाः उपमानपूर्वी बहुवीहिः । '५२४। ऊरूत्तरपदादीपम्ये ।४।१।६९।'
इति ऊरू । रद्यते अनेनेति रदः दन्तः । '३२९६। पुंसि संज्ञायां घः-।३।३।११८।'
करणे। हो रदौ यस्येति द्विरदः । मृदुपाणितलाङ्गुलिः। तलंच अङ्गुलिश्चेति द्वन्दः ।
तत्र ध्यन्ताल्पाचतरयोः अल्पाचतरस्य पूर्वनिपातः । पाण्योस्तलाङ्गुलि पाणितलाक्रुलि । मृदु पाणितलाङ्गुलि यस्य इति योज्यम् । प्रश्चिमानं पृथुतां द्धानेन
धारयता । घनेन उपचितेन जघनेनोपलक्षिता सा राक्षसी ॥

१५६—उन्-नसं द्धती वक्षं शुद्ध-दल्-लोल-कुण्डलम् ॥ कुर्वाणा पश्यतः शंयून् स्नग्विणी सु-हसाऽऽनना ॥१८॥

उद्यसमित्यादि—उच्यते अनेनेति वक्षम्। सर्वधातुभ्य औणादिकः हून् तत्र वक्षशब्दो युक्षैकदेशे वर्तमानोऽपि कविभिः समुदाये प्रयुज्यते। वक्षं मुख-मुन्नसं द्धती। '४२७। नाभ्यसाच्छतुः ।७।१।७८।' इति नुम् न भवति। उन्नता नासिका यस्मिकिति। अञ्चनासिकायाः संज्ञायां नसं चेत्यिष्ठक्तस्य '८५८। उपस-गांच ।५।४।१९९।' इत्यच्। नासिका च नसादेशमापद्यते। शुद्धत्त् शुद्धाः शुक्का दन्ता यस्मिक्तव्युद्धद् त् '८८३। अग्रान्तशुद्ध-।५।४।१४५।' इत्यादिना ददादेशः। छोछे चञ्चछे छण्डले यस्मिन् तत् लोलकुण्डलम्। पश्यतो जनान् शंयून् विद्य-मानसुखान् कुर्वाणा शं सुखं तदस्यास्तीति। '१९४४। कं-शं-भ्यां ब-भ-शुस्ति--त-यसः।५।२।१३८।' इति युस्। सित्वात्यदसंज्ञा। अनुस्वारः। अपस्यतो वा शंयून् कुर्वाणा पश्यतां तु पीडाकरी। स्रविणी मालावती। '१९२८। अस्माया— ५।२।१२९।' इत्यादिना विनि इसन् इस्प यस्मा सा ॥

१५७-प्राप्य चक्क्यूमाणा इसौ पतीयन्ती रघूत्तमम् ॥

अनुका प्रार्थयाञ्चके प्रिया-कर्तुं प्रियं-वदा. ॥ १९ ॥

प्राप्येत्यादि—प्राप्य होकित्वा । चञ्चर्यमाणा गर्हितमाचरन्ती । प्राणिनो हन्तव्या इति । चरेः '२६३५। छुप-सद्-।३।३।२४।' इलादिना भावगर्हाणां यङ्। '२६३६। चर-फलोश्च ।७।४।८०।' इत्यभ्यासस्य नुक् । '२६३७। उत्परस्यातः । ।७।४।८८।' इत्युत्वम् । '३५४। हलि च ।८।२।७७।' इति दीर्घत्वम् । पतीयन्ती आत्मनः पतिमिच्छन्ती । '२६५७। सुप आत्मनः वयच् ।३।१।८।' अनुका अमिल्हापुका । '१८७४ । अनुका-।४।२।७४।' इत्यादिना निपातितः । रघूत्तमं छक्ष्मणं प्रार्थयाञ्चके प्रार्थितवती । प्रियाकर्तुमनुलोमयितुम् । पतिमें स्या इति । '२१३४। सुस्वियादानुलोम्ये ।५।४।६३।' इति डाच् । प्रियंवदा व्रियवादिनी । '२९५३। प्रिय-वरो वदः खच् ।३।२।३८।' ॥

तां प्रार्थनामाह---

१५८-'सौमित्रे ? मार्मुपायंस्थाः कम्नामिच्छुर् वशं-वदाम्॥ त्वद्-भोगीनां सहःचरीमं-शङ्कः पुरुषाऽऽयुषम्.'॥२०॥

सौमित्रे इत्यादि — है सौमित्रे। इच्छुरेषणशीलः। '३१४९। विन्दुरिच्छुः। ११११६९।' इति निपातितः। अशङ्कः निर्विकल्पः सन्। किं मां वञ्चयिष्य तीति। मामुपायंस्थाः परिणय। '२७९०। आशंसायां मृतवच । १११३२।' इति छुङ्। '२७२९। उपाद्यमः स्वकरणे। ११३।५६।' इति तङ्। '२७३०। विभाषो-पयमने। ११२१६।' इत्यकित्वपक्षे रूपम्। कन्नाम्। '३१४०। निम किप्प-। ३। ११६७।' इत्यादिनारः। वशंवदाम्। अहं ते वश्येति वदन्तीम्। त्वद्रोगीनां त्वच्छरीराय हिताम्। अवध्यादिलक्षणयोगात् '१६००। आत्मिन्वश्वजन-। ५। ११९।' इत्यादिना सः। सहचरीं सहगामिनीम् '२९३१। भिक्षा-सेना-दायेषु च ३।२११७।' इति चकारस्यानुक्तसमुद्धयार्थत्वात् द्यस्यः। कियन्तं कालम्- पुरुषायुषं पुरुषस्यायुर्थावत्। '९४५ अचतुर-। ५१४।७७।' इत्यादे निपातितः। '६९१। अत्यन्तसंयोगे च ।२।१।२९।' इति द्वितीया। चरणिक्रयायाः कृत्स्वसं-योगात्। यथा मासमुषित इति॥

१५९-तामुंबाच स-'गौष्ठीने वने स्त्री-पुंस-भीषणे ॥

अ-सूर्यं=पश्य-रूपा त्वं किर्म-भीरुर्ररार्थसे. ॥ २१॥

तामित्यादि—राक्षसीं छक्ष्मण उवाच उक्तवान् । किमिलाह-गौष्ठीने वने गोष्ठं भूतपूर्वं यसिन्वने । इदानीं नामापि न ज्ञायते । '१८१९। गोष्ठात् सब्द्र भूतपूर्वे ।पारा१७।' इति खब्द । खीपुंसभीषणे । स्त्री च पुमांश्चेति स्त्रीपुंस्सी । '९४५। अचतुर-।पा४।७७' इत्यादौ निपातितौ । तयोर्भीषण इति षष्ठीस-मासः । विभेतेणिचि हेतुभये पुक् । तदन्तात् '२८४१। इत्यल्युटो बहुस्स्म् ।३१३।१५३।' इति कर्वरि हयुद्द। तसिस्यसीहः सती किमित्यरार्थसे अल्पर्थमदिस ।

अर्तेः 'सृचि-सृत्रि—' इत्यादिना यङ् । '२६३३। यक्ति च ।७।४।३०।' इति गुणः '२४४६। न न्द्राः १६।११३।' इति प्रतिषेघस्य प्रतिषेघो यकारपरस्य न द्विष्विनिषेध इति रेफो द्विष्ठच्यते । भयशीला भीषः । '११५४। भियः कुक्कुकनौ ।३।२ १७४।' कियाशब्द्रस्यात् '४२१। ऊङ्कृतः ।४।१।६६।' इति ऊङ् न भवति । अमनुष्यत्वाच । तथादि लक्ष्मणेनामानुषीयमिति ज्ञाता । तथाच भङ्ग्या दर्शयद्या- इ—असूर्यम्पश्यरूपा । अतिगोपनीयतया सूर्यमण्यनिषिद्धदर्शनं न पश्यतिति । '२५५१। अ-सूर्य-ललाटयोः—।३।२।३६।' इत्यादिना खङ्ग् । '२३६०। पान्ना—।७।३।७८।' इत्यादिना पश्यादेशः । असूर्यम्पश्यं रूपं यस्या इति समासः सा न पश्यतीति रूपमि न पश्यतीत्युक्तम् ॥

१६०—मानुषानंभिलंबन्तो रोचिष्णुर् दिव्य-धर्मिणी॥ त्वर्मप्सरायमाणेह स्वन्तन्त्रा कथर्मञ्चसि.॥ २२॥

मानुपानित्यादि—मनोरपत्यानि सानुषाः । '११८५। मनोजांतावन्यता
युक् च ।४।१।६२।' तानिमेलप्यन्ती कासयन्ती रन्तुमिच्छन्ती । '२३२१। वा
आश-१३।१००।' इत्यादिना १यन् । रोचिष्णुः रोचनस्वभावा । '३११६। अलकृष्य-१३।१।१३६।' इत्यादिना इष्णुच् । अत एव दिव्यधर्मिणी । दिवि भवा
दिव्या देवाः । राक्षसा अपि देवयोनित्वात् । तेषां धर्मः स्वभावः सोऽस्या असीति । '१९३८। धर्म-शील-१५।२।१३२।' इत्यादिनेतिः । अप्तरायमाणा अप्तररा इवाचरन्ती । राक्षसभावं गोसुमिति भावः । 'उपमानादाचारे' इत्यधिकारे
'२६६५। कर्तुः क्यक् स-लोपश्च ।३।१।९१।' 'ओजसोऽप्सरसो नित्यम्' इति वचनात् । इह वने स्वतन्ना कथमञ्जसि अमसि । स्व आत्मा तन्नः प्रधानं यसाः ।
अपराधीनत्वात् । अनयोक्ता राक्षसीत्वं द्शीयति ॥

१६१—उम्रंन्परयाऽऽकुले ऽरण्ये शालीनन्त्व-विवर्जिता ॥ कामुक-प्रार्थना-पट्टी पतिवली कथं न वा. ॥ २३ ॥

उन्नित्यादि—डमम्परयन्तीत्युमम्परयाः । पापाशयत्वात् । शबरादयः । '२९५२। उम्रम्परय-।३।२।३७।' इत्यादिना खन्न निपास्यते । तैराकुले व्याप्ते अरण्ये । पतिवत्नी जीवत्पतिः कथं केन प्रकारेण न वा नैवं भवसीत्यर्थः । '१८९। अन्तर्वत्पतिवतोर्जुक् ।१।१।३२।' इत्यत्र पतिविद्यते अस्या इति मसुप् सिद्धः । जीवत्पत्यां मतुपो यत्वं निपास्यते । जुक् सूबेणैव विश्वीयते । डीप्प्रस्वयस्त्तित्वा-देव सिद्धः । शालीनत्वविवर्जिता । अष्टष्टतया वर्जिता । शालाप्रयेशमर्हतीति '१८२१।शालीन-कौपीने—।५।२।२०।'इति खन्न निपास्यते । अष्टप्टेऽभिधेये प्रवेश-शब्दस्य लोपः । तस्य भावः शालीनत्वम् । कामुकः कामशीलः । '३१३॥ व्याद्या उक्त्य । तस्य निपास्ति । भूष्टी चतुरा । '५०२। व्यादिना उक्त्य । तस्य भावः विश्वीप् ॥

१६२-राघवं पर्ण-शालायामिन्छा ऽनुरहसं पतिम् ,॥

यः स्वामी मम कान्ताःवानौपकणिक-लोचनः ॥२४॥

राधविमित्यादि—रामं पर्णशालायामवस्थितं पतिमिच्छ । अनुरहसं विवेकप्राप्तमनुगतो रह इति विगृह्य '९४९। अन्ववततामृहसः ।५१४।८९।' इत्वच् । यो
राधवो ममापि स्वामी प्रमुः । '२९३२। स्वामिन्नैश्वर्षे ।५।२।१२६।' इति निपातितम् । कान्तावान् समार्थः । प्रवृत्तसम्भोगोऽसौ नाहमिति दर्शयति । तमेव स्पशौर्याभ्यां वर्णयन्नाह—औपकर्णिकलोचनः। कर्णयोः समीपसुपकर्णम् । समीपार्थेप्रव्ययीभावः । तस प्रायभव इति । '१४१५। उपजान्यकर्णोपनीवेष्ठक् ।४।३।
४०।' रोषमपि शब्दहयं प्रयोद्यते । औपकर्णिके लोचने यस्य । कर्णान्तायतलोमन इत्यर्थः ॥

१६२-वपुरा चान्दनिकं यस्य, कार्णवेष्टकिकं मुखम्,॥ संयामे सर्व-कर्मीणौ पाणी यस्यौपजानुकौ.॥ २५॥

चपुरित्यादि — यस राघवस्य वपुः शरीरं चान्द्रतिकं चन्द्रनेन सम्पद्यते प्राप्त-शोमं भवति। मुखं च कार्णवेष्टिकिकम्। कर्णवेष्टकाम्यां कर्णाटङ्काराभ्यां कार्णवेष्ट-किकम्। तत्रोभयत्र '१७६३। सम्पादिनि ।५।१।९९।' इति उक्। पाणी हस्तौ संप्राप्ते युद्धे सर्वकर्माणौ घनुःखङ्कादिन्यापारकर्माणि व्यामुतः। '१८०८। तत्स-विदे:—।५।२।७।' इति खः। औपजानुकौ आजानुकौ। आजानुकम्बावित्यर्थः। अत्र टक्। '१२२१। इसुसुक्तान्तात्कः।७।३।५१।'॥

१६४-बद्धो दुःर्वल-रक्षाऽर्थमंसिर् येनोपनीविकः,॥

यश् चापमारमन-प्रक्यं सेषुं धत्तेऽन्य-दुःर्वहम्. ॥२६॥

बद्ध इत्यादि—येन असिः खड्डः औपनीविकः। नीविसमीपे प्रायेण भव-तीति। स हि नीवीं प्राप्य वर्तमानः पार्श्वयोश्रोध्वं निवदः। किमर्थं—दुर्वलर-क्षार्थं दुर्वलरक्षाये इदमित्यस्मिन्नथें चतुर्थो। तद्येत्यादिना सः। तन्नार्थेन नित्य-समासः सर्वलिङ्गता च। यक्षापं धनुर्धते धारयति। आत्रमनप्रस्यम्। अत्रमनो विकार इत्यप्। '११५५। अन्।६।४।६६७।' इति प्रकृतिभावे प्राप्ते आरमनो विकार उपसङ्ख्यानसिति टिलोपः पाक्षिकः। विभाषजीरित्यतो मण्डूकञ्जत्या विभाषाग्रहणानुवृत्तेर्विकारे वाच्ये। अन्यन्नाश्मन एव भवति। आश्मनेन प्रस्या साहत्यमस्य तदारमनप्रस्यमुपलघटितमिव। सेपुं सन्तरम्। अन्यदुर्वहं दुःखेनो-द्यत इति खद्ध। रामादन्येन दुर्वहासित्यर्थः॥

१६५-जेता यज्ञ-द्वहां संख्ये धर्म-सन्तान-सूर् वने ॥

प्राप्य दार-गवानां यं मुनीनामं-भयं सदा.' ॥ २७ ॥ जेतेत्यादि यज्ञाय दुझन्तीति यज्ञद्वहो राक्षसाः। '२९७५। सत्सृद्धिष-१।२६१' इत्यादिमा किए तेषां संमामे नेता। वृजन्तोऽयम् । उत्तम इत्य- 60

योगे कर्मणि वही । धर्मसन्तानस्ः पूर्ववत् क्रिप् । धर्मरत इत्यर्थः । वने वर्त-मानानां मुनीनां वानप्रस्थादीनामित्यर्थः । तेषां भार्याप्रिपरिप्रहात् यानि दार-गवानि । दाराश्च गावश्चेति दारगवानि '९४५। अचतुर-५।४।७७।' इत्यादिना निपातितानि । दारयन्तीति दाराः । 'दारजारौ कर्तरि णिलुक्च' इति घञ् । तेपां च येनाभयं सदा दत्तमिति योज्यम् । येपामेव प्राप्तिकिया तेपामेवाभय-मिति समानकर्तृकस्वम् ॥

१६६—ततो वावृत्यमाना ऽसौ राम-शालां न्यविक्षत, ॥ 'मार्मुपायंस्त रामें'ति वदन्ती सा॒ऽऽदरं वचः. ॥२८॥

तत इत्यादि — ततो स्वक्ष्मणवचनानन्तरमसौ राक्षसी वावृत्यमाना रामं **वृण्वाना । '**१२३५। वा वृतुँ वरणे ।' इति दैवादिकः आत्मनेपदी । रामशार्**ा** रामस्य पर्णकुटीरं न्यविक्षत प्रविष्टा । विशे: '२३३६। शल इगुपघादनिटः इसः ।३।१।४५।'। '२६८३। नेविंशः ।१।३।१७।' इति तङ् । मामुपायंस्त रामेति हे राम अर्ह प्रार्थेये भवान् मासुपायंस्त परिणयस्विति वाक्यभेदेन योज्यम् । '२७-९०। आर्श्नसायां भूतवच ।३।३।१३२।' इति लुङ् । '२७२९। उपाद्यमः स्वकरणे ।९।३।५६। दृति तङ् । '२७३०। विभाषोपयमने ।१।२।१६।' । इत्यकित्वपक्षे रूपस् । इत्येवं वचः सादरं वदन्ती ॥

१६७-(अन्स्रीको ऽसार्वहं स्त्री-मान्, स पुष्यति-तरां तव ॥ पतिरित्यंत्रवीद् रामस्-'तमेव त्रज, मा मुचः.'॥२९॥

अस्त्रीत्यादि - असौ लक्ष्मणोऽस्त्रीकः। न विद्यते अस्य स्त्रीति। '८३३। नशृतश्च । पाशा १५३। दित कप्। '८३७। न कपि। ७।४।१४। इति हस्बप्रतिषे-धः। अहं पुनः स्त्रीमान् सभार्यः। प्रशंसायां मतुप्। स एव लक्ष्मणः। पुष्य-तितराम् अतीव पुष्यति लक्ष्मणस्तव पतिः। '२००२। तिङ्श्र ।५।३।५६।' इति तरप्। '२००४। किमेत्ति—१५१४। १३।' इत्याम्। तस्मात्तमेव लक्ष्मणं वज गच्छ। **मा मुचः मा** लाक्षीः । मुचेर्लङ् । रुदिन्वादङ् । इति प्वमववीदामः उक्त-वान्।आदादिकस्य बूजो लक्डि '२४५२। ब्रुव ईट् ।७।३।९३।' इति ईटि रूपम् ॥

१६८—ऌक्ष्मणं सा वृषस्यन्ती महोक्षं गौरिवां ऽगमत् ॥

मन्मथाऽऽयुध-सम्पात-व्यथ्यमान-मतिः पुनः, ॥३०॥

लक्ष्मणिमत्यादि — लक्ष्मणं पुनर्भूयोऽगमत् । लक्ष्मणं प्रति गता । यथा गौर्वृषस्यन्ती मैथुनेच्छावती महोक्षं महावृषम् । वृषस्यन्तीत्युपमानविशेषणमे• तत् । तेन वृषं लब्धुमिच्छन्तीति क्यच् । '२६६९ अश्व-क्षीर-।७।१।५३।' इत्यादिना असुक् । तन्धश्रवृषयोर्मेशुनेन्छायामिति । तद्वदागमत् । महोक्षमिति '९४५। अचतुर-।५।४।७७।' इत्यादिसूत्रेण निपातितम् । मन्मथस्यायुधानि शराः। भायुष्यन्ते एमिरित्यायुषानि वर्षर्थे संश्रेष तसास् मतिर्मनो यस्या ॥

१६९-तस्याः सासद्यमानाया लोल्र्याःवान् रघूत्तमः॥ असिं कौक्षेयमुंद्यम्य चकारांऽपःनसं मुखम्.॥ ११॥

तस्या इत्यादि—सासस्यमानायाः समीपे गर्हितं सीदन्याः प्रविश्वन्याः । '२६३५। छप-सद्-।३।११२४।' इत्यादिना यङ् । रधूतमो छक्ष्मणः । मुखमप-नसमपगतनासिकं चकार । '८५८। उपसर्गाच ।५।१।११९।' इत्यन् । नासिका चन्सादेशमापद्यते । तत्र संज्ञायामिति नानुवर्तते । किं कृत्वा-कोञ्चेयमिसमुद्यम्य उत्थिष्य । छक्षो भव इति '१४३३। इति-कुक्षि-।४।३।५६।' इत्यादिना दन् । कोक्षेयः । लोल्प्यानम् अत्यर्थं छवनिकयायुक्तः । लुनातीति लोल्प्या । यहन्ताद् '३२७९। अपस्यात् ।३।३।१०२।' इत्यकारः । सा विद्यते यस्येति मतुष् ॥

१७०-'अहं झूर्पःणखा नाम्ना नूनं नां ऽज्ञायिषि त्वया,॥ दण्डो ऽयं क्षेत्रियो येन मय्यंपाती'ति सा ऽब्रवीत्.॥ ३२॥

अहमित्यादि—सा राक्षसीत्यवदीत्। अहं शूर्पणखेति नामा नृनमवद्यं त्वया नाज्ञायिपि न ज्ञातासि । ज्ञा इत्यसात्कर्मणि छुङ् । '२७५७। स्य-सि-।६।४।६२।' इत्यादिना अजन्तत्वात् चिण्वदिद् । '२०६१ आतो युक् १७१३।३३।' इति युक् । '५१०। स्वाङ्गाच ।४।१।५४।' इति क्षीषि प्राप्ते '५१४। नस्रमुखात् संज्ञायां ।४।१।५८।' इति प्रतिषेधः । '८५७। पूर्वपदात्संज्ञायां—।८।४।३।' इति णत्वम् । अज्ञाने कारणमाह—येनायं दण्डो नासाच्छेदनळक्षणो मय्यपाति पातितः । पातेः कर्मणि छुङ् । चिणादेजः '२२८२। अत उपधायाः ।७।२।१९६।' इति वृद्धः । '२३२९। चिणो छुक् ।६।४।९०४।' झेत्रियः परक्षेत्रे चिकित्यः परक्षेत्रे जनमान्तरशरीरे यदि शक्यश्चिकित्स्यः तदा नासिकायाः सम्भवात् । '१४९२ क्षेत्रियच् परक्षेत्रे चिकित्सः ।५।२।९२।' इति निपातनम् ॥

१७१-पर्यशाप्सीद् दिविन्षा ८सौ संदर्श्य भयन्दं वपुः॥ अपिस्फवच् च बन्धूनां निनङ्क्षुर् विक्रमं मुहुः॥३३॥

पर्यद्वाप्सीदित्यादि — असी राक्षसी पर्वशाप्सीत् आकष्टवती । शपेरिनटः सिचि हल्नतलक्षणा वृद्धिः । शप उपालस्मन इति तक् न भवति उपालस्मनं हि वाचा शरीरस्पर्शनम् । दिविष्टा नमसि वर्तमाना । '९७२। तत्पुरुषे कृति बहुलम् ।६।३।१४।' इति ससम्या अलुक् । '२९१८। अम्बाम्ब—।८।३।९७।' इति पत्वम् । भयदं रौदं वपुः शरीरं संदर्श्य दर्शियत्वा । बन्धूनां विक्रमं शौर्यं युद्धः पुनः । अपिस्कवत् स्कीतीचकार । '२५७०। अतिही—।७।३।३६।' इता विकारः । स्काय-

भद्रि-काठ्ये-प्रथमे प्रकीर्ण-काण्डे लक्षण-हपे चतुर्थी वर्गः. 43

तैश्रक्ति गिलोपः । हस्वद्विवैचनादि । अभ्यासस्य खयः रोषः । चर्त्वमित्वं च

सम्बद्धावे । निसङ्कृक्षः नष्टुमिच्छुरिल्पर्थः । नशेः सनि '२५१७। मस्जि-नशोईन्छि । जाशह । व इति सुम्।।

१७२-खर-दूषणयोर् भात्रोः पर्यदेविष्ट सा पुरः,॥

विजिन्नाहियषू रामं दण्डकाऽरण्य-वासिनोः.॥ ३४॥

खरेत्यादि — खरदू वणयोश्रीत्रोईण्डकारण्यवासिनोः पुरः अप्रतः पर्यदेविष्ट

परिदेवनं कृतवतीति । '५३४। देवूँ देवने ।' इससादात्मनेपदिनः सेटो लुक्ति रूपम् । परिदेवने कारणमाह-विजियाहयिषुः रामं वियाहयितुं योधयितुमि-च्छुः । ग्रहेर्ण्यन्तस्य सञ्चन्तस्य रूपम् । '१७३। रोरि ।८।३।१४।' इति रेफलोपः।

'१७४। ब्-रुगेपे-।६।३।१११।' इति दीर्धत्वम् ॥ कि पर्यदेविष्ट इत्याह-

१७३-'कृते सौभागिनेयस्य भरतस्य विवासितौ ॥

पित्रा दौर्भागिनेयौ यौ, पश्यतं चेष्टितं तयोः.॥३५॥

क्रते इत्यादि-भरतस्य कृते कार्यनिमित्तं राज्ये अभिवेक्तव्यमिति। सभगा केकथी तस्या अपत्यं सौभागिनेयः '११२३। स्त्रीम्यो दक् ।४।१।१२०।' कल्या-

ण्यादीनामिनङ् । तत्र सुभगा दुर्भगा चेति पळते । '११३३। हद्भग-।७।३।१९।' इत्यभयपद्वृद्धिः । पित्रा यो विधासितौ निष्कासितौ दौर्भागिनेयौ कौसल्या सुमित्रा च दुर्भगे तयोरपत्ये रामछक्ष्मणौ तयोश्चेष्टितं नासाच्छेदनं पृत्यतस् ।

विधौ प्रार्थनायां वा लोद । थससम् ॥ १७४--मम रावण-नाथाया भगिन्या युवयोः पुनः ॥

क्षमध्वं, यदि वः क्षमम्.॥ ३६॥

अयं तापसकादु ध्वंसः,

मेमेत्यादि — रावणो नाथः प्रभुर्थस्याः सम विशेषणम् । युवयोर्भगिन्या अयं

तापसकात् कुतापसात् । कुत्सायां कन् । ध्वंसी नासिकाविनाशः । यदि वः युष्माकं गुरूणां क्षमं युक्तस् क्षन्तुभित्यर्थात् । युष्मदि गुरावेकेपामिति बहुवचनं तयोज्येष्ठत्वात् । तर्हि क्षमध्वं उपेक्षध्वम् । रावण एव ज्ञास्यतीति भावः ॥

पुनरप्येजयितुसाह— १७५-अ-संस्कृत्रिम-संच्यानार्वनुष्त्रिम-फलाशिनौ ॥

अ-मृत्रिम-परीवारौ पर्यमूतां तथापि माम्. ।। ३७॥ असमिलादि—संस्कारेण वापेन भरणेन च निर्वृत्तं संस्कृत्रिमम् । उद्गित्तं

मृत्रिमं च '३२६६ क्वित क्विः ३३८८' क्लेमेंम् निखम् '२५५० सप~ **र्व**पेम्य ६ १ १३७ ' इति सुद् सम्पूर्वस्य क्रविदमूवणे-ऽपीच्यते सस्कृत्रिम

न विद्यते चेषामिति नञ्समासः। असंस्कृतिमाणि संव्यानानि परिधानानि उत्त-रीयाणि ययोः। वस्कवाससावित्यर्थः। अनुष्तिमाणि फलानि अज्ञानमाहारो ययोः तौ वन्यफलाहारौ न शालिमोजनौ। परिवियतेऽनेनेति घञ् '१०४४। उपसर्गस्य घनि–। ६। ३। १२२। दिति दीर्घः। सगाणाममनुष्यत्वात्। असृतिमः परीवारोऽनुजी-विलोको ययोस्तौ सगपरीवारौ। तथापि मां पर्यभूतां परिभृतवन्तौ। लुक्टि रूपम्॥ १७६–'श्वःश्रेयसम्वासासि' स्नातृभ्यां प्रस्माणि सा–॥

प्राणिवस् तव मानाुऽर्थं, त्रज्ंऽऽश्वसिहि, मा रुदः ॥

श्वःश्रेयसमित्यादि भःशब्दः प्रशंसामाह । शोभनं श्रेय इति वानये '९४८। श्वसोवसीयः श्रेयसः ।५।४।८०।' इत्यच् । मयूरव्यंसकादित्वात् सः । श्वः-श्रेयसं कल्याणमवासासि प्राप्ससि । भविष्यद्नद्यतने छुद्द । मारयावसावित्युक्तं भवति ताभ्यां आतृभ्यां प्रत्यभाणि प्रतिभणिता सा । कर्मणि छुद्द । प्राणिवस्तव मानार्थम्। तव मानस्वण्डनं मा भूदिति जीवावः । '११४३।श्वसं प्राणने' '११४४। अनं च'। '२४७४।हदादिभ्यः सार्वधातुके।०।२।०६।'इति इट्। '२४७८। 'अनितेः।८।४।१९।' इति णवम् । तसाद् वज यथास्थानं गच्छ । आश्वसिहि उद्वेगं त्यज । विधी प्रार्थनायां वा लोद्द । मा हदः । '२२१९। माङि छुट्छ ।३।३।५७५।' '२२६९। इरितो वा ।३।१।५७।' इत्यङ् यदा नास्ति तदा मा रोदीरिति ॥

१७७-जक्षिमो ऽनुपराघेऽपि

नरान् नक्तं-दिवं वयम्, ॥ कुतस्-त्यं भीरु ! यत् तेभ्यो द्वह्यद्भो ऽपि क्षमामहे.' ॥ ३९॥

अधिम इत्यादि—वयं अनपराधेऽपि । नक्तं च दिवा च नक्तन्दिवम्। १९४५।अचतुर-।५।४।७७।'इति निपातितम्। नरान् अक्षिमो भक्षयामः। '१९४५। जक्ष भक्ष-हसनयोः।' इति भक्षार्थस्य '२४७४। रदादिभ्यः—।७।२।७६।' इतीद् । '८१८। असादो द्वयोश्च ।१।२।५९' इति द्वित्वे वयमिति वहुवचनम्। यत एवं हे भीरु ! संबुद्धौ गुणो न भवति 'संज्ञापूर्वको विधिरानित्यः' इति । इतस्त्यम् कृत एतदागतम्। '१३२४। अव्ययात् त्यप्।४।२।५०४। अमेहकतसितेभ्य इति त्यप्। तेभ्यो नरेभ्यो द्वद्धाव्योऽपि द्वोहं कुर्वाणेभ्योऽपि क्षमामहे। नैवेत्यर्थः। '५७५। कुष्य-द्वह—।१।४।३७।' इति सम्प्रदानत्वस्। क्षमेर्गम्यमानो नजर्थसस्या-स्यार्थत्वात् क्षमध्वं यदि वः क्षममित्यस्य प्रतिवचनम्॥

१७८-तौ चतुर्दश-साहस्रवलौ निर्ययतुम् ततः॥

पारश्वधिक-धानुष्क-शाक्तिक-प्रासिकाऽन्वितौ.॥४०॥

तावित्यादि — ततो निगदनादुत्तरकालं निर्थयतुर्निर्गतवन्तौ । चतुर्दशसह-स्नामि परिमाण यस बक्स तदस्य १६९२ सत मानविशतिकसहस्रवसनादण् ।५।१।२०। भागवतेः । '१०५२। सङ्ख्यायाः संवत्सर्
।७।३।१५। 'इत्युक्तरपदृष्टद्धः । चतुर्दशसाहस्रं वर्षं ययोः तो । तथा पारश्वधिकधानु-क्रियाष्ट्रिकप्रसिकान्वितो । परश्वधः प्रहरणसेवामिति '१६०८। परश्वधानस्य ।११

ब्बराष्ट्रिकमस्तिकान्वितौ । परश्वधः महरणमेषामिति '१६०८। परश्वधात् ठब् ।।। ४।५८।' तथा धनुः महरणमेषां । यष्टिः महरणमेषामिति '५६०९। शक्ति-यष्ट्यो-

रीकक् ।श्राथाप्रश्रायाः कुन्तः प्रहरणिमधौत्सर्गिकष्ठक् । तत्र धनुपष्टक् । १२२१। इसुसुक्तान्तात्कः ।७।३।५११' ततः सेनाङ्गत्वात्कृतैकवङ्गावः तेनान्वितावनुगतौ ॥

१७९-अथ सम्पततो भीमान् विशिखै राम-स्थमणौ॥ बहु-मूर्झी द्वि-मूर्धार्थं त्रि-मूर्धांश् चौ ऽहतां मृधे. ४१

अश्रेत्यादि — अय एतस्मिन् प्रसावे रामलक्ष्मणी मृधे संव्रामे विशिष्तेः शरे-रहतां हतवन्तो । हन्तिः परसीपदी तसाछिक तससाम् । तस्य किस्वे '२४२८। अनुदात्त-।६।४।३७।' इत्यादिना अनुनासिकलोपः । कान्-राक्षसान् । विशे-घणोपादानात् विशेष्यप्रतिपत्तिः । प्रकृतत्वाद्वा । सम्पततोऽभिपततः । बहुमूर्झो बहुशिरसः । तथा हिमूर्थासिमूर्थाश्च । '८५४। हि-न्नि-भ्यां च मूर्झः ।५।४।३१५।' इति समासान्तः षः । अत एव भीमान् भयानकान् । न्निमूर्थाश्चेत्यत्र '१४०। नश्क्यप्रशात् ।८।३।७।' इति रुः । पूर्वस्य त्वसुनासिकः । '१३८। विसर्जनीयस्य

१८०—तेर् वृक्ण-रुग्ण-सम्भुग्न-क्षुण्ण-भिन्न-विपन्न-कैः॥

सः । ८।३।३४। ' इति चुत्वम् ॥

निमग्नोद्विग्न-संहीणैः पत्रे दीनैश् च मेदिनीः॥ ४२॥ तैरित्यादि—तैः राक्षकैर्मेदिनी पत्रे प्रिता। '११३५। प्रा पूरणे।' इत्य-

सास्तमीण लिह। वृक्णैः छिन्नैः । रूग्णैः भझहस्तपादैः । सम्भुसेः वक्रीकृतदेहैः । धुण्णैः सिन्प्रियशिरेः । भिन्नैः विदारितैः । विपन्नकैः नष्टैः । '२०३१। अनुक्रम्पायां कन् ।पाइ।०६।' निमन्नैः परिभृतैः । उद्विन्नैभीतैः । संहणिर्लक्षित्तैः । वयमपीद्दशीं दशां प्राप्ता इति । दीनैः हा मातः हा आतरित्येवं भापमाणैः । तत्र वृश्चि-रुजि-सुजि-मस्जि-विजि-भ्यो निष्टायां '३०१९। ओदितश्च ।८।२।४५।' इति नत्वम् । '३७८। चोः कुः ।८।२।३०।' इति कुः । श्चिदि-भिदि-पदि-भयो '३०१६। र-दाभ्यां—।८।२।४२।' इति दस च नः । संहीण इति '३०३७। नुद-विद-।८।२।

र-दाभ्यां—।८।२।४२।' इति दस च नः । संहीण इति '३०३०। नुद-बिद्—।८।२। ५६।' इसादिना । '१२०६। दी-ङ् क्षये ।' इसस्य स्वादय ओदितः इति '३०१९। ओदितश्च ।८।२।४५।' इति नत्वम् ॥

१८१-के-चिद् वेपथुमसिदुर्गन्ये दवधुर्मुत्तमम् ,॥ स-रक्तं वमथुं केचिद्, स्त्राजधुं न च के-चन.॥४३॥

केचिदित्यादि - तेषां मध्ये केचित् वेपशुं करपम् । '३९३। हु-वेपूँ करपने ।' आसेदुः प्राप्ताः । मन्ये महान्तम् । '१३३६। हु-दुं छप

तापे केचिद्रमथु छर्दन सरक सन्नोणितम् ९०६ द्व-वर्मे उद्गिरणे आजधुं

शोभां नैव केचन न केचिदपि '८०८। डु-भ्राज़ुँ दीसौ ।' सर्वन्न '३२६७। द्वितो-ऽथुच् ।३।३।८९।'॥

१८२-मृगयुमिव मृगो ऽथ दक्षिणेर्मा, दिशमिव दाह-वर्ती मराबंदन्यन्,॥ रघु-तनयर्मुपाययौ त्रि-मूर्घो, विषभृदिवींग्र-मुखं पत्रि-राजम्,॥ ४४॥

मृगयुमित्यादि — अथैतस्मिन् राक्षसिवध्वंसनप्रसावे त्रिमूर्यः त्रिशिरा नाम राक्षसः रघुतनयमुपायमे उपागतः । सगयुमिव लुब्धकमिव । सृगान् यातीति सृगयुः । सृगय्वादयश्चेत्योणादिककुप्रस्थान्तः । दक्षिणेमी दक्षिणे ईमै वर्णं यस्येति । '८३५। दक्षिणेमी लुब्धयोगे ।५।४।१२६।' इस्यिन् । यथा सृगो लुब्धकवणि- वद्क्षिणाङ्गः तमेव मरणायोपयाति । दिशमिव दाहवतीं यथा दिशं दावान्नियुतां मरौ निर्जले देशे सृग उदन्यन् उदकपानाभिलाष उपयाति । उदकमिक्लि । '२६५०। सुप आत्मनः —।३।१।८।' इति क्यच् । उदकस्योदन् भावः । '२६६१। असनायो —।७।४।३४।' इस्यादिना निपातितः । तदन्ताल्लद्द शतृप्रस्ययः । विषमुद्दिव यथा विषयरः सर्प उप्रमुखं भीपणमुखं पतित्रराजं गरुडमुपयाति तद्वत्तमिनति । '०८८। राजाऽहःसिलस्यष्टच् ।५।४।९१।'॥

१८३— शित-विशिख-निकृत्तकृतस्त-वक्रः क्षिति-भृदिव क्षिति-कम्प-कीर्ण-शृङ्गः ॥ भयर्भुपनिद्धे स राक्षसानाम् अ-खिल-कुल-क्षय-पूर्व-लिङ्ग-तुल्यः.॥ ४५॥

द्यित्यादि—त्रिम्धं राक्षसानां भयसुपनिदधे उपनिहितवान् । कीदशः त्रित्विशिलेसीक्ष्णविशिलेः निकृत्तानि छिन्नानि कृत्सानि सर्वाणि वक्षाणि सुखानि नि यस सः । क्षितिसृदिव सूधर इव । कीदशः क्षितिकम्पकीर्णशुक्तः क्षितेर्भूमेः कम्पेन कीर्णानि क्षिशानि शुक्षाणि यस क्षितिसृतः । अखिलस्य सर्वस्य कुलस्य क्षये विनाशे यत् पूर्वं लिक्षं तेन तुल्यः असावष्यखिलशक्षसक्षयस्य पूर्वेलिङ्गतुल्यः ॥

इति श्री-जयमङ्गलाऽऽख्यया व्याख्यया समलंकृते श्री-भहिकाव्ये-प्रथमे कक्षण-काण्डे लक्षणरूपे चतुर्थः परिच्छेदः (वर्गः), तथा लक्ष्य-रूपे कथानके श्री-राम-प्रवासी नाम चतुर्थः

सर्गः पर्ववसितः।

१ — सर्गान्तत्वाद् वृत्त-भेदः । दद्रधस्त्रमः जातौ 'पुष्पिताम्रा'नाम । तत्त्रक्षणम्— "अयुज्ञि न-युग-रेफ-तो यकारो, युजि च न-जौ जर-गाश्च च पुष्पिताम्रा ॥" इति-वृत्तरसाकरे भट्ट-केदारः । २—(१८२) श्लोक-स्थं टीकनं प्रेक्ष्यम् ।

पञ्चमः सर्गः-

१८४-निराकरिष्णु वर्तिष्णु वर्धिष्णु परतो रणम् ॥

उत्पतिष्णू सहिष्णू च चेरतुः खर-दूषणौ, ॥ १ ॥

निरेत्यादि—खरवूषणौ रणं परितः समन्तात् । 'अभित-' इत्यादिना दि-नीया । चेरतः आन्तौ । निराक्तिरण् शत्रुनिराकरणशीलौ । वर्तिण् अभिमुन्तं वर्तनशीलौ न पलायनशीलौ । वर्धिण् मायया महाप्राणोद्धावनशीलौ । उत्प-तिष्णू नभ उत्पतनशीलौ । सहिष्णू शस्त्रप्रहारसहनशीलौ । सर्वत्र '३११६। अलंकुन्-।३।२।१३६।' इत्यादिना इष्णुच् ॥

१८५-तौ खङ्ग-मुसल-प्रास-चक्र-वाण-गदा-करौ ॥

अकार्ष्टामायुध-च्छायं रजः-सन्तमसे रणे. ॥ २ ॥

ताचित्यादि—रण रणभूमौ रजःसन्तमसे । सङ्गतं तमः सन्तमसम् । '९४०। अवसमन्धेभ्यस्तमसः ।५।४।०९।' इत्यच् । रजसा सन्तमसं अस्मिन् इति रजःसन्तमसं तस्मिन् रजसा कृतान्धकारे तौ खरदूषणौ आयुधन्छायमायुधवा- दुख्यमकाष्टीम् कृतवन्तौ । आयुधानां छायेति '८२५। छाया-बाहुक्ये ।२।४।२२।' इति नपुंसकत्वे हस्वत्वम् । खङ्गादीनां बाणान्तानां इन्द्रैकवद्मावं कृत्वा पश्चात्तेन सहिता गदेति शाकपार्थिवादित्यात् सः । अन्यथा समुदायस्य '९१०। जातिर-प्राणिनाम् ।२।४।६।' इत्येकवद्मावेन नपुंसकिकङ्गता स्यात् बाणगदमिति । खङ्गमुसलप्रासचकवाणगदाः करे येषामिति समासे प्रहरणार्थेभ्य इत्यादिना करशब्दस्य परनिपातः ॥

१८६-अथ तीक्ष्णाऽऽयसैर् बाणैरेधि-मर्म रघूत्तमौ ॥

व्याधं व्याधमं-मृदौ तौ यम्-साच्-चऋतुर् द्विषौ. ॥३॥

अश्रेखादि — अश्रेतिसिन् संप्रामे रघूतमो रामलक्ष्मणो कर्नुभूतो । कर्मभूतो द्विषाविति । '२९७५। सस्सृद्विप-१३१२१६१।' इत्यादिना किष् । यमसाचकतुः यमाधीनो कृतवन्तो । '२१२५। तद्वीनवचने ।५१४।५४।' इति सातिः । तीक्ष्णा-यसैवाणैः । तीक्ष्णमायसं फलं येषामिति । व्यापं व्यापं विद्धा विद्धा । '३३ ४३। आमीक्ष्ये णमुल ।३१४१२।' तत्र '३३२०। समानकर्नुकयोः पूर्वकाले ।३१४१२।' इति वर्तते । 'आभीक्ष्ये हे भवतः' इति द्विचनम् । अधिमर्मेति विभक्त्येथेऽव्ययीभावः । अमुदौ सावधानौ रामलक्ष्मणो ॥

मर्भवेधमेवाह--

१८७-हत-बन्धुर् जगार्मा ऽसौ ततः शूर्प-णखा वनात् ॥ पारे-समुद्रं लङ्कायां वसन्तं रावणं पतिम्. ॥ ४॥ हतेत्यादि—असौ भूर्षणसा हतवन्य ततो वनावण्य कारण्यात् रावणं पति प्रभुं शरणं जगाम गतवती । परिसमुद्रम्। समुद्रस्य पार इति '६७२। पारे मध्ये षष्ट्या वा ।२१३११८।' इत्यव्ययीभावः । तत्सिन्नियोगेन पूर्वपदस्यैकारान्तत्वम् । पश्चात्ससमी । '६५७। नाव्ययीभावात् २।४।८३।' इत्य-स्भावः । समुद्रस्य पारे स्थितायां छङ्कायां वसन्तं रावणमिति ॥

१८८-संप्राप्य राक्षस-सभं चक्रन्द कोध-विह्वला, ॥

नाम-प्राहर्मरोदीत् सा भातरौ रावणाऽन्तिके. ॥५॥

संप्राप्येत्यादि — सा शूपंणखा राक्षससमं संप्राप्य होकिःवा । राक्षसानां समेति '८२६। सभा राजा—१२।४१२३।' इत्यादिना नपुंसकता । चक्रन्द क्रन्दनं क्रुतवती । क्रोधविद्वला क्रोधविवशा । आतरो खरदूषणावरोदीत् रुदितवती । नामग्राहं नाम गृहीत्वा । आतरो खरदूषणाविति । '३३८०। नाम्यादिशिष्ठाहोः ।३।३।५८।' इति णमुल । अत्र नामग्रहणविशिष्टाया रोदनिक्रयाया व्यासुमिष्ट-त्वादुदिः सक्मेकः । रावणान्तिके रावणसमीपे । सप्तम्यधिकरणे चेति चकारा- दूरान्तिकार्थेभ्य इति सप्तमी ॥

तयोः किं जातमिति रावणेन पृष्टाह--

१८९-'दण्डकार्नध्यवात्तां यौ वीर ! रक्षः-प्रकाण्डकौ, ॥

नृभ्यां संख्येऽकृषातां तौ स-भृत्यौ भूमि-वर्धनौ ॥६॥

दण्डकानित्यादि — हे वीर! दण्डकान् दण्डकारण्यसिवविशान् अध्यवात्तास् अध्युषितवन्तौ । '१०७४। वसँ निवासे ।' इत्यसाञ्च् । हलन्तलक्षणा वृद्धिः । '२३३२। सः सि ।७।४।४९।' इत्यादिना धातुसकारस्य तत्वम् । '२२८१। झलो झिल ।८।२।२६।' इति सिचो लोपः । रक्षःप्रकाण्डको प्रशस्तौ राक्षसौ । '७४७। प्रश्नांसा-वचनैश्च ।२।३।६६।' इति समासः । ततः स्वार्थे कन् 'स्वार्थिकाश्च प्रकृतितो लिङ्गचचान्यतिवर्तन्ते' इति नपुंसको न भवति । अन्यथा रूढिशब्दाः प्रश्नंसावचना आविष्टलिङ्गत्वादन्यलिङ्गेऽपि जातिशब्दे स्वलिङ्गोपादानादेव समाननाधिकरणाः स्युः । यथा गोप्रकाण्डमिति । तो नृभ्यां मनुष्याभ्यां सङ्घये युद्धे भूमिवर्धनावकृषातां कृतौ । कर्मणि लुङ् । अचिण्वद्भावे रूपम् । वर्धेते इति वर्धनौ । '२८४९। कृत्यल्युदो बहुलम् ।३।३।१९३।' इति कर्तरे ल्युद्द । भूमेर्च- र्धनाविति सः । भस्मीकृतशरीरस्य भूमौ लीयमानन्वात् । सभृत्यौ नैकाकिनो ॥

१९०-विग्रहस् तव शकेण बृहस्पति-पुरोधसा ॥

सार्धं कुमार-सेनान्या, झून्यझ् चौऽसीति को नयः. ७

विग्रह इत्यादि — बृहस्पतिः पुरोधा मन्त्री यस्य शकस्य तेन । कार्येषु पुरो धीयत इति पुरोधाः । पुरःपूर्वाद्धात्रः सर्वधातुभ्योऽसुन् । तथा कुमारः कार्ति-केयः सेनानीर्थस्य । सेनां नयतीति '२९७५। सत्सू-द्विष-।३।२।६१।' इत्यादिना किए । तेन शकेण सार्धं सह तत्र विग्रह आसीत् । इदानीं कार्यनिपुणाभावात् श्रून्यश्रासि '२१९१। तासस्योर्लोपः ।७।४।५०।' इति सकारलोपः । तसास्को-नयः । नय एव न भवतीसर्थः ॥

तदेव दर्शयन्याह-

१९१-यद्यंहं नाथ! नां ऽयास्यं वि-नासा हत-वान्धवा,॥

नां ऽज्ञास्यस् त्विमदं सर्वं प्रमाद्यंश् चार-दुर्-बलः.८

यदित्यादि—विनासा विगता नासा यसाः । नासैव नासिकेति '८३६। केऽणः ।७।४।१३' इति इस्वत्वे रूपं, तस्या नसादेशस्य विधीयमानःवादत्र संभव एव नास्ति । विनसेति पाठान्तरम् । तत्र विगता चासौ नासिका च विनासिका । तत इत्थम्भूतलक्षणायां नृतीयायां '२२८। पद्द्रनोमास्—१६११। ६३।'इत्यादिना नसादेशः । विगतया नासिकयोपलक्षितेस्यधः । विगता नासिका अस्यादिना अच् नसादेशश्च प्राप्ततः । तस्य संज्ञाविषयत्वादुपसर्गाचेत्यसंज्ञायां विधीयमानो न भवति वेग्री वक्तव्य इति ग्रादेशो वाधकः । हे नाथ! यद्यदं विनासा इतवान्धवा नायास्यं न याताऽभविष्यम्, तदा तदिदं सर्व भ्रान्नोर्वधं नासाच्छेदं च नाज्ञासः न श्वातोऽभविष्यः । कियातिपत्तौ रुष्ट् । अज्ञाने कारणमाह—प्रमादन् विषयेषु प्रमादं गच्छन् । चारदुर्वछः चारहीनः । चारा हि चक्षू राज्ञां कार्याकार्यज्ञानाय लोके । चरतीति चरः पचाद्यच् । चर एव चारः '२१०६। प्रज्ञादि—।पाधाइट।' इत्यण् ॥

१९२-करिष्यमाणं विज्ञेयं कार्यं, किं नु कृतं परैः, ॥

अपकारे कृते ऽप्यंज्ञो विजिगीषुर् न वा भवान्.॥९॥

करिष्यमाणमित्यादि—परैः शत्रुभिरपचयचिकीर्षया करिष्यमाणं कार्यं विज्ञेयम् । किं तु कृतमेव यत्तद्वइयमेव विज्ञेयमित्यर्थः । त्वं पुनः परैरपकृतो-ऽपि अज्ञोऽविदितस्वरूपः । अतो विजिगीषुनं वा भवान् । अतो न राज्यं संभावयतीत्यर्थः ॥

१९३-वृतस् त्वं पात्रे-समितैः

खट्टाऽऽरूढः प्रमाद-वान् ॥ पान-शौण्डः श्रियं नेता

नां ऽत्यन्तीन-त्वमुन्मनाः.॥ १०॥

चृत इत्यादि — असन्तं नामिनीति '१८१२। अवारपार — १५१११। इत्या-दिना सः । तस्य भावोऽत्यन्तीनत्वम् । नैवात्यन्तीनामत्यन्तगामिनीं श्रियं नेता न भाषणशीलः । '३११५। तृन् ।३।२।१३५।' इति ताच्छीत्रिकस्तृन् । '६२०। न कोक-।२।३।६९ दित पष्टीप्रतिषेष यद्यपि महोद्यं राज्यं प्राप्तवानसि स्यापि न : यत पानशौण्ड पाने प्रसक्तः १'७१८। ससमी शौण्हैः १२१९१४०' इति सः । अत एव प्रमादवान् । अतोऽपि खद्वारूढः उत्पथप्रस्थितः । '६८८। खट्टाक्षेपे ।२१९१२६१' इति द्वितीया सः । तत एव पात्रेसमितैः भोजन एव सक्षिहितैः अनुजीविभिर्वृतः । '७२५। ए।त्रेसमितादयश्च ।२१९४८।' इति क्षेपे सः ॥

१९४-अध्वरेष्वंग्निचित्वत्सु सोमसुत्वत आश्रमान् ॥ अत्तुं महेन्द्रियं भागमेति वुश्यवनो ऽधुना, ॥ ११॥

अध्वरेष्वित्यादि—त्वय्येवम्भूतेऽधुना दुश्यवन इन्द्रः आश्रमानैति आगच्छिति। आइपूर्वस्येणः '७३। एत्येधत्यूद्रसु १६१९/८९।' इति इद्धिः। सोमसुत्वतः सोमं सुनोतीति '३०००। सोमे सुनः। धरा९९०।' इति किए। सोमसुतः
सन्ति येष्वाश्रमेष्विति मतुष्। '१८९६। तसी मत्वर्थे १११४१९।' इति भत्ये
तकारस्य जस्त्वं न भवति । '१८९८। झयः ।८१२१०।' इति मतोर्वत्वम् ।
किमधेमेतीत्याह-अनुं भक्षयितुं महेन्द्रियं भागम्। महेन्द्रो देवता अस्येति।
'१२३। महेन्द्राद्धाणौ च ।धर११२९।' इति घः। क अध्वरेषु यज्ञेषु । अग्निवित्वत्सु । अग्नि चितवन्तोऽप्तिचितः आहिताग्नयः। '३००१। अग्नौ चेः
१३१२।९१।' इति किए। ते सन्ति येष्विति पूर्ववन्मतुष्॥

१९५-आमिक्षीयं दिधि-क्षीरं पुरोडास्यं तथीषधम् ॥ हविर् हैयङ्गवीनं च नांऽप्युपद्मन्ति राक्षसाः. ॥१२॥

आमित्यादि — दक्षा सहितं शृतं पय आभिक्षा । तसी हितमामिक्षीयम् । '१६६४। विभाषा इविरप्पादिभ्यः ।पा१।४।' इति छयती। दिध च क्षीरं चेति । '९९६। विभाषा द्वक्ष-।२।४।२२।' इत्यादिना व्यक्षनत्वादेकवद्भावः । पुरोडा-बाय हितमीपधं नीवास्तण्डुलादि पुरोडाश्यम् । अपूपादित्वाद्यत् । ओषिषरे-वीषधम् । '२१०५। ओषधरजाती ।पा४।३०।' इत्यण् । तण्डुलानामजातित्वात् । 'स्वार्थिकाश्च प्रकृतितो लिङ्गवचनान्यतिवर्तन्ते' इति नपुंसकलिङ्गता । हविः द्व्यत इति हविः । 'अर्थि-शुचि'इत्योणादिक द्म् । हैयङ्गवीनं पृतम् । ह्योगी-दोहस्य विकार इत्यर्थे '१८२४। हैयङ्गवीनं संज्ञायाम् ।५।२।२३।' इति निपात-वात् स्व हियंग्वादेशश्च । तानि नाष्युपद्यन्ति राक्षसाः त्वय्युदासीने सितं ॥

इदानीं कार्यप्रदर्शनेन ग्रोत्साहयितुमाह—

१९६-युव-जानिर् धनुष्-पाणिर् भूमिन्षः ख-विचारिणः ॥ रामो यज्ञ-द्वहो हन्ति काल-कत्प-शिलीमुखः ॥१३॥

युवेत्यादि—युवितः योवनवती जाया यस युवजानिः। '८७२। जायाया निङ् १६१९१७६।' वाँठ छोषः । ८३१। खियाः पुंवत्-।६।३।३४।' इस्रादिमा सीप्रसमो निषर्शते चतुष्पाणि पाणौ सनुर्यस्य । परनिपातः । भूमिष्टः भूमौ तिष्ठनीति भूमिष्टः । नाकाशचरः । '२९१६। सुषि स्थः ।३।२।४।' इति कः ।'२९१८। अम्बाम्ब-।८।३।९०।' इत्यादिना पत्वम् । कालकल्पशिलीसुखः मृत्युतुल्पशरः । रामो यज्ञ-द्वहो राक्षसान् हन्ति खविचा-रिणः आकाशविचरणक्षीलान् । '२९८८। सुष्यजाती ।३।२।७८।' इति णिनिः ॥

१९७-मांसान्योष्टाऽवलोप्यानि साधनीयानि देवताः॥

-मासान्याष्ठ<u>ा</u>ऽवलाऱ्याान सावनायाम द्वताः॥ अक्षन्ति, रामाद् रक्षांसि विभ्यत्यंश्चवते दिशः॥१४॥

मांसेत्यादि — ओद्यावलोप्यानि ओद्याभ्यां छेदाहीणि शक्यानि या। अहीं श्रें शक्यां वा कृत्यः। '६९५। कृत्येरिषकार्थवचने ।२१९१३२।' इति सः। साधनीयाति यज्ञस्य साधनाय हितानि। '९६६५। तसी हितम्।५१९१५।' इति छः। सावनीयानीति पाठान्तरम्। तत्र सवनं स्नानं तद्योगात्स्नातकोपि तथोच्यते तत्र भवः सावनो यज्ञः। '१६६५। तसी हितम् ।५१९५' इति छः। तानि मांसानि देवता अक्षन्ति सुञ्जते न राक्षसा रक्षांसि किन्तु रामाहिभ्यति। '४४४। वा नपुंसकस्य।७१९।७९।' इति शतुर्नुमभावपक्षे रूपम्। दिशोऽभुवते स्यामुवन्ति॥

१९८-कुरु बुद्धिं कुशाऽमीयाम्बुकामीनःतां त्यज,॥

रुक्सीं परम्परीणां त्वं पुत्र-पौत्रीण-तां नय.॥ १५॥

कुर्वित्यादि — कुशायीयां कुशायमित सूक्ष्माम् । '२०६०। कुशायाच्छः । प्रा १०५०)' इति इवार्थे छः । स्यूष्ठबुद्धिमां मूदिल्यः । अनुकामीनतां स्वज यथेच्छगामितां त्यज । '१८१२। अवार-पार-।५१२११।' इत्यादिना स्वः । परम्परीणां पराश्च परतरांश्च अनुभवतील्यें परशब्दात् '१८११। परोवर-।५१११०।' इत्यादिना स्वः परेपरादेशश्च । तां छक्ष्मीं क्रमायातां त्वं पुत्रपौत्री-णतां नय पुत्रांश्च पुत्रांश्चानुभवतीति स्वः । तस्य भावः । पुत्रपौत्रानुगामिनीं कुर्वित्यर्थः ॥

१९९-सहाय-वन्त उद्युक्ता वहवो निपुणाश्च च याम् ॥

श्रियमाशासते, छोलां तां इस्ते-कृत्य मा श्वसीः ॥१६॥

सहेत्यादि-यां च श्रियं त्वदीयां शौर्योपात्तां सहायवन्तः ससहाया

उद्युक्ता उत्साहवन्तो निपुणाः कुशला आशासते इच्छन्ति । '१०५१। आङः शासुँ इच्छायाम्' इत्सादादिकसात्मनेपदिनो रूपम् । '२२५८। आत्मनेपदेष्व-नतः ।७।१।५।' इत्सादादेशः । तां हस्तेकृत्य स्वीकृत्य । मा श्वसीः आश्वासं मा कार्षाः । चञ्चल्यात् । यदाह लोलामिति । '२२९९' इयन्त-क्षण-श्वस-जागृ-णि-।७।२।५।' इति वृद्धिप्रतिषेधः । '२२६६। इट ईटि ।८।२।२८।' इति सिचो लोप '७७८ नित्य हस्ते पायो १४७०' इति गतिसङ्घायां समासे

90

तां छोलतां द्शियन्याह-

२००-लक्ष्मीः पुं-योगमाशंसुः कुलदेव कुतूहलात् ॥ अन्तिके ऽपि स्थिता पत्युश् छलेनांऽन्यं निरीक्षते.॥ १७॥

स्विमीरित्यादि—त्वयैवं न मन्तव्यम् अन्यैः प्रार्थ्यमानापि न मां परि-त्यनतीति । यतः छलेन व्याजेन अन्यं निरीक्षते । किमर्थ-पुंयोगमाशंदुः अभिलपनती । '३१४८। सनाशंस-भिक्ष उः ।३।२।१६८।' कुत्हलात् कोऽस्य विशेष इति । स्नेहादन्तिके अदूरेऽपि स्थिता पत्युः । '६११। दूराऽन्तिकार्थैः— २।३।३४।' इत्यादिना षष्ठी । कुलटेव बन्धकीव । सकन्ध्वादिषु दर्शनात्पररूपम् ॥

युवजानिरित्युक्तं तद्योषित्यक्रोभनायाह-

२०१-योषिद्-वृन्दारिका तस्य दियता हंस-गामिनी ॥ दूर्वा-काण्डमिव स्यामा नैयग्रोध-परिमण्डला, ॥१८॥

योषिदिस्यादि—योषिज्ञासी वृन्दारिकाचेति । '७४१। वृन्दारक-।२।१ ६२।' इस्रादिना सः रूपेण प्रिवेस्याह-द्यिता प्रिया । प्रशस्तवे कारणमाह-हंस इव गन्तुं शीलं यस्याः। '२९८९। कर्तेर्युपमाने ।३।२।७९।' इति णिनिः। दूर्वाकाण्डमिव स्यामा दूर्वास्तम्बं तदिव स्यामा। न्यत्रोधपरिमण्डला। '७३४। उपमानानि-।२।१।५५।' इस्रादिना सः॥

२०२-नोऽऽस्यं पश्यति यस् तस्या,

निंस्ते दन्तःच्छदं न वा,॥ संद्युणोति न चौक्तानि,

मिथ्याऽऽसौ विहितेन्द्रियः ॥ १९ ॥

नास्यमित्यादि—तस्या आस्यं मुखं यो न पश्यति । दन्तच्छदं ओष्ठम् । छाचते अनेनेति घः । '३२९७। छादेवेंऽचुपसर्गस्य ।६।४।९६।' इति हस्यः । दुन्तानां छदं नवा निस्ते न चुम्बति । '१०९६। णिसिँ चुम्बने ।' इत्यादादिक आत्मनेपदी । '२२६२। इदितो नुम् धातोः ।७।१।५८।' उक्तानि उदितानि न संग्रुणोति । '२६९९। समो गमि—।१।३।२९।' इत्यादिना तङ् व भवति । अक-मेकादित्यविकारत् । मिथ्यासौ विहितेन्द्रियः । वृथैव तस्य वेधसा विहितानि इन्द्रियाणि चक्षुरादीनि ॥

१--स्तनौ सु-कठिनौ यस्या, नितम्बे च विशालता, ॥ मध्ये क्षीणा मनेद्र या सा न्यप्रोध

२० १ -सारो ऽसाविन्द्रियाऽर्थानां, यस्यां ऽसौ तस्य नन्दथुः,॥ तल्पे कान्ताऽन्तरैः सार्धं मन्ये ८ हं धिङ् निमज्जथुम्. ॥ २० ॥

सार इत्यादि - इन्द्रियार्थानां मध्ये सारोऽसौ दयिता इन्द्रियार्थः। रूपा-द्यतिशययोगात् । यस्यासौ संपद्यते तस्य नन्दश्वः आनन्दश्चेतसः । तल्पे शयनीये यस कान्तान्तरेरन्यस्त्रीभिः सार्धं निमज्ञश्चं शयनम् । सर्वत्र '३२६७। द्वितो-ऽथुच् ।३।३।८९।' तस्य धिक् कुत्सितमहं मन्ये । 'उभसर्वतसोः' इत्यादिना भिग्योगे द्वितीया । तया साधै शोभनमिलर्थादुक्तं भवति ॥

> २०४-न तं पश्यामि. यस्यां ऽसौ भवेन् नोंदेजया मतेः॥ त्रैलोक्येनांऽपि विन्दस् त्वं तां कीत्वा सुकृती भव.॥ २१॥

न तमित्यादि - सर्वथा न तं पश्यामि जानामि जगति यस्य संबन्धिन्याः मतेश्रेतसः उदेजया उक्तम्पिकासो न भवेत् । चित्तक्षोभजनिकेलर्थः । उद्वेजय-तीति '२९००। अनुपसर्गोक्षिम्प-।३।१।१३८।' इति कर्तरि शः कृद्योगे कर्मण वधी। तस्मात् त्रेलोक्येनापि। त्रयश्च ते लोकाश्च त्रिलोकाः । त एव त्रेलो-क्यम् । चातुर्वर्ण्यादित्वात् स्वार्थे ष्यञ् । 'स्वार्थिका अतिवर्तन्ते' इति नपुंसक-व्वम् । तेनापि तां कीत्वा छञ्ध्वा विन्दस्त्वं सक्कती भव पण्डितो भव । आख्यो वा भव । पाण्डित्यमस्य त्रेलोक्यमात्रेणापि स्त्रीरतं कीत्वा लक्ष्यमिति । विन्ट-तीति तेनैव स्त्रेण शः॥

अन्या अपि स्त्रियः सन्तीति चेदाह-

२०५-नैवेन्द्राणी, न रुद्राणी, न मानवी. न रोहिणी. ॥ वरुणानी न, नां ऽग्नायी तस्याः सीमन्तिनी समा. 1। २२ ॥

नैवेत्यादि —तस्यास्तु सीतायाः । '६३०। तुल्यार्थेरतुलोपमाभ्याम् ।२।३। ७२।' इति षष्टी । न काचित् सीमन्तिनी स्त्री समा तुल्या । 'सीमन्तः केशवे-शे' इति पररूपत्वम् । अन्यत्र सीमान्तः । स विद्यते यसा इति इतिः । इन्द्रा-णी इन्द्रभायौ। न सम्यक् किं पुनरन्या। तथा रुद्राणी रुद्रभायौ। वरुणानी वरुणभार्यो । '५०५ । इन्द्र-वरुण--।४।१।४९' इसादिना आनुक् । मानवी मनुमार्था। ४९५ मनोरी वा ४१३८ इसीकार । अप्तापी अग्निमार्था।

'४९४। वृषाकप्यभिक्तिनक्तिनक्तित्-।४।१।३७।' इस्यादिना ऐरिनि सर्वेत्र '५०४। पुंगोगादाख्यायां ।४।१।४८।' इति कीय् । रोहिणी चन्द्रभार्या । रोहितशब्दात् '४९६। वर्णादनुदात्तात्-।४।१।३९।' इस्यादिना कीप् नकारश्च । वरुणानी न नामायीसम् प्रतिषेध एकः पूर्वेण योज्यः द्वितीयः परेणेति । न चामायीति पाठान्तरम् ॥

> २०६-प्रत्यूचे राक्षसेन्द्रस् ताम्-'आश्वसिहि, विभेषि किम्,॥ त्यज नक्तऋरि ! क्षोमं, वाचाटे ! रावणो ह्यहम्.॥ २३॥

प्रत्यूच इत्यादि - राक्षसेन्द्रो रावणः । राक्षसीं प्रत्यूचे । प्रतिवचनमुक्त-वान् । आश्वासिष्टि खेदं त्यज । '२४७४। रुदादि-।७।२।७६।' इत्यादिना इद । विमेषि किमर्थं तापसकात् । हे नक्तक्चरि ! मद्विषये क्षोमं रोषं त्यज । वाचाटे बहुभाषिणि । '१९३१। आल्जाटचौ बहुभाषिणि ।५।२।१२५।' यसाद्रावणी-ऽहम् । अनेनात्मोत्कर्षमावेदयति ॥

तमेव स्फुटयश्चाह--

२०७-मार्मुपास्त दिइक्षा-वान् याष्टीक-व्याहतो हरिः ॥ आज्ञा-लाभोन्मुखो दूरात् काक्षेणां ऽनादरेक्षितः ॥ २४ ॥

मामित्यादि—मामुपास्त सेवितवान् । हरिरिन्दः । दिदशावान् द्रष्टुमिन्छा-वान् । आत्मदर्शनेन्छावानित्यर्थः । दूरादेव याष्टीकैः वेत्रग्राहिमिन्याहतोऽपसा-रितः । '६९४। कर्तृ—करणे कृता—। २।१।३२।' इति सः । यष्टिः प्रहरणमेषामिति '१६५९। क्रांकि-यष्ट्योरीकक् ।४।४।५९।' । आज्ञालामे किममिधास्पतीत्युत्सुक उन्सुखः तत्परः । सप्तमीति योगविभागात् सः । अनादरेक्षितः अवज्ञाविलो-कितः । कार्शेण कुद्ध्या । '१०३०। का पथ्यक्षयोः ।६।३।१०४।' इति कुत्रब्दस्य कादेशः । यदि तत्पुरुष इत्यनुवर्तते तदा कुत्सितमक्षमिति विप्रहः । अक्षशब्द-स्येन्द्रियसामान्याभिधायित्वेऽपि ईक्षितशब्दोपपदत्वाचक्षुषि वर्तते । अथ तत्पु-रुष इति नानुवर्तते सामान्येनादेशस्तदा कुत्सितमिक्ष यस्येति । '८५२। बहुवी-ही सक्थ्यक्ष्णोः—।५।४।११३।' इति वन् । कार्शेण मयेत्पर्धः ॥

२०८-विरुग्णो-दग्न-धाराऽग्नः कुलिशो मम वश्वसि ॥ अ-भिन्नं शतःधा ऽऽस्मानं मन्यते बळिनं बळी.॥२५॥ विहरणेत्यादि — विहरणानि अवसकानि कृष्टितानि उद्याणि महान्ति धारायाणि यस्य स कुलिशो वद्यः मम वक्षसि पतितः सन् । वली । आत्मानम-भिन्नं शतधा शतप्रकारम् । '१९८८। संख्याया विधार्थे धा ।५।३।४२।' बलिनं मन्यते । अहो बलवानहं न येन शतधा भश इति । तस्य देवतारूपत्यात् बल-मस्त्येव । आत्मानं बलिनं मन्यत इवेत्युत्येक्षा ॥

२०९-कृत्वा लङ्का दुमाऽऽलानमंहमैरावतं गजम् ॥

बन्धने ऽनुपयोगिन्त्वान् नतं तृणःवदंत्यजम्. ॥२६॥

कृत्वेत्यादि—एश्वालीयत इत्यालानम् । अधिकरणे व्युट् । '२५०९। वि-भाषा लीयतेः ।६१९५९।' इत्यात्वम् । लङ्कादुमा आलानाति यस्यैरावतात्व्यस्य गजस्य तं कृत्वा । नतं नस्रमुखम् । तृणमिव मत्वा । सोऽहमत्यजं त्यक्तवान् । बन्धनेऽनुपयोगित्वात् प्रयोजनाभावात् ॥

२१०-आहोपुरुषिकां पद्य

मम, सद्-रत्न-कान्ति-भिः॥ ध्वस्ताऽन्धकारे ऽपि पुरे पूर्णेन्दोः सन्निधिः सदाः॥ २७॥

आहो इत्यादि अहोपुरुषस्य भावः । मनोज्ञादित्वाहुन् । आहोपुरुषिका कार्यसिद्धाविष तत्साधने वृत्तिः । तां मम शूर्षणसे पदय । सद्गतकान्तिभिः ध्वस्तान्धकारेऽपि पुरे पूर्णेन्दोः पूर्णचन्द्रस्य सिक्विधिः सदा सिक्विधानं। न पुनस्तेन कृत्यं रत्नप्रभाभिरेव तत्कृत्यस्य कृतत्वात् ॥

२११-हत-रत्नश् च्युतो्द्योगो रक्षोभ्यः कर-दो दिवि ॥ पूतकतायीर्मभ्येति सन्त्रपः किं न गोत्र-भित्.॥ २८॥

हतेत्यादि हतोचेः अव आदिरक्षो गोत्रभिदिन्दः । अत एव च्युतोचोगः । दिवि वर्तमानोऽपि रक्षोभ्यः करदः । राजप्राद्यां वित्तं प्रयच्छन् । प्तकतायीं शवीं '४९३। प्तकतोरे च ।४।१।३६।' इति ङीष् । पुंयोगादाख्यायामिति । सत्रपः सत्रीडः । किं नाभ्येति न ढीकते ॥

२१२-अ-तुल्य-महसा सार्ध रामेण मम विग्रहः॥

त्रपा-करस्, तथाप्येष यतिष्ये तद्-विनिग्रहे.'॥२९॥

अतुत्येत्यादि — तदेवंविधस्य मम अतुत्यमहसा अतुत्यतेजसा रामेण सह विश्रहस्त्रपाकरः । '२९३४। कुनो हेतु—।३।२१२०।' इस्रादिना टः । तथापि व्व-त्यार्थनया । एप च यतिष्ये तद्विनिग्रहे विविधनिग्रहविषये तस्य यतिष्ये यतं करिष्यामि '२७८९ वर्तमान-सामीप्ये ॥ ३३१३१ इति विक-स्नेन स्टो विधानात् ॥

२१३-उत्पत्य खं दशन्त्रीवो मनोन्यायी शिताऽस्त्र-भृत्।

समुद्र-सविधाऽऽवासं मारीचं प्रति चक्रमे. ॥ ३० ॥

उत्पत्येत्यादि — उक्त्वेवं खमाकाशमुखत्य मारीचं प्रति चक्रमे । यत्र मारीचं राक्षसस्तत्र गत इत्यर्थः । '२०१६। अनुपसर्गाद्वा ।१।६।४३।' इति क्रमेस्तङ् । मनोवदाशु यातुं शीलमस्येति । '२९८९। क्रत्येतुंपमाने ।६।२।०९।' इति णिनिः । शितास्त्रभृत गृहीततीक्षणचन्द्रहासः । समुद्रस्य सविधे समीपे आवासो यस्य मारीचस्य । सह विधेन सविधिमिति न्युत्पत्तिमात्रं शब्दसासमीपवाची ॥ २१४—सम्पत्य तत्-सनीडेऽसी तं वृत्तान्तमंशिश्रवत्, ॥

त्रस्तुनाऽथ श्रुताऽर्थेन तेनांऽगादि दशाऽऽननः.॥३१॥

सम्पत्येत्यादि — असौ दशश्रीवः तत्सनीडे मारीचस समीपे। अत्रापि सह नीडेनेति च्युत्पत्तिमात्रम्। समेत्य यात्वा। तं वृत्तान्तम् शूर्पणसाकथितम-शिश्रवत् श्रावितवान्। शूणोतेण्येन्तस्य छुङि रूपम्। तेन मारीचेन श्रुतार्थेन त्रस्तुना त्रसनशीलेन दशाननः अगादि उक्तः। कर्मणि छुङ् ॥

२१५- 'अन्तर्धत्स्व रघु-व्याघात् तस्मात् त्वं राक्षसेश्वर!,॥

यो रणे दुरुपस्थानो हस्त-रोघं दघद् घनुः,॥ ३२॥

अन्तरितादि — हे राक्षसेश्वर त्वं तसाद्युद्धावादन्तर्थत्स्व अन्तिहितो सव स्ववहितो भवेति यावत् । द्वातेलेटि '२४८३। आभ्यस्त्योः-।६।४।१३२।' इत्याकारलोपः । अभ्यासस्य '२५०१। द्धस्त्योश्च ।८।२।३८।' इति अष्मावः । '५९१। अन्तर्थो येना-।१।४।२८।' इत्यपादानसंज्ञा । यस्मात् स रामः रणे दुरु-पस्थानः दुःखेन उपस्थीयते उपगम्यत इति । आतो युच् । यतो हस्तरोधं द्ध-दुनुः हस्तेन रुद्धा सदैव यो धनुर्धते स कथं दुरुपस्थानो न भवति । इस्तराब्दे तृतीयान्त उपपदे '३३७०।सक्षम्यां चोपपीड-रुधः-कर्षः ।३।४।४९।' इति णमुल् । चकारेण तृतीयायाः समुचितत्वात् '७८४। तृतीयाप्रसृतीन्यन्यतरस्याम्

।२।२।२१।' इति सः ॥ तदेव दुरुपस्थानत्वं स्फुटयन्नाह—

२१६-भवन्तं कार्तवीयों यो हीन-सन्धिमंचीकरत्,॥

जिगाय तस्य हन्तारं स रामः सार्वलौकिकम्.॥३३॥

भवित्यादि —यः कार्तवीर्यः कृतवीर्यस्यापत्यं सहस्रवाहुः भवन्तं हीनसन्धि-भवीकरत् । हीनेन दुर्वलेन यः सन्धिः तं भवन्तं कारितवान् । तेन हीनत्वम् । बलान्निर्जित्यं कारित इति दुरुपस्थानसुक्तम् । '५४१। ह-कोरन्यतरस्याम् १९१४५१' इति द्विकर्भकता । तस्य कार्तवीर्यस्य यो हन्ता परस्रुरामः । इत्य-योगे कर्मणि पष्टी । तेन हि तस्याद्विहोत्रधेनुमपहस्य गच्छतः परस्रुना बाहुसहस्रं निष्मम् तस्य एन्तारं स रामो जिगाय जितवान् । जयतेर्लिटे धातुनकारस्य '२३३१। सँछिटोर्जेः ।७।३।५७।' इति कुत्वम् । सार्वलौककं सर्वलोके विदितम् । '१७१०। लोक-सर्वलोकाभ्यां ठज् ।५।१।४४।'। '१४३८ अनुसतिकादि—।७।३। २०।' इत्युक्तत्वादुभयपदृष्टुः । सार्वलौकिक इति पाठान्तरम् । अत्र राम इति योज्यम् ॥

२१७-यमाऽऽस्य-दृश्वरी तस्य ताडका वेत्ति विक्रमम्,॥ शूरं-मन्यो रणाच् चांऽहं निरस्तः सिंह-नर्दिना. ३४

यमेत्यादि—तस्य रामस्य विक्रमं ताडका वेसि ज्ञातवती । '२७८९। वर्त-मानसामीप्ये—१३१३३१।' इति भूते लह । कीहशी यमास्यहश्वरी । तच्छ-रताडिता यममुखं दृष्टवती सृतेस्यर्थः। '२००४। दृशेः किन्प् ।३१२१९४।' '४५७। वनो र च ।४१९।७।' इति कीवेफौ । अहमपि ज्ञूरम्मन्यः ज्ञूरमात्मानं मन्य-मानः '२९९३। आत्ममाने स्थ्य ।३१२।८३।' सिंहनर्दिना रामेण सिंह इव नर्दतीति '२९८९। कर्तुर्युपमाने—१३१२।७९।' इति णिनिः । रणानिरस्तः बहि-एकृत इसर्थः ॥

> २१८—न त्वं तेनां ऽन्वभाविष्ठा, नां ऽन्वभावि त्वया ऽप्यंसी,॥ अनुभूतो मया चां ऽसी, तेन चां ऽन्वभविष्यंहम्,॥ ३५॥

न त्विमित्यादि—तेन रामेण त्वं नान्त्रभाविष्टाः । त्वमनेन नानुभूतः । कर्मणि छङ् । थासि '२७५७। स्य-सिच्-१६१४१६२।' इत्यादिना चिण्वदिद् द्वुत्वम् । नान्वभावि त्वयाऽष्यसौ नानुभूतः । येनैवमुच्यते । अत्र '२७५८। चिण् भाव-कर्मणोः ।३१९१६६।' इति चिण् । अनुभूतो मया चासौ । चशब्दः पुन-रित्यर्थे । सया पुनरसावनुभूतः न शक्यो जेनुमिति । तेन रामेण चान्वभविष्य-हमनुभूतोऽहम् । तेन सह थोद्धमक्षम इति । अत्र चिण्वद्वावो न कृतः किन्तु छङि उत्तमपुरुषैकवचने वलादिलक्षण इद । तेन वृद्धभावात् गुण एवेति ॥

२१९-अध्यङ् शस्त्र-भृतां रामो,

न्यञ्चस् तं प्राप्य मद्-विधाः, ॥ स कन्या-ग्रुल्कमंभनङ् मिथिलायां मखे धनुः ॥ ३६ ॥

अध्यिहित्यादि — सस्भृतां मध्ये रामोऽध्यक् अविकः । अध्वात्याधिक्येन वर्तत इति '३७३। ऋत्विग्—।३।२।५९।' इत्यादिना किन् तस्मिन् लुप्ते 'अनुना-सिकलोपे '३६१। उगिद्वां—।७।१।७०।' इति नुम् । तस्यानुस्वारपरसवर्णत्वे कृते च हत्वक्यादिसंयोगान्तलोपे । नकारस्य '३७७। किन्प्रस्यस्य कुः ।८।२।६२।' इति कुत्वेन ककारः । तं तादशं प्राप्य महिधा न्यक्को हीनाः । निशक्दोऽत्राको भावे वर्तते। त्यञ्च इति पूर्ववत् किन्। अनुनासिकलोपः। नुम्। अल्लोपो नासि अहल्पत्वात् कृत्वं च नासि अपदसंज्ञत्वात् । यो मिथिलायां महदनुरमनक् भग्नवान् सोऽस्मादिष कारणात् शस्त्रभृतामध्यङ्। भज्ञेलंकि '२५४४। श्वान्नलोपः श्वार्थाः हल्लेषः। कृत्वं च । कन्याशुल्कं कन्यामृत्यम्। तिद्धं यो रोद्रं धनुरारोपितगुणं करोति तस्मे कन्या दीयत इति मूल्योक्टल स्थापितम्। २२०—सं-वित्तः सह-युध्वानो तन्य्-छिकं खर-दूषणो, ॥

यज्वानश्च स-सुत्वानो, यानंगोपीन् मखेषु सः. ॥३७

संवित्त इत्यादि—नाहमेव रामशक्तिमवैमि अपि तु खरदूषणाविष संवि-त्तः ज्ञातवन्ता । '२७८९। वर्तमानसामीष्ये—।३।३।१३।।' इति भूते छह । सक-मेक्त्वात् '२६९९। समी गम्यृ—।१।३।२९।' इत्यादिना तङ् न भवति तत्राकर्म-कादिति वर्तते । सहयुध्वानौ सह तेन युद्धवन्तो । '३००६। सहे च ।३।२।९६।' इति युधेः कनिष् । यद्यानश्चाहिताप्तयः ससुखानः सोमयाजिसहिताः। '३०९१। सु-यजोङ्गेनिष् ।३।२।१०३।' । संविदन्तीति वचनविषरिणामेन योज्यम् । यान-गोपीत् अरक्षीत् मखेषु स रामः । छुङ रूपम् । तथा मखदुहो राक्षसान् व्रतो रामस्य शक्ति ज्ञातवन्तः ॥

> २२१-मुख-जातः सुरा-पीतो नृ-जग्धो माल्य-धारयः ॥ अधि-लङ्कं स्त्रियो दीव्य, मा ऽऽरब्धा बलि-विग्रहम्.'॥ ३८॥

सुखेत्यादि—यत एवं दुरुपस्थानः स तसाद्विना रामेण विप्रहं माऽऽ-रब्धाः मा कार्षाः । रमेराङ्पूर्वात् '२२१९। माङि छङ् ।३।३।१७५।' थास् । '२२८१। झलो झिल ।८।२।२६।' इति सिज्लोपः । '२२८०। झपस्तथोधाँऽधः।८।२।४०।'। '५२। झलां जग्न जित्रा ।८।४।५३।'। कि कार्यमिलाह— अधिल हं लक्षायामि । विभक्तयर्थेऽन्यर्थभावः । स्थि। दीन्य कीड । लोटि रूपम्। '५६२। दिवः कर्म च ।१।४।४३।' इति कर्मसंज्ञायां '२०२। वाडम्-शसोः ।६। ४।८०।' इतियङ् । कीडशः। सुखजातः । जातं सुखमस्येति वहुवीहिः । कृतास-वपानत्वात् । यदाह—सुरापीतः पीतमदिरः । नृजन्धः मुक्तमानुषः। निष्ठायामदो जिन्दः । पूर्ववद्वम् । एषु वाहिताध्यादिदर्शनात् परनिपातः । माल्यं धारय-तीति माल्यधारयः। '२९००। अनुपसर्गात् लिम्प-।३।१।३८।' इत्यादिना शः॥ २२२-तं भीतं-कारमां कुस्य रावणः प्रत्यभाषतः ॥

'यात-यामं विजितवान् स रामं यदि, किं ततः॥३९॥ तमित्यादि—तं मारीचं पूर्वोक्तं निराकुर्वेत् रावणः प्रत्यभापत प्रत्युक्तवान्। कि रूपम् भीत कृत्वा मीतोऽसीति '३६४६ कर्मण्या

क्रोरी ।३।४।२५।' कृजः खमुञ् । यातयामं गतवयसम् । यदि विजितवान् रामो दाशरथि:। किं ततः किं तापसः शूरः ॥

> २२३-अघानि ताडका तेन लज्जा-भय-विभूषणा, ॥ स्त्री-जने यदि तच् छु।ध्यं, धिग् लोकं धुद्र-मानसम्. ॥ ४०॥

अधानीत्यादि—तेन रामेण ताडका अघानि व्यापादिता । हन्तेः कर्मणि लुङ् । लजा च भयं च विभूषणं यस्याः। स्त्रीत्वाञ्च शौर्यम् । एवंविधाया अनेन रामेण यदि गर्ह्यमपि हननं स्त्रीजने श्लाघ्यं श्लाघनीयम् । '६२९। कृत्यानां कर्तरि वा ।२।३।७१।' इति तृतीया । तं धिक् लोकं शुद्रमानसं हीनमानसम् ॥

२२४-यद् गेहे-नर्दिनमंसी शरैर् भीरुमंभाययत्॥ कु-ब्रह्म-यज्ञ=के रामो भवन्तं, पौरुषं न नत्. ॥४१॥

बद्गेह इत्यादि - असौ रामो यझवन्तं भीरुं शरेरभाययत् भायितवान् । थुगात्मनेपदे न भवतः भयहेतोरभावात्। अत्र हि शरेभ्यो भयम् नतु रामात्। तत् किम्। पौरुषकारः किमसौ। युवादित्वादण्। गेहेनर्दिनं गेह एव नर्दिन-म् । '७२५। पात्रे-समितादयश्च ।२।१।४८।' इति सः । कुत्रह्मयज्ञके । कुत्सिता ब्रह्माणः कुब्रह्माः । कुः पापार्थे इति सः । '८०६। कु-महन्द्यामन्यतरस्याम् । पाधा १०५१ दृति समासान्तष्टम् । तेषां कुत्सिनो यज्ञः । तस्मिन् सति कुत्सायां कन् । तेन शूरम्मन्योऽहं रणात्तेन निरस्तः इत्यपुष्कलमुक्तम् ॥

२२५-चिर-कालोषितं जीर्णं कीट-निष्कुषितं धनुः॥ किं चित्रं यदि रामेण भग्नं क्षत्रिय-काुऽन्तिके.॥४२॥

चिरेत्यादि - यदि रामेण क्षत्रियकान्तिके । कुत्सितक्षत्रियसमीपे । भन्नं धनुः किं तचित्रमाश्रर्थम् । क्षत्रिया जनकादयः तस्य कुत्सायां कन् । क्षत्रियक-स्यान्तिके। दूरान्तिकार्थयोगे पष्टीसमासं विधाय पश्चात्। '६३३। सप्तम्यधि-करणे च।र।३।३६।' इति चकाराहरान्तिकार्थेभ्यश्रेति सप्तमी । किमिति न चित्रमित्याह—चिरकालमुषितमिति । '५५८। कालाऽध्वनोः-।२।३।५।' इति द्वितीयां विधाय । '६९१। असम्त-संयोगे च ।२।१।२९।' इति द्वितीयासमासः । जीर्णं चिरकाछोषितत्वात् । '१२०५। जुषू वयो-हानौ'। निष्ठा । '२३९०। ऋत इद्धातोः ।७।९।१००।' इको '३५४। हिंट च ।८।२।७७।' इति दीर्घः ।'३०१६। र-दाभ्याम्-।८।२।४२।' इति निष्ठानत्वम् । कीटैधुँगैर्निष्कुषितं खादितम् । निरः

'३०४५। इण् निष्ठायास् ७२४७ ' इसीदः ॥ कुष

२२६-वन-तापसःके वीरौ विपक्षे गलिताऽऽदरौ ॥

किं चित्रं यदि साऽवज्ञौ मस्रतुः खर-दूषणौ. ॥४३॥

वनेत्यादि — वने तापसो वनतापसः । कुत्सायां कन् । तस्मिन् वनतापसके रामे सावज्ञत्वाद्गिलतादरौ विपन्ने किमयं करिष्यतीत्यश्रद्धयेव योधितवन्तौ सरदूषणौ वीरौ यदि मम्रतुः मृतौ को दोषः किं चित्रम् । '२५३८। म्रियतेर्छुं-इलिङोश्च । १।३।६९।' इति नियमात् लिट्यात्मनेपदं न भवति ॥

२२७-त्वं च भीरुः सु-दुर्बुद्धे ! नित्यं शरण-काम्यसि, ॥ गुणांश् चाऽपहुषेऽस्माकं, स्तौषि शत्रृंश् च नः सदा.

त्वं चेत्यादि—हे दुईहे! त्वं पुनः भीरुश्च भवसि नित्यं शरणकाम्यसि । आत्मनोऽनिशं शरणिकच्छिसि । आत्मेच्छायां काम्यच् । अस्माकं च सतो गुणा-नपहुषे अपनयसि । '११५६। हुङ् अपनये' आदादिकः । हिन्तात्तङ् । शत्रृंश्च नोऽस्माकं स्तोषि । स्तोतेः '२४४३। उतो वृद्धिर्डिक हिल । । । ३।८९।'॥ २२८—शीर्षच्-छेद्यमंतोऽहं त्वा करोसि क्षिति-वर्धनम्, ॥

कारियप्यामि वा कृत्यं विजिघृश्चर् वनौकसौ.' ४५

दीर्षित्यादि—यत एवंविधस्त्वं दुष्टः अतोऽहस्। '४०७। त्वा-मौ द्वितीयायाः ।८।११२६।' इत्याष्टमिकळक्षणेन त्वादेशः । शीर्षच्छेचं शीर्षच्छेदार्हम्।
'१७३०। शीर्षच्छेदाचत् ।५।१।६५।' क्षितिवर्धनं करोमि । शिरिह्यत्त्वा व्यापादयामीत्यर्थः। अथवा कृत्यं करणीयम् । '२८७१। विभाषा कृ-वृषोः ।६।१।१२०।'
इति क्यप्। कारियण्यामि । '५४१। ह-कोः—१।४।५३।' इति द्विकर्मकता ।
विजिघृशः विभहीतुमिच्छुः। '२६१०। सनि मह-गुहोश्च ।७।२।१२।' इतीदमतिषेधः। '२६०९। इद-विद्—।१।२।८।' इत्यादिना सनः किन्वे '२४१२। महिज्या—।६।१।१६।' इत्यादिना संम्रसारणम् । '३२४। हो ढः।८।२।३१।' । '३२६।
पुकाचो वशो भष्-।८।२।३७।'। '२९५। षढोः कः सि ।८।२।४१।' वनौकसौ
रामळक्मणौ। वनसोको गृहं यथोः। '६२७। न ळोक—।२।३।६९।' इति कर्मणि
पष्ट्याः प्रतिषेधः॥

२२९-तमुंद्यत-निशाताऽसिं प्रत्युवाच जिजीविषः॥ मारीचो ऽनुनयंस त्रासाद् 'अभ्यमित्र्यो भवामि ते.॥ ४६॥

तमित्यादि—तं रावणं एवमुक्तवन्तम् । निश्चात इति '३०७५। शाच्छो-रन्यतरसाम् ।७।४।४१।' इतीत्वाभावपक्षे रूपम् । उद्यत उत्थापितः निशात-वं भारीषमासाम् प्रस्युपाष अस्यमित्र्यो

२३०-हरामि राम-सौमित्री मृगोभूत्वा मृग-द्युवौ, ॥ उद्योगर्मभ्यभित्रीणो यथेष्टं त्वं च सं-तनु.' ॥ ४७ ॥

हरेत्यादि — अहं मृगो भूत्वा रामसौभित्री हरामि । देशान्तरं प्रापयामि । आखेटकाभिरतत्वात् । यदाह मृगद्यवौ मृगैदींव्यत इति किए । '२५६१। च्छ्नोः सूड्वुनासिके च ।६।४।१९।' इति चकारात् को च उद्ध् यणादेशः । उद्यक् । मृगद्युताविति पाटान्तरम् । तत्र 'द्यु अभिगमने' मृगान् सौति अमिगच्छतीति किए । त्वं च यथेष्टं यथारुचि । तमुद्योगं संतनु विस्तारं कुर्वित्यथेः । तनोते-रुविट '२३३४। उत्यन्न ।६।४।१०६।' इति हेर्लुक् । अभ्यमित्रीणः अमित्राभिमु- खमलंगामी। '१८१८। अभ्यमित्राच्छ च ।५।२।१७।'इति चकाराद्यत्वौ चेति सः।।

२३१-ततश् चित्रीयमाणो ऽसौ हेम-रत्न-मयो मृगः॥

यथामुखीनः सीतायाः पुष्ठुवे बहु लोभयन् ॥ ४८॥ तत इत्यादि—उक्तानन्तरमसौ मारीचो मायामगीभूतः सन् हेमरतमयः

रतं च हेम चेति विगृद्ध । '१५२३। मयबुतयोभीषायाम्-।४।३।१४३।' इति विकारे मयद । निर्मेलत्वात् । सीताया अप्रतो यथामुखीनः प्रतिबिम्बाश्रय इव मृत्वा पुडुवे अमित स्म । इवशब्दलोपो दृष्ट्यः । '१८०७। यथामुखसंमुखस्य दर्शनः खः ।५।२।६।'। बहु लोभयन् सुष्टु स्पृहां जनयन् । यतश्चित्रीयमाणः आश्चर्यं मवन् । हेमरत्वमयत्वात् । '२६७५। नमोवरिव-।३।१।१९।' इत्यादिना वयस् । 'चित्र-क् आश्चर्यं' । ङकारस्यात्मनेपदार्थत्वात् शानस् । अवयबकृतं लिङ्गं समुदायस्य भवतीति ॥

२३२—तेनां ऽदुद्यूषयद् रामं मृगेण मृग-लोचना ॥ मैथिली विपुलोरस्कं पाबुवूर्षुर् मृगाऽजिनम् . ॥४९॥

तेनेत्यादि — तेन मृगेण मैथिली सीता राममहुद्यूपयत् क्रीडितुमिच्छन्तं प्रयुकवती गृह्यतामयिति । इवन्तस्य दिवेः '२६१८। संनीवन्त—। ७१२।४९।' इत्यादिना यदा नेट् तदा '२५६१। च्छोः ग्रूट्—।६।४।९९।' द्विचनम् । तसात्
सञ्चन्तप्यन्तात् छि रूपम् । मृगछोचना मृगस्य छोचने इव छोचने यस्याः ।
मध्यमपद्छोपी सः । विपुछोरस्कं विस्तीर्णवक्षस्थलम् । '८८९। उरःप्रमृतिभ्यः
कप् ।५।४।१५९। १५१। किमर्थमदुव्यूष्यत् मृगाजिनं मृगचर्मे प्रावुवूर्षः प्रावरीतुमिच्छु । प्रारुप्तस्य '२६२५ इट् सनि वा ७२४९' इत्मिट्पसे '२६१४

अज्ञानगमां सनि ।६।४।१६।' इति दीर्घः । '२२९४। उद्गेष्ठयपूर्वस्य ।७।१।४०२।' इत्युत्वम् । रपरत्वम् । '४३३। वीह्यप्याया दीर्घ इकः ।८।२।७६।' द्विवचनम् । '२११। इण्कोः ।८।३।५७।' इति पत्वम् । रेफस्येण्यहणेन प्रहणाहरूयोष्ठयोऽपि वकार ओव्यवहणेन गृह्यते ॥

२३२-योग-क्षेम-करं कृत्वा सीताया ठक्ष्मणं ततः ॥

मृगस्याऽनुपदी रामो जनाम गज-विक्रमः. ॥ ५०॥

योगेत्यादि—ततो दुच्चानन्तरं रामो जगाम । योगक्षेमो सरीरस्थितिपा-छने करोतीति '२९३१। कृषो हेतु-।३।२।२०।' इत्यादिना हेतो टः । श्रहणवताः तदन्तिविधेरभावात् '२९६१। क्षेमिश्रियमदे ऽण् च ।३।२।४४।' इत्यण्खचौ न भवतः। सीतायाः स्थितिपालनहेतुभृतं लक्ष्मणं कृत्वा रामः सृगस्यानुपदी अन्वे-हा '१८९०। अनुपद्यन्वेष्टा—।५।२।९०।' इति निपातनात् साधुः । गजविक्रमः । गजगमनमिव गमनं यस्येत्यर्थः ॥

> २३४-स्थायं स्थायं कचिद् यान्तं क्रान्त्वा क्रान्त्वा स्थितं कचित् ॥ वीक्षमाणो मृगं रामश् चित्र-वृत्तिं विसिष्मिये. ॥ ५१ ॥

स्थायमित्यादि — मृगं चित्रवृत्तिमद्भुतशरीरचेष्टं वीक्षमाणो रामो विसि-विमये विस्मितः । विमन्नो क्लिवादारमनेपदम् । पोपदेशत्वाचाभ्यासेणः परस्य सस्य वः । चित्रवृत्तितां दर्शयन्नाह — स्थायं स्थायं स्थित्वा स्थित्वा । क्षचित् प्रदेशे यान्तं कान्त्वा कान्त्वा । कचित्प्रदेशे उत्सुखोत्सुस्य स्थितम् । आभीक्ष्ये णमुक्ति क्रवाणमुक्तौ द्विषेचनं च ॥

२३५-चिरं क्किशित्वा मर्मा-विद् रासो विङ्गित-प्रवम् ॥ शब्दायमानर्मव्यात्सीत् भय-दं क्षणदा-चरम् ॥५२॥

चिरमित्यादि—रामः क्षणदाचरं मारीचमच्यात्सीत् विद्यान् । व्यवेर्छुहि हलन्तलक्षणा वृद्धिः । मर्माचिद्रामः मर्माणि विद्यतीति किए । '१०३७।
निह-वृति—१६१३११६।' इत्यादिना पूर्वपदस्य दीर्घत्वम् । चिरं क्रिशित्वा महान्तं
कालमायस्य । अस्यन्तसंयोगे द्वितीया । '३०४९। क्रिशः क्ता-निष्ठयोः । ७१२५०।' इति विकल्पेनेद । तत्र '२६१७। रखो व्युपधात्—१९१२६।' इति किस्वविकल्पे
'३३२६। मृड-मृद-१९१२।७।' इत्यादिना किस्तम् । विलुभितस्रवं व्याकुलितग-मनम् । '३०४८। लुभो विमोहने । ७१२५४। भ्रब्द-वर-१३१९७' इति क्यक् भयद् निशाचरम् अन्द्रविशेषण वा ॥

२३६-श्रुत्वा विस्फूर्जथु-प्रख्यं निनादं परिदेविनी ॥ मत्वा कष्ट-श्रितं रामं सौमित्रिं गन्तुमैजिहत्. ॥५३॥

श्रुत्वेत्यादि-विस्फूर्जेथुप्रख्यं वज्रनिर्घोषतुल्यम् । '२४४। दु-ओ स्फूँजी

वज्ञ-तिघोषे'। '३२६०। द्वितोऽशुच ।३।३।८९।' निनादं शब्दम् । '३२४९। नो गद-मद-।३।३।६४।' इति विकल्पनात् पक्षे घन् । शुत्वा मैथिली कष्टश्चितं कृष्ट्यासं रामम् । '६८६। द्वितीया श्चित-।२।३।२४।' इत्यादिना सः । मत्वा बुद्धा । कृष्ट्यप्राप्तेन रामेण मृतिमिति परिदेविनी परिदेवनशीला शङ्कमाना । '३१२२। संप्रचानुरुष-।३।२।३४२।' इत्यादिना घिनुण् । सोमित्रिं गन्तुमैजिहत् । ईंहां कारितवती । ईहेर्ण्यन्तात् छुकि द्विचेचनेऽचीति स्थानिवज्ञावादजादेदिती- यस्येति हिशब्दस्य द्विचेचनम् । अभ्यासकार्यं च ॥

२३७-'एष प्रावृषि-जाऽम्भो-दनादी भ्राता विरौति ते, ॥
ज्ञातेयं कुरु सौमित्रे !
भयात त्रायस्व राघवम् .'॥ ५४ ॥

एष इत्यादि—एष ते भाता रौति। '२४४३। उतो वृद्धिः—।७।३।८९।' इत्यौकारः । प्रावृषि जातः प्रावृषिजः । '३००७। सप्तम्यां जनेर्डः ।३।२।९७।' '९७३। प्रावृद्—।६।३।१५।' इत्यादिना सप्तम्या अलुक् सं चाममोदश्चेति विशेष-णिमित सः । तद्व बद्दतीति '२९८९। कर्तर्युपमाने ।३।२।७९।' इति णिनिः । तस्मात् सौमित्रे! झातेयं ज्ञातिभावं तत्कर्म वा कुरु। '१७९२। कपि-ज्ञात्योर्डक् । ।५।१।१२७।' तेन भयात्रायस्त राधवम् ॥

२३८-'राम-संघुषितं नैतन्, मृगस्यैव विविश्विषोः॥

राम-स्वनित-सङ्काशः स्वान', इत्यंवदत् स ताम्. ५५

रामेत्यादि—रामसंधिषतं रामशिंदतमेतन्न भवति । '१८५९। धिषरैं-विशब्दार्थः ।' तस्य निष्ठायां '३०६९। रूप्यमत्वर-।७।२।२८।' इत्यादिना वि-कल्पेनेट्र । सगस्य विविश्चिषोः छल्यितुमिच्छोः । '१९८। वश्चु गतौ ।' भौवा-दिकः । तत्यानेकार्थस्वात् । प्रलम्भन इति चौरादिकस्याण्यन्तस्य वा प्रयोगः । येषामनित्यण्यन्ताश्चरादय इति दर्शनं तेषां मतेनात्रापि सिष्यति । एष स्वानो ध्वानः । '३२३९। स्वन-हसोर्वा ।३।३।६२।' इति पक्षे धन्य । कीदशः रामस्व-

वा सीवां

निवसङ्खाश कदमनः ॥ २३९-(आप्यान-स्कन्ध-कण्ठांऽसं रुषितं सहितुं रणे ॥ प्रोर्णुवन्तं दिशो वाणैः काकुत्रस्यं भीरु ! कः क्षमः ॥ ५६ ॥

आप्येत्यादि—'१०३३। प्ये-इ वृद्धी।' असादाङ्गृत्तीत् '२०१०। संयोग्गादेशतो धातोयण्वतः ।८।१४३।' इति निष्ठातो नः । ओ-प्यायी वृद्धावित्यस्य वा रूपम् । '२०१९। ओदितश्च ८।२।४५।' इति निष्ठानत्वम् । पीभावस्तु आ-इ्पूर्वस्य स्वन्ध्यसोरिति वचनात् इह न भवति आप्यानस्कन्ध इति । आप्यानं स्थूळं स्कन्धकण्ठांसं यस्य काकुत्स्थस्य । बाहुशिस्तरमंसः तस्य पश्चिमो मागः स्कन्धः । तं रुषितं कुद्धम्।१णे संग्रामे सहितुं हं भीर कातरे! कः क्षमः शक्तः । अपि तु न कोऽपीत्यर्थः । क्षमोः शकोत्यर्थत्वात् तदुपपदे '३१७७। शक-एष-।३।४।६पा इत्यादिना नुमुन् । '२३४०। तीष-सह—।७।२।४८।' इत्यादिना वेद । ककुत्स्थस्यापत्यं काकुत्स्थः । '१११५। शिवादिभ्योऽण् ।४।१।११२।' कस्मान क्षम इत्याह—प्रोण्वन्तं दिशो वाणः । यतः सर्वाः दिशः वाणेः छादयन्तम् । द्वणोतेः शतरि उवङ् । क्षमत इति क्षमः । प्रचाद्यम् ॥

२४०-देहं विश्वधुर्-स्त्राऽग्नौ मृगः प्राणेर् दिदेविषन् ॥

ज्या-घुष्ट-कठिनाऽङ्कुष्ठं राममीयान् मुमूर्षया.॥५७॥

देहिमित्यादि एप मृगो राममायात् आगतवान् । यातेर्लेडि रूपम् । किमर्थं देहं शरीरं अखाझौ अखे अझाविव । विश्वक्षः श्रष्टुमिच्छः । अस्जेः '२६१८। सनीवन्तर्ध-।७।२।४९।' इत्यत्रेडभावपसे '३८०। स्कोः संयोगाचोः-।८।२।२९।' इत्यनेन सलोपे पत्वकुत्वयोश्च रूपम् । प्राणिदिदेविषम् कीडितुमि-च्छन् । '५६२। दिवः कर्म च ।१।४।४३।' इति चकारात् करणसंज्ञा । '२६१८। सनीवन्त-।७।२।४९।' इतीद्रपक्षे रूपम् । ज्यया गुणेन घुष्टौ निघृष्टौ अत एव किटनौ अजुष्टौ सव्यापसव्यकर्षणाद्यस्य । '३०६३। घुपिरविश्वव्दने ।७।२।२३।' इति निष्ठायामनिद् । मुमूर्षया मर्तुमिच्छया । मृङः सनि '२४९४। उदोष्टयप्-र्वस्य ।७।१।१०२।' इत्युत्वम् । '३२७९। अ प्रत्यात् ।३।३।१०२।' ॥

२४१-शत्रुन् भीषयमाणं तं रामं विस्मापयेत कः,॥

मा सम मैपीस्, त्वया ऽद्यैव कृताःऽर्थो द्रश्यते पतिः.'

हात्रुनित्यादि—तं रामं शत्रुन् भीषयमाणं भीतान् कुर्वाणम् । '२५९५। भियो हेतुभये षुक् ।७।३।४०।'। '२५९४। भी-स्म्योहेतुभये ।९।३।६८।' इति तङ् । विस्मापयेत कः श्रुमितचित्तं कुर्यात् । नेवेत्यर्थः । '२५९६। नित्यं सम्यतेः ।६।१।५७।' इति णावात्वम् । '२५७०। अतिही—।७।३।३६।' इत्यादिना पुक् । विसम्त्रजे नियोगे वा लिक् । पूर्ववदातमनेपदम् । तसान्मा सा भैवी-मा भूमी-

१०४ अट्टि-काट्ये-प्रथमे प्रकीण काण्डे लक्षण-स्य पश्चमी वर्ग ,

ता '२२२० स्मोत्तरे लक् च ।३।३।९७६।' इति चकारात् लुझ् । सिचि वृद्धिः । त्वया अवैद कृतार्थः पूर्णमनोरथः पतिर्दक्ष्यते । दशेः कर्मणि लद ॥

२४२-'यायास् त्वमिति कामो मे, गन्तुमुत्सहसे न च,॥

इच्छुः कामयितुं त्वं माम्', इत्यंसौ जगदे तया.॥५९॥ याया इत्यादि—तदन्वेषणाय यावास्त्वमिति कामोऽभिलाषः । '२८१०। काममवेदनेऽकचिति ।३।३।१५३।' इत्यकचित्युपपदे लिङ् । न च गन्तुमुत्सह-से । '३१७०। शक-४प-।३।४।७५।' इति तुमुन् । तस्मान्नूनं मां कामयितुमिच्छुः एपणशीलः । '३१७६। समानकर्तृकेषु तुमुन् ।३।३।१५८।' । '३१४९। विन्दु-रिच्छुः ।३।२।१६९।' इति निपातनात्साष्टः । इत्येवमसौ लक्ष्मणो जगदे गदित-स्त्रया सीत्या ॥

२४३-मृषोुद्यं प्रवदन्तीं तां सत्य-वद्यो रघूत्तमः ॥

निरगात् 'शत्रु-हस्तं त्वं यास्यस्तिं'ति शपन् वशी.॥६०॥
मृषोद्यमित्यादि—मां कामयितुमिच्छुरित्येतन्मृपोद्यम् मृषावादम् । '२८-६५। राजसूय—१३।११६४।' इत्यादिना भावे वयप् । यजादित्वात् सम्प्रसारणम् । प्रवदन्तीं तां सीताम् । रवृत्तमो लक्ष्मणः । शपन् शत्रुहस्तं त्वं यास्यसीति शापं प्रयच्लन् । भौवादिकोऽत्र शपिनं दैवादिकः । निरगात् निर्गतः । तस्यादुटजादि-त्यर्थात् । कथं मृषोद्यमित्याह—वशी वशनं वशः इन्द्रियसंयमनम् । 'विशर्ष्यतेष्यसंख्यानम्' इत्यप् । स यस्यास्ति स वशी जितेन्द्रियः । अत एव सत्यवद्यः अवितथवादी । शत्रुहस्तं यास्यसीति सत्यं वदतीति '२८४१। कृत्य-स्युटो बहु-ल्ज्य् ।शाश्रश्रः इति कर्तरि यत् । '२८५४। वदः सुपि वयप् च ।शाश्रः हति चकाराद्यत् । भावे वा यतं विधायाच् अर्शकादित्वात् ॥

कै।लापकम् (४)— २४४—गते तस्मिन्, जल-शुचिः शुद्ध-दन् रावणः शिखी ॥ जञ्जपूको ऽक्ष-माला-वान् धारयो मृद्लाबुनः ॥ ६१ ॥

गत इत्यादि तस्मिन् रूक्ष्मणे गते सित रावणः सीतामूच इति वक्ष्यमा-णेन सम्बन्धः । कीदशः जलशुचिः स्नात इत्यर्थः । शुद्धदन् निर्मलदशनः शुद्धा दन्ता यस्य '८८३ अप्रान्त ५ ४ १४५ 'इत्यादिना दन्तस्य ददादेश शिक्स

१---(१४८) स्रोकोक्त टीकन प्रस्यम्

अस्यास्तीति शिखी परिव्राजकः । बाह्वादित्वादिनिः । जंजप्कः पापाशयत्वात् गर्हितं जपतीति । '२६३८। लप-सद-।३।१।२४।' इति यङ् । '२६३८। जप-जम-।७।४।८६।' इसम्यासस्य नुक् । '३१४६। यज-जप-द्शां यङः ।३।२।१६६।' इस्यूकः । अक्षमालावान् अक्षस्त्रयुक्तः । संसर्गे मनुप् । धारयतीति धारयः । '२९००। अनुपसर्गात्-।३।११३८।' इति तः । कस्य मृदलाबुनः । 'निन्न लम्बे-नेलोपश्च' इस्योणादिक ऊकारे प्रस्यये अलाबूः । तस्य विकारः फलमिति '१५१९। ओरज् ।४।३।१३९।' । तस्य फले लुक् । नपुंसकहस्त्रत्वम् । मृत्यूणमलाबु इति मध्यमपदलोपी सः । कृष्मयोगे कर्मणि पष्टी । '३२०। इकोऽचि विभक्तौ ।०।१। ७३।' इति नुम् ॥

२४५-कमण्डलु-कपालेन शिरसा च मृजा-वता ॥

संवस्य लाक्षिके वस्त्रे मात्राः संभाण्ड्य दण्डन्वान् ६२

कमेत्यादि कमण्डलुना कपालेन च '९१०। जातिरप्राणिनाम् ।२।४।६।' इति इन्हेंकवद्भावः । मृजावता निर्मलेन शिरसा च उपलक्षित इत्थम्भूते तृतीया । संवस्य परिधाय । 'वस्थात्समाच्छादने' इति '२६७७। सुण्डमिश्र--।३।१।२१।' इत्यादिना णिच् । लाक्षिके वस्ते । लाक्ष्या रक्ते। '१२०३। लाक्षा-रोचमात्-।४।२।२।' इत्यादिना ठक् । मात्राः कमण्डल्वादिकं सम्भाण्ड्य समा-चित्य राशीकृत्येत्यर्थः । 'भाण्डात् समाचयने' इति '२६७६। पुण्ड-भाण्ड-।३। १।२०।' इत्यादिना णिङ् । दण्डवान् गृहीतित्रदण्डः संसर्गे मतुप् ॥

२४६-अधीयन्नात्म-विद् विद्यां धारयन् मस्करि-व्रतम् ॥ वदन् वह्वक्कुलि-स्फोटं भ्रू-क्षेपं च विलोकयन् ॥६३॥

अधीत्यादि—मा कुरुत कर्माण शान्तिर्वः श्रेयसीत्येवं घोषयन्ति ये मस्करिणः परिवालकाः । तेषां व्रतमकुच्छ्रमसौ धारयन् । '१०६८। मस्कर-म् स्करिणौ–१६१९१९५४।' इति परिवालके सुदं । आत्मविदां योगिनाम् । विद्यास्य पनिषद्मधीयन् जपन् '३११०। इङ् धार्योः–१३१२१३०।' इतीङो घारेश्र अकृष्ट च्छ्वति कर्तरि शतृप्रत्ययः । अन्तरा बहु प्रभृतं वदन् । अङ्गुलिस्फोटं पुनः पुनस्कोटिकान्दत्वा स्रूक्षेपं च विलोकयन् भ्रूवावुत्थिप्योत्थिप्य विलोकयन् । उम्स्य यत्रापि '३३७६। स्वाङ्गेऽश्ववे ३१४१५४।' इति णसुद् ॥

२४७-संदिदर्शयिषुः साम निजुन्हृषुः क्षपाट-ताम् ॥

वंक्रमा-वान् समागत्य सीताम्चे-'सुखाभव.' ॥६४॥

सदीत्यादि इह सब मा भूदिति साम सान्त्व सदिवर्शयिषु सदर्भहि-

क्रमेः '२६३४। नित्यं काँटिन्ये गताँ ।३।९।२३।' इति यङ् । '२६४३। नुगतः —।७।४।८५।' इत्यभ्यासस्य नुक् ।'३२७९। अः प्रत्ययात् ।३।२।९०२।' इत्याकारः । '२३०८। अतो लोपः ।६।४।४८।'। '२६३९। यस्य हलः ।६।४।४९।' टाप् । सा यस्यास्ति चंक्रमावान् । कुटिलगतिमानित्यर्थः । समागत्य दोकित्वा । सीताम्चे । किमित्याह—सुलाभवेति अनुकूला भवेत्यर्थः । यद्दं प्रार्थये तत्र प्रतिकूला न भवेति भावः । '२१३४। सुलप्रियादानुलोभ्ये ।५।४।६३।' इति कुभ्वस्तियोगे डाच् ॥

युग्सम्—

२४८-सायं-तनीं तिथि-प्रण्यः पङ्कजानां दिवा-तनीम् ॥ कान्तिं कान्त्या सदा-तन्या हेपयन्ती शुन्ति-स्मिता.

सायमित्यादि का त्वमिति वक्ष्यमाणेन संबन्धः सायं दिनावसानं तत्र भवां कान्तिम् । यदा पोऽन्तकर्मणीत्येतस्मात् घञ्पस्ययान्तः तदा '१३९१। सायंचिरं-१४१२४।' इति दुर्युकौ तुद्र च मकारान्तत्वं च निपास्यते । यदा सायंचिरं-१४१२४।' इति दुर्युकौ तुद्र च मकारान्तत्वं च निपास्यते । यदा सायंग्रद्धो मकारान्तः तदाप्यव्ययस्वादेव प्रस्थागमौ स्थाताम् । कस्येस्थपेक्षायां तिथिप्रण्यः चन्द्रमसः पञ्चद्भ कलाः तासां वृद्धिहासाभ्यां पञ्चद्भ तिथीः प्रणयति प्रवर्त्वयति । '२९७५। सत्स्-दूष-१३१२६१।' इति किए । '२२८७। उप-सर्गादसमासे-१८१४।१४। इति णत्यम् । '२०२। एरनेकाचः ।११४।८२।' इति यणादेशः। पञ्चलानं च कान्ति कीद्दर्शी। दिवातनी दिवाभवाम् । कान्त्या त्वदी-यया सदासन्या सदासन्या सदासन्या सदासन्या सदासन्या सदासन्या सदासन्या सदासन्या हैपथन्ती लज्जयन्ती । दिवातन्याः सायन्तन्याश्च सदाभवत्वात् । जिद्देतेः '२५७०। अर्ति-१७१२।३६।' इत्यादिना णौ पुक् । शुचि-स्था शुअहासा ॥

२४९-का त्वमेकाकिनी भीर ! निर्न्वय-जने वने, ॥ श्रुध्यन्तो ऽप्यंघसन् व्यालास् त्वामं-पालां कथं न वा.

का त्विमित्यादि का त्वं देवी मानुधी राक्षसी वेति। एकाकिनी अस-हाया। '१९९८। एकादाकिनिचासहाये। पाइ। पर।' इति आकिनिच्। भीरु इस्यामञ्जूणं भयप्रकृतित्वात् स्त्रीणाम्। निरन्वया निरनुगमा जना यस्मिन्वने यत्र न कर्यंचिन्मनुष्याणां सम्भवः। क्षुच्यन्तोऽपि बुभुक्षमाणा अपि। दिवादि-त्वात् स्थन्। व्यास्त्रा हिंसा व्याद्यादयः कथं वा त्वां नाघसन् न भक्षितवन्तः। अदेः '२४२७। सुङ्सनोर्धस्स् । राश।३७।' स्त्रदित्वात् च्लेरङ्। क्षुच्यन्तो नाघ-सिन्निति पाठान्तरम्। तत्र कथं न वा अपरिचितानेवावसन् इति योज्यम्। अपालां सतीं अविद्यमानः पालो यस्या इति। '१७२६। पास् रक्षणे' इति चौरा-दिकः। पास्यतीति पासः। पचाद्यच्। यदा प्रयोजकिववक्षा तदा पातेर्कुगागमो भौ वकम्य इति सुन्हा तदः



२५०-हृदयं-गम-मूर्तिस् त्वं सुभगं-भावुकं वनम् ॥ कुर्वाणा भीममेप्येतद् वदां ८भ्यैः केन हेतुना. ॥६७॥

हृद्यमित्यादि—केन हेतुना इदं वनमभ्येः अभिगतासि वद कथय । अ-भिपूर्वादिणो छङ् । मध्यमपुरुषेकवचनम् । '२२५४। आङजादीनाम् ।६।४।७२। । '२६९। आटश्च ।६।१।९०।' इति वृद्धिः । हृदयं गच्छति या मूर्तिः शरीरमत्य-न्तसीन्दर्यात् । '२९६४। गमश्च ।३।२।४७।' इति खच् । सा एवंविधा मूर्तियं-स्याः सा त्वं भीममप्येतद्वनं सुभगम्भावुकं सर्वस्वैवाप्तियं प्रियं कुर्वाणा । असु-भगं भूत्वा सुभगं भवतीति '२९७४। कर्तरि भुवः—।३।२।५७।' इति खुक्व् ॥

२५१-सुकृतं प्रियःकारी त्वं कं हरस्युपतिष्ठसे,॥ पुण्यःकृच् चादुःकारस् ते किङ्करः सुरतेषु कः.॥६८॥

सुकृतिमित्यादि—सुकृतं पुण्यकारिणं शोभनं कृतवानिति '२९९९। सुक-र्म-पाप-१।३।८८।' इत्यादिना किए। कं रहिस विजने त्वसुपतिष्ठसे उपिछ्य्य-सि । संगतकरणे तक् । प्रियकारी अनुकूलवार्तिनी सती । प्रियमनुकृलं करोती-ति '२९६१। क्षेम-प्रिय-मदेऽण् च ३।२।४४।' इति अण् '४७०। टिब्हाणज्—।४। १।३५।' इत्यादिना कीए । पुण्यकृत् इतपुण्यः । तस्य पूर्ववत् किए । चाटुकारः प्रियवाक्यकरः । '२९३७। न शब्दक्षोक—२।२।२३।' इत्यादिना टे प्रतिषिदे-ऽणेच भवति । ईंदशस्ते किङ्करः दासः । '२९३५। दिवा-विभा—।३।२।२१।' इति टः । किंयत्रद्वहुषु कृजोऽज्विधानमिति तत्स्वीविषये दृष्टव्यम् । सुरतेषु शोभन-रतेषु । '३०९०। नपुंसके भावे कः ।३।३।९९।'। '२४२८। अनुदान्तो—।६।४। ३७।' इत्यादिनानुनासिकलोपः । अनेनोभयरुविराख्याता ॥

२५२—परिःपर्युद्धे रूपमां-द्युःलोकाच् च दुर्-लभम्.॥ भावत्कं दृष्टवत्स्वेतद्सास्वंधि सु-जीवितम्.॥ ६९॥

परीत्यादि — एतद्षं भावत्कं भवत्या इदमिति '१३१९। भवतष्ठक्छसौ। ११२१११११११ हित 'ठक्छसौ। 'ठक्छसोश्चोपसंख्यानम् ' इति पुंबद्धावः। '१२२२१। इसुसुक्तान्तात्कः। ७१३१९।' दुर्छभं परिपर्युद्धेः '५९६। अपपरी वर्जने। १९१४८८।' इति कर्मप्रवचनीयसंज्ञायां द्वितीयायां प्राप्तायां '५९८ पञ्चम्यपा-इपरिभिः। ११२१९०।' इति पञ्चमी। '६६६। अप-परि-बहिरञ्चवः पञ्चम्या। ११९-१९२।' इति विभाषासमासश्च। असमासपक्षे '२९४१। परेवंजंने। ८११५।' इति द्विचनम्। उद्धिं वर्जयित्वा चतुरुद्धिमेखळायां सुनि दुर्छभमाद्युलोकाञ्च स्वगेलोकान्तं च यावत् दुर्छभमत्रापि पूर्ववत्पञ्चमी। ताद्दशं दृष्टवत्स्वसासु अधि सुजीवितमसाद्वयये आधिक्येन सुजीवितम् । अहो वा सुजीवितमसिति अहोन-द्वार्षे अधिमस्दो वर्षते।।

900

२५३-आपीत-मधुका सङ्गैः सुदिवेवांऽरविन्दिनी ॥ सत्-परिमल-लक्ष्मीका नां ऽ-पुंस्काऽसीति मे मतिः.

आपीतेत्यादि—पारं सर्वतो मार्जनमिति परिमलः । कलत्रपक्षेत्रधिकृत्य मुनेष्टिलोपश्चेति कलप्रत्यय भोणादिकः । इह सुरतोपमोगनिमर्दः परिमलोऽभिन्येतः । तत्य लक्ष्मीः त कृतत्वात् । सती विद्यमाना परिमल्कोमा यत्याः । १८८९। उरःप्रभृतिभ्यः कप् ।५ ४११५९।' सा त्वमपुंस्का अविद्यमानभतृका नासीति मे मितः । पूर्वतत्कप् । किमिव सुदिवेदारविन्तिनी पद्मिनी । शोभनं दिवा नीहाराद्यमादादिवा दिवसं यत्याः । '८६०। सुमात—।५।४।१२०।' इत्यादिना अच् । आपीतमधुका मुङ्गः आपीतं मधु यत्याः । '८९१। शेषाद्विभाषा ।५।४।१५४।' इति कप् । यथेयं सत्परिमल्लक्ष्मीका तथा त्वमपीति ॥

२५४-मिथ्यैव श्रीः श्रियं-मन्या, श्रीमन्-मन्यो मृपा हरिः, ॥ साक्षात्-कृत्यांऽभिमन्येऽहं त्वां हरन्तीं श्रियं श्रियः ७१

मिथ्येवेत्यादि — श्रियः श्रियं रूपसम्पदं हरन्तीमिभवन्तीं त्वां साक्षा-स्कृत्य प्रसक्षीकृत्य । विभाषा कृतीस्यनुवर्तमाने '७७५। साक्षात्प्रमृतीनि च । १।-४।७४।' इति गतिसंज्ञा । गतिसमासे त्यवादेशः । अहमिमसन्ये कि प्रिथ्या श्रीः श्रियंमन्या अहमेव श्रीनीन्येति मन्यमाना श्रीमिथ्या नैव श्रीः किन्तु त्वसेवेति । '२९९३। आत्ममाने ख्र्म । १।२।८३।' । '२५०५। दिवादिभ्यः इयन् । १।९।६९।' । '२९९४। इच एकाचोऽम्प्रत्ययवच्च । ६।३।६८।' इत्यस्मावः । तस्यामः प्रत्ययत्वा-न्मलोपाभावः । '१९०। न विभक्तो तुस्माः । १।३।४।' इति वचनात् । अचीर्ताय-ङादेशः । किवन्ता धातुत्वं न जहतीति किव्वचीत्यादिना श्रयतेरीणादिकः किप् । हरिश्चात्मानं श्रीमन्तं मन्यमानो सृपा न श्रीमानिस्यहमस्मिन्ये ॥

२५५-नोंदकण्टिष्यतां ऽत्यर्थं, त्वामैक्षिष्यत चेत् स्मरः,॥ खेलायन्नेनिशं नांपि सज्ः-कृत्य रतिं वसेत्,॥ ७२॥

नोदेत्यादि सरभायां रतिः सापि रूपेण निकृष्टेति दशेयति । चेत् यदि स्मरः त्वामेक्षिष्यत दृष्ट्वानभविष्यत् तदा अत्यर्थं नोदकण्डिष्यत रितं प्रति सृश-सुकण्डितो नाभविष्यत् । '६५२। ईक्षं दशेने' इति, '२७३। कि शोके' इति भौवादिकात् कियातिपसौ हृङ् । नापि रतिं स्वभार्यां सज्दृःकृत्य सहायीक्षत्य वसेत्, अपि तु परित्यजेत् । अत्र कियातिपस्तिनं विवक्षिता किन्तु हेतुहेतुमद्भावः । नापि रितं सज्दृःकृत्य वसेत् यदि त्वामीक्षेतेति हेतुपद्मभ्यू हेतुमद्भाव-दर्शनात् । अर्थादिषु 'सज्दृः सहार्थः' इति वचनात् गतिसंद्भा । खेळायन् अनिशं कीदन् सर्वदा

२५६-वल्गूयन्तीं विलोक्य त्वां स्त्री न मन्तूयतीह का, ॥ कान्ति नांऽभिमनायेत

को वा स्थाणु-समो ऽपि ते. ॥ ७३ ॥

विशिवत्यादि—त्वां वरुगूयन्तीं शोभमामां विलोक्य न मन्त्यति स्रीह का। इह जगित का सी न मन्त्येत् कुप्येत् । सर्वदा कुप्यत्येव ईप्यायुक्तत्वात् स्वीणाम् । असम्भावने लिङ् । वरुगु-मन्तुशब्दाम्यां कण्डादित्वासक् । को वा को नाम स्थाणुसमोऽपि काष्ठतुल्योऽपि गुणदोषानभिज्ञत्वात्ते तव कान्ति विलोक्य नाभिमनायेत पूर्वमदृष्टत्वादनभिमनाः सन् अभिमनाः सचेता न भवेत् । पूर्वविल्लिङ् । अभिमनसो सुशादित्वात्वयङ् सलोपश्च । महादेवतुल्यो वा आस्तामन्यः सोऽपि तावदिभमनायेत् ॥

२५७–दुःखायते जनः सर्वः, स एवैकः सुखायते,॥

यस्योत्सुकायमाना त्वं न प्रतीपायसेऽन्तिके.॥७४॥

दुःखेत्यादि—स एवैको जनः सुखायते सुखं वेदयते । यसान्तिके समीपे न त्वं प्रतीपायसे न प्रतिकूलवर्तिनी भवति । उत्सुकायमाना सती । यस पुनरन्तिके उत्सुकायमाना प्रतीपायसे स सबीं जनः दुःखायते दुःखं वेदयते । सुख-दुःखशब्दाभ्यां '२६७४। सुखादिभ्यः कर्तृवेदनायाम् ।३।१।१८।' इति नयङ् । उत्सुक-प्रतीपशब्दाभ्यां मुशादित्वात् ॥

> २५८-कः पण्डितायमानस् त्वा-मीदायांऽऽमिष-सन्निभाम् ॥ त्रस्यन् वैरायमाणेभ्यः शुन्यमन्ववसद् वनम्.'॥ ७५॥

क इत्यादि--पण्डितायमानः अपण्डितः कथमपिपण्डितो मदन् । सृशा-दित्वात् क्यङ् । त्वामामिषसिक्षमां सर्वजनप्रार्थनीयत्वात् । आदाय गृहीत्वा कः ग्रून्यं वनमन्ववसत् । श्रून्ये वने अवसदित्यर्थः । '५४४। उपान्वध्याङ्वसः ।११४१४८।' इति कर्मसंज्ञा । कीद्दशः । त्रस्यन् विभ्यत् । वैरायमाणेभ्यः वैरं कुर्वाणेभ्यः । '२६७३। शब्द-वर-।३।११४७।' इत्यादिना क्यङ् । '५८८। भीत्रा-र्थानाम्-।११४।२५।' इत्यपादानसंज्ञा ॥

२५९-ओजायमाना तस्यां ऽर्घ्यं प्रणीय जनकाऽऽत्मजा ॥

उवाच दश-मूर्घानं साऽऽदरा गद्गदं वचः ॥ ७६ ॥ ओजेत्यादि—एवमुक्तवति रावणे अनकसुता दशमूर्घानसुवाच । दश मूर्घान शिरांसि यस प्रणीप दस्वा मतियिरप्रमिति । शेषत्वेन विवक्षितत्वात् षष्टी । ओजायमाना भोज इवाचरन्ती '२६६५। कर्तुः क्यङ् सलोपश्च ।३।९।९९।' 'ओजसोऽप्सरसो नित्यम्' इति चचनात् । मां माभिभूदित्यतितेजस्विनी भवन्तीत्यर्थः । किसुवाच वची वस्यमाणम् । सादरा सती । परित्राजक इति । गद्रदमनभिव्यक्तमसंस्कृतत्वात् ॥

कालापकम् (४)—

२६०-'महा-कुलीन ऐक्ष्वाके वंशे दाशरथिर् मम ॥

पितुः प्रियं-करो भर्ता क्षेम-कारस्तपस्विनाम्. ॥७७॥

महेत्यादि —यदुक्तं तेन कं रहस्युपतिष्ठस इति अस्य प्रतिवचनं सम भर्ता महाकुलीनः महाकुलस्यापत्यसिति। '११६४। महाकुलाद्य-खनौ १४।११४९।' इति खन् । किमादित्यवंशसंभवः । कि सोमवंशसंभवो वा महाकुलस्यापत्य-मित्याह । ऐक्वाके वंशे इक्ष्वाकृणामयमैक्ष्वाकः १९९४। दाण्डिनायन—१६१४ १७४।' इत्यादिना टिलोपनिपातनम् । अन्ये तत्र सन्तीत्याह । दाशरिथः दशरथ-स्यापत्यं यः स सम भर्ता । महाकुलीनः कीष्टशः । पितुः प्रियंकरः अनुकूलका-री । तपस्त्रनां च क्षेमकारः । '२९६१। क्षेमप्रियमद्रेऽण् च ।३।२।४४।' इति चकारात् खन् ॥

२६१-निहन्ता वैर-काराणां सतां बहु-करः सदा ॥ पारश्वधिक-रामस्य शक्तेर्रन्त-करो रणे. ॥ ७८ ॥

निहन्तेत्यादि — वैरकाराणां शत्र्णाम् । वैरप्तांत् कृतः '२९३७। न शब्दश्लोक-।३।२।२३।' इत्यादिना टे प्रतिषिद्धे अणेव भवति । निहन्तेति तृजन्तस्य
प्रयोगः । तत्र कर्मणि षष्ठी । सतां धर्मे स्थितानां यहुकरः वहुकार्यं करोतीति ।
'२९३५। दिवा-विभा—।३।२।२१।' इति टः । स्त्रीविवक्षायां तु 'किं-यत्तद्वहुयु-' इति करोतेरन् । आङ्परयोः 'स्वनिशृभ्यां डिच' इत्योणादिकः कुः परशुशब्दः । तत्पर्याय एवाव्युत्पन्नः परश्वधशब्दः । स प्रहरणं यस्य '१६०८। परश्वधाद्वञ्च ।१।४।५८।' तस्य परशुरामस्य सम्बन्धिन्याः शक्तः सामर्थ्यसान्तकरो
विनाशयिता । अन्तं करोतीति पूर्ववद्यः । रणे संग्रामे तत्र भवः ॥

२६२-अध्वरेष्विष्टिनां पाता पूर्ती कर्मसु सर्वदा ॥

पितुर् नियोगाद् राज-त्वं हित्वा योऽभ्यागमद् वनम्॥

अध्वरेष्वित्यादि—इष्टमेभिरिति इष्टिनो यज्वानः। '१८८८। इष्टादिभ्यश्च
।पारा८८।' इतीनिः। किंमिष्टवतः। अध्वरान् कर्माणि तत्र 'कस्येन्विषयस्य—'
इति कर्मणि सप्तमी। अध्वरेष्विष्टिनामिति कर्मणि पष्टी इष्टोने। पाता रक्षिता। पूर्ती कर्मसु सर्वदा। पृणोतेर्निष्टायां '२४९४। उदोष्टापूर्वस्य ।७।९।
१०२।' इत्युत्वस् । '३०४०। न ध्या-व्या-।८।२।५७।' इत्यादिना निष्टानत्वप्रतिषेधः। पूर्वमनेनेति पूर्ववदिनिः। किं पूर्वमिति सर्वदा श्राद्धादिकर्मणि।
पूर्ववस्यसमी सराजस्वं राज्यम् हिल्या त्यस्याः । स्रामिन



मुख्येन आगतवान् । छुङ् । च्लेरिङ रूपम् । पितुर्नियोगात् । नायोग्यत्वात् । स मे भतेति योज्यम् ॥

२६३-पतित्र-कोष्टु-जुष्टानि रक्षांसि भय-दे वने ॥

यस्य बाण-निकृत्तानि श्रेणी-भूतानि शेरते. ॥ ८० ॥

पतत्रीत्यादि — यस्य बाणेर्निकृत्तानि छिञ्चानि रक्षांसि भयदे वने दीर्बनि-द्रया रोरते स सस भर्तेति योज्यस् । रोरत इति '२४४२। शिक्षो रुट् ।७।१।६१' कीदशानि । अश्रेणयः श्रेणयो भूतानि । '७६२। अर्थादिन्विडाचश्च ।१।४।६१।' इति स्व्यन्तानां '७६१। कुगतिनादयः ।२।२।१८।' इति सः । '२१२०। स्वा च ।७।४।२६।' इति दीर्घः । स्व्यर्थानां तु '७३८। श्रेण्यादयः कृतादिमिः ।२।५। ५९।' इत्ययं विषयः । पतित्रिभः कोष्ठुभिश्च उष्टानि परिवृतानि ॥

२६४-दीव्यमानं शितान् वाणानंस्यमानं महा-गदाः॥ निञ्चानं शात्रवान् रामं कथं त्वं नांऽवगच्छसि.॥८१॥

द्वियेखाद्—िशितांस्तीक्ष्णान् बाणान् । दीव्यमानं क्षेषुं शक्तं तच्छीछं वा । अनेकार्थत्वाद्धात्नां दिवेः '३१०९। ताच्छील्य-वयोवचन—१३१११९९' इलादिना शानच् । '२०५। दिवादिभ्यः इयन् ।३१९१९' महागदाः अस्यमानं क्षेष्तं शक्तं तच्छीलं वा । पूर्ववच्छानच् । शात्रवान् शत्रून् । प्रज्ञादित्वादण् । निप्तानं हन्तुं शक्तं तच्छीलं वा । पूर्ववत् प्रत्ययः । हन्तेः '२६६३। गमहन—।६१४१८।' इत्युपधालोपः । '३५८। हो हन्तेः—।७१३५४।' इति कृत्वम् । एवं-विश्वं रामं कथं नावगच्छिति । तेन कर्मणा सर्वलोकविदित्रवादिति भावः ॥

२६५-स्त्रातरि न्यस्य यातो मां मृगाविन् मृगयार्मसौ, ॥ एषितुं प्रेषितो यातो मया तस्यो ऽनु-जो वनम् ॥८२॥

भ्रातरीत्यादि—यधेवं कासावित्याह । असौ मां भ्रातिर न्यस्य अर्थ-यित्वा मृगयामाखेटकं यातः । मृगेः स्वाधिको । । अदन्तत्वाच गुणो न भवति । तदन्तात् '३२७७। कृजः श च ।३।३।९० इत्यिधकृत्य 'परिचर्या-प-रिसर्या मृगयाटाट्यानामुपसंख्यानम्' इति भावे श ्यायः । यक् । अह्योपाभा-वश्च । टाप् । मृगान्विध्यतीनि मृगावित् । कासौ तिति चेदाह । तस्यानुजः कनिष्ठो मया प्रेषितः सन् यातो वनम् । अनु प्रम्भ हिति चेदाह । तस्यानुजः कनिष्ठो मया प्रेषितः सन् यातो वनम् । अनु प्रम्म हित्ते । '३४२२। अ-न्येभ्योऽपि दृश्यते ।३।३।१२०।' इति छः । अनौ वि श्रमकर्मण्यपि भवति । किमर्थ एषितुम् । तमेव ज्ञातुम् । '१२०३। इप तो विस्य रूपम् । ज्ञाना-थेत्वात् । प्रेषित इति तस्यैव रूपम् ॥

२६६-अर्था ऽऽयस्यन् कषायाः 🐔

स्यन्न-स्वेद

संदर्शिता॒ऽऽन्तराृक्तृतस् तार्मवादीद् दशाृननः, ॥ ८३ ॥

अथेत्यादि—अथेवमुक्तो जानक्या दशाननस्तामवादीत् उक्तवान् । आर-स्वन् क्रोधाविष्टत्वात् शरीरं खेदचन् । '२२८६। यसुँ प्रयत्ने' इति देवादिकः पर-स्वपदी । क्रोधादेव कपायाक्षः । '८५२। बहुवीहों सक्ष्यक्ष्णोः—।५।४।१६३।' इति षच् । स्वश्चेः स्तैः स्वेदकणैरुख्वणः उद्घटः व्याप्त इत्यर्थः । स्वन्देर्निष्टायां रूपम् । संदर्शितमान्तरमन्तर्गतमाकृतमिप्तायो येन स एवंविधः ॥

२६७-'कृते कानिष्ठिनेयस्य ज्यैष्ठिनेयं विवासितम्॥

को नग्न-मुषित-प्ररूपं बहु मन्येत राघवम्.॥ ८४॥

कृत इत्यादि किन्छाया अपत्यं ज्येष्टाया अपत्यमिति '११२२! स्त्रीभ्यो दक् ।१।१।१२०'। '११३१। कल्याण्यादीनामिनङ् ।१।१।१२६।' तयोः कल्याण्यादिष्ठ पितत्वात् । किनिष्ठासुतस्य भरतस्य कृते निमिन्ते । ज्येष्टायाः सुतः नि-रुपयोगितया विवासितः विसर्जितः । विपूर्वस्य वस्नतेहेंतुमण्ण्यन्तस्य निष्टायां रूपम् । तं नम्रसुपितप्रख्यं यथा कश्चिन्सुपितो नम्नो भवति तद्वद् भूतम् । '७२६। पूर्वकाळ-।२।१।४९।' इति सः तयोः पूर्वापरकाळत्यात् । राजदन्तादिन्यास्यरिपातः । ईदशं राधवं को बहु मन्येत श्राधेत । नैवेस्थंः ॥

२६८-राक्षसान् बदु-यज्ञेषु पिण्डी-शूरान् निरस्तवान् ॥

यद्यसौ कूप-माण्डूकि ! तवैतावति कः सायः ॥ ८५॥

राक्षसानित्यादि —अध्वरेष्विष्टिनानित्यस्थोत्तरमाह । यद्यसौ राक्षसान् विण्डीश्रूरान् विण्ड्यामेव श्रूरान् । भोजने एव श्रूरान् । '७२५। पात्रेसमिताद-यश्च । राशाध्या' इति सः । बहुयज्ञेषु कुझाझणयज्ञेषु । निरस्तवान् तिरस्कृतवान् । हे कृपमाण्ड्कि कृषे माण्ड्कीव। पूर्ववत् सः । '११२२। ढक् च मण्ड्कात्। । ।।।।।।१९।' इति चकारादण् वापत्ये। एतावति स्वरुपे वस्तुनि तव कः सायः। नैव युद्यते॥

मत्पराक्रमे तु युक्तः । तत्रापि सम न युक्तं वकुमित्याह— २६९--मत्-पराक्रम-संक्षिप्त-राज्य-भोग-परिच्छदः ॥

युक्तं ममैव किं वक्तुं दरिद्राति यथा हरि:॥ ८६॥

मत्परेत्यादि राज्यभोगादयः परिच्छदो हस्त्यश्वादिः स मत्पराक्रमेण संक्षित्रो ऽपहतो यस्य हरेरिन्द्रस्य स यथा दरिद्वाति निरर्थको भवति तन्ममैव कि वक्तुं युक्तमात्मगुणवादस्य सजाकरत्वात्। दरिद्वातेरादादिकत्वाच्छपो स्तर्

२७०—निर्-लङ्को वि-मदः स्वामी

धनानां हुत पुष्पकः ।

अध्यास्ते ऽन्तर्-गिरं यस्मात्, कस् तन् नां ऽवैति कारणम्. ॥ ८७॥

निरुद्ध इत्यादि—यस्तात्कारणात् धनानां स्वामी धनदः । अन्तर्गिरम-ध्वास्ते अध्यासितवान् । गिरेः केलाससान्तर्मध्ये । विभन्तर्योऽध्ययीमावः। '६८२। गिरेश्च सेनकस्य ।पाशाववा' इति टच्। 'पश्चर। अधि शीक्क-स्याऽऽसा-म्-।वाशाश्चर।' इति कर्मसंज्ञा । तेन '६५८। तृतीयाससम्योबीहुलम् ।चाशा८शा' इत्यम्मावो न भवति । '६५७। नाव्ययीभावात्-।चाशा८३।' इत्यमेव भवति । तत्कारणं मम पराक्रमं मां वा को नावैति न जानाति । कीद्दशः । निर्छद्धः लङ्का-तो निष्कान्तः । 'निराद्यः कान्ताद्ययें पञ्चम्या' इति सः । '६५५। एकविभक्तिः च-।व।२।११४।' इत्युपसर्जनसंज्ञायां इस्तत्वम् । हतपुष्पकः हतं आच्छिन्नं पुष्प-काष्यं विमानं यस्य । अत एव विमदोऽपेतदर्पः । लङ्का पुष्पकं च धनदस्यासीत् तदाच्छित्वा अनेन गृहीतमिति ॥

> २७१-भिन्न-नौक इव ध्यायन् मत्-तो विभ्यद् यमः स्वयम् ॥ कृष्णि-मानं दधानेन मुखेनां ऽऽस्ते निरुद्यतिः, ॥ ८८॥

मिन्नेत्यादि—स्वयं साक्षान्मको बिन्यत् त्रस्यन् यमो वैलक्षण्यात् मुखेन कृष्णिमानं कृष्णवर्णस्वम् । '१७८७। वर्णहत्वादिम्यश्च ।५।१।१२३।' इति चकारा-दिमिनिच् । दधानेन धारयता । इत्थम्भूते तृतीया। निरुव्यतिः निरुव्यमः आस्ते । उत्पूर्वाद्यमेः '३२७२। स्त्रियां किन् ।३।३।९४।' अनुनासिकलोपः । कीहराः । ध्यायन् चिन्तयन् । 'किं ममापतितं यदहमनेन हतसर्वस्यः' इति । मिन्ननौक इव विपन्नपोतवणिगिव । '८८९। उरःममुतिस्यः कप् ।५।४।१५९।' ॥

एवं स्वपौरुषं प्रदर्शं स्वीकर्तुमाह---

२७२–समुद्रोपत्यका हैमी पर्वताऽधित्यका पुरी ॥ रत्न-पारायणं नाम्ना लङ्केति मम मैथिलि ! ॥ ८९ ॥

समुद्रेत्यादि—हे मैथिल ! लक्कित नाम्ना मम पुरी । कीदशी। समुद्र एवी-पत्यका आसन्ना यस्याः सा समुद्रोपत्यका । समुद्रस्य पर्वतोपत्यकात्वात् । समु-द्रोपत्यकेति समासे साधुत्वं न भवति । यतः संज्ञाधिकारात् पर्वतस्यासम्ने अधि-रूढे उपाधिभ्यां त्यकन्प्रत्ययान्तयोग्वत्यकाधित्यकाश्चद्योः साधुत्वमुक्तम् । 'अ-तिषेथे त्यकन उपसंख्यानम्' इति '४६३। प्रत्ययस्थात्—।७।३।४४।' इतीकारो न भवति । हेमी हेमविकारा । '१५३२। प्राणिरजतादिभ्योऽत्र । ४।३।१५४।' पर्व-ताधित्यका । त्रिकृटपर्वतस्योपिर स्थिता । रत्नपारायणं यत्र रत्नामां पारमवसा-नमयम्बे ब्रम्यन्ते तत्परीक्षका नमित्रम्य ॥ हुर्गावस्थित्वानिभवनीयतां स्कोपचयात्मसृद्धतां कथयन् प्रलोभयति— २७३-आवासे सिक्त-संमृष्टे गन्धेस् त्वं लिप्त-वासिता ॥ अपितोह-सुगन्धि-स्रक् तस्यां वस मया सह.॥९०॥

आवास इत्यादि—तस्यां पुर्या आवासे गृहे । आवसत्यश्चिति अधिकः रणे वस् । मया सह त्वं वस । प्रार्थनायां छोट् । सिक्तसंमृष्टे पूर्वं सिक्ते पश्चा-त्संमृष्टे । गन्धेर्लिसवासिता सती पूर्वं छिहा चन्द्रनादिभिगंन्धेः पश्चाद्वासिता भूपिता । संमृष्टादिभिः '७२६। पूर्वकाछ—।२।१।४९।' इत्यादिना सः । अपिता न्यसा उर्वी महती सुगन्धिसक् सुगमिमाला यस्यां सा त्वम् ॥

किमिति त्वया सह वसामीति चेदाह—

२७४-संगच्छ पौँस्नि ! स्त्रैणं मां युवानं तरुणीं शुभे ! ॥ राघवः प्रोष्य-पाणीयान् , जहीहि तर्म-किं-चनम् ॥९१॥

संगच्छेत्यादि—हे पाँखि पुमांसमईति तिहता वा। अहाँथें हिताथें वा '१०७९। छी-पुंसाभ्यां नज्-सजी-।५१९८०।' खीप्रस्ये 'नज्-सजीकक्ण्युंसारुण-तिलुनानामुपसंख्यानम्' इति । मां युवानं तरुणं संगच्छ अङ्गीकुरु ।
गमेः प्रार्थनायां छोट् । '२४००। इषु-गमि-।७।२।७७।' इत्सादिना छत्वम् ।
'२६९९। समो गम्युच्छि-।१।२।२९।' इत्यादिना तङ् न भवति सक्मेकत्वात् ।
विशेषतः छोणं खिये हितमईन्तं वा । पूर्ववत्यत्ययः । तरुणी युवती सती शुमे
कच्याणि शोभत इति इगुपघलक्षणः कः । ममापि ताइशो भवांस्तीति चेदाहराघवः प्रोध्यपापीयानिति । पापशब्दात् '२०२०। विन्मतोर्कुक् ।५।२।६५।' इति
ईयसुन् छक्च मतुपः । प्रोध्यपापीयानिति '७५४। मयूरव्यंसकाद्यः ।२।१।७२।'
इति सः । देशान्तरं यात्वा पापवत्तरः । तमिकञ्चनं दरिद्रम् । न विद्यते किंचन
यस्येति । 'सर्वनामाव्ययसंज्ञाया उपसर्जनप्रतिषेधः' इति बचनान्नाव्ययसंज्ञा ।
तेन न विभक्तिछोपः । जहीहि स्रज । ईत्वस्य '२४९८। जहातेश्च ।६।४।१३६।'
इति वा वचनाद्विकरुपः ॥

२७५-अश्रीत-पिबतीयन्ती प्रसिता सार-कर्मणि॥ वशे-कृत्य दश-ग्रीवं मोदस्व वर-मन्दिरे.॥ ९२॥

अश्रीतेत्यादि — अश्रीतिपवतेति '७५४। मयूर्व्यंसक-।२।१।७२।' इत्यादि-त्वात् सः। तत्र हि 'आख्यातमाख्यातेन क्रियासातत्ये' इति पट्यते। सततमश्रीत पिवतेत्येवं भृत्यजनानादेष्टुमिन्छतीति '२६५७। सुप आत्मनः क्यच् । ३।१।८' अश्रीतिपवतीयन्ती । प्रसिता स्मरकर्मणि आधिक्येन प्रवृत्ता कामच्यापारे। '६४१। प्रसितोत्सुकाभ्यां तृतीया च ।२।३।४४।' इति चकारात् सप्तमी । वशे-कृत्यानुवर्तिनं दशग्रीवं कृत्वा। '७७५। साक्षात्प्रभृतीनि च ।१।४।७४।' इति गतिसञ्चा मोदस्व हर्षं मनय वरमन्दिरे श्रेष्टगृहे स्थिता।



२७६-मा स्म भूर् याहिणी भीरु, गन्तुमुंत्साहिनी भव,॥ उद्मासिनी च भूत्वा मे वक्षःसंमर्दिनी भव.'॥ ९३॥

मा स्मेत्यादि—हे भीत! मा सा भूर्योहिणी प्रतिकृषा मा भू:।न वास्या-मीत्ममुमर्थं गृह्णामीति कृत्वा। '२२२०। स्मोत्तरे छङ् च ।३।३।६७६।' इति चकारात् छङ् । गन्तुमुन्साहिनी उद्युक्ता भव। '३१७७। शक-धृष-१३।४।६५।' इत्यादिना तुमुन् । उत्साहिनीति सहोपपदग्वात्।ततश्रालंकृतशरीरत्वादुद्धासि-नी शोभमाना भूत्वा नो ऽस्माकं वक्षःसंमदिनी स्तनाभ्यामुरःस्थलस्य पीडिका मव। बहोत्साहोद्धाससंमदीनां ब्रहादिषु पटितत्वात् कर्तरि णिनिः। '३०६। ऋषेभ्यो ङीप्।४।१।५।'॥

२७७-तां प्रातिकूलिकीं मत्वा जिहीर्षुर् भीम-विग्रहः ॥

बाहूपपीडमांश्ठिष्य जगाहे द्यां निशा-चरः,॥ ९४॥

तामित्यादि—यदैवमिभधीयमाना न प्रतिपन्ना तदा तां प्रातिकृछिकीं प्रतिकृत्वतिंनीं मत्वा ज्ञाल्या। ओजःसहोम्भसा वर्तत इत्यधिकृत्य प्रतिकृत्वं वर्तत इत्यधिकृत्य प्रतिकृत्वं वर्तत इत्यखिकृत्यं '१५७८। तत्यत्वनुपूर्व—१४१४८।' इत्यादिना ठक् । जिहीर्षुः हर्तुमिच्छुः। भीमविग्रहः भीषणशरीरः । दृष्टराक्षसशरीररूपः। सुखेन द्वियत इति वाहूपपीडमास्त्रिष्य बाहुमिरुपपीड्य । '३३७०। सप्तम्यां चोषपीड—१३१४९' इति चकारात् तृतीयान्त उपपदे णमुत्य । जगाहे रथेनोत्पत्य द्यामानकाशं निशाचरी गाहते सा। दिवशब्दसमानार्थो द्योशब्द औणादिकः। गमेडीं इत्यत्र द्युतेश्वेति वचनात्। '२८५। औतोऽम्शसोः। १११९३।' इत्यात्वम्। कालापिनस्तु दिवशब्दादेव ब्युत्पाद्यिनुं सूत्रभधीयते वाम्येति। दिवः अमि विकरूपेनाकारादेश इति ॥

२७८-त्रस्यन्तीं तां समादाय यतो रात्रिं-चराऽऽलयम्॥ तृष्णीं सूय भयादांसांचिक्रिरे मृग पक्षिणः.॥ ९५॥

त्रस्यन्तीमित्यादि — त्रस्यन्तीं च तां तद्यदर्शनात् समादाय गृहीत्वा यातो गच्छतो रावणात्। यातेः शति पद्धम्या रूपम्। किं यातो रात्रिञ्चराल-यं लङ्काम्। रात्री चरतीति '२९३०। चरेष्टः ।३।२।९६।'। '१००८। रात्रेः कृति विभाषा ।६।३।७२।' इति सुम् । तस्मादावणाद्यस्यं ततो भयात् त्व्णीमभूय । '३३८५। त्व्णीमि सुवः ।३।४।६३।' इति '७८५। क्त्वा च ।२।२।२२।' इति समासे ल्यबादेशः । आसांचिकिरे आसिताः । '२३२४। दयायासश्च ।३।१। ३७।' इलाम्। सृगपक्षिणः सृगाश्च पक्षिणश्च। समानजातीयानामिति वचना-देकवदावोऽत्र च भवति ॥

२७९—उच्चे रारस्यमानां तां कृपणां राम-लक्ष्मणौ॥

जटायुः प्राप पक्षीन्द्रः परुषं रावणं वदन्. ॥ ९६ ॥ इति प्रकीर्ण-काण्डः प्रथम समाप्त ॥

११६ भट्टि-काट्ये ।द्वतायेऽविक र काण्डे लक्षण रूप पत्रमी वर्ग ,

उच्चेरित्यादि—तां सीतां जरायुः पक्षीन्द्रः। रावणं परुषं निष्ठुरं वदन् प्राप प्राप्तवान्। कीदशीम्। उच्चे रारत्यमानाम्। 'हा राम, हा लक्ष्मण' इति शब्दो हो उच्चेमहता ध्वनिना धुनः पुना रसन्तीमित्यर्थः। रसेः शब्दकर्मक-स्वात् क्रियासमभिहारे यङ्। कृपणां दीनाम्॥

॥ इति प्रकीर्ण-काण्डम् ॥

॥ अतः परमधिकार-काण्डम् ॥

तत्र प्रथमं टाधिकारः--

इतः परमधिकारकाण्डमुच्यते । यत्र प्राधान्येनकैकमधिकृत्य लक्षणं प्रदर्शितं तद्धिकारकाण्डम् । रोषलक्षणेषु प्रकीर्णकमेव दृष्ट्यम् । एवं च कृत्वा अन्त-रान्तरा तत्सूचनार्थं प्रकीर्णकश्लोकाभिधानम् । अत्र च काण्डे निर्दिष्टसंज्ञका-अत्वारः परिच्छेदाः । तत्र प्रथमे आद्यं टप्रत्ययमधिकृत्योच्यते । सर्गार्थस्य विव-क्षितस्यापरिसमासत्वात् तमेवामिसन्धायाह—

२८०-'द्विषन् वने-चराऽग्याणां त्वमादाय-चरो वने ॥

अभे-सरो जघन्यानां मा भूः पूर्व-सरो मम, ॥ ९७॥

द्विषित्तित्यादि — एवळ कृत्वा मिश्रक उच्यते द्वयोरण्यत्र प्राधान्येन विव-क्षितत्वात् । परुष वदन् । कीदशस् । हे द्विषन् ! मा भूः पूर्वसरो ममेति । ममामतो भूत्वा मा गा इत्यर्थः । पूर्व सरतीति '२९३३। पूर्व कति ।३।२।१९।' इति दः । यतस्त्वमभेसरो जवन्यानाम् । अभेसरतीति '२९३२। पुरोऽप्रतः— १३।२।१८।' इत्यादिना दः । जवन्य इति '२०५८। भाखादिभ्यो यः ।५।३।१०३।' इतीवार्थे यः । पापानां प्रथमस्त्वम् । कुतः आदायचरो वने । आदाय चरतीति '२९३१। भिक्षा-सेना—।३।२।१७।' इत्यादिना । वने चरन्तीति वनेचराः । अधि-करणे चरेष्टः । तेषामग्रयाः प्रधाना ऋषयः । तानादाय चरित अक्षयिति । कर्मणि षष्ठी ॥

२८१–यशस्-कर-समाचारं ख्यातं भुवि दया-करम्॥

पितुर्वाक्य-करं रामं धिक् त्वां दुन्वन्तर्म-त्रपम्॥९८॥

यशस्करेत्यादि—रामं हुन्वन्तमुपतापयन्तमत्रपं निर्छजं धिक् त्वाम्। गर्हा। '१३३६। दुवुँ उपतापे' इत्यस्य सौवादिकस्य शतिर '२३८७। हु-श्रवोः सार्वधातुके ।६१४।८७।' इति यणादेशे रूपम्। कीदशं रामम्। यशस्करसमा-चारम्। समाचरणं समाचारः चितं भावे धन्। यशस्करोतीति यशस्करः। '२९३४। क्वें हेतु—१३१२०।' इत्यादिना टः। '१३८। विसर्जनीयस्य सः। ८१३१३।' यशस्करणहेतुभूतः समाचारो यस्य। स्यातं भुवि प्रसिद्धं द्याकरं करुणाकरणशीलम्। ताच्छीस्ये टः।पितुर्वाक्यकरं पितृर्वचनानुष्टाने अनुकूलम्। सानुष्ठाम्ये ट. ॥



२८२-अहमन्त-करो नूनं ध्वान्तस्येव दिवा-करः॥

तव राक्षस ! रामस्य नेयः कर्म-करोपमः ॥ ९९ ॥

अहमित्यादि—हे राक्षस! अहं तव न्नमवश्यमन्तकरः विनाशयिता। कीहराः। रामस्य नेयो वश्यः। '२८४२। असो यत् ।१।१।९७।' कर्मकरोपमः भृतकतुल्यः। '२९३६। कर्मणि भृतो ।३।२।२२' इति टः। ध्वान्तस्येव दिवा-करः। यथान्धकारस्थान्तकरो दिवाकरः सूर्यः तथा। अन्तकरदिवाकरा '२९३७। दिवा-विभा—३।२।२९।' इति द्यात्ययान्तो । एवसुक्त्वा खं पपातेति सम्बन्धः॥ २८३—सतामंरुष्-करं पक्षी वैर-कारं नर्[ऽशिनम् ॥

हत्तुं कलह-कारोऽसौ शब्द-कारः पपात खम्.॥१००॥

सतामित्यादि एवमुक्तवा असा जटायुः पक्षी खमाकाशं पपात पतितः। किमर्थं नराशिनं राक्षसं हन्तुं हनिष्यामीति । कीदशं राक्षसं । सतामरूकरं धमें स्थितानां पीडाकरम् । अरुःशब्दः पीडोपलक्षणपरः । '२९३५। दिवा वि-भा-३।२।२९।' इति टः । वैरकारं वैरकरणशीलम् । कलहकारः पक्षी कलहिय-तुमनुकूलः । अनयोः '२९३७। न शब्द-श्लोक-३।२।२३।' इति टे प्रतिषिद्धे-ऽणेव भवति । कर्मण्यणः प्राप्तिरस्तीति टाधिकार उदाहृतः । कियत्सं पपात । यावति दूरे शब्दपातस्तावत्स्तमिति ॥

॥ टाधिकारः समाप्तः ॥

अतः परं प्रकीर्णकाः ।

इतः प्रकीर्णकश्चोकानाह-

२८४-धुन्वन् सर्व-पथीनं खे वितानं पक्षयोरंसौ ॥

मांस-शोणित-संदर्भं तुण्ड-घातमयुघ्यत. ॥ १०१ ॥

धुन्वित्रित्यादि — असी पक्षी अयुध्यत युध्यते सा । युधेर्दैवादिकस्य लिक् स्पम् । तुण्डधातमिति क्रियाविशेषणम् । तुण्डेन चक्कवा घातो हननं यक्किम् युद्ध इति '३४५८। करणे हनः ।३१४१३७!' इति न णमुल् '३३६७। कषादिषु यथाविध्यनुप्रयोगः ।३१४१४६।' इति वचनात् अहिंसार्थत्वाच्च तदारम्भस्य यथा पाद्धातं भूमि इन्तीति । '३३६८। हिंसार्थानां च समानकर्मकाणाम् ।३१४१-४८।' इत्यनेनापि न भवति समानकर्मकताभावात् । अकर्मकत्वाद्यधेः । तेन मावे घत्र । युन्वन् कम्पयन् स्ते आकाशे पक्षयोवितानम् । सर्वपथीनं सर्वः पन्था इति '७२६। पूर्वकाल-१२११४९।' इत्यादिना सः । '९४०। ऋक्-पू:-५१४१७४।' इति समासान्तोऽकारः । सर्वपथान् व्यामातीति '१८०८। तत्सर्वादेः-५१२।७।' इत्यादिना सः । मांसशोणितसन्दर्श काल्प्येन मांसं शोणितं च दृष्टा । '३३५०। कर्मणि दृशि-विदोः साकत्ये ।३१४।२९।' इति णमुल्ह । '७८३। अमेनवास्ययेन २१२२० ' इति स

२८५-न विभाय, न जिहाय, न चक्काम, न विव्यथे॥

आञ्चानो विध्यमानो वा रणान् निववृते न च.॥१०२॥

नेत्यादि—आञ्चानः पक्षी प्रहरन् । '२६९५। आङो यमहनः ।१।३।२०।' इति तङ् । न विभाय न भीतः । तसात्र जिहाय न लिजतः । सम्बङ् मया न हत इति न चक्काम न क्वान्तः । न विद्यये । '२३५३। व्यथो लिटि ।७।४। ६८।' इति सम्प्रसारणम् । जितश्रमत्वात् । विध्यमानो वा । वाशव्दश्यार्थे । परेण हन्यमानश्च न विव्यथे न पीडां भेजे । सत्त्वाधिकत्वात् रणाच न निव-वृते न निवृत्तः । अभग्नोत्साहत्वात् ॥

२८६-पिशाच-मुख-घौरेयं स-च्छत्र-कवचं रथम्॥

युधि कद्-रथ-वद् भीमं वभञ्ज ध्वज-शालिनम्. १०३

पिशाचित्यादि — युधि संयामे पक्षी रथं वसक्ष भन्नवान् । तत्य पुष्पका-दन्यत्वात् । तथा हि कद्मथवत् कृत्सित्रथमिव । '१०२८। रथ वद्योश्च ।६।३। १०२।' इति कद्मदेशः । धुरं वहन्ति धौरेया अश्वाः । '१६२८। धुरो यहुकौ ।४।४।७७।' । पिशाचस्येव मुखं येषां ते धौरेया यत्र रथे तं पिशाचमुखधौरेयम् । सच्छोभनं छत्रं कवचं च यस्मिन् । तं भीमं भयानकं तथा धुर्यत्वात् । ध्वज-शालिनं ध्वजवन्तम् । शालिन्शब्दः किन्यत्ययान्तसद्धन्तमाह । अन्यस्त्वाह ध्वजेन सालिनुं श्चाधितुं शीलमस्येति णिनिः । अनेकार्थत्वाद्धात्नामिति ।। एते प्रकीर्णकाः ॥

अतः परं आमधिकारः।

इतः प्रस्ताममधिकृत्वाह—

२८७-संत्रासयांचकारांऽरिं, सुरान् पिप्राय पश्यतः, ॥

स त्याजयांचकारां ऽथ सीतां विंशति-बाहुना. ॥१०४॥

सन्त्रासवामित्यादि अथैतसिन् युद्धश्रसावे स पक्षी सीतां विश्वतिवाहुना रावणेन त्याजयांचकार त्याजितवान् । गत्यादिषु त्यजेरसंग्रहात् नृतीयैव
भवति । कस्मास्याजितवानित्याह । सन्त्रासयांचकारारि यसादिरि रावणं
त्रासितवान् । अकर्मकत्वात् त्रासेण्यंन्तावस्थायामरेः कर्मत्वम् । आभ्यां
हेतुमण्यन्ताभ्याम् '२३०६। कास्प्रत्ययात्—३।१।३५।' इत्यादिना आम् । आमोऽमित्वमद्नतत्वात् । '२२३८। आमः ।२।४।८१।' इति लुक् । '२३११। अयामन्त—६।४।५५।' इत्यादिना अयादेशः। आमकारान्तस्य कृत्संज्ञायां प्रातिपदिकत्वे प्रथमेकवचनम् । तस्य '४५२। अव्ययात्—।२।४।८२।' इति लुक् । स्वरादिषु
'अम् आम्' इति पठितत्वादव्ययत्वम् । आमन्तस्यानिध्यक्तपदार्थत्वात् '२२१९। ३९०' इत्यादिना छिद्धरस्य कृत्यो ऽनुप्रयोग । कर्त्र

भिन्नायाभावाभावेऽनुप्रयोगे तङ् न भवति । सुरांश्च पश्यतो युद्धं जटायुः पि-न्नाय त्रीणितवान् । शञ्चत्रासनं सीतात्याजनं च देवानां त्रीतेः कारणम् ॥

२८८—अ-सीतो रावणः कासांचके शस्त्रेर् निराकुलः, ॥ भूयस्तं भेदिकांचकेनख-तुण्डा॒ऽऽयुधः खं-गः. १०५

असीत इत्यादि — असीतः परित्यकसीतो रावणः आकाशस्थः कासांचके कुत्सितमभिहितवान् । एक्टेहीति विह्गाधिपति । '६६६। कार्ष् शन्दकुत्सायाम् ' इत्यनुदानेत् । '२३९६। कास्-।३१९१३९।' इत्यादिना आम् । शक्षेः । इत्य-म्भूते तृतीया । निराकुरुः पूर्वं बाहुभिः सीताग्रहणे व्याकुरुत्वात् । भूयः पुन-रिष । स्वाः पक्षी । हपकरणे '३०१९। अन्येष्विष दश्यते ।३१२१०९।' इति वचनात् गमेर्डः । तं निशाचरं वेभिदांचके । अत्यर्थं भिन्नवान् । वेभिद्यतेर्थंड-न्तादाम् । नख-तुण्डान्येवायुधानि यस्य ॥

२८९-हन्तुं क्रोध-वशादींहांचक्राते तौ परस्परम्,॥ न वा पलायांचके विर्देदयांचके न राक्षसः.॥ १०६॥

हन्तुमित्यादि तो पक्षि-रावणो क्रोधवशात् क्रोधाधीनतया परस्परमन्योन्यं हन्तुमीहांचकाते चेष्टां कृतवन्तो । '२२३७। इजादेः—।३।१।३६।' इत्यादिना आम् । विः पक्षी । जिन-विसम्यामित्यिधिकृत्य 'वेनो डिच्च' इत्योणादिक
इक् । न वा नैव । वाशव्द एवार्थे । पलायांचके पलायितः । '२३२६ उपसर्गस्यायता ।८।२।५९।' इति छत्वम् । राक्षसश्च न द्यांचके न द्यतेसा ।
पक्षिणं खल्वहं कथं व्यापाद्यामीति । उभयत्रापि '२३२४। द्यायासश्च ।
।३।१३७।' इत्याम् ॥

२९०–उपासांचिकिरे द्रष्टुं देव-गन्धर्व-किन्नराः, ॥ छलेन पक्षौ लोलूयांचके कैच्यात् पतत्रिणः.॥१०७॥

उपेत्यादि—देवगन्धर्वकित्ररा इष्टुं युद्धं द्रक्ष्याम इति उपासांचित्ररे उपगताः। पूर्ववदाम्। कव्यात् रावणः। कव्यं मांसमत्तीति कव्यात्। '२९७७। अदोऽनके। २।२।६८।' इति विद्धः। पतित्रिणः पक्षिणः पक्षौ छोल्यांचके अलर्थं ल्तवान्। यङ्गल्यगन्तत्वादाम्। छलेन मायगा प्रसद्ध जेतुं न शक्यत इति। महोनेति पाठान्तरम्॥

१— '१२२५। शराऽकी- विह्गाः खगाः ।' २— '५३३। पतत्रि-पत्रि-पत्र-पत्त-पत्त-त-पत्ररथाऽण्डजाः । नगौकी-वाजि विकिर- खि-निष्कर-पतत्रयः ॥' ३— '६७। राक्षसः कौणप क्रव्यात् क्रव्यारोऽस्रप आगर रि सर्वत्र ना० ४०

१२० अट्टि-काट्ये—द्वितीयेऽधिकार-काण्डे **ळक्षण-**रूपे षष्ठो वर्गः,

२९१-प्रैंखुठितमेवनौ विलोक्य कृत्तं दश-वदनः ख-चरोत्तमं प्रहृष्यन् ॥ रथःवरमंधिरुद्य भीम-धुर्यं स्व-पुरमंगात् परिगृह्य राम-कान्ताम्.॥१०८॥

प्रसुठितिमित्यादि—खचराः पक्षिणः । खे चरन्तीति अधिकरणे '२९३०। चरेष्टः ।३।२।१६।' तेषामुत्तमं जटायुं कृत्तं छिनं छ्नपक्षत्वात् । अवनौ भुवि प्रसुठितं विलोक्य प्रहृष्यन् हर्पं प्राप्तुवन् निवृत्तो विश्वकारीति दशाननो रथवरं स्मरणात् प्राप्तं पुष्पकाख्यमारुह्य भीमधुर्यं रामकान्तां सीतां तथैव परिगृह्य स्वपुरमगात् गतवान् ॥

इति श्री-जयमङ्गळाऽऽख्यया व्याख्यया समकंकृते श्री-भट्टिकाव्ये-द्वितीचेऽधिकार-काण्डे लक्ष्या-रूपे पञ्चमः परिच्छेदः (वर्गः), तथा लक्ष्य-रूपे कथानके सीता-हरणः श्री-राम-प्रवासो नाम पञ्चमः सर्गः पर्यवसितः॥ ५॥

षष्टः सर्गः—

अत्राधिकारस्यापरिसमाप्तत्वात्तमेवाममधिकृत्याह—

२९२-ओषांचकार कामाऽग्निर दश-वक्रमंहर्-निशम्.॥

विदांचकार वैदेहीं रामादन्य-निरुत्सुकाम्, ॥ १ ॥ ओषांचकारेत्यादि—अथशब्दो वस्यमाणतृतीयक्षोके यः सोऽत्र दृष्ट्यः ।

अथ तस्मिन् सीतापरिप्रहे जाते कामाग्निः कामो अग्निरिव दशदक्कं दशाननमो-पांचकार ददाह । '७४६। उपँ दाहे'। '२३४१। उप विद्-।३।१।२८।' इस्मम्। अहर्निशं अहश्च निशा च । 'सर्वो द्वन्द्वो विभाषेकवद्भवति' इस्केकवद्भावात् । '५५८। कालाध्वनोरसन्तसंयोगे ।२।३।५।' इति द्वितीया । अह्वो नकारस्य '१७२। रो असुपि ।८।२।६९।' इति रत्वम् । कस्माइदाह इसाह । रावणो वेदेहीमन्यनिस्सुकां रामादन्यस्मिन् सर्वत्र निरमिलाषां विदांचकार अगुणत्वं

विदेसथेति विदेरकारान्तनिपातनात् गुणाभावः ॥ २९३-प्रजागरांचकारारिरीहास्वंनिद्यमादरात्, ॥

प्रविभयांचकारां ऽसौ काकुत्स्थादंभिशङ्कितः. ॥ २॥

प्रजागरांचकारेत्यादि-अरे रामस्य ईहासु चेष्टासु । '३२८०। गुरोश्च-।३।३।१०३।' इत्यकारः । आदरादादरेण प्रजागरांचकार जागरितवान् । शत्रुचि-

१---(१८२) खेकस टीकन प्रेक्ष्यम्,

कीर्पितज्ञानपरो बसूबेलर्थः । पूर्ववदास् । अनिशस् अविच्छेदेन । (अनिशमिति निशाकियाविच्छेदो नास्ति यस्मिन् प्रजागरण इति । तिशेति कियाविच्छेदोपलक्षणम् । प्रायेण हि निशायां कियाणामप्रवर्तनम् ।) किमिति जागरितवानित्याह । काकुरस्थादसौ प्रविभयांचकार प्रभीतवान् । '२४९१। भी ही।३।१।३९।' इत्यादिनाम् । श्रुवत्कार्ये धातोर्गुणायादेशौ । अभिशक्कितः किमयं
करिष्यतीति ॥

२९४-न जिह्नयांचकारां ऽथ सीतामभ्यर्थ्य तर्जितः.॥ नाष्यूर्जां विभरामास वैदेह्यां प्रसितो भृशम्.॥ ३॥

न जिह्नयांचकारेत्यादि—सीतामभ्यर्थ्य याचित्वा न जिह्नयांचकार न लज्जितः। तर्जितः भर्त्सितो ऽपि तयैवेत्यर्थात्। नाप्यूर्जा बलं विभरामास धारि-तवान्। '२२३९। कृञ्—।३।१।४०।' इति अलाहारप्रहणादस्तेरप्यनुप्रयोगः। हीधातोर्गुणायादेशौ। '१९६२। हुम्हन् धारण-पोपणयोः' उभयन्नापि पूर्ववदाम् श्रुवच। कथं न धारितवान् इत्याह। वैदेह्यां प्रसितः प्रसक्तः। श्रुशमत्यर्थम्॥

२९५-विदांकुर्वन्तु रामस्य वृत्तमित्यंवदत् स्वकान्,॥ रक्षांसि रक्षितुं सीतामांशिषच् च प्रयत्नवान्.॥ ४॥

विद्ंकिवित्वत्यादि—सकानात्मीयान् शुकसारणादीन् अवददुक्तवान् । किमिलाह—रामस्य वृत्तमनुष्ठितं कि तस्येहागन्तुमुद्यमोऽस्ति न वेति विदांकुर्वन्तु । '२४६५। विदांकुर्वन्तिस्य स्यास्य स्थाम् ।३।३।४३।' इति निपातितस् । सीतां रिक्षितुं रक्षांसि आशिषदादिष्टवान् । शासः '२३८२। सार्ति—।३।३।५६।' इत्यङ् । '२४८६। शास इदङ्हलोः ।६।४।३४।' इति शासेहपधाया इत्वं '२४१०। शानिवित्यसि—।८।३।६०।' इति षत्वस् । प्रयत्नवान् प्रयत्नपरः । आमिषकारो गतः॥

अथ प्रकीर्णकाः-

अथ प्रकीर्णश्लोकानाह—

२९६-रामो ऽपि हत-मारीचो निवर्त्स्वन् खर-नादिनः॥ कोष्टून् समञ्चणोत् कूरान् रसतो ऽग्रभ-शंसिनः॥ ५॥

राम इत्यादि —हतमारीचो रामो ऽपि निवर्त्सन् प्रत्यागमिष्यन् । वलादिलक्षण इदि प्राप्ते '२३४८ । न बृद्धाः—।७।२।५९।' इतिण्निषेधः । कोष्ट्न् सूगालान् । रसतः शब्दायमानान् । समसूणोत् संश्चतवान् । सकमेकत्वात् '२६९९।
समो गम्यृच्छि—।१।३।२९।' इत्यात्मनेपदं न भवति । लक्ष्टि रूपम् । कूरान् भीपणान् । यतः खरनादिनः खरवन्नदन्ति । '२९८९ । कर्तरि—।३।२।७९।' इति
मिनि अभूमक्षंसिन

९२२ भट्टि काट्ये दितायडी कार काण्डे लक्षण हप प्रथमो वर्ग ,

२९७-आञ्चक्रमानो वैदेहीं खादितां निहतां मृताम् ॥ स शत्रु-झस्यं सोदैर्यं दूरादीयान्तमैक्षत. ॥ ६ ॥

आशङ्कमान इत्यादि—तथाविधाग्रुभश्रवणादाशङ्कमानो वितर्कयन् वेदेहीं कि खादितां निशाचरादिना । ततः निहतां त्यकप्राणाम् । अहो स्वयमेवायुःक्ष-यान्मृतां वा । स रामः शत्रुप्तस्य सोद्यं आतरम् । '१६६०। सोदराद्यः ।४।४।-१०९।' आयान्तमागुच्छन्तमारादेश्चत दृष्टवान् । ईसेर्छकि रूपम् ॥

२९८-सीतां सौमित्रिणा त्यकां सधीचीं त्रस्तुमैकिकाम्॥

विज्ञायां Sमंस्त काकुत्स्य:-'क्षेये क्षेमं सु-दुर्लभम्.' ७ सीतामित्यादि सामित्रेरेकाकिनो दृष्ट्वान्नियतमनेन लक्ति तां विज्ञाय ज्ञात्वा काकुत्स्थो रामः । क्षये गृहे । क्षीयते अस्मिन्नित अधिकरणे उच् । क्षेमं कल्याणम् । सुदुर्लमं सुदुःखेन लम्यत इति । '३३०५। ईषद्-।३।३।१२६।' इत्यादिना खल् । अमंस ज्ञातवान् । कथं क्षये क्षेमं सुदुर्लभमिति आह्-सम्भीचीं सहचारिणीं न कविदेकाकिनीं तिष्ठन्तीम् । सहाञ्चतीति '३७३। ऋत्विग्-।३। २।५९। इत्यादिना किन् । '४२२। सहस्य सिन्नः । हा३।९५।' इत्यञ्जतौ वप्रत्यये सहस्य सम्यादेशः । 'अञ्चतेश्वोपसंख्यानम्' इति कीप् । '४१६। अचः ।६।४। १३८।' इत्यकारलोपः । '४१०। चौ ।६।३।१३८।' इति दीर्षः । कृतः त्रसुं असनशीलाम् । क्रियाशब्दत्वादृष्ट् न भवति । एकिकां लक्ष्मणेन लक्तत्वात् । '१९९८। एकादाकिनिचासहाये ।५।३।५२।' इति चकारात्कन् । '४६३। प्रत्ययस्थात्-।७।३।४४।' इतिचम् ॥ ॥ एते प्रकीणेकाः ॥

अतः परं दुहादिः-

इतो द्विकर्माधिकारः---

२९९-सो ऽपृच्छल् लक्ष्मणं सीतां याचमानः शिवं सुरान,॥

रामं यथास्थितं सर्वं भ्राता ब्रूते स्म विह्नलः ॥ ८॥ सोऽपृच्छिदिखादि—'५३९। अकथितं च १९१४।५९।' इसन दुहिया-चीतादिकोकैस्थान् धात्न प्रयुक्ते कविः । तत्र रामोऽप्रच्छत् सीतामिति प्रधानं कर्म छक्ष्मणमिलकथितं कर्म । याचमानः प्रार्थयमानः । शिवं कस्याणम् । अर्थात् सीतायाः शिवं प्रधानं कर्म सुरान् देवान् इत्यकथितं कर्म । आता छ- स्मणः सर्वं यथावत् स्थितं वृते सा उक्तवान् । सर्वमिति प्रधानं कर्म राममिल्यकथितम् ॥



[्]र--- '५९७ समानोदर्य-सोदर्य-सगर्य-सहजाः समाः ।' इति ना० अ०।

२--- १३५४। निलयाऽपचया स्यो ।' इति ना० अ०।

इ--- टुह्-याच्-१च्-रण्ड्--रुधि-प्रिटेश-चि-म् शाग्न-चि मय्-मुवाम् कर्म युक् स्वाद-कथितं तथा स्वान् नी ४-कृष्-वद्याम् १

२००-संदश्य शैरणं शून्यं भिक्षमाणी वनं वियाम् ॥

प्राणान् दुहिन्निर्वा ऽऽत्मानं शोकं चित्तमेवारुधत्. ९ संदृश्येत्यादि—रामः शरणं गृहं श्रून्यं संदृश्य दङ्घा । शोकं चित्तमवारु-

संहर्यत्यादि - रामः शरणं गृहं शून्यं संहर्य ह्या । शोकं चित्तमवारु-धन् चित्तं शोकं प्रावेशयन् । कीहशः प्रियां जानकीं वनं भिक्षमाणः । प्राणान् दुहन्निव त्यजन्निव । प्राणानिति प्रधानं कर्म आत्मानिसत्यकथितम् । आत्मनः प्राणान् त्यजन्निव ॥

२०१-'गता स्यादंवचिन्वाना कुसुमान्यांश्रम-द्वमान्. ॥ आ यत्र तापसान् धर्मं सुतीक्ष्णः शास्ति, तत्र सा.१०

गतेत्यादि—यत्र यसिस्तपोवने सुतीक्ष्णो नाम ऋषिः धर्म शास्ति शिक्ष-यति । धर्ममिति प्रधानं कर्मे तापसानित्यकथितम् । तत्र तपोवने गता स्यात् । सम्भावने टिङ् । आकारो निपातः स्मरणे । किं कुर्वती कुसुमान्यविन्वाना । कुसुमानीति प्रधानं कर्म आश्रमदुमानित्यकथितम् । अविन्वानेति विनोतेः कर्त्रभिप्राये तङ् । दुद्यादिदण्डको गतः ॥

इति दुहादिद्विकर्मकः।

अतः परं प्रकीर्णकाः-

प्रकीर्णकानाह—

२०२-आः, कष्टं, बत, ही-चित्रं, हूं, मातर्, दैवतानि धिक्, हा पितः!, कां ऽसि हे सु-भ्रु !,' वह्वेंवं विललाप सः,

आः कप्टमित्यादि — शोकेनाकान्तमना विलपसाह — आः पीद्वायाम्। पितृवियोगपीडितः आः इत्याह । असिद्वयोगेन पिता प्राणांस्यक्तयानित्यभि-प्रायः । कप्टमित्याह । कष्टं कृष्ट्यम् । मर्गुमरणादसिद्वयोगाच मातुः कावस्थे-त्यभिप्रायेणाह वत इति । वतक्षव्दः खेदे । सौमित्रिरिष तया सीत्या अन्याद्दशः सम्भावित इति विस्तितो हीत्याह । हीशव्दो विस्ते । यदि नाम खिया मूर्खतया तथाभिहितं सौमित्रिणा विदुषा कथं ताहक्षः शापो दत्त इत्यभिप्रायेणाह वित्रमिति । वित्रमाश्चर्ये । यदेवंविधो अपि स्खलतीति । सर्वमेव दुर्जातं केकेयीप्रभवमिति कृष्यम् हूं मातिरत्याह । हूंशव्दः क्रोधे । अथवा सर्वन्यति केकेयीप्रभवमिति कृष्यम् हूं मातिरत्याह । हूंशव्दः क्रोधे । अथवा सर्वन्यति वैवचेष्टितं न ममानुष्टितमित्यभिष्रायेणाह धिग्दैवतानीति । धिक् कृत्सायाम् । प्राणांस्त्यक्तवन्तमिति । पितरं पुनरहं द्रष्टासीत्यभिष्रायेणाह । हा पितः क दृष्टच्यो असीति । हा शोके । हे सीते क गतासीति । ध्रुशब्दात् 'क्षप्राणिजावेः—' इत्यादिनोक् । उवर्णान्तमात्रस्य विधानाइहुवीहिः । उपसर्जनत्वं च । पुनः खियामुङ् । '७५। अन्तादिवच ।६१३।८५।' इति पूर्वं प्रसन्तवत्वात् प्रातिपदि-

१ १२५९ **शरणं गृह**—रक्षित्रो इति ना० स०।

१२४ भट्टि-काट्ये-द्वितीयेऽधिकार-काण्डे लक्षण-रूपे प्रथमो वर्गः,

कत्वम् । अतः सम्बुद्धो हस्वत्वम् । विललाप स एवं कृत्वा बह्वनेकप्रकारं विला-पं कृतवान् ॥

३०३-इहां ऽऽसिष्टां ऽश्विष्टेह सा, स-खेलिमितो ऽगमत्,॥

अग्लासीत् संसारित्रीत्थं मैथिल्या भरताऽप्रजः, ॥१२॥

इहेत्यादि—इह प्रदेशे आसिष्ट उपविष्टा । '१९५८। इदमो हः ।५।३। ११।' । '१९४९। इदम इक् ।५।३।३।' इह । अशिष्ट शियितवती । आसे: शीङश्च छुड़ । सखेलं सलीलम् । इतः प्रदेशादगमत् गतवती इध्यमेवंप्रकारम् । मैथिल्याः स्मरन् । '६१३। अधीगर्थ—२।३।५२।' इति कर्मणि पष्टी । भरता-प्रजो रामो ऽग्लासीत् ग्लानं गतः । ग्लायतेर्छुङ् । '२३७७। यम-रम-।७।२।-७३।' इति सगिटौ ॥

३०४-'इदं नर्फ-तनं दाम पौष्पमेतद् दिवा-तनम्,॥

शुचेवोद्घध्य शाखायां प्रग्लायति तयाविना, ॥ १३॥ इद्मित्यादि—नक्तंतनं निशाभवं इदं दाम पुष्पमाला पुनर्दिवातनं दिव-सभवम्। '१३९१। सायम्–।धार।२३।' इत्याहिना ट्युट्युट्ये तुद च। पौष्पं पुष्पाणामिति तस्येदमित्यण्। शुचेव शोकेनेव। सम्पदादित्वात्किप्। शाखाया-मुद्ध्य। आत्मानमित्यर्थात्। प्रग्लायति ग्लानिं गच्छति। ग्लायतेः शिलाया-देशः। शाखायां प्रलम्बमानं ग्लानिं गच्छन्तं वीक्ष्येदमुत्प्रेक्षितम्। कुतः शोका-त्त्या विना सीताविच्छेदेन॥

३०५-ऐक्षिष्मिहि मुहुः सुप्तां यां मृता ऽऽशङ्कया वयम्,॥

अ-काले दुर्मरमहो, यज् जीवामस् तया विना, ॥१४॥

ऐक्तिष्महीत्यादि—यां वयमैक्षिष्महि ईक्षितवन्तः। ईक्षेः सेटो छुङ्। मुहुः
सुप्तां अविष्ठिवनिद्रस्वात्। सृताशङ्कथेति अनिष्टशंसिस्वात् प्रियजनहृदयस्य
इदानीं तथा विना अहो वयं यजीवामसद्काले दुर्मरणमिति विल्लाप। जी
वितस्वापूर्णकाले। दुःखेन मरणमिति भावे खल्॥

३०६-अ-क्षेमः परिहासो ऽयं. परीक्षां मा कृथा मम,॥

मत्तो मा ऽन्तर्धिथाः सीते ! मा रंस्था जीवितेन नः,॥

अक्षेम इत्यादि परिहसनं परिहासः कीडा । अयमक्षेमो न कल्याणकरः।
मम परीक्षां किं मामपश्यन् दुःखित आस्ते न वेति मा कृथाः मा कार्पीः। अपि
तु दर्शयात्मानम् मा निलीयस्व । '२३६८। उन्न । ११२१२।' इति कित्त्वाहुणाः
भावः । '२३६९। हस्वादङ्गात्।८।२।२७।' इति सिचो लोपः। तसाद्धेतोः सीते
मान्तर्थियाः । अन्तर्हिता मा भूः। '५९१। अन्तर्थौ-।१।४।२८।' इत्यपादानर्स-

ज्ञायां 'पञ्जम्यासासिः'। '१३७३। शस्ययोत्तरपदयोश्च ।७।२।९८।' इति मदादे-ध छुटि '२३८९। स्था च्लोरिख १२१७' इति सिच किस्वभिस्तं च। '२३६९। हस्वात्–।८।२।२७।' इति सिचो छोपः । नो ऽस्माकं जीवितेन मा रंस्थाः क्रीडां मा कार्षीः । रमेरास्मनेयदिस्वासङ् ॥ एते प्रकीर्णकाः ॥

अतःपरं सिजधिकारः-

सिचं सापवादमधिऋत्याह—

२०७-अहं न्यवधिषं भीमं राक्षसं ऋर-विक्रमम्,॥

मा घुक्षः पत्युरतिमानं, मा न श्ळिक्षः प्रियं प्रिये. १६

अहमित्यादि—यतोऽहं राक्षसं मारीचं क्र्विकमं भीमं भयानकं न्यव-धिषं निहतवानिसा। हन्तेः '२५६४। लुङ च ।२१४१६३।' इति वधादेशः । अदन्तत्वादृद्धभावः । तसान्मा धुक्षः न गोपय पत्युरात्मानम् । अन्तर्धावित्य-पादानत्वम् । '२५५। ख्यत्यात्परस्य ।६१९१९२।' इत्युत्वम् । गुहेः '२३३६। शल् इगुपधादनिटः क्सः ।३१९१४५।' । '३२४ । हो दः ।८१२।३१।' भण्माव-कत्व-पत्वानि । सिपश्च विसर्जनीयः । मा न श्विक्षः मा न परिरच्धाः अपितु श्विष्य प्रियं मास् । हे निये । '२५९४। श्विष आल्किने ।३१९१६।' इति क्सः ॥ ३०८—मा स्म द्राक्षीर् मृषा दोपं, भक्तं मां मातिचिक्विशः, ॥

शैलं न्यंशिश्रियद् वामा, नदीं नु प्रत्यदुद्ववत्.॥ १७॥

मा स्मेत्यादि—सृषा दोषं व्यलीकं दोषं मा द्राक्षीः । मयीत्यर्थात् '२२२०। स्मोत्तरे लक्ष् च ।३।३।१७६।' इति चकाराळुङ् । '२३३६। शल इगुपधात्—।३।१। ४५।' इति क्सस्य '२४०७ न दशः ।३।२।४७।' इति निषेधः । '२२६९। इरितो वा ।३।१।५७।' इत्यङ्भावे सिच् । '२४०५। स्वि—दशोः—।६।१।५८।' इत्यम् । इलन्तलक्षणा वृद्धिः । '२९४। बश्च—।८।२।३६।' इत्यादिना पत्वम् । यतोऽहं भक्तत्वतो मां भक्तं मातिचिक्किशः नातिक्केशय । क्किशेण्यंन्तात् सिपि । '२३१२। णि-श्रि—।३।१।४८।' इत्यादिना चङ् । णिलोप-हस्त-द्विवचनानि । पुनर्विकल्पय-खाह । मयि दोषदर्शनाद्वामा मत्यतिकूल्वर्तिनी सती शेलं नु पर्वतं कमण्यशि-श्रियदाश्रिता उत्त नदीं प्रत्यदुद्वन्त् प्रतिगतेत्यर्थः । नुशब्दो वितर्के । पूर्ववचङ् ॥

३०९-ऐ वाचं देहि. धेर्यं नस् तव हेतोर॑सुस्रुवत् . ॥ त्वं नो मतिमिवां ऽघासीर् नष्टा, प्राणानिवांऽदधः.

पे वाचिमित्यादि — ऐशब्दो निपातो ऽभिमुखीकरणे वर्तते । वाचं देहि । अर्थवायां छोट । '२४७१। व्वसोरेडी — १६१८१९१९।' इत्येत्वस् । किमिति चेदा- इ । धैर्यं नो ऽस्माकं धीरता तव हेतोरसुसुवत् गित्वतम् । नष्टा अदर्शनं गता सती त्वं नोऽस्माकं मितं बुद्धिमधासीरिव पीतवतीव । बुद्धेरपगमात् । '२३७५। विभाषा धेट्-रव्योः ।३११४९।' इति यदा न चङ्क तदा '२३७७। यम-रम—।७११७३।' इति सिगिटी । प्राणानद्धः पीतवती । कायस्याचेष्टत्वात् । चिक्क स्मस् '२३८२ आतो छोप ६४६४ ॥

१२६ अट्टि-काव्ये—द्वितीयेऽधिकार-काण्डे **छक्षण-**रूपे प्रथमो **धर्गः,**

३१०-रुदतो ऽशिश्वयच् चक्ष-रांद्यं हेतोस् तवां ऽश्वयीत्,॥ चिये ऽहं, मां निरास्थश् चेन्, मा न वोचश् चिकीर्षितम्.॥ १९॥

हद्त इत्यादि—तवार्थे त्वां पश्यामीति रदतो मम चक्रुरशिश्वियत् उच्छू-तम्। आस्यं मुखं चाश्वयीत्। '२३७५। विभाषा घेट-श्वोः ।३।१।४९।' इति चङ्-सिचो । चङीयङ् । '२२९६। इयन्त—।७।२।५।' इति न दृद्धिः। '२२६६। इट ईटि ।८।२।२८।' इति सिचो छोपः। गुणायादेशो । मां निरास्थश्रेयदि मम द्र्यानं निरस्तवती त्वं तदा न्निये ऽहम्। '२५३८। न्नियतेर्कुङ्खिङोश्च ।१।३।-६५।' इति चकाराच्छित्यात्मनेपदम् '२३६७। रिष्ट्र-श-यग्—।७।४।२८।' इति रिङ् । अतो यत्त्वया चिकीवितं कर्तुमिष्टं तन्मा नावोचः मा नामाविष्टाः अपि तु बृहि । '२४३८। अस्यति-वक्ति—।३।१।५२।' इत्यङ् । '२४५४। वच उम्।७।४।२०।'॥

३११-लक्ष्मणां ऽऽचक्ष्व, यद्यांख्यत् सा किञ्चित् कोप-कारणम्,॥ दोषे प्रतिसमाधान-मंज्ञाते क्रियतां कथम्,॥ २०॥

लक्ष्मणेत्यादि —हे लक्ष्मण ! यदि सा किञ्चित्कोपकारणमाल्यदुक्तवती । इदं तेनाप्रियमाचरितम् । पूर्ववदङ् । तदाचक्ष्व कथय । अज्ञाते दोषे अनिर्धा-रिते प्रतिसमाधानं कथं कियतां अनुष्ठीयतां । नैवेति भावः । कर्मणि छोट् । '२३६७। रिङ्—।७।२८।' इत्यादिना रिङ् ॥

३१२-इह सा व्यलिपद् गन्धेः, स्नान्तीहांऽभ्यिषचज् जलैः,

इहां ऽहं द्रष्टुमाह्नं तां,' स्मरन्नेवं सुमोह सः॥ २१॥

इहेत्यादि—इह प्रदेशे सा सीता गन्धेन्येलिपत् समालिसवती । मामा-स्मानं चेत्यर्थात् । इह स्नान्ती कीडाप्र्यक्मभ्यिषचत् । इस्तवश्चसुक्तसलिलेन सामभिसुसं सिक्तवतीत्यर्थः । '२२७६। प्राक्तितात्—।८।३।६३।' इति पत्वस् । इह द्रष्टुं तासाह्नं आहृतवान् । '२४१८। लिपि-सिचि-ह्मश्च ।३।१।५३।' इति इलेरङ् । एवं सारन् सुमोह मोहं गतवान् ॥

३१३-तस्यां ऽलिपत शोकाऽग्निः स्वान्तं काष्टमित ज्वलन्, अलिप्तेवां ऽनिलः शीतो वने तं, न त्वीजिह्नदत्, २२-

१—'६५३। बक्रा ऽऽस्ये वदनं तुण्डमाननं लपनं मुखम्।' इति ना० अ०। र—'१५३ चित्तं तु चेतो बदवं स्वान्तं इन् मानसं मन ि इति ना० अ०।

तस्येखादि—तस्य रामस्य स्वान्तं मनः। '३०५८। श्रुव्ध-स्वान्त-।७।२।९८।' इत्यादिना निपातितम्। शोकाप्तिः शोको ऽग्निरिव। अलिपत दीपितवान्। परस्मैपदेषु '२४१८। लिपि-।३।१।५३।' इत्यादिना नित्ये प्राप्ते '२४१९।
आत्मनेपदेण्वन्यतरस्याम् ।३।१।५४।' इति विकल्पेनाङ्। '२१५८। स्वरितजितः-।१।३।७२।' इति क्रियाफलविवक्षायामात्मनेपदम्। काष्टमिव स्वान्तं ज्वलम्
अभिवर्षमानः। अनिलो वायुः शीतो ऽपि सन् वने तं राममलिप्तेव दीपितवाकिव। अञ्भावपक्षे '२२८१। झलो झलि ।८।२।२६।' इति सिचो लोपः। नतु
नेवाजिह्नदत् हादितवान्। शोकाप्तेरहुद्धत्वात्। हादेण्यैन्तात्। '२३१२। णिश्रि-।३।१४८।' इति चङ्॥

३१४-स्नानंभ्यिषचतां ऽम्भो ऽसौ रुद्त् दियतया विना ॥ तथा ऽभ्यषिक्त वारीणि पितृभ्यः शोक-मूर्च्छितः २३

सानित्यादि असौ रामो दियतया विना । शोकसूर्ष्छितः शोकेन मोहं नीतः । स्नातुमारद्यः । मृद्छेहेंतुमण्यन्तस्य रूपम् । '११२६। प्णा शोचे' शतु-प्रस्यः । रूद्वं विसुञ्चन् । अम्मः सिल्लं अम्यिषचत क्षिप्तवान् । शिरस्यक्ष- लिना । तथा स्नातः पितृम्यो नारीणि अम्यिषक्त दत्तवान् । सिन्देः पूर्वविद्वमा- षाऽङ् । सिनिरत्रोत्सर्गे वर्तते । तत्रश्रार्थान्तरवृत्तित्वाज्ञलस्य कर्मत्वम् । अभ्यु- क्षणे तु करणत्वं यथा जलेन सिञ्चतीति ॥

३१५-तथा ऽऽतों ऽपि क्रियां धर्म्यां स काले नां ऽमुचत् कचित्,॥ महतां हि क्रिया निला छिद्रे नैवां ऽवसीदति.॥ २४॥

तथेत्यादि स रामस्तेन प्रकारेणातोंऽपि क्रिचिद्पि धर्म्यो कियां काले नामुचत् न त्यक्तवान्। यतो महतां सत्यपि छिदे व्यसने नित्या किया नावसी-दित नापयाति। आङ्पूर्वादर्तेर्कणोतेवी निष्टायां क्रिति धातौ वृद्धिः। मुचेः स्टद्नुबन्धस्वादङ्। '३२००। कृतः श च। ३। ३। २००।' रिङ्यिङौ॥ ३१६ — आह्वास्त स मुहुः शूरान्, मुहुरह्ति राक्षसान्,॥

'एत सीताद्धहः संख्ये, प्रत्यर्थयत राघवम्, ॥ २५ ॥ आह्वास्तेत्यादि पुनः पुनरिभभवितुं ग्रूरानाह्वास आहूतवान् तथा राक्षसानाह्वत । पूर्वविद्वकरणः । '२७०४। स्पर्धायामाङः ।१।३।३१।' इत्यासनेपदम् । कथमाहूतवानित्याह । हे सीताद्धहः सीताहिंसकाः ग्रूरा राक्षसा वा एत आग-च्छत । आङ्गूर्वादिणो छोट । संख्ये संग्रामे । राघवं प्रत्यर्थयत प्रत्यर्थिनं इत्ता ।

१—'८६९ । युद्धमायोधनं जन्यं प्रधनं प्रविदारणम् । मृधमास्कन्दनं **संख्यं** समीकं सांपरायिकम् ॥' इति ना० अ० ।

१२८ सिंह काट्ये द्वितीयेऽधिकार काण्डे स्टक्षण रूपे प्रथमी वर्ग ,

प्रत्यर्थिन्शव्दात्तत्करोतीत्यर्थे णिच् । तदन्ताङ्घोटः परस्मेपदस् । '२०५९ । अर्थे याच्यायाम्' इत्यस्य तु स्वार्थिकण्यन्तस्य सर्वदासमनेपदिस्वात् प्रत्यर्थयभ्वमिति स्यात् ॥

३१७-स्व-पोषमपुषद् युष्मान् या पक्षि-मृग-शावकाः !॥

अद्युतच् चैन्दुना सार्ध, तां प्रशूत, गता यतः. शारहा।

स्वपोषसित्यादि —हे सगपक्षिणां शावकाः पोताः ! या सीता युप्मान् स्व-पोषमपुषत् पुष्टवती । '३३६१। स्त्रे पुषः ।३।४।४०।' इति णसुछ् । '२८२७। यथाविध्यनुप्रयोगश्च ।३।४।४।' '२३४३। पुषादि-३।१।५५।' इत्यङ् । तां प्रवृत कथयत । यतो यत्र।आद्यादित्वास्तिः।गता सत्यद्युतत् द्योतते सा। पूर्ववदङ् । इन्दुना सार्थम् । चन्द्रमसा तुल्यकान्तित्वात् ॥

३१८—गिरिमन्वस्पद् रामो लिप्सुर् जनक-संभवाम् ,॥ तस्मिन्नां योधनं वृत्तं लक्ष्मणायां ऽशिषन् महत्–२७

गिरिमित्यादि —गिरिमन्वस्पत् लक्ष्यीकृत्य गतः । छिदिन्वादङ् । किमर्थं लब्धुमिच्छुः '२६२३। सिन मी-मा-१०।४।५४।' इत्यादिना इस् । '२६२०। अत्र लोपः-१०।४।५८।' इत्यम्यासलोपः । '१२१। लिरं च १८।४।५५।' इति चर्त्वम् । जनकसम्भवाम् । सम्भवत्यसादिति सम्भवः । '३२३२। ऋदोरप् १३१३।५७।'। जनकः सम्भवो यस्यास्तसाद्वा संभवो यस्यास्तां सीताम् । तस्मिन् गिरो आयोभ्यानं युद्धं महदतिशयत्वात् वृत्तं लक्ष्मणायाशिषत्कथितवान् । क्रियायोगे चतुर्थी। '२३८२। सर्ति-१३।२।५६' इत्यादिनाऽङ् । '२४८६। शास इदङ्-हलोः ।६।४। ३४।' इतीत्वम् । '२४१०। शासि-वसि-१८।३।६०।' इति षत्वम् ॥

कथमकथयदित्याह---

३१९-'सीतां जिघांसू सौमित्रे ! राक्षसावारतां घुवस्,॥

इदं शोणितमभ्यश्रं सैप्रहारे ऽच्युतत् तयोः. ॥ २८॥

सीतामित्यादि (इत्येवं एक्सणायाशिषदिति श्लोकचतुष्टयं यावत् सम्बध्यते) हे सौमित्रे! सीतां हन्तुमिच्छन्तौ राक्षसावारतामागताबिति ध्रुवं विश्वितम्। अर्तेराङ्पूर्वात्पूर्ववदङ् । '२४०६। ऋ-इशोङि—।७।४।१६।' इति गुणः। कीदशौ सीतां जियांस् हन्तुमिच्छू। हन्तेः सनि '२६१४। अध्झनगमां सिनि।६।४।१६।' इति दीर्घः। '२४३०। अभ्यासाच ।७।६।५५।' इति कुत्वम्। तथाहि। तयोः सीताहेषानुनयाभ्यां संप्रहारे युद्धे इदं शोणितम् अच्युतत् गलितम्। '४१ च्युतित् क्षरणे'। अकर्मको ऽत्र। "२२६९। इति वा ।३।६। ५७।' इत्यक् । अभ्यग्रं प्रस्प्रम्॥

१—(३१६) श्लेक-स्थं टीकनं प्रेक्ष्यम्। २— ८७० अखियां समराऽनी-क-रणा करुत्त विद्यहौं 5िमसपाठ-कलि-सरफोट-सयुगा रित ना० व०

३२०-इदं कवचर्मच्योतीत् , साऽश्वो ऽयं चूर्णितो रथः, ॥ एह्यमुं गिरिमन्वेष्टुमवगाहावहे द्वतम्. ॥ २९ ॥

इद्मित्यादि—इदं कवचमच्योतीत् भ्रष्टम्। अङभावे सिजेव भवति। अयं रथः साश्वश्चर्णित आस्ते। यतश्चैवं तस्सादेहि आगच्छ द्वतम्। किं पश्चाद्वि-लम्बसे। अमुं तिरिमवगाहावहे चिलोडयावः। किमभं अन्वेष्टुम्। सीतामिल-भीत्। एतत्सर्वं पर्वतसमीपे कथ्यते॥

> ३२१-मन्युर् मन्ये ममां ऽस्तम्भीद् , विषादो ऽस्तभदुं द्यतिम् ,॥ अजारीदिंव च प्रज्ञा, वलं शोकात् तथांजरत्.॥ ३०॥

मन्युरित्यादि—मन्युः शोकः। मन्ये धमन्यो। (क्रन्दतः उच्छूने)। अस्तम्भीत् स्तब्धवान्। विषादं उद्यतिमस्तभत्। अत्र पक्षे अनुनासिकलोपः। प्रज्ञा च तत्वविवेकिनी बुद्धिः अजारीत् विवेकवैकल्यात् जीणेव । तथाशब्दः समुचये। बलं शोकादजरत् जीणेम्। स्वकार्याकरणात्। '२४०६। ऋदशोऽङि—।७।४।३६।' इति गुणः। '२२९३। जू-सम्भु—।३।१५८।' इत्यादिना सिजङो॥

३२२-गृधस्येहांश्वतां पक्षो कृत्तो, वीक्षस्व लक्ष्मण !॥

जिघत्सोर् नूनमापादि ध्वंसो ऽयं तां निशा-चरात्.'

गृश्चस्यत्यादि — हे छक्ष्मण। इह प्रदेशे गृश्वस्य पक्षी कृत्ती छिन्नी। अश्वतां श्रूनी। पूर्ववद्कि '२४२१। श्रयतेरः । ज्ञाशिश्वः' इति। वीक्षस्य न्तमदद्यं सीतां जिन्नत्तोरत्तुमिच्छोर्गृश्वस्य। अदेः '२४२७। छङ्-सनोर्धस्छ । २।४।३७।' निशाचरादयं ध्वंसः पक्षच्छेद आपादि उत्पन्नः। कर्तरि छङ् । '२५१३। विण्ते पदः।३।१।६०।' इति च्छेश्चिणादेशः। तशब्दस्य '२३२९। विण्ते छक् । १।४।१०९।'॥

३२३-कुद्धो ऽदीपि रघु-वैयाघो, रक्त-नेत्रो ऽजनि क्षणात्,॥ अबोधि दुःस्यं त्रैलोक्यं, दीप्तैर/पूरि भानु-वत्,॥३२॥

कुद्ध इत्यादि — तदेवं रघुच्याघो रामः कुद्धो अदीपि दीसवान् । क्षणाच रक्तनेत्रो ऽजिन जातः । '२५१२। जिन-वध्योश्च ।७।३।३५।' इति न वृद्धिः । त्रे-लोक्यं निहन्मि यस्मिन् हन्यमाने सीतादुहो ऽपि नश्यन्ति इत्यमिप्रायेण दुःस्थ-मबोधि बुध्यते सा । किंवा रामस्य दारा हियन्ते तदान्येषु का कथा इति दुःस्थं त्रैलोक्यमबोधि । दीवैस्तेजोभिहेंतुभिरापृरि वर्षते सा । भानुवदादित्यवत् ।

१—-(११०४ । स्युरुत्तर- पदे व्याझ-पुङ्गव-र्धम-कुञ्जराः ॥ सिंह-शार्द्क-नागाऽऽ-वाः पुंति श्रेष्ठाऽर्थ-गोचराः ।

९३० भट्टिकाट्ये दितायऽधिकार काण्डे लक्षण-रूपे प्रथमी वर्ग ,

दीसैरिति साचे निष्ठा । सर्वत्र कर्तरि छुङ् । '२३२८। दीप-जन-।३।१।६३।' इत्यादिना चिष् ॥

३२४-अतार्यस्योत्तमं सत्वम्प्यायि कृत-कृत्य-वत्,॥

उपाचायिष्ट सामर्थ्यं तस्य संरम्भिणो महत्.॥ ३३॥

अतायीत्यादि — अस्य रामस्य उत्तमं सत्यमभिषायः शोकव्यसनयोरिवका-रित्वात् अतायि सन्ततं नान्तरा विन्छिद्यते सा। अप्यायि वृहितम्। कृतकृत्य-कत् समाप्तिकयवत् । हस्रतळस्यं शत्रुवधं मन्यमानस्य । उभयत्रापि पूर्वविन् ण्। तस्य रामस्य संरिम्भणः शत्रुविषये क्षुभितचित्तस्य सामर्थ्यं बळं महदुपा-चायिष्ट स्वयमेवोपचीयते सा। चिनोतेः '२०६८। अचः क्रमैंकर्तरि ।३।९।६२।' इति वा चिष् । पक्षे चिण्वदिद ॥

३२५-अदोहींव विषादो ऽस्य, समरुद्धेव विक्रमैंः, ॥

समभावि च कोपेन, न्यश्वसीच् चांऽऽयतं मुहुः. ३४ अदोहीत्यादि—अस्य रामस्य विषादः प्रागुत्पको ऽदोहीव स्वयं क्षरित इव । अथवा अदोहीव प्रपूर्वते स्वेव । '२०६९। दुहश्च ।३।१।६३।' इति चिण् । विक्रमः पुरुषकारः समरुद्धेव स्वयं संरुध्यते सा इव । '२०६६। कर्मवत्-।३।१।००।' इत्यादिना कर्मवद्भावेन प्राप्तस्य चिणः '२०७०। न रुधः ।३।११६४।' इति तिषेधः । तेन सिजेव भवति । '२२८१। झलो झिल ।८।२।२६।' इति सिचो लोपः । '२२८०। झषस्यथोधी ऽधः ।८।२।४०।' । '५२। झलां जग्न झिर ।८।४। पश् । '२२८०। झपस्यथोधी ऽधः ।८।२।४०।' । '५२। झलां जग्न झिर ।८।४। पश् । '२०५९। विण् भाव-कर्मणोः ।३।१।६६।' इति मावे चिण् । त्रेलोक्यदौःस्व्याववोधाक्षात्रसेदः सन् आयतं दीर्घ न्यससीद् निःश्वसितवान् । '२२९९। हयन्त-।७।२।५।' इति वृद्धिन भवति । सुहुरिति सर्वत्र योज्यम् ॥ ॥ इति सिजधिकारः ॥ ३२६—अथां ऽऽलम्ब्य धन् रामो जगर्ज गज-विक्रमः, ॥

'रुणिध्म सवितुर् मार्गं, भिनिद्म कुँछं-पर्वतान्, ॥३५॥ श्रम्-प्रकरणं कथ्यते—

इतः प्रभृति श्रम्-प्रकरणमधिकृत्याह-

अथेत्यादि —अथानन्तरं रामो धनुरालम्ब्य गृहीत्वा जगर्ज विस्कृर्जितवा-न् । धन् राम इति '१७४। द्लोपे-।६।३।११९।' इति दीर्घः । '२३५। गर्जं गर्जने'। किं जगर्ज । सवितुः सूर्यस्य मार्गं पन्थानं रूणिध्म आवृणोमि । तरै-रिस्पर्थात् । '२५४३। रुघादिम्यः अम् ।३।१।७८।' तथा भिनम्नि विदारयामि कुळपर्वतान् ॥

२—'८६८। विकासस् त्वितिशक्तिता।' इति ना० अ०। २—'महेन्द्रो मलयः सथ- शक्तिमान् कश्चपर्वतः विन्ध्यश्च पारियात्रश्च सप्तेते कुलपर्वता ॥

३२७-रिणच्मि जलघेस् तोयं, विविनच्मि दिवः सुरान्,॥ ध्रुणिद्रा सर्पान् पाताले, छिनद्रि क्षणदा-चरान्. ३६

रिणच्मीत्यादि—बल्धेस्तोयं रिणच्मि रिक्तीकरोमि । '१५३५। रिचिँर् विरेचने।' दिवः स्वर्गात् सुरान् विविनच्मि पृथकरोमि। '१५३६।विचिर् पृथ-रभावे ।' क्षुणिक्क चूर्णवामि सर्पान् पाताले । '१५३७। क्षुदिर् पेषणे' । '१९७। अट्-कु-प्वाङ्-।८।४।२।' इति णत्वस् । छिनचि क्षणदाचरान् राक्षसान् द्विधा करोसि । '१५३४। छिदिर् हैधीकरणे'॥

३२८-यमं युनन्मि कालेन समिन्धानो ऽस्त्र-कौशलम्,॥ शुष्क-पेषं पिनष्मर्युवींमीखिन्दानः स्व-तेजसा, ॥ २०॥

यमसित्यादि-यममपि कालेन तदधीनेन सृत्युना युनिन सम्बन्नामि । अखकोशलं समिन्धानः संवर्धयन् । '१५४२। नि-इन्धी दीक्षी' । आत्मनेप-दिनो लटः शानच् । '२५४४। श्राञ्चलोपः ।६।४।२३।' । '२४६९। असोरह्लोपः ।६।४।५९१। उर्वी गुष्कां कृत्वा चूर्णयामि । '१५४६। पिष्हें संचूर्णने'।'३३५६। शुक्कचूर्णरुक्षेषु पिपः ।३।५।३५।' इति णसुद्ध । अखिन्दानः स्वतेनसा दैन्यमम-जन् अपरिश्राम्यन् । '१५४३। खिर्दं देन्ये' । पूर्ववछोपः ॥

३२९-भूतिं तृणिद्म यक्षाणां, हिनस्मीन्द्रस्य विक्रमम्, ॥ भनिषम सर्व-मर्यादास् , तनिष्म व्योमै विस्तृतम्३८

भृतिमित्यादि—यक्षाणां भृतिं सम्पदं तृणीच उत्सादयामि । '१५४०। उ-तृदीर् हिंसाऽनादरयोः'। इन्द्रस्य विकसं हिनस्सि अपनयामि । '१५५०। हिसि हिंसायाम्'। '२२६२। इदितो नुम्-। ७।३।५८।' तस्य आन्नलोपः । सर्व-मर्यादाश्च व्यवस्थाः सर्वेषां भनितम सर्दयामि । '१५४७। मक्षो आमदंने ।' '२५४४। श्राचलोपः ।६।४।२३।'। तनस्मि न्योम विस्तृतं सङ्कोचयामि । '१३-३३। स्तृज् आच्छादने 'सौचादिकस्य रूपं न '१५६९। स्तृज् आच्छादने 'इति क्रेयादिकस्य । '१५५३। तर्ज्नुं सङ्कोचे'। '१५४४।। श्रामकोपः ।६१४।२३।'॥

कसादेवं प्रवृत्तस्वमिति चेदाह-

३३०-न तृणेह्यीति लोको ऽयं मां विन्ते निष्-पराक्रम्,'॥ एवं वदन् दाशरथिरेषृणम् धनुषा शरम्. ॥ ३९ ॥

न तृणेह्मीत्यादि -- न तृणेह्मि न मारयामि इति कृत्वा। '१५४९। तृहँ हिर्सि हिंसायाम्'। अस्। '२५४५। तृणह इस्। ७।३।९२।' अयं लोको मां निष्परा-क्रमं निर्वीर्यं विन्ते विचारयति । '१५४४। विदं विचारणे' इस्यसादात्मनेप-

१— १२०२ । सर्वसहा वसुमती वसुधोर्दी वसुधरा । गोत्रा कुः पृथिती पृथ्वी क्ष्माऽवनिर् मेदिनी मही।।' इति ना० अ०। २---८०। 'द्यो-दिवौ द्वे स्त्रियामझं **ट्योग** पुष्करमम्बरम् । नमोऽन्तरिक्षं गगनमनन्तं सुरवर्म खम् ॥' इति ना० अ०।

भट्टि-काट्ये—द्वितीयेऽधिकार-काण्डे स्रक्षण-क्षे प्रथमो वर्गः,

दिनः श्रम् । अङ्घोपः । एवसुक्तेन प्रकारेण वदन् दाशरिथः धनुषा शरम् अपृ-णक् पृणक्ति सा। '१५५७। पृची संपर्के' । छङि अम् । हल्ङ्यादिखोपः .

कुत्वम् ॥ इति श्रम्-विकरणनिदर्शनम् ॥

इतः प्रकीर्णकश्लोकानाह— ३३१-न्यवर्तयत् सुमित्रा-भूस् तं चिकीर्षं जगत्-क्षयम् ,॥

ऐक्षेतामाश्रमादारांद् गिरिकल्पं पतत्रिणम् ॥४०॥

न्यवर्तयदित्यादि-तं रामं जगत्भयं चिकीर्षुं कर्तुमिच्छुम् । सुमित्राभू-र्रुक्मणो न्यवर्तयत् निवर्तितवान् । 'श्रातः अरुं कोपेन, त्वया सार्वं कः संप्रामे युद्धं दातुं समर्थः ? यदत्र युक्तं तत्प्रतिविधीयताम्' इति । भवनं भूः । सम्प्रदा-दिखात् किए । सुमित्रायां भूर्यस्य । ऐक्षेतां रामलक्ष्मणौ दष्टवन्तौ । लिङ रूप-म्। पक्षिणं गिरिकर्षं महाप्रमाणस्वात् । आश्रमादारात् समीपे। '६९९। तूरान्तिकार्थैः-।२।३।३४।' इति पञ्चमी ॥

३३२–तं सीता-घातिनं मत्वा हन्तुं रामो ऽभ्यधावत, ॥

'मा वधिष्ठा जटायुं मां सीतां रामां ऽहमैक्षिपि.' ४१ तमित्यादि-तं सीताघातिनं सीता हतानेनेति मत्वा रामो हनिष्यामीत्य-

भ्यघावत । '६४३। घावुँ गति-शुद्धोः' । इत्यसाहङि स्वरितेत्वादात्मनेपदम् । तं हन्तुमुद्यतं रामं जटायुराह मा विधिष्ठा इति । 'हे राम मां जटायुं मा विधि-ष्टा मा वधीः'। 'वध बन्धने' इत्यसादनेकार्थत्वादात्मनेपदिनः सेटो छुङि रूपं, न हन्तेः तस्य परसौपदित्वात् । सत्यप्याङि '२६९५। आङ्को यमहनः ।१।३।२८।' इत्यात्मनेपदं न भवति तत्राकर्मकादित्वनुवृत्तेः । स्वनामपरिकीर्तनं तव पितुरहं सखेति ख्यापनार्थम् । सीतामैक्षिषि दृष्टवानहम् । लुङुत्तमैकवचने रूपम्। अतो मां मा विधिष्टाः॥

३३३-डपास्थितैंवर्मुक्ते तं सखायं राघवः पितुः, ॥ पप्रच्छ जानकी-वार्ता संघामं च पतन्निणम्, ॥

ततो रावणमांख्याय द्विपन्तं पर्ततां वरः ॥ ४२ ॥

उपास्थितेत्यादि - पक्षिणैवमुक्ते सति राववस्तं प्रणमङ्गाद्यनुष्टानेन उपा-स्थित परिचरितवान् । सङ्गतकरणे आत्मनेपदम् । '२३८९। स्थाघ्वोरिच ।१।२।-

१७।' इतीत्वम् । '२३६९। हस्वादङ्गात् ।८।२।२७।' इति सिची छोपः । पितः सखायमिति सखिशब्दस्य द्वितीयैकवचने रूपम् '२५३। सस्युरसम्बद्धौ ।७।१।-

९२।' इति णित्वाद्वद्विरायादेशैः । पप्रच्छ पृष्टवान् । तं पक्षिणं जटायुम् । किं आराद् दूरसमीपयो इति ना० अ०

२—(२८९) स्त्रेक्रोक्त **टीकनं** प्रेक्ष्यम्

े१४५१

जानकीवार्तां संग्रामं च। तत उपस्थानानन्तरं रावणं द्विधन्तम् '३१११। द्विषो-ऽमिन्ने ।२।२।१२१।' इति शतृप्रत्ययः । आख्याय सीता रावणेन इतेति कययि-रवा । पततां पक्षिणां वरो जटायुर्ममारेति परेणान्वयः ॥

३३४-व्रण-वेदनया ग्लायन् ममार गिरि-कन्दरे,॥ तस्याद्युम्बुँ-क्रियां कृत्वा प्रतस्थाते पुनर् वनम् ॥४३॥

त्रणेत्यादि वणकृता वेदना पीडा। मध्यमपदलोपी समासः। तथा ग्ला-यन् ग्लानि गच्छन्। शतयायादेशः। ममार सृतः। क गिरिकन्दरे यं गिरिम-न्वस्पत् तस्य निम्नप्रदेशे। कन्दं रातीति (कं दारयतीति) ज्युत्पत्तिमान्रम्। तस्य जटायोरस्यम्बुक्रियां दाहसुदकदानं च कृत्वा पुनभूयो वनमरण्यं प्रतस्थाते प्रस्थि-तौ। '२६८९। समव-प्र-विभ्यः-। १।३।२२।' इत्यात्मनेपदम्॥

३३५-सत्वानंजस्रं घोरेण बलाऽपकर्पमेश्नता ॥

क्षुध्यता जगृहाते तौ रक्षसा दीर्घ-बाहुना. ॥ ४४ ॥

सत्वानित्यादि — तौ रामलक्ष्मणौ रक्षसा राक्षसेन जगृहाते गृहीतौ । क्ष्मणि लिट् । किंनामा दीर्घवाहुना । अन्वर्था चेयं संज्ञा । एक एकेन बाहुना द्वितीयो द्वितीयेनेति । क्षुम्यता द्वस्थमाणेन घोरेण भीमेन । सत्वान् अजसं सदा । नञ्जूर्वाज्ञसः '३१४७। निम्हिन्य—।३।२।१६७।' इति रः । अभ्रता सुभानेन । किं कृत्वा बलापकर्ष बलादाकृष्येव पाकादिकमनपेक्ष्य । '३३७३। अपादाने परीप्तायाम् ।३।४।५२।' इति णसुल् ॥

३३६—भुजो चकृततुस् तस्य निस्त्रिशीभ्यां रघूत्तमो, ॥ स छिन्न-बाहुरंपतद् विह्नलो ह्नलयन् भुवम् ॥४५॥

इति प्रकीर्णकाः।

मुजाबित्यादि — रवूत्तमौ रामल्हमणौ तस्य योजनवाहोः बाहू यथास्थान-मागतौ चक्रततः च्छित्रवन्तौ । '१५२९। कृती छिदने'। इत्यस्य रूपम्। काभ्यां निश्चित्राभ्यां खड्डाभ्याम् । निर्गतस्वित्रतोऽङ्कुलिभ्य इति वाक्ये 'ढच्धकरणे संस्थायास्तत्पुरुषस्थोपसंख्यानम्' इति व्रिंशच्छब्दाङ्कुविविधः 'निरादयः—' इति समासः । टिलोपः । स लिखवाहुः कृत्तमुजः सन् । अपतत् पतितः । पतेर्कुङ्कि रूपम् । लिक्त्वादङ् । विह्वलो व्याकुलः सुवं मूमिं ह्वल्यन् । '८६२। ह्वल चलने'। घटादित्वे हस्तत्वम् ॥ इति प्रकीर्णकाः ॥

१----'२५८। अम्मोऽर्णस्-तोय-पानीय-नीर-क्षी<u>राऽम्बु</u>-शम्बरम् ।' इति ना० अ०। २ ॅ८५४ **सन्दे तु निर्कित्रा** रिष्ट्य । इति ना० अ०

अथ कृत्याऽधिकारः−

इतः परं कृत्याधिकारः--

३३७-प्रष्टव्यं पृच्छतम् तस्य कथनीयमंवीवचत् ॥

आत्मानं वन-वासं च जेयं चां ऽरिं रघूत्तमः,॥४६॥

प्रष्ठत्यमित्यादि—स योजनबाहुः निह्तो रामं पप्रच्छ 'को भवान्, कस्य पुत्रः, कथं तव वनवासः, कसाचोद्विद्यः सन् अमितः' इति । प्रष्टव्यं प्रश्नाहं पृच्छतस्यस्य । '२७३१। तव्यत्-तव्यानीयरः ।३।१।९६।' इति तव्यत् । '२९४। वश्च-।८।२।३६।' इति पत्वम् । ष्टुत्वं च । रघूत्तमसदानीं कथनीयं कथनाईं प्रश्नानुरूपम् । तेनैवानीयर् । अवीवचहिक सा । '१९८५। वर्षे माषणे ।' चौरा-दिकः । स्वार्थिको णिच् छुङ् चङ् । णिलोपः हस्यः । द्विचेचन-सन्वद्वाचेत्वदीर्घ-त्वानि । कि तदित्याह—आत्मानं अहं रामो दाशरिथरिति । वनवासं पितुरा-देशात् वनवासः । जेयं चारि जेतव्यं यः कनकमृगच्छलेन रावणः सीतामय-हत्वानिति ॥

३३८—'छभ्या कर्थ नु वैदेही, शक्यो द्रष्टुं कथं रिपुः,॥ सहाः कथं वियोगज्ञ च, गद्यमैतत् त्वया मम.'॥४७॥

लक्ष्येत्यादि—कथं केन प्रकारेण उपायेम लक्ष्या वैदेही प्राच्या। '२८४४। पोरदुपधात् ।१।१।९८।' इति यत् । शत्रुः केन प्रकारेण द्रष्टुं शक्यः। '२९७७। शक-५५-।३।४।६५।' इत्यादिना तुमुन् । वियोगश्चायं सीतायाः कथं केन प्रकारेण सक्षः सोढव्यः। '२८४७। शकि-सहोश्च ।३।१।९९।' इति यत् । गद्यमेतत् कथनीयमेतत् । '२८४८। गद्-सद्-।३।१।१००।' इत्यादिना यत् । मसेति होषविवक्षायां षष्टी ॥

३३९-'अहं राम! श्रियः पुत्रो मद्य-पीत इव स्नमन्,॥ पाप-चर्यो मुनेः शापान् जात' इत्यंवदत् स तम् १४८

अहमित्यादि हे राम! अहं श्रियः पुत्रः मद्यपीत इव। '९००। वाहिता-इयादिषु ।२।२।३७।' इति निष्ठान्तस्य परनिपातः । कार्याकार्यविदेकाभावात्पाप-चर्यो राक्षसः । मुनेः स्थूलशिरसः शापाज्यात उत्पन्नः । माद्यसनेनेति मद्यं चरितव्यं चर्यमेतौ पूर्ववद्यप्रस्यगन्तौ । पापं चर्यं यस्येत्यवद्त् स योजनबाहुस्तं रामम् । वाक्यथोऽत्र कमी ॥

२४०-'प्रयातस् तव यम्यत्वं शस्त्र-पूतो ब्रवीमि ते, ॥

रावणेन हता सीता लङ्कां नीता सुरारिणा. ॥ ४९ ॥ प्रयात इत्यादि—इदानी तव यम्यत्वं वश्यत्वं प्रयातः । यमेः पूर्ववत् यस्। शक्षण पानित सन् अवीमि ते तुम्य क्ययामि



कवचनस्य '४०६। ते-मयावेकवचनस्य ।८।१।२२।' इति ते आदेशः । कियायोगे चतुर्थी । कथनीयमाह–रावणेन सुरारिणा हता सीता छङ्कां नीता ॥

वैदेही प्राप्या कथमिति यसुपायं पृष्टवान् तं कथयन्नाह-

३४१-ऋष्यमूके ऽनुर्वद्यो ऽस्ति पण्य-भ्यात्-वधः कपिः॥ सुग्रीवो नाम, वर्यो ऽसी भवता चारु-विक्रमः॥५०॥

ऋष्यभूक इत्यादि — ऋष्यमूकपर्वते सुधीवो नाम किषः वारुविकमो महापराक्रमोऽस्ति । असा सवता वयों वरणीयः प्रार्थनीयः '१९९५। वर्षे ईप्सायाम्' इति चौरादिकात्स्वार्थिकण्यन्तात् '२८४२। अचो यत् ।३१११७७' यद्वा
'२८४९। अवद्य-पण्य—१३११९०९।' इत्यत्र वृङ्को वर्षेति ख्रियामनिरोधे अप्रतिबन्धे निपातितःवात् । सत्ततप्रवर्तिनी अनिरोध्या वर्षा धीतिर्थस्येत्यर्श्वआद्यम् ।
स च भवता सह वर्षः प्रीतिमान् समानव्यसन्त्वात् । यतः पण्यभ्रातृवधः सः
पण्यो विकेतन्यो भ्रानुर्वालिनो वधो येन । यद्येवं तदा कथं मया पापीयान्
वर्षे इत्यत आह—अनवद्यः अगर्हणीयः। दारापहारित्वेन आततायिनो आतुर्थधेन निर्दोषत्वादिति भावः॥

३४२-तेन वह्येन हन्तासि त्वर्मर्थं पुरुषाऽशिनाम् ॥ राक्षसं ऋूर-कर्माणं शैकाऽरिं दूर-वासिनम् ॥ ५१॥

तेनेत्यादि—तेन सुग्रीवेण त्वं राक्षसं हन्तासि निहनिष्यासे । वहोन वहस्विभिष्यासे (२८५०। वहां करणम् ।३१९१०२१ दित यत् । कीदशमर्थं
स्वामिनम् । पुरुपाशिनां राक्षसानास् । '२८५९। अर्थः स्वामि-वैश्ययोः ।३१९१३०३१ इति यन्निपासते । कूरकर्माणं पापाचारं शकारिं रावणम् । यद्येवमहमेव
हन्तुं समर्थं इस्विभायेणाह—दूरवासिनं समुद्रान्तिरित्वासित्वात् प्काकिनाहन्तुं न शक्यत इति भावः ॥

यद्यमदद्यस्तद्य कथमस्य पण्यो भ्रानृवध इत्याह---

३४३-आस्ते सारन् स कान्ताया हताया वालिना किपः॥ वृषो यथीपसर्याया गोष्ठे गोर् दण्ड-ताडितः ॥५२॥

आस्ते इत्यादि--वालिना हतायाः कान्तायाः सरबास्ते। को ऽन्यः सम्म-वेत् यस्तं हत्त्वा त्वया मां थोक्ष्यते, '६९३। अधीग्-।२।३।५२।' इति कर्मणि षष्ठी । कस्येव वृषो यथा उपसर्याया आसन्नगर्मकालायाः गोः सरन् गोष्टे

१—'११०० । कुपूय-कुत्सिता उच्च खेट-गर्बा ऽणकाः समाः ।' २—'४७। इन्हो मरुत्वान् मधवा विडोजाः पाकशासनः ॥ वृद्धश्रवाः धुनासीर पुरुष्वः पुरंदर जिन्तुर् हेस्तर्गम शक्तः श्रुवमन्युर् दिवस्पति ॥ १९५६ प्रस्ते ' १६

१३६ साट्टि-काट्ये द्वितीयऽधिकार काण्डे लक्षण रूप प्रथमो वर्ग ,

आस्ते । '२८५२। उपसर्था काल्या प्रजने ।३।१।१०४।' इति निपातितम् । दण्ड-ताहितः सन् दण्डस्थानीयोऽत्र वाळी ॥

३४४-तेन सङ्गतमार्येण रामा ऽजर्य कुरु द्वतम् ॥

लङ्कां प्राप्य ततः पापं दश-प्रीवं हनिष्यसि.॥ ५३॥

तेनेत्यादि—हे राम! तेन वानरेण संगतं सख्यं अवर्थं अनपायम् । न जी-र्यत इत्यस्मिन् वाक्ये '२८५३। अवर्थं संगतम् ।३।१।१०५४' इति निपातितम् । आदौ विशेष्यत्वेनोपात्तं संगतं तहिशेषणमजर्यं कुरु द्वृतं यावत्तस्यानेन युष्म-

हिषेम संगतं न भवति । आर्थेण सदाचारेण । '२८७२। ऋ-हलोण्यंत् ।३।१।-१२४।' ततः सङ्गतात् लङ्कां प्राप्य गत्वा पापं पापीयांसं रावणं हनिष्यसि ॥

नमु यावस्कार्यं न सिध्यति तावत्संगतं गच्छति कृतकृत्यस्तु नेवेत्यत आह-

३४५-अनृतोद्यं न तत्रांस्ति, सत्य-वद्यं व्रवीम्यंहम्.॥

सित्र-भूयं गतस् तस्य रिपु-हत्यां करिष्यसि.॥ ५४॥
अनुतोद्यमित्यादि—सत्यमुद्यत इति कर्मणि यत् । अहं सत्यं वचो
ववीमीत्यर्थः। अनुतोद्यं तत्र सुग्रीने नास्ति। अनुतमसत्यं उद्यं वचनं अनुतोद्यस्।
भावे क्यप्। यजादित्वात्संप्रसारणम्। उभयत्रापि '२८५४। वदः सुपि क्यप्

भावे क्यपू । यजादित्वात्संप्रसारणम् । उभयत्रापि '२८५४। वदः सुपि क्यप् च ।३।९।९०६।' इति चकाराधत् । यसादेवं तसान्मित्रभूयं मित्रभावं गतः ।

'२८५५। भुवो भाषे ।३।१।१०७।' नयप् । रिपुहत्यां करिष्यसि '२८५६। हनसा च ।३।१।१०८।' इति नयप् तकारश्चान्तादेशः ॥

३४६-आहत्यस् तेन वृत्येन स्तुत्यो जुष्येण संगतः॥

इताः शिष्येण गुरुवद् गृध्यमधर्मवाप्स्यसि.॥ ५५ ॥ आद्यः इत्यादि—तेन संगतः सन् गृध्यमभिरुषणीयमवाप्स्यसि ।

'२८५९। ऋतुपधात्—।३।१।११०।' इति क्यप्। कीदशः कीदशेनेत्याह् — आदत्यः आदरणीयः । वृत्येन वरणीयेन । स्तुत्यः स्तवार्दः । जुष्येण सेव्येन हृन्यस्यभृती-नाम् । क इव शिष्येण गुरुरिव । यथोपाध्यायः शिष्येण शासनीयेन इत्यः अनु-गम्यसद्वदिति । '२८५७। एति-स्तु-शास्त्रु—।३।१०९।' इत्यादिना क्यप्।

हस्त्र तक् ॥ ३४७—नांऽलेयः सागरो ऽप्यन्यस् तस्य सद्-भृत्य-शालिनः,

मैन्युस् तस्य त्वया मार्ग्यो, मृज्यः शोकश्च व तेन ते.

नाखेय इत्यादि—तस्य सुप्रीवस्य सद्भावालिनः हन्मदादिभृत्ययुक्तस्य । '१८६१। भृत्रो ऽसंज्ञायाम् ।३।९।११२।' इति क्यप् । अन्यो द्वितीयः सामरो-

र--- ६५२ ग्रीवायां शिरोधि कन्यरेलपि २ १४५७ गर्ह



ऽपि नाखेयो न खननीयः अपि तु खननीय एउ । अपिशब्दः सम्भावनायाम् । तस्य कारणं सङ्ख्यशालित्वम् । '२८६०। ईच खनः ।३।११११।' इति क्यबी-कारौ । तस्य मन्युरःवया मार्ग्योऽपनेयः । ते तव तेन च शोको मुज्यः '।२८६२। मृजेविंभाषा ।३।१।११११) इति यद्विकव्षे ण्यत् ॥

३४८-स राजसूय-याजींव तेजसा सूर्य-सिश्नमः॥

अ-मृषो्द्यं वदन् रुच्यो जगाहे द्यां निशाःचरः,॥५७॥

स इत्यादि—स निशावरो द्यामाकाशं जगाहे गतः । राजसूययाजीव । शशा सूयते राजा वा अनेन सूत इति राजसूयः कतुः । तेनेष्टवान् स राज-सूययाजी । '२९९६। करणे यजः ।३।२।८५।' इति णिनिः । तह्रदित्यर्थः । रूच्यः प्रियो जातो रामस्येत्यर्थात् । '२८६५। राजसूय—।३।१।११४।' इत्यादिना क्य-बन्ता राजसूयादयः ॥

३४९-अ-कृष्ट-पच्याः पश्यन्तौ ततो दाश्ररथी खताः॥ रह्माऽन्न-पान-कुप्यानामीटतुर् नष्टसंस्मृती.॥ ५८॥

अक्षष्टपच्या इत्यादि—ततो निशाचरगमनानन्तरं दाशरथी रामलक्ष्मणा-बादतुर्गतवन्तौ । कीइशौ । नष्टा संस्मृतिः ययोः । केषां संस्मृतिः रक्षाक्षपान-कुप्यानाम् । रताच्चपानानि प्रसिद्धानि । कृष्यं स्वर्णरज्ञताभ्यामन्यत् वस्तु तत् । संज्ञायां क्षप् । गुपेरादेः गकारस्य ककारः । कर्मणि षष्टी । रुताः पश्यम्तौ । कृष्टे पच्यन्ते इति कृष्टपच्याः । पूर्ववत् क्षप् । पश्चाक्रज्समासः । स्वयमेव पच्यन्ते वास्ता इत्यर्थः ॥

३५०-समुत्तरन्तार्व-व्यथ्यौ नदान् भिद्योद्ध्य-सन्निभान्॥

सिध्य-तारामिव ख्यातां शबरीमापतुर् वने. ॥ ५९ ॥
समुत्तरन्तावित्यादि—तौ तसिन् वने शबरीमापतुः शप्तवन्तौ। अव्यथ्यौ
न व्यथेते इति पूर्ववत् कप् । परिश्रमवर्जितावित्यर्थः । नदान् समुत्तरन्तौ। कीदशान् सिद्योद्यसिक्षमान् । मिद्योद्यौ नदिवशेषौ । '२८६६। भिद्योद्यौ— ।३।११११५।' इति पूर्ववत् निपातितम् । भिनत्ति क्लमिति भिद्यः । उष्मत्यु-दक्तमिति उद्याः । '१३८८ उद्धाँ उत्सर्गे' । दक्तरात्परस्य धकारो निपासते । तत्सदशान् नदान् । सिध्यतारामिव ख्याताम् । सिध्यन्त्यसिक्षिति सिध्यः । १८६७। पुष्य-सिध्यौ नक्षत्रे ।३।१।११६।' इति निपातनात् । पुष्याख्यां तारा-मिव ख्यातां शबरीम् ॥

> ३५१—वसानां वल्कले शुद्धे विपूर्येः कृत-मेखलाम् ॥

१— '९७७। स्यात् कोशञ्च च हिरण्यं च हेम-रूप्ये इताऽकृते। ताभ्यां यदन्यत् तत् कुत्यम् ॥' इति ना० अ०।

क्षामार्मञ्जन-पिण्डाऽऽभा दण्डिनीर्मेजिना ऽऽस्तराम् ॥ ६० ॥

वसानामित्यादि — वसानां परिद्धानां वहकले त्वसा । विप्येमुं क्षेः कृतमेखलां कृतकटिस्त्राम् । यद्यपि विपूर्वस्य पवतीर्वेष्य इत्यादिना मुझे निपातितं,
तथापि मुझानामनुपहतत्वं ज्ञापियतुं विपूर्यरिति विशेषणं, पवित्रेरित्यर्थः ।
मुझशब्दस्तदानीं सामान्यमाह । विपूर्यरित्युक्ते मुझेरित्युपादानमनर्थकम् । एवं
कृत्वा पाठानतरमुच्यते वसानां वक्कले शुद्धे विपूर्यरिति । क्षामां कृशाम् ।
'३०३१। क्षायो मः ।८।२।५३।' इति निष्ठामत्वम् । अझनपिण्डस्येवाभा यसा
असीति तां कृष्णाम् । दण्डिनीं गृहीतदण्डाम् । आसीर्यत इति आसरः

'३२३२। ऋदोरए।३।३।५७।'अजिनमास्तर उत्तरासङ्गो यस्यासामजिनास्तराम् ॥ ३५२-प्रगृह्य-पद्-वत् साध्वीं स्पष्ट-रूपार्म-विकियाम् ॥

अ-गृह्यां वीत-काम-त्वाद् देव-गृह्यामं-निन्दिताम् ६१ प्रगृह्योत्यादि—अविकियामजातविकारां अत एव स्पष्टरूपाम् । एवं च

साध्वीं साध्वितिम् । किमिव प्रगृद्धापद्वत् । यस्य पदस्य प्रगृद्धासंज्ञा तत् पदं प्रगृद्धास् । '२८६९ । प्रत्यपिन्यां ग्रहेः ।३।१।११८।' इत्यनुवृत्तो '२८७०। पदा-स्वीत-।३।११९।' इत्यादिना प्रपूर्वाद्वहेः पदे अमिधेये क्यप् । यथा तत्पदम-विकारस्पत्वात् स्पष्टं साध्व च । '९०। अत्यगृद्धाः अचि-।६।१।१२५।' इति प्रकृतिभावेन स्वरसन्ध्यभावादिस्ययैः । कथमजातविक्तियेति चेदाह-अगृद्धां प्रहेरस्वरिविषये क्यप् । गृद्धाः अस्विरिणी अस्वतन्त्रा न भवतीत्यगृद्धाः । कस्मात् वीतकामत्वात् । वीतरागाः हि स्वतन्त्राः भवन्ति । देवगृद्धाममरपक्षाम् । पक्षविषये क्यप् । एवं चातिन्दितामगहिताम् ॥

इ ५३-धर्म कृत्य-रतां नित्यमं-वृष्य-फल-भोजनाम्॥

दृष्ट्वा तार्ममुचद् रामो युग्याऽऽयात इव अमम्.॥६२॥ धर्मकृत्यरतामित्यादि—पुण्यकर्मरतां नित्यम् । अवृष्यफलमोजनाम्।

अनुष्याणीन्द्रियानिकारनिमित्तानि फलानि भोजनं यसाः '२८७१। विमाषा कृ-नृषोः ।३।१।२०।' इति नयप् । दृष्ट्वा तां तथानिधाम् । असमसुचत् सुक्तवान् । तद्र्शनाह्णादितत्वात् । युग्यायात इव वाहनं प्राप्त इव नयप् । '२८७३। युग्यं च पत्रे ।३।१।१२१।' इति निपातितम् ॥

३५४-स तार्मूचे ऽथ-'कच्चित् त्वर्ममावास्या-समन्वये ॥

पितृणां कुरुषे कार्यमं-पाक्यैः स्वादुभिः फलैः. ॥६३॥

स इत्यादि-अथानन्तरं त्यक्तश्रमः स रामः तां शवरीमूचे उक्तवान् । किन्तं किं त्वं पिर्णां कुरुषे कार्यम् । क्यबमावपक्षे '२८७२। ऋ इक्रोर्ण्यंद

. '७५४ **अज़िनं** चर्म हृति की 'शति ना० अ०

३।१।१२४।' कदा अमानास्यासमन्त्रये अमानास्यायाः सम्प्राप्ती अमानास्यायाः मिस्यर्थः । '२८७४। अमानस्यद्ग्यतरस्याम् ।३।१।१२२।' इति निपातनम् । तत्र हि अमाशब्दे उपपदे वसेर्घातोरमा सह वसतो यस्मिन्काले सूर्याचन्द्रमसौ इति काले अधिकरणे ण्यत्। तस्मिन्नस्यतरस्यां बृद्धभावः । कैः फलैः । स्वादुभिः मिष्टैः । अपसनीयैः अनुपहतन्त्रात् '२८७२। ऋहलोण्यत् ।३।१।१२४।'॥

३५५-अवश्य-पाट्यं पवसे कच्चित् त्वं देव-भाग्धंविः,॥ आसाव्यर्मध्यरे सोमं द्विजैः कच्चिन् नमस्यसि. ६४

अवद्यपाव्यमित्यादि — देवभाक् देवान् भजत इति '२९७६। मजो ण्विः १३१२।६२।' तद्धविः कचित् किं पवसे पवित्रीकरोषि मज्ञादिना । '११९। स्रषो हो अन्यतरस्याम् ।८१४।६२।' इति हकारस्य पूर्वसवर्णः । '१०३५। पुरू पवने' इति भौवादिकः । कीदृशमवद्यपाध्यमवद्यम्भावेन पावयितव्यमित्यर्थः । '२८८६। ओरावद्यके ।३।११२५।' इति ण्यत् । '७५४। मयूर्व्यंसकाद्यः— २१९१७२।' इति समासः। 'लुम्पेद्वश्यमः कृत्ये तुं काम-मनभोरपि' इति मका-रलोपः। सोममौषधिविदेषम् । आसाव्यमभिषवाईं। आङ्पूर्वात्सुनोतेः'२८८७। आसुयु-विप—३।११२६।' इत्यादिना ण्यत् । अभ्वरे यहा द्विजैः सह कचित्वं नमस्यसि नमस्करोषि॥

३५६—आचाम्यं संध्ययोः कैचित् सम्यक् ते न प्रहीयते,॥ कचिदंग्निमित्रां ऽऽनाय्यं काले संमन्यसे ऽतिथिम्.॥

आचाम्यमित्यादि — शमाते ऽपराह्वे च सन्ध्ययोर्षदाचाम्यसुपस्पर्शेनम् । पूर्ववत् ण्यत् । किचित्सम्यक् यथावत्तव तत्र न शहीयते न तस्य हित्थिवति । काछे आतिथ्योचिते काछे कचित् अतिथिं संमन्यसे पूजयसि । अग्निमिवाना- य्यम् यथा अग्नि आनाय्यम् । दक्षिणाग्नि मन्यसे तद्वत् । '२८८८ आनाय्यो नित्ये ३।१।३२७।' इति नयतेराङ्पूर्वस्य ण्यदायादेशौ निपास्येते ॥

३५७-न प्रणाय्यो जनः कच्चिन् निकाय्यं ते ऽधितिष्ठति ॥ देव-कार्य-विघाताय धर्मद्रोही महोदये !॥ ६६॥

१—'७१९ यज्ञः सनोऽध्वरो यागः सप्ततन्तुर् मखः कतुः।' इति ना० अ०। दिजा-शन्दार्थास्त्रयः २—'१२३६। दन्त-विमा उण्डजा दिजाः।' इति ना० अ०। दिजा-शन्दार्थास्त्रयः पुन्द्रिनेन—'द्विजे-राज-शिरो-मणेभिदां द्विजे-राज-ध्वज-शालिनश्च यः । कलयेन् मनसाऽपि, पाल्यते उन्तक-भृत्येः खल्ज तद्-दिजौऽऽनलिः॥' इति कोशावतंसः। शिद्वजो विमः। रिद्वजो उण्डजः पश्ची। अदिजो दन्तः । ३—'१४७९। किच्चित् काम-प्रवेद-ने।' ४—'६९७। यो गार्डपत्यादानीय दक्षिणाधिः प्रणीयते। तसिक्सानाय्यः।' ५—'१४४। गृहाः पुंसि च भूकृयेव निकाय्य-निल्वाऽऽल्याः।' सर्वत्र ना० अ०।

१४० अट्टि-काट्ये-दितीयेऽधिकार-काण्डे लक्षण-रूपे प्रथमी वर्गः,

न प्रणाय्य इत्यादि सहानुद्यः स्वर्गापवर्गाणां यसाः सा तथा हे महोहये! देवकार्यविद्याताय देवकार्यं विह्निष्यामीति। '२१८०। सादवचनास ।३।
३।१९।' इति अविष्यति घल् । '५८२। तुमर्यास भाववचनात् २।३।१५।' इति
चतुर्थीं । प्रणाय्यो ऽसंमतो जनः । '२८८९। प्रणाय्यो ऽसंमतो ।३।११२८।'
इति निपातितम् । कच्चित् निकाय्यं गृहं ते तव नाधितिष्ठति नाधिवसति ।
'२८९०। पाय्य-३।१।१२९।' इत्यादिना निवासे चिनोतेनिंपूर्वात् प्यदायादेशो
आदेः कुत्वं च । '५४२। अधि-श्रीङ्-स्थाऽऽसां कर्म ।१।४।४६।' इति कर्मसंजा ।
धर्मद्रोही धर्मद्रोहशीलः ॥

३५८-कुंग्ड-पाय्य-वतां कचिदंग्निचित्या-वतां तथा ॥

कथाभी रमसे नित्यमुंपचाय्य-वतां शुभे ! ॥ ६७ ॥

कुण्डपाय्यवतामित्यादि —कुण्डेन पीयते ऽत्र क्रतौ कुण्डपाय्यः क्रतुः । '२०९३। क्रतौ कुण्डपाय्य-संचाय्यौ ।३।९।९३०।' इति निपातितम् । कचित्क-धामी रमसे । '१७८। दृष्ठोपे—६।३।९९१ इति दीर्घः । तथाग्निचित्यावतां आहिताग्निकानां कथाभी रमसे । '२८९३। चित्याग्निचित्ये च ।३।९।९३२।' इति निपात्यते । अग्निचयनमग्निचित्या । भावे क्यप् । तुक् । तहतां यथोपचा-य्यवतां उपचीयते इत्युपचाय्यो ऽग्निः । '२८९२। अग्नौ परिचाय्य-।३।९।९२९।' इति निपातितः । उपपृवांचिनोतेण्यंदायादेशौ । तहतां कथांभी रमसे ग्रुमे कस्याणि॥

्र इति कृत्याधिकारः ॥

अथ प्रकीर्णकाः-

अतः परं प्रकीर्णकाः---

३५९-वर्धते ते तपो भीरु ! व्यजेष्ठा विघ्न-नायकान्, ॥ अजेषीः काम-संमोही, संप्राप्था विनयेन वा.॥६८॥

वर्धत इत्यादि—हे कातरिच ते तथ तथी वर्धते तस्य च ये विद्रास्तेषां ये नायकाः प्रणेतारसान् व्यजेष्ठाः जितवत्यसि । छुङि '२६८५। विपराभ्यां जेः ।१।३९९।' इत्यात्मनेपदम् । कामसंमोही कचिद्जैषीः जितवत्यसि । '२२९७। सिचि वृद्धिः—।७।२।१।' विनवेन वा संप्राप्थाः संप्राप्तासि । कर्मणि छुङ् । '२२८१। झलो छुङि ।८।२।२६।' इति सिचो छोपः । अन्नानुक्तमपि कचिदिति पदमर्थाद्योज्यम् ॥

३६०-नां ऽऽयस्यसि तपस्यन्ती, गुरून् सम्यगंतूतुषः ॥ यमान् नोदविजिष्ठास् त्वं, निजाय तपसे ऽतुषः' ६९

र---'९२७ पिठरः साल्युसा कुण्डम् ' इति ना० व०।

नायस्यसीत्यादि — तपस्यन्ती तपश्चरन्ती कचिन्नायस्मसि न खिद्यसे। तपश्चरणशीलीभूतेत्यर्थः। '२६७१। कर्मणो रोमन्य—।३१११५।' इति क्यङ् । 'तपसः परस्पेपदं च ।' गुरून् आचार्यादीन् सम्यक् यथावदनुवृत्त्याऽतृतुवः तोषितवल्रसि । तुषेण्यंन्तस्य लुङ् रूपम् । चिङ् णिलोपादि । यमान्मृत्योनों-द्विजिष्टाः नामेषीः । पुण्यकृतां न मृत्युभयमित्यर्थः । ओविजेरात्मनेपदम् । लुङ् सिच इद । '२५३६। विज इद ।११२।२।' इति सिचो ङ्क्षे न गुणः । निजायात्मीयाय तपसे । अतुपः तुष्टवल्यसि । '२३४३। पुषादि—।३।१।५५।' इत्यङ् ॥

३६१-अथांऽर्घ्यं मघुपर्काऽऽद्यमुपनीयां ऽऽदरादंसी ॥

अर्चियता फलेरेच्यों सर्वत्रा SSख्यदेनामयम्. ॥७०॥ अथेत्यादि अथानन्तरमसौ शबरी अर्घ्यमधीर्थम् । '२०९३। पादार्घाम्यां च ।५।३।२५।' इति यत्। मधुपकीयम्। दिधमधुमिश्रमुदकं मधुपकी तदार्घं आदी भवमाद्यं तदुपनीयादरात् फलेर्श्वियत्वा । अर्घी अर्चनाही ण्यत् । राम-लक्ष्मणौ सर्वत्रोक्तेषु अनामयं कत्याणं आख्यकिषत्वती । '२४३८। अस्यति—।३।१।५२।' इत्यङ् ॥

इति प्रकीर्णकाः।

अतः परं कृदधिकारः—

अथ सुद्धिकारमाह—हत्यानां हृदन्तभीवे अपि भावकर्मणोः हत्या इति विशेषप्रतिपादनार्थः पृथगधिकारः । शेषास्तु कृतः कर्तरि भवन्ति '७८९। तत्रोपपदं सप्तमीस्थम् ।१।१।९२।' इत्येतदिधकृतम् । यत्रैतवावतिष्ठते तान् कृतो दर्शयबाह—

३६२-'सख्यस्य तव सुग्रीवः कारकः कपि-नन्दनः,॥

द्धतं द्रष्टासि मैथिल्याः,' सैवमुक्त्वा तिरो ऽभवत्.॥

सख्यस्येत्यादि—सा शबरी तिरो ऽभवदन्तभूता। एवसुक्ता। किं तदि-त्याह—तव सस्यस्य सखित्वस्य। '३७९९। सस्युर्थः । ५१९१९६।' कर्मण षष्ठी। कारकः सुग्रीवः। '२८९५। ण्वुल्-तृचौ।३१९१९३३।' इति ण्वुल्। त्वया सह मैत्रीं करिष्यति। कपिनन्दनः कपीनां नन्द्यिता। '२८९६। नन्दि-ग्रहि— १३१९१३४।' इत्यादिना ल्युः। कृषोगे षष्टी। ततो दुतं द्रष्टासि मैथिल्याः। पूर्ववाकर्तरि तृष् कर्मणि षष्टी। असीति वर्तमाने लद्

३६३-नन्दनानि मुनीन्द्राणां रमणानि वनौकसाम् ॥ वनानि भेजतुर् वीरौ ततः पाम्पानि राघवौ.॥७२॥

१--- '६१३। अनामयं सादारोग्यम् ।' इति ना० अ०।

नन्द्तानीत्यादि—तत उक्तादनन्तरं वीरो राघवो रामलक्ष्मणो वनाति मेजतुः सेवितवन्तौ । एरवाभ्यासलोपौ '२३०१ । तु-फल्ल—१६१९१२२।' इस्या-दिना । पाम्पानीति पम्पाया अदूरम् । '१२८२। अदूरमवश्च ।४१२।७०।' इस-ण् । मुनीन्द्राणां नन्दनानि प्रमोदकारीणि । यनौकसां वनेचराणाम् । '१३०२। उचं समवाये ।' अस्मादौणादिको ऽसुम् । पृषोद्रादित्वाद्वर्णविपर्ययः । वनमोको येषां तेषां रमणानि रतिजनकानि । '२८९६। नन्दि—।३।९११३४।' इस्रादिना ह्युः । कर्मणि षष्टी ॥

३६४-'भृङ्गाऽऽली-कोकिल-कुङ्भिर् वाश्रनैः पश्य लक्ष्मण !॥ रोचनैर् भूषितां पम्पा-मंस्माकं हृदयाविधम्.॥ ७३॥

भृद्गालीत्यादि—हे लक्ष्मण ! पर्मा पश्य । अस्माकं हृदयाविश्वम् । चेतः-पीडयन्तीम् । हृदयं विध्यतीति किष् । '२४१२। श्रह ज्या—१६।११६।' ह्या-दिना संग्रसारणम् । '१०३७। नहि-वृति—१६।११६।' इति पूर्वपदस्य दीर्घः । भृषितां काभिः भृङ्गालीभिः भ्रमरपङ्किभिः। कोकिलैः कुङ्भिः कोबैः। वाहानैः कृजद्विः । रोचनैः शोभनैः । कुङ् इति '३७३। ऋत्विग्—१३।२।५९।' इत्यादिना किन् । निपातनसामर्थ्यादनुनासिकलोपाभावः । '५४ संयोगान्तस्य लोपः।८।२।२३।'। '३७७। किन्म्यस्यस्य—।८।२।६२।' इति कुत्वम् ॥

३६५-परिभावीणि ताराणां पदय मन्थीनि चेतसाम् ॥ उद्मासीनि जले-जानि दुन्वन्त्यं-दियतं जनम् ॥७४॥

परिभावीणीत्यादि—जलेजानि पद्मानि पस्य । '९७२। तत्पुरुषे कृति— १६१३।१४।' इत्यादिना उल्लक् सक्षम्याः । उद्मासीनि भासमानानि । अत एव ताराणां परिभावीणि तिरस्कृत्वीण । तत्रश्चेतसां मन्थीनि पीडाकराणि । अतो जनमद्यितं वियारहितं दुन्वन्ति । '१३३६। दुदुँ उपतापे' सौवादिकः । मन्थो-द्वासपरिभूभ्यो प्रहादित्वाण्णिनिः ॥

३६६-सर्वत्र दयिताऽधीनं सु-व्यक्तं रामणीयकम्,॥ येन जातं प्रियाऽपाये कद्-वदं हंस-कोक्तिलम्.॥७५॥

सर्वेत्रेत्यादि—हे लहमण! सर्वेत्र यत्किञ्चदामणीयकं रमणीयस्य भावः। '१७९७। योपधाद्-।५।१।१३२।' इति तुम् । तत्सर्वे द्यिताधीनं द्यिताय-त्तम्। '२०७९। अषडक्ष-।५।४।७।' इत्यादिनाच्युत्तरपदात्वः। सुव्यक्तं स्पष्टम् । कृतः येन प्रियाया अभावे सति हंसकोकिलं हंसाश्च कोकिलाश्चेति शकुनित्वात् दुन्द्रैक्ष्यम् कहद् वद्वीति पत्ताचन् । कृत्सित वद्गीति

'१०२८। रथ-वद्योश्च ।६।३।१०२।' इति कोः कदादेशः । द्यितायां सर्खाः मधुरमलापमासीदित्यर्थः ॥

३६७-पक्षिभिर् वितृदैर् यूना

शांखिभिः कुसुमोृत्किरैः ॥

अ-ज्ञो यो,यस्य वा नां ऽस्ति

वियः, प्रग्लो भवेन् न सः. ॥ ७६ ॥

पिक्षिमिरित्यादि—'१५४०। उत्तिद् हिंसाऽनादरयोः।' इत्यसादिगुपधसक्षणः कः। यूना विनुदेः हिंसकैः पिक्षिमः शाखिमिर्शृक्षेत्रः । त्रीह्यादित्वादिनिः। कुसुमोत्किरैः। उत्करन्ति उत्किपन्तित्युत्किराः। पूर्ववत्कः। कुसुमानामुत्किराः। कृद्योगस्थणां पष्टी विधाय समासः। तैहेंतुभूतैः करणभूतेषां।
स प्रक्षो न भवेत्। प्रकर्षेण ग्लायते प्रग्लः। '२८९८। आतश्रोपसर्गे ।३।१११३६।' इति कः। यो ऽज्ञः गुणदोषानिभिज्ञः। जानातीति ज्ञः पूर्ववत्कः। यस्य
वा प्रियो जनो नास्ति तस्य प्रयोजनाभावः सर्वत्र विवेकित्वात् । प्रीणातीति
प्रियः। पूर्ववत् कः॥

३६८-ध्वनीनामुद्धमैरेभिर् मधूनामुद्धयैर् भृशम् ॥

आजिष्रैः पुष्प-गन्धानां पतगैर् ग्लपिता वयम् . ॥७७॥

ध्वनीनामित्यादि — पतक्रैश्रंमरैग्लेपिताः पीडिताः वयम् । 'ग्ला-स्ना-व-नु-वमां च' इति मिश्वात् इस्तः । 'पतेरक्षच् पक्षिणि' इत्योणादिकः । कीदशैः ध्वनीनामुद्धमैः ध्वनीन् कुर्वेद्धिः । '२३६०। पा-घा ध्या—।७।३।७८।' इति ध-मादेशः । मधूनामुद्धयैः मधृनि पुनः पुनः पिबद्धिः । '९६८। धेट् पाने' इस्य-स्यायादेशः । आक्रिनः पुष्पगन्धानां पुष्पगन्धान् जिघितः । पूर्वविज्ञिष्ठादेशः । सर्वत्र '२८९९। पा-घ्रा-ध्या-धेट्-दशः शः ।३।९।९३७।' इति शः । इत्योगल-श्रणा षष्ठी ॥

३६९-धारयैः कुसुमोुर्मीणां पारयैर बाधितुं जनान् ॥

शाखिभिर हा हता भूयो हृदयानामुंदेजयैः. ॥ ७८ ॥ धारयैरित्यादि—हा कष्टं शाखिभिर्दुमैर्सूयोऽत्यर्थं वयं हताः । कीडकैः

श्वारसात्—हा कष्ट शालामहुमसूराज्यय वय हता । कादशः हृद्यानामुदेजयैः चेतसामुत्कस्पकैः । धारयैः क्वसुमोर्माणां कुसुमनिचयान् धारयद्भिः । जनान् महिधान् वाधितुं पीडियतुं पारयद्भिः समर्थैः । '९६६। एक्
धारणे', '११६०। पृं पारुन-पूरणयोः', '२३३। एक् कम्पने च।' एभ्यो णिजन्तेभ्यः '२९००। अनुपसर्गाहिम्प-विन्द-।३।११३३८।' इत्यादिना शः ॥

१— (३५३। वृक्षी महीरुहः शास्त्री विटपी पादपस् तरुः। अनीकहः कुटः शालः पलाशी दु-दुमागमाः॥ इति ना० अ०।

३७०-ददेर् दु:खस्य माहग्म्यो धायैरांमोदर्मुत्तमम् ॥

लिम्पैरिव तनोर् वातैश चेतयः स्याज् ज्वलो न कः.

द्दैरित्यादि—वातैर्दं हु: खस दु: खं ददकिः । केम्यो माहम्यः । असाहरोम्यो विरहिम्यः । '४२९। त्यदादिषु दशो ऽनालोचने कछ ।३।२।६०।' इति
किन् । '१०१७। हर्ग-हर्म वतुषु ।६।३।८९।' इत्याकारः । धायरामोदमुत्तमं आमोदं प्रियासङ्गमेन हर्ष यावद्विरहिम्यो दत्तस्य दु: स्वस्य धायैः पोषकैरित्यर्थः ।
दत्तममिति कियाबिशेषणम् । उत्तममामोदं धायैः कुसुमानां परिमलं धारयद्विरिति व्याख्याने अनित्यत्वात् कृत्ययोगे कर्मषष्ठयभावः । छिम्पेरिष तनोः शरीरं
छिम्पद्विरिव । वातैहेंतुभिः । को नाम विरहामिना यश्चेत्यमानः ज्वलखिमित्व
न स्यात् । किन्तु भवेदेवेति भावः । ददैर्घायैरिति '२९०३। इयाद्यधा–।३।१।१३९।
१४१।' इति आकारान्तलक्षणे शे प्राप्ते '२९०१। ददाति-दघात्योः—।३।१।१३९।
इति शाणौ भवतः । शे आतो छोपः । णे चातो युक् । छिम्पश्चेतय इति
'२९००। अनुपसर्गात्—।३।१।१३८।' इति शः । ज्वल इति '२९०२। उवछितीक्सन्तेम्यो णः ।३।१।१४०।' इति णस्य विकल्पनात्पचाद्यम् ॥

३७१-अर्वेर्याय-कणाऽऽस्नावाश् चारु-मुक्ता-फल-त्विषः॥ कुर्वन्ति चित्त-संस्नावं चलत्-पणीऽय-संभृताः॥८०॥

अवश्यायेत्यादि — अवश्यायत इस्रवश्यायः भारत्य कणा विन्द्वः । आ-स्रवन्तीत्यास्त्राचाः क्षरन्तः । '२९०३। श्यास्त्रश्चा—१३११४६६६ इति णः कर्तरे । तयोविशेषणसमासे राजदन्तादित्वात्परनिपातः । ते कुर्वन्ति वित्तसंस्नावम् । संस्रवतीति संस्नावः । पूर्ववत् णः । चित्तं संस्नावं चल्द्ध्वर्यन्ति इति ॥ पूर्ववत् समास- परनिपातौ । कीद्दशाश्चलत्पणीयसंग्रताः संगलिताः । अत एव चाह-मुकाफलत्विषः दर्शनीयमुकाफलानुकारिणः । सीताहारस्थमुकाफलानि सार-यन्तीत्यर्थः ॥

३७२-अवसायो भविष्यामि दुःखस्यां ऽस्य कदा न्वंहिम्,॥ न जीवस्यां ऽबहारो मां करोति सुखिनं यमः ॥८१॥

अवसाय इत्यादि—कदा नु काले अहं दुःखसानुभूयमानस्य अवसायो-ऽन्तकरो भविष्यामि येन जीवस्थावहारो ऽवहर्ता यमो मां सुखिनं न करोति मारवतीस्थर्थः। अवस्थित इति अवसायः। '१२२२। षो उन्तकर्मणि।' अवहर-तीस्यवहारः। '२९०२। स्याद्यधा—।३।११४४।' इति सर्वत्र णः। युक् ॥

३७३-दह्ये ऽहं मधुनो लेहैर् दावैरुवैर यथा गिरिः, ॥

नायः कोऽत्र स, येन स्यां वर्ता ऽहं विगत-ज्वरः ८२

१—'१०१ **अवश्यायस्** तु नीहारस् तुषारस् तुहिनं हिमम् । प्रालेयं मिहिका स ।' इति ना० अ०

दह्य इत्यादि — मधुनो लेहेर्न्धक्षेः अहं दृद्धे । '२९०३। इयाद्धधा—३।१।१४१।' इति णः । दावैर्वनाधिभिरुष्धैः प्रचण्डेर्यथा गिरिर्दृक्षते तद्वत् । अत्र को
नायः नयतीति नायः उपायः ईप्सितप्रापकः । उभयत्र '२९०४। दु-न्योः—।३।१।१४२।' इति णः । येन नायेन विगतज्वरः विगतपीडः स्वामिति । आशंसायां
लिङ् । वत सेदे ॥

३७४-समाविष्टं ग्रहेणेव ग्राहेणेवां ऽऽत्तर्मर्णवे ॥

दृष्ट्वा गृहान् स्सरस्येच वनाऽन्तान् मम मानसम्. ८३
समाविष्टमित्यादि — वनान्तान् वनपर्यन्तान् । स्मरस्य कामस्य गृहमिव ।
उन्मादकत्वात् । '२९०६। गेहे कः । ३।१।१४४।' इति महेः कः । अर्धवादिपाठात् पुँछिङ्गता । दृष्ट्वा मम स्थितस्येखर्थात् योज्यम् । अन्यथा कथं समानकर्तृकत्वम् । मानसं चेतः महेणाङ्गारकादिना । समाविष्टमिव विगृहीतमिव ।
'२९०५। विभाषा महः ।३।१।१४३।' इति णम्रस्यः । अचोऽपवादः । तम्र
स्यवस्थितविभाषाविज्ञानात् जलचरे माहः ज्योतिषि मह इति जलचरे वाच्येऽचोपवादो णम्रस्यः ज्योतिषि वाच्ये ऽच्मस्यः । माहेणेवात्तमर्णवे । अर्णः
पानीयं यत्रास्तीति । '१९१६। केशाद्वो ऽन्यतरस्याम् । ५।२।१०९' इस्म 'अर्णः
सो लोपश्च' इति भूमि निस्ययोगे ऽतिशायने वा वः सलोपश्च । अर्णवे समुद्दे
वर्तमानेन महेण नकादिना आत्तं गृहीतम् । आङ्पूर्वस्य दानः '३०७८। अच

३०५—वाताऽऽहति-चलच्-छाखा नर्तका इव शाखिनः॥

दुःसहा ही परिक्षिप्ताः क्रणद्भिरं लि-गाथकैः. ॥ ८४ ॥ वातेत्यादि—ही कष्टं एते शाखिनः नर्तका इव । '२९०७। शिल्पिति च्युन् ।३।११४५।' दुःसहा दुःखेन सद्धन्त इति '३३०५। ईषद्-।३।११२६।' इत्यादिना खद्ध । नर्तकैः साधम्यमाह । नाताहतिचलच्छाखा वाताहतिभिः चल्त्यः शाखा बाहुलता इव येषां ते । अल्यो अमराः कणन्तः । गाथका गा-यना इव । '२९०८। गस्थकन् ।३।१।१४६।' तैश्च परिक्षिप्ता परिवेष्टिता इति ॥

३७६-एक-होयन-सारङ्ग-गती रघु-कुलोत्तमी ॥

लवकौ शत्रु-शक्तीनार्मृष्यमूकमंगच्छताम् ।।। ८५ ॥

एकहायनेत्यादि—रघुकुळोत्तमौ रामलक्ष्मणौ। ऋष्यमूकमगच्छतां गत-वन्तौ। छक्टि रूपम्। हायनः संवत्तरः स एको यस सारङ्गस्य मृगस्य तस्येव गतिर्थयोः शीव्रगामित्वात्। '२९१०। हश्च बीहि-कालयोः ।३।१।१४८।' इति हा धातोण्युंद्। आतो युक्। तौ शत्रुशक्तीनां लक्कौ अपनेतारौ ।'२९११।

१—'भूम-निन्दा-प्रशंसास नित्ययोगेऽतिशायने।' इति मत्वर्थीय इत्यर्थः । २—'१५२ । संवत्सरो क्सरो ऽन्दो हायनोऽसी शरत् समाः।' इति ना०अ० ।

९४६ शट्टि-काट्ये द्वितीयेऽधिकार काण्डे लक्षण-रूपे शयमो वर्ग ,

मु-स्-स्वः समभिहारे-।१।१।१४९' हति तुन्। तत्र समभिहारप्रहणं साधुका-रित्वोपछक्षणार्थम् ॥

३७७-तो वालि-प्रणिधी मत्वा सुग्रीवो ऽचिन्तयत् किपः, ॥ 'बन्धुना विगृहीतोऽहं भूयासं जीवकः कथम् .'॥८६॥

तावित्यादि—तौ रामलक्ष्मणौ वालिनः प्रणिधी चरौ मत्वा सुग्रीवः कषि-रचिन्तयत् चिन्तितवान् । प्रणिधीयते नियुज्यते कार्येषु प्रणिधिः । '३२७०। उपसर्गे घोः किः ।३।३।९२।' बन्धुना आत्रा विगृहीतो विरोधितः सन् कथं जीवको भूयासमिति । आशंसायां लीङ् । जीयेः '२९१२। आशिष च ३।१।-१५०।' इति बुन् ॥

इति निरुपपदकृद्धिकारः ।

इतः प्रभृति '७८१। तत्रोपपदं सप्तमीस्थम् ।३।१।९२।' इति अस्रोपस्थापनेन कृतो दर्शयञ्चाह—

३७८-स शत्रु-लावो मन्वानो राघवौ मलयं गिरिम्॥

जगाम स-परीवारो च्योस-मायमिनोत्थितम्,॥८७॥
स इत्यादि स सुन्नीवः सपरीवारः सपरिकरः। '१०४४। उपसर्गस्य विष।६।३।१२।' इति दीर्घः। कपीनाममनुष्यत्वात्। मलयं गिरि जगाम। राघवी
धाबुलावी शत्र्म लुनावीति '२९१३। कर्मण्यण्।३।२।१।' शत्रूणामुन्मूलकाविति
मन्वानोऽवगच्छन्। '१५६६। मनु अवबोधने' इत्यस्मादात्मनेपदिनः '२४६६।
तनादिकृत्र्म्य उः।३।१।७९।' व्योममायमिनोत्थितं व्योम आकाशं मिमीत
इति '२९१४। ह्वावामश्च ।३।२।२।' इत्यण्। नभः प्रिच्छेसुमिनोत्थितं
कियलमाणमस्थेति॥

३७९-शर्भ-दं मारुतिं दृतं विषम-स्थः कपि-द्विपम्॥

शोकाऽपनुद्रमं-व्यशं आयुक्क किप-कुञ्जरः. ॥ ८८ ॥
शर्मद्मित्यादि—किपिकुक्षरः सुश्रीवः हन्मन्तं दूतं शयुक्क प्रस्थापित-वान् '७४९। वृन्दारक-नाग-कुक्षरेः—।२।११६२।' इत्यादिना कर्मधारयः सः । वृत्तान्तं ज्ञातुमित्यर्थात् प्रायुक्क इति '२७३५। प्रोपान्यां युनेः—।१।३।६४।' इत्यात्मनेपदम् । '२५४३। रुधादिन्यः श्रम् ।३।९।७८।' किपिकुक्षरः किन्मूतः । विषमे तुर्गपर्वते तिष्ठतीति विषमस्थः । '२९१६। सुषि स्थः ।३।२।४।' इति कः । मारुतिं कीदशं शर्म कल्याणं ददातीति शर्मदः । '२९१४। आतोऽनुप-सर्गे कः ।३।२।३।' इति कः । श्रेष्ठत्वमाहः। किपिक्षेष्ठम् । द्वान्यां पिव-तीति द्विषः । किपरयं द्विष इव । '७३५। उपमितं व्यान्नादि—।२।१।५६।' इत्या-

[्] १---'७७७८ । यथाईवर्णः **प्रणिधिर्**पसर्पम् चरः स्पश्चः । चारम् च गूढपुरुषः।'



दिना कर्मधारयः। पुनः कीदशं शोकापनुदं शोकमपनुद्वि। '२९३९। तुन्द-सी-कयोः-।३।२।५।' इति कः। अव्ययं सुचित्तमित्यर्थः॥

३८०-विश्वास-प्रद-वेषो ऽसौ पथि-प्रज्ञः समाहितः॥ चित्त-संख्यो जिगीषूणार्मुत्यपात नभस्-तल्म्,॥८९॥

विश्वासेत्यादि — असौ मारुतिनंभसल्मुत्पपात । विश्वासं प्रददातीति विश्वासप्रदः । '२९२०। प्रे दाज्ञः ।३।२१६।' इति कः । विश्वासप्रदेशे वेपो यस्य सिक्षुत्रेप इत्यर्थः । वेष्यते आत्मानेनेति '३१८८। अकर्तरि च कारके ।३।३।१९।' इति घन्।'११७०। विष्टुँ व्याप्ताे' इत्यस्य रूपम् । पन्थानं प्रजानातीति पथि-प्रज्ञः समाहितः अश्रान्तचितः 'इदमादिष्टं इदं च मया तत्र वक्तव्यम्' इति । जिगीषूणां जेतुमिच्छताम् । चित्तसंख्यः चित्तं संख्याति परिच्छिनत्तीति '२९२१। समि ख्यः ।३।२।७।' इति कः ॥

३८१-सुरा=पैरिव घूर्णद्भिः शाखिभिः पवनाऽऽहतैः ॥ ऋष्यमूकर्मगाद् सङ्गैः प्रगीतं साम=गैरिव. ॥ ९०॥

सुरापैरित्यादि — मारुतिर्करण्यमूकमगात् । शाखिमरुपलक्षितम् । वृशिक्षः कम्पमानैः पवनाहतःवात् । अत एव सुरापैरिव मत्तिरिव । '२९२२। गापोष्टर् ।३।२।८।' इसत्र 'पिवतेः सुरा-शीध्वोः' इति उत् । प्रगीतं प्रगीयते अत्रेति । अधिकरणे कः । कैर्मृक्षेत् सामगैरिव सामवेदपाठकैरिव साम गायन्तीति '२९-२२। गापोष्टत् ।३।२।८।' ॥

३८२-तं मनो-हरमांगत्य गिरिं वैर्म-हरी किपः ॥ वीरौ सुखा ऽऽहरो ऽचोचद् भिक्षुर् भिक्षाई-विष्टहेः.॥

तिस्यादि—कष्यमूकं गिरिमागत्य किषवींरी रामलक्ष्मणी अवीचत् उर्कः वान्। कीद्यं मनोहरं रम्यत्वात्। मनो हरतीति '२९२३। हरतेरनुव्यमने उच् । इ।२।९।' वर्महरी कवचं हर्तुं क्षमी। संभाव्यमानवयसावित्यर्थः। '२९२६। वयसि च।३।२।१०।' इत्यच् सुखाहरः सुखाहरणश्रीकः। '२९२५। आखि ता-च्छीव्ये।३।२।१९।' इत्यच्। मिक्षः परिवाद्वेषः न किष्क्षपः यतो विश्वासय-द्वेष इत्युक्तम्। मिक्षाईविप्रहः मिक्षायोग्यश्ररीरः क्षश्नत्वादिस्यर्थः। मिक्षाम-

३८३-'बिलनार्वमुमंद्रीन्द्रं युवां स्तम्बे-रमाविंच ॥ आचक्षाथां मिथः कस्माच्छक्करेणां ऽपि दुर्गमम्॥९२॥

१—'८२९। तनुत्रं वर्म दंशनम्।' २—'६३४। अथ कलेवरम्। गात्रं वपुः संहननं शरीरं वर्ष्म विग्रहः॥' ३—'७९९। दन्ती दन्तावलो हस्ती हिरदोऽनेकपे हिए। ॥ मतङ्गो गजो नागः कुलरो वारणः करी। इसः स्तम्बेरमः पत्नी।' इति जा० अ०॥

१४८ भट्टि-काव्ये — द्वितीयेऽधिकार-काण्डे सक्षण-रूपे प्रथमो वर्गः,

बिलनिवित्यादि—युवां असं अदीन्द्रम् । कसात् कारणादिशः प्रास्ते । '१११८। इण् गतो' इत्यसात् '२७८९ । वर्तमानसामीप्ये वर्तमानद्वा । ।३।३।१३९।' इति यसि रूपम् । भूते लद्द थस् । एतदाचक्षाथां कथयतम् । लोटि रूपम् । बलिनो बलवन्तो । यतः शङ्करेणापि महादेवेनापि दुर्गमं दुःखेन गम्यते । काविव सम्बेरमाविव यथा मत्तिद्विणे शामुतस्तद्वत् । '२९२७ सम्ब-कणैयोः—।३।२।१३। इस्रच् । कर्तरि हस्तिन्यभिधेये 'इस्ति स्वक्योः' इति वचनात् । शङ्कर इति '२९२८। शमि घातोः—।३।२।१॥' इत्यच् ॥

दुर्गमत्वद्शेनायाह—

३८४-व्याप्तं गुहा-शयैः क्रूरैः कव्याद्भिः स-निशाचरैः ॥ तुङ्ग-शैल-तरु-छन्नं मानुषाणाम-गोचरम्. ॥ ९३॥

च्याप्तमित्यादि — कीदशमदीन्द्रं कव्यमपक्रमांसं भक्षयद्भिः । कन्योपपदा-दृदेः '२९७८। कन्ये च ।३।२।६९।' इति विद् । कूरेः हिंसकैः सिंहादिभिः सनिशाचरैः राक्षससिहतैन्यांसम् । गुहाशयैः गुहायां शेरते इति शीङः २९२९। अधिकरणे होतेः ।३।२।९५।' इत्यच् । तुङ्काः उच्चाः शैलाः शिलायां भवा ये तरवसौर्छकं व्यासम् । अत एव मानुषाणामगोचरं अगम्यम् । '३।२९८।गोचर-सञ्चर-।३।३।९१९।' इत्यादिना विपातितः ॥

प्रागुक्तष्टाधिकारः । इति ऊर्ध्वं खशादिप्रत्ययानाह—

३८५-सत्वमेजय-सिंहाऽऽढ्यान् स्तनं-धय-सम-त्विषौ ॥ कथं नाडिंधमान् मार्गानांगतौ विषमोपलान्, ॥९४॥

सत्विमित्यादि — युवामिमान् मार्गानागतौ । सत्वमेजयसिंहाक्वान् । सत्वमेजयन्ति थे सिंहाः । '२९४१। एकेः करः ।६।२।२८।' । '२९४२। अरुर्द्विपत्
—।६।३।६७।' इति मुम् । तेराक्वान् व्यासान् । सिंहम्रहणं तद्विद्धियेपळक्षणार्थम् । हिनस्तीति सिंहः । एषोदरादित्वाद्वर्णविपर्ययः । नाडिन्धमानिति । उच्चनीचाधिरोहणात् मुहुर्मुहुर्निः श्रुसिर्नाहिंधमन्तीति '२९४५। नाडी-मुख्योश्च ।३।२
।३०।' इति करः । '२९४३। खिल्यनव्ययस्य ।६।३।६६।' इति हस्यः । विपमोपकान् उच्चतपाणायुक्तान् । सनन्धयसमत्विषो बाल्यवस्यक्तमारौ । सामर्थ्यं पुन'
र्युवयोरचिन्त्यम् । सत्तं धयतः पिवतः । '२९४४। नासिका-स्तनयोः—।३।२।२९।इति करः । '२९४२। अरुर्द्विषद्—।६।३।६७।' इति मुम् ॥

३८६-उत्तीर्णों वा कथं भीमाः सरितः कूलमुद्धहाः, ॥

आसादितों कथं ब्रूतं न गजैः कूलमुद्धजैः. ॥ ९५ ॥ उत्तीर्णावित्यादि—कथं वा केनोपायेन युवां सिरतो नदीरुतीणौं। भीमा- स्नातकरीः यतः क्लमुद्धहाः क्लमापूर्य वहन्यः । '२९४६। उदि क्ले-।३।२।-३१।' इति सञ्च । गजैः क्लमुद्धजैः क्लं मिन्दिक्तः कथं नापादितौ न ज्यापा-दितौ इति क्तं कथयतम् ॥

३८७-रामो ऽवोचर्छनूमन्तम्
'आवामंश्रं-लिहं गिरिम् ॥
' ऐव विद्वन् ! पितुः कामात्
पान्तावं ल्पं-पचान् मुनीन् ॥ ९६ ॥

राम इत्यादि — हतुर्वदनैकदेशः स निन्दितो ऽस्यासीति निन्दायां मतुप्।
'३५३९। अन्येषामपि दृश्यते ।६।३।१३७।' इति दीर्घः । 'हनूमान् हनुमानपि'
इति विश्वदर्शनात् । तस्य किल जातमात्रस्य आदित्यरथं गृह्धतो हनुद्वयं भग्नमिति
श्रूयते । तं रामो ऽबोचत् उक्तवान् । तत् किमित्याह — हे विद्वन्, यद्मुं गिरिमावामैव आगतौ तत् पितः कामाद्भित्रायात् । आङ्पूर्वादिणो लिल रूपम् ।
अश्रंलिहमुचैस्तरम् । अश्रं लेडीति '२९४७। वहाश्रे लिहः ।३।२।३२।' इति
सञ्च । किं कुर्वाणा पान्ता रक्षन्तौ । मुनीन् अल्पम्पचान् अल्पसन्तुष्टान् । अल्पं
पचन्तीति '२९४९। मितनसे च ।३।२।३४।' इति मितेस्ययंग्रहणात् सञ्च ।
चकारस्यानुक्तसमुच्चार्थस्वाद्वा ॥

कः पुनः पिता यदादेशादागतावित्यत आह— ३८८-अ-मितं-पचर्मीशानं सर्व-भोगीणमुत्तमम् ॥

आवयोः पितरं विद्धि रूयातं दशरथं भुवि. ॥९७॥

अमितम्पर्चिमित्यादि—आवयोः पितरं दशरथनामानं भुवि विख्यातं विद्धि जानीहि। '२४२५ हु-झल्भ्यो हेर्षिः।६।४।१०१।' अमितम्पर्च महास-न्निणं पूर्ववत् खश् मुम् च। ततो नञ्समासः। ईशानमीशनशीलं स्वामिननित्यर्थः। '३१०९। ताच्छील्य—।३।२।१२९।' इत्यादिना चानशः। सर्वभो-गीणं सर्वसत्वभोगाय हितम्। '१६७०। आत्मन्-विश्वजन—।५।१।९।' इति खः। भोगशब्दो ऽत्र शरीरवाची। '१९७। अट्र-कुप्वाङ्—।८।४।२।' इत्यादिना णत्वम्।

यदि पितुरादेशादागतौ किमत्र गमनेनान्वेषयथ इत्याह—

३८९-छलेन दियेता ऽरण्याद् रक्षसा ऽरं-तुदेन नः ॥ अ-सूर्य-परयया मूर्त्या हता, तां मृगयावहे.'॥९८॥

छुलेन्द्यादि—नो ऽस्नाकं दसिता अरण्याद्राक्षसेन हता । कीदशेन। अरु-न्तुदेन मर्मस्पृशा । '२९५०। विध्वरूषोस्तुदः ।३।२।३५।' इति सञ्च । सुम् । असूर्यम्परथया आदिसगोप्यया मूर्सा शरीरेणोपलक्षिता । '२९४१। असूर्य-स्ट-

१-- '१४४६ । इच्छामनोभवौ कामो । दित ना० अ०।

१५० अष्टि-काट्ये-द्वितीयेऽधिकार-काण्डे लक्षण-रूपे प्रथमो वर्गः,

काटयोः-।१।२।१६।' इति खश् । तां हतां सृगयावहे गवेषयावः । '२०४६। सृग अन्वेषणे' स्वार्थिकण्यन्तः । युवयोः पौरुषान्वितत्वात् कयं हतेत्याह-छ-केन छश्चना ॥

त्वं पुनः कस्य वैत्यत आह-

३९०-प्रत्यूचे मारुती रामम्-'अस्ति वालीति वानरः॥

शमयेदंपि संद्रामे यो छछाटं-तपं रिवम्.॥९९॥

प्रत्यूच इत्यादि—रामं माहतिः प्रत्यूचे प्रत्युक्तवान् । अस्ति वालीति नाम्ना कपीखरः यः संप्रामे युद्धे छलाटन्तपं सर्वेषामुपरि वर्तमानं रवि पूर्ववत् सञ्जा शमयेत् पराजयेदिति सम्भावने लिङ् । वालिशब्दो नान्तः इदन्तश्च । तथा च 'वाली वालिश्च कथ्यते' इति शब्दभेदः ॥

३९१-उग्रं-पर्येन सुग्रीवस् तेन भ्याता निराकृतः, ॥

तस्य मित्रीयतो दूतः संप्राप्तो ऽस्मि वरं-वदः, १०० उत्रम्पद्येनेत्यादि—तेन आता उप्रम्पद्यता पापं विजानता । १२९५२। व्यम्पद्य-१३१२१६७। इत्यादिना निपातितम्। यश्च सुप्रीवो निराहतोऽभिभू-तस्त्वय हि वृतः प्राप्तो ऽस्ति । वद्यंवदः । वद्यमनुकूरुं वदतीति वद्यंवदः। १२९३५। प्रिय-वदो वदः सन्त्व ।३।२।३८। कीदशस्य मित्रीयतो मित्रमिच्छतः। १२६५७। सुप आत्मनः वयन् ।३।१।८। ॥

किं तेन सख्येति चेदाह ---

३९२-प्रियं-वदो ऽपि नैर्चा ऽहं ब्रुवे मिथ्या परं-तप !, ॥

सख्या तेन दश-ग्रीवं निहन्तासि द्विषं-तपम् ॥१०१॥

प्रियंचद् इत्यादि — प्रियंवदतया लोको मिथ्या वदति अहं प्रियंवदोऽपि नैव मिथ्या बुवे वदामि । पूर्ववत् खच् । परन्तप शत्रूणाभुपतापियतः ।२९५४। द्विषत् परयोः—।३।२।३९।' इति खच् । तेन सुग्रीवेण सख्या मित्रेण दशग्रीवं निहन्तासि हनिष्यसि । हन्तेर्छेटि रूपम् । कीदशं द्विषन्तपम् शत्रूणाभुपतापिय-तारस् । पूर्ववत् खच् ॥

३९३-वार्च-यमोऽहर्मनृते सत्यमेतद् ब्रवीमि ते,॥

एहि, सर्व-सहं मित्रं सुग्रीवं कुरु वानरम्. ॥१०२॥ वाचंयम इत्यादि—'२९५७। वाचंयम-पुरन्दरौ च ।६।३।६९।' इति सुमा-गमो निपासते । तसात् सत्यमेतत् पूर्वोक्तम् । ववीमि ते तुम्यम् । तादध्वे

१—'१६८। सत्यं ब्याद प्रियं ब्याद न ब्र्याद सत्यमप्रियम्। प्रियं च नानृतं व्यादेषं धर्मेः सनातनः ॥' मनुरमृतिः अ० ४। इति मर्म जानन्नाह—'नैर्ना ऽहं ब्रुवे मिथ्या' इत्यादि ।२—'७४९। तपस्वी तापसः पारिकाङ्की वार्च-यमो सुनिः।' इति ना० छ०



चतुर्थो । यत एवं तसादेहि आगच्छ ! सुप्रीवं वानरं सित्रं कुरु । कीदशं सर्वसहं सर्व सहत इति '२९५८। पृःसर्वयोः—।३।२।४१।' इति खच् ॥

३९४-सर्व-कष-यशः-शाखं राम-कल्प-तरुं कपिः ॥

आदायां ऽभ्नं-कषं प्रायान् मलयं फल-शालिनम् .१०३

सर्वेङ्कषेत्यादि—रामः कल्पतरुरिव यसमादाय गृहीस्वा कपिः प्रायात् गतः। कीदशं रामम् सर्वेङ्कवयशःशाखं सर्वं कषन्ति व्यामुवन्ति यानि यशांसि। '२९५९। सर्वे-क्ल-।३।२।४२।' इलाहिना खच्। नान्येव शाखा यस्य। फलशाः-लिनमनिमतपळसम्पादनात। अञ्चक्षसुचेस्तरं मळयम्। पूर्वेवत् खच्।।

३९५-मेघं-करमिर्वायान्तर्मृतुं रामं क्कमान्वितः ॥

हृष्ट्वा मेने न सुग्रीवो वालि-भानुं भयं-करम्. ॥१०४

मेघङ्कर्मित्यादि — राममायान्तं दृष्ट्वा । सुग्री वो वालिनं भानुमिव मयंकरं भीतिवनकं न मेने न बुद्धवान् ।'२९६०। मेवर्ति—। ३।२।४३।' इत्यादिना खच्। इमान्वितो ग्लानो वालिभानुना पीडितःवात्। कीदशं रामम् । मेघङ्करं ऋतुमिव प्राष्ट्रद्वालमिव । पूर्ववत् खच् ॥

३९६-उपा-स्यंकुरुतां सख्यमन्योन्यस्य प्रियं-करौ,॥

क्षेमं-कराणि कार्याणि पर्यालोचयतां ततः, ॥१०५॥

उपाद्गीत्यादि — उपाद्म अग्निसमीपे रामसुद्रीवौ सस्यमकुरुतां 'इतःप्रसृ-स्थावयोः सस्यम्' इति । अन्योन्यस्य वियङ्करौ । '२९६१। क्षेम-वियमद्रेऽण्य ।३।२।४४।' इति चकारात् । ततः सस्यकरणानन्तरं क्षेमङ्कराणि । हितजनकाति यथास्त्रं कार्याणि प्रसालोचयतां निरूपितवन्ताविसर्थः । पटपुटेत्यत्र चुरादिकाण्डे धातौ लोच पछाते तस्य लिङ रूपम् ॥

३९७-आशितं-भवमुत्कुष्टं विलगतं शयितं स्थितम् ॥

बह्दंमन्यत काकुत्स्थः कपीनां स्वेच्छया कृतम्. १०६

आशितस्मविमित्यादि — आशितस्मवमशनम् । '२९६२। आशिते सुवः करण-भावयोः ।३।२।४५।' इति खन् । उत्कृष्टं किलकिलायितम् । विशातं धाव-नम् । तथा श्रयितं स्थितं चकपीनां स्वेच्छया कृतं एतकाकुत्स्थो बह्धमन्यत श्राधितवान् । पुण्यभाज इमे यदेषां स्वेच्छाविहारिणां चेष्टितं, असाकं तुः श्रोकसन्तक्षानां न किंचिदसीति । सर्वत्र भावे निष्टा ॥

३९८-ततो वर्लि-दम-प्रख्यं कपि-विश्वं-भराऽधिपम् ॥ सुग्रीवः प्राबवीद् रामं वालिनो युधि विऋमम् .१०७

तत इत्यादि — ततः कार्यालोचनानन्तरं सुप्रीवो ऽव्रवीत्। लिंक '२४५२। बुव ईद ।७।३।९३।' किमुक्तवान् । वालिनो युधि विक्रमं शौर्यमिति प्रधानं कर्म रामिसकथितम् । कीदृशं रामम् बिलन्दमप्रक्षं विष्णुतुल्यम् । बिलं दमयती-ति '२९६३। संज्ञायां भृ-तृ-मृजि—।३।२।४६।' इत्यादिना खच् । अमन्तस्य मित्वदृस्यत्वे । तथा विश्वं विभर्तीति विश्वम्भरा तस्या अधिपं अधिपातीस्यिधिपः। '२८९८। आतश्चोपसर्गे—।३।१।१३६।' इति कः ॥

३९९-'वसुं-धरायां कृतस्त्रायां नांऽस्ति वालि-समो बली,॥

हृद्यं-गममैतत् त्वां ब्रवीमि, न पराभवम्. ॥१०८॥ वसुन्धरायामित्यादि—वसुन्धरायां पूर्ववत् सन् । वालिना समोऽन्यो बली बलयुक्तो नास्तीति हृदयङ्गमं मम । स्वानुभवं हि वस्तु हृदयङ्गममित्यु-च्यते । तेन संज्ञायामित्यधिकृत्य '२९६४। गमश्र ।३।२।४७।' इति सन् । न

पुनस्त्वां पराभवमभिभवं ब्रवीमि ॥

इति खजधिकारः।

एवंपराक्रमो ऽसी तन्न कि त्वं करिष्यसीत्याह— ४००-दूर-गैर्रन्त-गेर् वाणेर् भवानित्यन्त-गः श्रियः ॥

अपि संकंन्दनस्य स्यात् कुद्धः, किमुत वालिनः१०९

दूरगैरित्यादि—यतो भवान् कुद्धः सन् संकन्दनस्यापि शकस्यापि । '२८ ९६। नन्दि प्रहि। ३१९१३ ३४।' इत्यादिना स्युः। वाणः करणभूतैः। दूरगैः दूरं गच्छन्तीति। अन्तगैः कार्यसमापकैः। '२९६५। अन्तात्यन्त-।३।२।४८।' इत्यादिना दः। श्रियो छक्ष्म्याः अत्यन्तगः विनाशयिता स्यात्। अत्यन्तं पर्यवसानं गच्छतीति। किं पुनर्वाछिनो छक्ष्म्या अत्यन्तगो भवान्विनाशयिति॥ ४०१—वरेण तु मुनेर् वाली संजातो दस्यहो रणे॥

अ-वार्य-प्रसरः प्रातर्रुद्यन्निव तैमोऽपहः ॥११०॥

वरेणेत्यादि — मुनेस्तु वरेण वस्युहः वस्यून् शत्रून् वध्यादिति । '२९६६। आशिषि हनः ।६२।४९।' हः । अतो रणे अवार्धप्रसरोऽनिममवनीयगितः सञ्जानः । क इव तमोऽपह इव तमोऽपहः आदित्यः । तमोऽपहन्तीति । '२९६७। अपे क्षेत्रतमसोः ।६।२।५९।' इति हः । प्रातः प्रभाते उद्यन् उद्गच्छन्। उत्यूर्वीविणः शतिर हणो यण् । अवार्धप्रसरसद्धद्रसावि । सर्वं वाक्यं सावधारणं भवनिति प्रातरप्युद्यस्वार्धप्रसर एवेति तेन सर्वकाले अस्यावार्षप्रसरत्वं सिद्धं न तु आतरेवोद्यस्वार्षप्रसर इति ॥

१—'५०। संक्रन्दनो दुक्ष्यवनस् तुराषाण् मेघवाहनः। आखण्डलः सहस्रक्ष क्रमुक्षाः।' २—'७७६। रिपा वैरि-सपबाऽरि,दिषद्-देषण-दुर्द्दः । दिड्विपक्षाऽहिता— ऽमित्र-द्रमु-सात्रव सत्रवः॥' ३—'१४४९। राहो ध्वान्ते गुणे तमः।'इति सर्वत्र ना०अ०। तमःसन्दार्थास्यः—'तैमः करि-हरिं सोमं प्रपोड्य कुरुते तैमः। चकोरात् स-तमस्-कान् यद् तद् युक्तं तमसोऽस्य वै॥' इति कोशावतंसः। १—तमोऽन्थकारः। र—वगे राह्य १—वभो गुण स्व शोक्युक्तानित्यर्थ

४०२-अतिप्रियत्वान् न हि मे कातरं प्रतिपद्यते ॥

चेतो वालि-वधं राम ! क्वेशापहमुंपस्थितम्. ॥१११॥

अतीत्यादि—हे राम! मदीयं चेतो वालिवधं कर्मीभूतसुपस्थितं प्राप्तं न हि प्रतिपद्यते नेव प्रत्येति । यसात् कातरं व्याकुछम् । वालिनोऽतिवलयुक्त-त्वात् । कीदशं वधं । क्रेशापहम् दुः सस्योन्नू एकम् । पूर्ववङ्घः । अतिप्रियत्वा-द्वालिवधस्य । यस्य हि यित्रयं तिस्तिद्धमपि असौ न प्रत्येति ॥

इति डाधिकारः॥

उपस्थितो ऽस्य वध इति कथं ज्ञायत इत्याह— ४०३—श्रीर्ष-घातिनमायातमरीणां त्वां विलोकयन् ॥

पतिन्नी-लक्षणोपतां मन्यें इं वालिनः श्रियम्. ११२ द्योषेंत्यादि—अरीणां शीर्षश्चातिनम् । '२९६८। कुमार-शीर्षशोणिनिः ।३।२।५१।' इति निपातनात् शिरसः शीर्षभावः । आयातं विलोकयम् वालिनः श्रियं पतिशीलक्षणोपतामहं मन्ये । पति हन्ति यलक्षणं तेनोपेतामिवेतीवार्थोऽत्र इष्ट्यः । '२९७०। अमनुष्यकर्तृके च ।३।२।५३।' इति टक् । '२३६३। गमहन-।६।४।९८।' हत्युपधालोपः । '३५८। हो हन्तेः-।७।३।५४।' इति कुरवम् ॥

४०४-शत्रुझान् युधि हस्तिझो

गिरीन् क्षिप्यन्नं-कृत्रिमान् ॥ शिल्पिभिः पाणिषैः कुद्धस्

त्वया जय्यो ऽभ्युपाय-वान्, ॥ ११३ ॥

शतुम्नानित्यादि — किञ्च युधि संग्रामे वाली त्वया जय्यः शक्यो जेतुं यदि युद्मद्श्वाणां शक्तिर्देश तां च द्रष्टुमिच्छामीति वश्यमाणाभिप्रायः । '६५। क्षय्यजय्यौ शक्योर्थे १६१९।८१।' इत्ययादेशनिपातनम् । कीदशः अभ्युपायवान् युद्धोपाययुक्तः। किं कुर्वेन् कुदः क्षिप्यन् गिरीन् । दिवादित्वाच्छ्यन् । अकृतिमान् देवतिर्मितान् । शत्रुप्तान् शत्रुन् इन्तीति । '२९७०। अमनुष्य—।३।२।५३।' इति टक् । हस्तिन्न इव हस्तिन्नः हन्तुं शक्तः। '२९७१। शक्तौ हस्ति-कपादयोः ३।२।५४।' इति सृत्रस्य मनुष्यकर्तृकार्थारमभकत्वात् । वाली चामनुष्यः। शिल्पिमिर्युद्धकुशलैः वानरैः सह क्षिप्यन् । सहार्थस्य गम्यमानत्वात् सहयोगे नृतीया । पाणिषैः पाणिवादकैः । ते हि हस्तियुद्धेऽन्यस्य वाद्यसासंभवात् हस्तिमुखमेव वादियत्वा गिरीन् प्रहरणान् क्षिप्यन्ति। '२९७२। पाणिव-ताडघौ शिल्पिने ।३।२।५५।' इति कर्तरि निपातनम् ॥

४०५-आर्ट्य-करण-विकान्तो महिषस्य सुरद्विषः॥

प्रियं-करणमिन्द्रस्य दुष्करं कृतवान् वधम्. ॥११४॥

१५४ भट्टि-काट्ये-- द्वितीयेऽधिकार-काण्डे स्टक्षण-रूपे प्रथमी वर्गः,

आत्यमित्यादि — अनाव्यमावयं करोत्यनेनेति । '२९७३। आव्य-सुभग— १३।२।५६।' इत्यादिना करणे ख्युन् । आव्यङ्करणं विकान्तं यस्य वालिनः। अना-व्यः सन् विकान्तेनाव्यो भूत इत्यर्थः । महिषस्य सुरिहषो दुन्दुभेर्वधं मरणं यः कृतवान् दुष्करं कृच्छ्रसाध्यं प्रियङ्करणमिन्द्रस्य तुष्टिकरम् । अप्रियं प्रियं करोत्य-नेनेति पूर्ववत् ख्युन् ॥

४०६-प्रियं-भावुकतां यातस् तं क्षिपन् योजनं मृतम् ॥ स्वर्गे प्रियं-भविष्णुश् च कृत्स्नं शक्तो ऽप्यंबाधयन्,'॥

प्रियमित्यादि—तमेवं सुरिंद्धं मृतं पादाङ्क्षेत्रं योजनमध्वानं क्षिपन् ग्रे-रमन् । क्षिपेस्तौदादिकस्योभयपदिनो रूपम् । प्रियमभावुकतां यातस्यथा स्वमं त्रियमभविष्णुश्चासीत् । '२९७४। कर्तरि भुवः—।३।२।५७। इत्यनेनाब्यादिपूपप-देषु खिष्णुच्खुकनौ । शक्तो ऽपि समर्थो ऽपि इत्स्वं छोकमित्यर्थात् । अवाधयन् अपीडयन् । '१६५९। बध संयमे' इति चौरादिकः तस्य शतरि रूपम् । स ईदशस्वया शक्यो जेतुं यदित्वदस्राणां सामर्थ्यं दृष्टमित्यभिप्रायेणाववीत् सुमीवः॥ रामोऽपि तदीमप्रायं विदन् यत् कृतवान् तदाह—

४०७-जिज्ञासोः शक्तिमस्त्राणां रामो न्यून-धियः कपेः॥ अभिनत् प्रतिपत्त्यर्थं सप्त व्योम-स्पृशस् तरून्.॥

जिज्ञासोरित्यादि — अस्राणां शराणां शक्ति जिज्ञासोः ज्ञातुमिन्छोः कपेः सुश्रीवस्य न्यूनिधयः स्वत्यबुद्धेः । यतः प्रमाणान्तरेणापरिज्ञानात् प्रत्यक्षेण ज्ञातुमिन्छतीति प्रतिपर्यर्थं संप्रस्ययार्थं रामः सप्त तरून् तालान् पङ्कवा स्थितान्
एकेन शरेणामिनत् व्योमस्पृशः । '४३२। स्पृशोऽनुदके किन् ।३।२।५८।' ॥
४०८—ततो वालि-पशो वध्ये राम-र्त्विग्-जित-साध्वसः ॥

अभ्यस्त् निलयं श्रातुः सुग्रीवो निनद्त् दघुक्. ॥
तत इत्यादि—ततक्तरभेदादनन्तरं सुग्रीवो श्रातुर्निलयमभ्यभृत् अभिभूतवान्। कीद्दशः दष्टक् ष्ट्यः। '३७३। ऋत्विग्—।३।२।५९।' इत्यादिना निपातितम्
ष्रिः किन्। द्विषंचनम्। '३७७। किन्प्रत्ययस्य क्वः।८।२।६२।' इति कृत्वं सकारः
चर्त्वं ककारः। यस्माद्वालिनि पशाविव वध्ये वधाहें। रामेण ऋत्विणा याजकेन
जितसाध्वसः अपनीतसाध्वसः तस्माद्यक्। ऋतौ यजति ऋतुं वा यजति
ऋतुम्युक्तो वा यजतिति ऋतुपूर्वायजेः किन्। यजादित्वात् सम्प्रसारणम्।
इदम्त्विक्शब्दनिवंचनम्। रुदितस्तु याजयित्यु ब्राह्मणेषु किन्प्रत्ययस्य कुः।
जितदन् किलकिलाशब्दं कुर्वन्॥

४०९-गुहाया निरगाद् बाली सिंहो मृगमिव द्युवन् ॥ स्त्रातरं युङ् भियः संख्ये घोषेणां ऽऽपूरयन् दिशः ॥ सुहाया स्यादि स्स्य गुहाया सिरगहानी निर्गत । '२४५८। इणो गा लुङि ।२।४।४५'। '२२२३। गाति-स्था-।२।४।७७।' इति सिचो लुक् । आतरं द्युवन् अभिगच्छन्। '१११३। द्यु अभिगमने' अस्यादादिः कस्य वर्तमानसामीप्ये लटः शतिर उवङादेशे रूपस्। संख्ये युद्धे। भियो यङ्क् भीतेर्योक्ता कर्मणि षष्ठी। भीतिं युक्तिलस्यः। यक्तेः पूर्ववत् किन् '३७६। यु-जेरसमासे। ।।१।७१।' इति नुम्। संयोगान्तलोपः। किन्प्रत्ययस्य कुः। ङकारः। कः कमिव।सिंहो सगमिव द्युवन्। घोषेण दिशः आप्रयन् । दिशन्ति इति दिशः पूर्ववत् किन्।।

४१०-व्यायच्छमानयोर् मूढो भेदे सदद्ययोस् तयोः ॥ भाणमुंद्यतमायंसीदिक्ष्वाकु-कुल-नन्दनः. ॥ ११९॥

ट्यायच्छेत्यादि—तयोवीलिसुग्रीवयोव्यीयच्छमानयोः कलहायमानयोः सदशयोः समानयोः भेदे पृथक्त्वे मृढो आन्तः सन् इक्ष्वाकुकुलनन्दनो रामो वाणमुधतं सजीकृतमायंसीत् उपसंहतवान्। '२०४२। समुदाङ्भ्यो यमो ग्रन्थे ।१।३।७५।' इति तङ् न भवति। अकर्त्रभिष्रायत्वात्। तत्र 'कर्त्रभिष्राये' इति वर्तते। '२६९५। आङो यमहनः।१।३।२८।' इत्यनेनापि न स्यात् सकर्मकृत्वात् तत्र 'अकर्मकात्' इति वर्तते। समानपूर्वस्य दशः 'समानान्ययोश्व' इत्युपसं- स्थानात् '४२९। त्यदादिषु-।३।२।६०।' इत्यादिना कम् । '१०१७। दग्-दश्-व-तुषु ।६।३।८९।' इति समानस्य सभावः॥

४११-ऋष्यमूकर्मगात् क्वान्तः

किपर् मृग-सहग् द्वतम् ॥ किष्किन्धाऽद्विसदाऽऽत्यर्थं

निष्पष्टः कोष्णमुंच्छ्रसन्.॥ १२०॥

ऋष्यम्कमित्यादि किषः सुग्रीवः किष्किन्धादिसदा वालिना कि किं द्यातीति किष्किन्धा गुहा। '२९१५। आतो उनुपसंगे कः ।३।२।३।' पारस्क-रादिदर्शनात् पूर्वस्य सुडागमो मलोपः षत्वं च निपासते । तदुपलक्षितोऽद्विः किष्किन्धादिः। तत्र सीदतीति '२९७५। सत्सृद्धिप-।३।२।६१।' इसादिना किप्। तेनालर्थं निष्प्ष्टः पीडितः। निष्प्ष्टत्वात् क्लान्तः सन् ऋष्यमूकं सुगसदक् द्वतमगात्। समानोपपदात् दशेः पूर्ववत्। किन्। कोष्णमीषदुष्णमुक्क्षसन्। '१०३३। कवं चोष्णे।६।३।१०७।' इति चकारात् कोः कादेशः॥

४१२—कृत्वा वालि-दुहं रामो मालया स-विशेषणम्.॥

अङ्गद-स्वं पुनर् हन्तुं किपन्नाऽऽह्वाययद् रणे. १२१

कृत्वेत्यादि—वालिद्धहं सुप्रीवम् । वालिनं द्वह्यतीति '२९७५। सत्सू-१३।२।६१।' इत्यादिना किप् मालया सविशेषणं सचिक्ठं कृत्वा भेदपरिज्ञानार्थं रामाः सक्कदस्यं कालियम् । बक्कदं सूत इति पूर्ववत् किन् । '२८१। ओं सुपि

१५६ भट्टि-काट्ये--द्वितीयेऽधिकार-काण्डे लक्षण-रूपे प्रथमो वर्गः,

। ६। ८। ८२। ' इति यणादेशः । तं रणे इन्तुं किपना सुधीवेणाह्वाययत् अभिभवं कारितवान् । ह्वयतेहेंतुमण्णिचि '२५८५। शा-च्छा । ७। ३। ३७। ' इत्यादिन् युक् ॥ ४१३ – तयोर् वानर-सेनान्योः संप्रहारे तनुच्छिदम् ॥

वालिनो दूर-भाग रामो वाणं प्राणाऽदमंत्यजत् १२२

तयोरित्यादि — बानरसेनान्योः वानरसामिनोः '२७२। एरनेकाचः ।६।४।८२।' इति यण्। संप्रहारे युद्धे प्रवृत्ते रामो वाणमत्यजत् । वाल्विनसनुन्द्रिदं
तनुं शरीरं छिनतीति पूर्ववत् किए '१४६। छे च ।६।१।७३।' इति तुक् ।
प्राणादं प्राणापहारिणम् । प्राणानत्तीति प्राणादम् । '२९७०। अदो ऽनवे ।३।२।६८।' इति विद। दूरमाक् दूरमवस्थितो रामो दूरं मजत इति २९७६। भजो
िवः ।३।२।६२।'॥

४१४-वालिनं पतितं दृष्ट्वा वानरा रिपु·घातिनम् ॥

वान्धवाऽऽक्रोशिनो भेजुरैनाथाः कंकुभो दशः १२३

चालिनमित्यादि --- रिपुचातिनं रिपून् इन्तुं शीलमस्येति '२९८८। सुप्य-जातौ णिनिः--। १।२।७८।' तं वालिनं पतितं दृष्ट्वा वानरा दश ककुभो दश दिशो भेजः । अनाथाः सन्तः स्वामिनो इतस्वात् । बान्धवाकोशिनो बान्धव इच आक्रोशन्तीति '२९८९। कर्तर्युपमाने । १।२।७९॥' इति णिनिः ॥

४१५-धिग् दाशरथिर्मित्यूंचुर् मुनयो वन-वर्तिनः, ॥

उपयुरु मधु-पायिन्यः

कोशन्त्यस् तं कपि-स्त्रियः, ॥ १२४ ॥

धिगित्यादि — येषां सत्यन्यस्थाने वृत्तो च वन एव वर्तितुं शास्रतो नियमः ते वनवार्तिनो मुनयः ।'२९९०। वर्ते ।३।२।८०।' इति णिनिः । धिगिमं दाशर-थिमित्यूचुः उक्तवन्तः । येनानपराधे ऽपि वालिनोद्दशं कृतमिति । कपिस्त्रियश्च वालिनमुपेयुः मधुपायिन्यः । आभीदण्येन मधुपिबन्त्यः। '२९९१। बहुस्रमामी-कृष्ये ।३।२।८१।' इति णिनिः । कोशन्त्यः 'हा नाथ !' इति रुदन्ताः ॥

४१६-राममुंचैर्रपालब्ध शूर-मानी कपि-प्रभुः॥

त्रण-वेदनया ग्लायन् साधुं-मन्यमं-साधुवत्. ॥१२५॥

रामित्यादि — कपित्रभुवांली राममुचैर्महता अब्देनोपालक्ष उपालक्ष्य-वान् । लिमरात्मनेपद्यतिद । तस्य लुक्ति '२२८९। झलो झलि ।८।२।२६।' इति सिचो लोपः । '२२८०। झषसयोघोंऽऽधः ।८।२।४०।'। '५२। झलां जझ् झिरी ।८।४।५३।'। शूरमानी शूरमात्मानं मन्यमानः ।२९९३। आत्ममाने स्वश्च ।३।

८ ८२ दिशस्तु ककुभ काष्टा आश्वाक् चरितक्ष्चता रितना० अ०।

२।८३।' इति चकाराण्णिनिः । व्रणचेदनया ग्लायन् ग्लानिमुपगच्छन् । साधु-म्मन्यं साधुमात्मानं मन्यभानं रामम् । तेनैच खश् । तस्मिन् सार्वधातुके परतो दिवादित्वात् श्यन् । पूर्वपदस्य भुम् । असाधुवदसाधुमिव । असाधुना तुल्यं वर्तते इति वतिः ॥

४१७--'मृषा ऽसि त्वं हविर्-याजी राघव ! छदा-तापसः॥ अन्य-व्यासक्त-घातित्वाद् ब्रह्मन्नां पाप-संमितः. १२६

मृपेत्यादि—हे राघव! त्वं छज्ञना तापसः स त्वं मृषेव मिथ्येव इविर्याली हिविषा करणेनेष्टवानिस न लोकपासय इल्सिप्रायः । २९९६ । करणे यजः ।३।२।८५।' इति भूते णिनिः ॥ इतः प्रभृति भूत इत्यधिक्रियते । यतो ब्रह्मां पापसंमितः ब्रह्म हतवन्त इति '२९९८। ब्रह्म-।३।२।८७।' इत्यादिना किए । तेषां पापेन तुल्यः । कुतः । अन्यव्यासक्तवातित्वात् अन्यस्मिन् सुग्रीवे व्यासक्तं मां हतवान् । '२९९७। कर्मणि हनः ।३।२।८६।' इति णिनिः । तत्र 'कुत्सितग्रहणं कर्तव्यम्' इत्युक्तम् । यदि सुग्रीवेण मम विरोधः किं तवायान्तिमिति कुत्सितहननम् ॥

तदेव दशेयसाह-

४१८-पाप-कृत् सुकृतां मध्ये राज्ञः पुण्यकृतः सुतः ॥ मार्मपापं दुराचार ! किं निहत्यां ऽभिधास्यसि. १२७

पापकृदित्यादि—हे दुराचार ! मामपापं निहत्य पापकृत् कृतिकेल्बिपः राज्ञो दशरथस्य पुण्यकृतः सुतः सुकृतां मध्ये किमिधिशस्मासे दश्यसि । किं होपे। निकंचिदिधिधातव्यमसीति भावः । सर्वत्र '२९९९।सुकर्म-पाप-।३।२।८९।' इत्यादिना किए॥

४१९-अग्नि-चित् सोम-सुद् राजा रथ-चक्र-चिदाऽऽदिषु ॥ अनलेष्विष्टवान् कस्मान् न त्वया ऽपेक्षितः पिता.॥

अग्निचिदित्यादि — कस्मात्त्वया पिता नापेक्षितः नानुवृत्तः । येनैवं कृत-वानसीति । कीद्दशः अग्निचित् आहिताग्निः । अग्निं चितवानिति '३००१। अग्नौ चेः ।३।२।९१।' इति किए । सोमसुत् सोमं सुतवान् सोमयाजी । '३०००। सोमे सुजः ।३।२।९०।' इति किए । अन्छेषु अग्निषु इष्टवान् । रथचक्रचिदादिषु रथ-चक्रवचीयत इति '३००२। कर्मण्यम्याख्यायाम् ।३।२।९२।' इति किए । आ-

१—'१४८०। मृषा मिथ्या च वितथे।' इति ना० अ० । २—'९० न कूटै-रायुथेर् इन्याद् युद्धथमानो रणे रिपृन्। न काणिंमिर् नापि दम्धेर् नाक्षि-ज्वलित-तेजनैः॥' '१०४ अमाययेव वर्तेत न कथंचन मायया।' मनुस्मृतिः अ० ७। इत्यादिराजधर्मान् स्मारयन्नाह—'छबतापसः' इति । '२३० कपटोऽसी न्याज-दम्भोपधवन्न सुद्धा-कैतवे।' २—'७१७। चितवानक्षिमिश्चि-चित् ।' इति ना० अ०।

१५८ महि काच्ये ।द्रतायडावकार काण्डे रुक्षण-रूप प्रथमो वर्ग ,

दिशब्दाच्छयेनचिदादिमहणम् । अस्यथे हि तदाकार इष्टकाचय इत्युच्यते तहारेणाझिरपि ॥

४२०-मांस-विक्रयिणः कर्म व्याधस्यां ऽपि विगर्हितम्॥ मां घ्रता भवता ऽकारि निःशङ्कं पाप-हश्वना. १२९

मांसेत्यादि—मांसविकयिणः कुरिसतकर्मकारिणो व्याघस्यापि विनाहितं निन्दितम्। '२००३। कर्मणीनिविक्रियः ।३।२।९३।' इति इनिः। तत्र 'कुरिसत-यहणं कर्तव्यम्' इत्युक्तम् । निकृष्टकर्मकरणेनेति यज्ञवता पापदश्चना पापं दृष्ट्-वता। '२००४। दशेः कनिष्। ३।२।९४।, । '२५५। न संयोगाद्यमन्तात् ।६।४।-१३७।' इति अल्लोपप्रतिषेधः । कर्म अकारि कृतम् । कर्मणि लुङ् । निःशहं शक्कां स्वक्त्वा। कि कुवैता मां व्रता मार्यता। इन्तेः शतिर '२६६३। गम-ह-न-।६।४।९८।' इत्युपधालोषः। '२५८। हो हन्तेः ।।।३।५४।' इति कुत्वम् ॥

४२१-बुद्धिपूर्व ध्रुवन् न त्वा राज-कृत्वा पिता खलम् ॥ सहयुध्वानमंन्येन यो ऽहिनो मार्मनांगसम् ॥१३०॥

बुद्धिपूर्वमित्यादि—त्वित्यता त्वां खलं असाधुचिरतं श्रुवन् गच्छन् '११- ९२। श्रु गित्रखेर्थयोः' इति तुदादी पट्यते । तस्य गतौ ज्ञानार्धे वर्तमानस्य शन्ति विकरणलोपे उवङादेशे रूपम् । यत्र राजकृत्वा । कस्य तदेखथीत् । '२००५ राजित युधि कृतः ।३।२।९५।' इति क्रिन् । तत्तस्य बुद्धिपूर्वम् श्रुवमवश्यं तत्त्येति व्याख्याने कृत्ययोगे कर्मणि षष्ट्या मवितव्यम् । यस्त्वं मामनागसमपा-पमन्येन सहयुध्वानं अन्येन सुप्रीवेण सह योद्धं प्रवृत्तम् । '२००६। सहे च ।३।२।९६।' इति क्रिन् । अहिनः हिंसितवान् । हिंसेर्छकि मध्यमपुरुपैकवचने क्षमि आन्नलोपे हल्इयादिलोपे रुत्वे च रूपम् ॥

मांसार्थं हत इति चेदाह-

४२२-पञ्च पञ्चनखा भक्ष्या ये प्रोक्ताः कृत-जैर् द्विजैः, ॥ कौश्रल्या-ज! शशाऽऽदीनां तेषां नैको ऽप्यहं कपिः.

पञ्च पञ्चेत्यादि है कौशस्याज कौशस्याजात। '२००७। सप्तस्यां जनेर्डः ।३१२१९७।' ये पञ्च पञ्चनखाः। 'शशकः शक्तकी गोधा खड़ी कृमेश्च पञ्चमः' इति। कृतजेः कृतखुगजातैः सप्तस्यां जनेर्डः। द्विजैद्धिजीतैः। '२०११। अन्ये-व्विपि दश्यते।३१२१०१।' इति इः। सप्तस्यामित्युपळक्षणम्। असप्तस्यामिष्टि दश्यते। मध्याः भक्षणीयाः प्रोक्ताः। तेषामहमेको अपि न भविता अहं कपिः। तिकिमिति इतोऽहं त्वयेति॥



२— '७९२ **आगो** ऽपराधो म तुञ्जूच' वृति सर्वत्र ना० श्र∙।

४२३—कैथं दुष्टुः स्वयं धर्मे प्रजास् त्वं पालयिष्यसि, ॥ आत्माऽनुजस्य जिहेषि सौमित्रेस् त्वं कथं न वा. १३२

कथामित्यादि — स्वयमात्मना धर्मे दुष्टुः दुःस्यः सन्। 'अपदुःसुषु स्थः' इत्योणादिकः कुप्रत्ययः। कथं प्रजाः पालियेष्यति नेवेति भावः। '३००९। उप-सर्गे च संज्ञायाम् ।३।२।९९।' इति जर्नेर्डः। कथं वा सौमित्रेर्आतुरात्मानुजस्य कमीयसः। आत्मानमनुज्ञात इति '२०१०। अणौ कर्मणि-।३।२।१००।' इति इः। न जिहेषि न लज्जसे ॥

४२४-मन्ये किं-जर्महं झन्तं त्वामं-क्षत्रिय-जे रणे ॥

लक्ष्मणा ऽधिज ! दुर्वृत्त ! प्रयुक्तमंनुजेन नः . १३३

मन्य इत्यादि — किंजं त्वामहं कुतो अपि जातं न राजजातं मन्ये। '३००८। पञ्चम्यामजातौ। ३।२।९८।' इति उः। झन्तं मारयन्तम्। अक्षित्रियजे रणे क्षित्रि-यादजाते। हे छक्ष्मणाधिज छक्ष्मणायज! दुईत नोअसाकमनुजेन आत्रा प्रयुक्तं प्रेरितम्। तत्र 'पञ्चम्यामजातौ' इत्युक्तं जाताविष दश्यते अक्षित्रियज इति । 'उपसर्गे च संज्ञायाम्' इत्युक्तं असंज्ञायामिष दश्यते। छक्ष्मणाधिज इति 'अनौ कर्मणि' इत्युक्तं अकर्मण्यपि दश्यते। अनुज इति सर्वत्रान्येष्विष दश्यत इति उः ॥ इत्युपपदाधिकारः॥

४२५-प्रत्यूचे वालिनं रामो-'नी ऽकृतं कृतवानंहम् ॥

यज्वभिः सुत्वभिः पूर्वेर् जैरब्हिश् च कपीश्वर ! १३४

प्रत्युच्च इत्यादि—रामो ऽपि वालिनं प्रत्यूचे प्रत्युक्तवान् । किमिलाह । हे कपीश्वर ! पूर्वेजरिद्धवृद्धैः। '३०९२। जीर्थतेरतृन्।३।२।१०४।'यज्विमः याज्ञिकैः सुत्विमः सोमयाजिभिः । '३०९१। सु-यजोङ्गेनिप् ।३।१।१०३।'। नाकृतं कृत- , वानहं अपि तु कृतमेव कृतवानहम् । '८९९। निष्ठा ।२।२।३६।' इति भूते कक्तवत् ॥

४२६-ते हि जाठैर् गठे पाशैस् तिरश्चामुपसेदुपाम् ॥

ऊषुषां पर-दारेश् च सार्धं निधनमेषिषुः. ॥ १३५ ॥ त इत्यादि—यसाने पूर्ववृद्धाः जाळेर्गेले पात्रैश्च तिरश्चां मृगपक्षिसरीस्पा-

१— '२ ब्राह्मं प्राप्तेन संस्कारं क्षित्रियेण यथाविवि । सर्वस्याऽस्य यथान्यायं कर्तव्यं परि-रक्षणम् ।' मनु० अ० ७ इति रमृत्या राज्ञां प्रजारक्षणमेव मुख्यो धर्मः स च दुष्टाचरणेन न संप्रेतिति धोतयन्नाह— 'क्षयं दुष्टुः स्वयं धर्में—' इत्यादि । २ ततो रामः परदार-सेवनादिदुष्कर्मकरणात् दण्ड्य एव त्वं तथाभूतस्य च दण्डाकरणं '२० यदि न प्रणयादाजा दण्डं दण्ड्येष्वतन्द्रितः । शूळे मत्स्यानिवा ऽपक्ष्यन् दुर्वेळान् वळवत्तराः ।' म० अ० ७ । इति समृते राज्ञां दोषायैवेति युक्तमेवैतदित्याह— 'ना ऽक्षतं कृतवान्' इत्यादि । २—'६०५ः प्रवयाः स्थविरो वृद्धो जीनो जीणों ज्ञरस्यि'। ना० अ० । **१६० भट्टि-काट्ये** द्वितापेऽधिकार काण्डे स्ट**क्षण-**रूप प्रथमो वर्ग ,

णां तिरोऽख्रतीति '३७३। ऋत्विग्-।३।२।५९।' इत्यादिना किन् । आमि '४१६। अचः ।६।४।१३८।' इत्यञ्जोपः । तेषां निधनं विनाशमैषिषुः इष्टवन्तः । इपेर्कुङि रूपम्। कीदशाम् । उपसेदुषां समीपमुपगतवतां तेषां समीपवर्तिनामुपद्रवका-रित्वात् । '३०९७। भाषायाम्-।३।२।१०८।' इति बसुः । परदारेश्च सार्धमूषुषां उषितवताम् । पूर्ववत्कसुः वसेर्यजादित्वात्संप्रसारणम् ॥

्४२७–अहं तु शुश्रुवान्–श्वात्रा स्त्रियं भुक्तां कनीर्यसा ॥ उपेयिवार्नेनृचानैर् निन्दितस्-त्वं छता-मृग ! ॥१३६॥

अहमित्यादि—हे लतास्त हे शासास्त ! अहं पुनः शुश्रवान् श्रुतवान् । पूर्ववत् कसुः । यहुत श्रात्रा कनीयसा भुक्तां स्त्रियं त्वमुपेयिवान् सन् अन्चानैर्वेदिबिहिनिदितस्ततो मे नैव दोषः । '३०९८। उपेयिवाननाश्रानन्चानश्र ।३।२। १०९।' इति उपेयिवानित्यादिना निपातितौ ॥

४२८-अन्वनैपीत् ततो वाली त्रपा-वार्निव राघवम् ।।।

न्यक्षिपच् चांऽङ्गदं यलात् काकुत्स्थे तनयं प्रियम्. अन्वित्यादि—ततो रामवचनारनन्तरं वाठी राघवमन्वनैधीत् अनुनीत-

जान्यस्पात् विकास राज्यसम्पर्णाः सवयनस्वनिष्ठं अनुनातः वान् । 'देव क्षम्यतां यद्जानता मयोक्तम्' इति । नयतेर्छं छित्यनेन भूतसामान्ये छङ् । त्रपावानिव यथा छजावान् कश्चिद्गुनयति तद्वत् । अङ्गदं च प्रियं तन्यं काङ्करस्थे रामे व्यक्षिपत् न्यस्तवान् । यतादादरात् । क्षिपेरनद्यतने छंङ् । छका-रात्यस्थातिङीति प्रतिवेधान्न कुत्संज्ञा ॥

४२९-वियमाणः स सुयीवं प्रोचे सद्-भावमांगतः-॥

'संभविष्याव एकस्यामंभिजानासि मातरि.॥ १३८॥

श्चियमाण इत्यादि — स वाली श्चियमाणः सन् सङ्घावं शोभनभावमानतः सन् सुग्रीवं ग्रोचे । किमित्याह । अभिजानासि स्मरित । एकस्यां मातिर संभ-विष्यावः । समभवाव इत्यस्मिन्नर्थे '२७७३। अभिज्ञावचने तृद् ।३।२।२१२।' इत्यनदाते तृद् । अभिजानासीत्यभिज्ञावचनस्योगपदत्वात् ॥

४३०-अवसाव नगेन्द्रेषु, यत् पास्यावो मधूनि च, ॥

अभिजानीहि तत् सर्वं, बन्धूनां समयो ह्ययम् .१३९

अवसावेत्यादि — अभिजानीहि सार । यद्यगेन्द्रेषु अवसाव उषितवन्तौ । अत्राभिज्ञावचनस्य यच्छव्दसहितत्वात् '२७७४। न यदि ।३।२।११३।' इस्य-नेन रुटि प्रतिषिद्धे छडेव भवति । अत्र वासमात्रं सार्यते । मध्ने च यत्पा-स्यावः तत्र पीतवन्तौ तत्सर्वमभिजानीहि । अत्र '२७७५। विभाषा साकाङ्क्षे



१—'१४४३। वृद्धप्रशस्ययोर् ज्यायान् कनीयांस् तु युवा ऽल्पयोः ।'

२--- ७१५। अनुचान भनचने साउने अीती इति सर्वेत्र ना० अ०।

।३।२।११४।' इति पक्षे ऌइ । साकाङ्कता च प्रयोक्तर्रंद्यलक्षणयोः संबन्धे । तत्र वासो रुक्षणं पानं च रुक्ष्यमिति । यसाह्य-ध्नामयमेष समयः कारुः ॥ ४३१-दैवं न विदघे नूनं युगपत् सुखर्मावयोः, ॥

शश्वद् वभूव तद् दुःस्थं यतो न' इतिहां ८करोत्.

दैवमित्यादि-नृतसवश्यं दैवसावयोः सुखं युगपदेककालं न विद्धे न हि विहितवत् । परोक्षे लिद् । जित्वात्तङ् । आतो छोपः। यतो यसासत् दैवं शश्वत् तित्यं दुःस्थमनतुकूर्लं नोऽस्माकं वभूव तस्मादितिह एवमकरोत् । इत्येवं कृतवान् । यद्युगपदावयोः सुखविधानं तहुःस्थं शश्वद्वभूव । हाकरोदिति भूता-नचतनपरोसे लिटि प्राप्ते '२०७६। ह-शक्षतोर्लङ् च ।३।२।१९६।' इति छङ् । चकारात् लिट्। तत्र शश्चच्छव्दे उपपदे लिडेबोदाहृतः न लङ्। हशब्दे लङेब न छिडपीति ॥

४३२-ददौ स दयितां भ्रात्रे मालां चाऽःयां हिरण्मयीम्, राज्यं संदिइय भोगांश च ममार व्रण-पीडितः १४१

द्दाचित्यादि—स वाली द्यितां ताराख्यां आहे सुन्नीवाय द्दौ मालां चाऱ्यां श्रेष्ठां हिरण्मयीं सुवर्णधिताम् । राज्यं सामात्यादिद्वव्यत्रकृतिम्। संदिश्य दरवा । भोगांश्च राज्याङ्गानि । समार वणपीडितः । तत्रापि परोक्षे छिद्र॥

४३३-तस्य निर्वर्त्य कर्तव्यं सुत्रीवो राघवाऽऽज्ञया ॥ किष्किन्धाऽद्रि-गुहां गन्तुं मनः प्रणिद्धे द्वतम् १४२

तस्येत्यादि—तस्य मृतस्य कर्तव्यं पिण्डोदकाहिकरणीयं कृत्वा सुप्रीवो राधवाज्ञया 'गच्छ वर्षासमयमतीत्य शारद्यागमिव्यसि' इति आज्ञ्या किष्किन्धा-दिगुहां गन्तुं मनः प्रणिद्धे कृतवान् । अत्रापि परोक्षे छिद् ॥

४३४-नाम-ब्राहं कपिभिरंशनैः स्तूयमानः समन्ता-देन्वग्-भावं रघु-वृषभयोर् वानरेन्द्रो विराजन् ॥ अभ्यर्णे ऽम्भः-पत्तन-समये पर्णलीभूत-सानुं किष्किन्धादिं न्यविशत मधु-श्रीव-गुञ्जद्-द्विरेफम्.

१---मन्दाकान्तावृत्तमिदम् । तञ्चक्षणं तु-'९७ मन्दाकान्ता जलिषडगैर् म्-भौ न-तौ ठाद्रुक वेद ।' इति वृत्तरखाकरे भट्टकेंशरः ।

१६२ अट्टि-काटवे द्वितीयेऽधिकार काण्डे स्टब्सण रूप द्वितीयो वर्ग ,

नामेत्यादि नानरेन्द्रः सुप्रीवः किष्किन्धाद्धं न्यविधत निविधवान् । '२६८३। नेविधः । ११३१३७।' इति तङ् । अश्वैः सुष्ठु किपिभः स्त्यमानः । वर्तमाने छट् । तस्य कर्मणि विहित्तवात् । '२३०३। छक्षणहेत्वोः क्रियायाः –। ३। २। १२६।' इति शानच् । नामग्राहं नाम गृहीत्वा । '२३८०। नाम्या दिशि-ग्रहोः । ११४५८।' इति णमुछ । समन्तात्सर्वतः । विराजन् शोभमानः । अत्र परस्पेप-दसंज्ञकः अनुप्रत्ययः । किं कृत्वा रघुवृपभयोरन्वग्भावं अनुकृष्ठो सूत्वा । अन्व-वपूर्वाद्मवतेः '२३८६। अन्वच्यानुष्ठोम्ये । २। ४।६४। 'इति णमुछ । तदनुकृष्ठव-रित्वाद्विराजन् । कदा न्यविशत् । अभ्यणे निकटे । अम्भःपतनसमये प्रावृपी-त्यवेः । पर्णर्छामृतसानुं पर्णानि सन्ति येषामिति सिष्मादिपाठाछच् । तदनता-दमूततज्ञावे च्वः । पर्णर्छामृताः सावव एकदेशा यस्यादेः । मधुक्षीवा मधुमत्ता गुजन्तो हिरेफा यत्र । क्षीव इति '३०३५। अनुपर्यात् फुछ-क्षीब-कृशोह्याः । ८। २। २५५। इति निपातितः । '४०७। क्षीवृ मदे ।' इस्यसात् क्षप्रत्यस्य छोप इडभावश्च निपात्यते । गुञ्जेर्छद् । कचित् प्रथमासमानाधिक-रणेऽपि शतृप्रत्यः ॥

इति सोपपद्कृतः॥

इति श्री-जयमङ्गस्राऽऽब्यया व्याख्यया समलंकृते श्री-भट्टिकाव्ये-द्वितीयेऽधिकार-काण्डे लक्षण-रूपे प्रथमः परिच्छेदः (वर्गः), तथा लक्ष्य-रूपे कथानके सुश्रीवाऽभिषेको नाम पष्टः सर्गः पर्यवसितः।

सप्तमः सर्गः ॥

इतस्तान्छीलिकं इतमधिकृत्योन्यते । तान्छीलिकमित्युपलक्षणम् । तद्दमैत-स्ताञ्जकारिष्वपि दृष्टयम् । यतः '३११४। आकेस्तन्छील-तद्दमै-तस्साञ्चकारिषु ।१।२।१२४।' इति तत्राधिकियते—

४३५-ततः कर्ता वनाऽऽकम्पं ववौ वैर्धा-प्रेमञ्जनः, ॥ नभः पूरियतारश् च समुन्नेमुः पैयो-धराः. ॥ १ ॥

तत इत्यादि—ततः प्रवेशानन्तरं वर्षाप्रभक्षनः प्रावृङ्गातो ववौ वाति स-'११२श वा गति गन्धनयोः' इति । कर्ता वनाकम्पं साधु कुर्वन् । '६१९५। तृन् गर्भारा १६५।' इति तृन् । '६२७। न छोक-१२।३।६९।' इति षष्ठीप्रतिषेधः । पयोधरा मेघाश्र समुकेमुः समुक्षताः । कीदशाः । नमः पूर्यितारः । तृन् ॥

[ं] १---'१४१। स्त्रियां प्राहृट् स्त्रियां भृक्षि साधीः'। २---'७०। नभरवद्-वातपवन-पवमान .'। १ **११**७१। स्त्री-स्त्रनान्दी स्यो-स्रदी'। ना० म० 1

४२६-तर्पणं प्रजनिष्णूनां शैस्यानार्म-मलं पयः ॥

रोचिष्णर्वः स-विस्फूर्जा मुमुचुर् भिन्न-वद् घनाः ॥२॥

तर्पणिसित्यादि—वना असलं पयो सुमुद्धः। भिन्नवत् भिन्ना इवं। कीदशं पयः। तर्पणं शस्यानां तर्पणं तर्पयतीति '२८४१। कृत्यल्युदो बहुलम् ।३।२। १९३।' इति कर्तरि ल्युद् । प्रजनिष्णूनां साधु प्रादुर्भवताम् । रोचिष्णवः साधु दीष्यसामाः। सविस्पूर्जाः सवञ्जनिस्तानाः। '३११६। अलंकुम्—।३।२।१३६। इत्यादिना इष्णुच् ॥

४३७—निराँकरिष्णवो भानुं दिवं वर्तिष्णवो ऽभितः ॥ अलंकेरिष्णवो भान्तस् तर्डित्वन्तश् चरिष्णवः ॥३॥

निरेत्यादि—मानुं निराकरिष्णवो निराकरणशीला बनाः पयो मुमुचुरिति षोज्यम् । दिवमभितो वर्तिष्णव आकाशमभितो वर्तनस्वभावाः । पूर्वपश्चिमयो-वर्तनहेतुःवात् । पर्यभिभ्यां सर्वोभयार्थे तसिः । 'अभितःपरितः—' इति द्वितीया । तिहेत्वन्तः सविद्युतः । अत एव भान्तो दीष्यमानाः । एवं च कृत्वा अलंकरिष्णवोऽलङ्करणशीला इव । दिशश्चरिष्णवः इतस्ततो गमनशीलाः । पूर्ववदिष्णुच् ॥

४३८-तान् विलोक्यां ऽसिहिष्णुः सन् विललापोनमदिष्णुं-वत् ॥ वसन् माल्यवति ग्लास्त्रू रामो जिष्णुरं-भृष्णु-वत् ॥ ४॥

तानित्यादि—तान् घनान्विकोक्य असहिष्णुरसहनकीको रामः मास्यवति पर्वते वसन्विल्लाप। उन्मदिष्णुवत् उम्मदनकीकः उन्मत्तसहत् । प्रवेवदिष्णुच्। ग्लासुः ग्लानशीलः जिष्णुर्जयशीलः। अष्टष्णुवद्प्रगहमः इव । शोकाभिभूत-त्वात् । '३११९) ग्ला-जि-स्थक्ष गसुः।३।२।१३९।'। एष्णुरिति '३१२०। श्रसि-गुधि–३।२।१४०।' इसादिना वतुः।

१—'१६१। वृक्षाऽऽदीनां फलं शस्यम्' २—'६६५। विभ्राह् भ्राजिन्तु-रो-चिक्क्यू' इति ना० व० । १—'१०७५। निराक्तिक्युः क्षिष्ठः स्पात्'। ४।५—'१०७४। उत्पतिन्युः क्षिष्ठः स्पात्'। ४।५—'१०७४। उत्पतिन्युः तृत्पतिता ,ऽतंकिरिक्युःस् तृ मण्डितः। भृष्णुर् भविष्युर् भविता वर्तिक्युर् वर्तनः समौ।' ६—'९०। अश्रं मेघो वारिवादः स्तनिवृक्ष् वलाहकः। धाराधरो जल-धरस् तिहत्वान् वारिदोऽन्तुभत्।' ७—'१११९। च-रिक्युज्ञस्म-चरम्'। ८—'१०७६। सिहिक्युः सहनः क्षन्ता'। ९—'१०६८। सोन्मादस् तृन्मदिक्युः स्वात्'। १०—'६२१। न्लानं-स्तास्नृ, आमयावी विक्रतो व्याधितो ऽषष्टः' ११—'८४२। जेता जिक्युक्य च जिल्लरः।' इति सर्वत्र ना० अ०१

१६४ मष्टि-काव्ये-दितीवेऽधिकार-काण्डे छक्षण-रूपे दितीयो वर्गः,

किं तद्विरूपनमित्यह-

४३९-'भ्नमी कदम्ब-संभिन्नः पवनः श्रामिनामंपि ॥

क्कमि-त्वं कुरुतेऽत्यर्थं मेघ-शीकर-शीतलः.॥ ५॥

भूमीत्यादि भूमी भ्रमणशीलः । कद्म्बसंभिन्नः कद्म्बगन्वसंश्विष्टः शमिनामपि शमनशीलानामपि क्वमित्वं कुरुते अत्यर्थं ग्लानिं कुरुते । '३१२१। शमित्यष्टाम्यो चितुण् ।३।२।१४९।'। '२७६३। नोदात्तोपदेश-।७।३।३४।' इत्या-दिना उपधानृद्धिप्रतिषेधः ॥

४४०-संज्वारिणेव मनसा ध्वान्तमायासिना मया॥

द्रोहि खंद्योत-संपर्कि नयनाऽमोषि दुःसहम् . ॥ ६ ॥

संज्वारिणेत्यादि — मयेतत् ध्वान्तं तमो दुःसहं दुःखेन सद्यत इति।
मनसा करणभूतेन। कीदशेन। संज्वारिणेव रोगशीलेनेव। आयासिना आयासशीलेन मयेति। दोहि अपकारशीलम्। ध्वान्तं खद्योतसंपिकं ज्योतिरिङ्गणसंसर्गशीलम्। नयनामोषि चक्षमोषणशीलम्। '३१२२। संपृचानुरुष —।३।२।१४२।'
इत्यादिना सर्वे घिनुणन्ताः॥

४४१-कुर्वन्ति परिसारिण्यो विद्युतः परिदेविनम् ॥

अभ्याघातिभिरामिश्राश् चातकैः परिराटिभिः, ॥७॥

कुर्वन्तीत्यादि —एता विद्युतः परिदेविनं परिदेवनशीलं कुर्वन्ति । मामि-त्यर्थात् । कीदृश्यः । परिसारिण्यः परिसरणशीलाः । चातकैः पक्षिविशेषैः परिरा-टिभिः परिरटनशीलैः । एवंचाभ्याधातिभिः अभिहननशिलैः । दुःखोत्पादनात् । आमिश्रा युक्ता विद्युतः । पूर्वविद्युत्तंण् ॥

४४२-संसर्गी परिदाहींव शीतो ऽप्याभाति शीकरः,॥

सोढुमांक्रीडिनो ऽशक्याः शिखिनैः परिवादिनः. ॥८॥

संसर्गीत्यादि — संसर्गी संसर्जनशीलः । शीतोऽपि शीकरो बिन्दुः । परि-दाहीव परिदहनशील इवांभाति । शिखिनश्च मयूराः सोद्धमशक्याः । आकी-हिनो नर्तनशीलाः । परिवादिनः परिवदनशीला इव । इवशब्दश्चात्र लुक्षो द्रष्टव्यः । पूर्ववद् धिनुण् ॥

४४३-एता दैवानुरोधिन्यो द्वेषिण्य इव रागिणम्॥

पीडयन्ति जनं धाराः पतन्त्यो ऽनुपकारिणम् ॥ ।॥ ।।।

[्]र-१-(९५। धारासंपात आसारः शिकरोऽम्बुकणाः रमृताः'। २-(५४८। समो प्रतङ्ग-शलभौ, खद्योतो ज्योतिरिङ्गणः।' १-(५३६ । अथ सारङ्गः स्तोककश् चातकः समाः।'४-(५५९। मथ्रो वर्ष्टिणो वर्षी नील-कण्ठो मुजङ्ग-मुक्। शिखावल शिक्षी केकी स्ति सर्वत्र ना० भ०॥

एता इत्यादि—एता धाराः पतन्त्यो द्वेषिण्य इव द्वेषणशीला इव जनं रागिणं रागशीलम् । अनषकारिणमनपराधशीलं पीडयन्ति । देवानुरोधिन्यः भाग्यानुरोधात् प्रवर्तनशीलाः । पूर्ववत् धिनुण् । धिनुणि च 'रञ्जेरुपसंख्यानम्' इत्यनुनासिकलोपः । कृताननुनासिकनिर्देशाद्वा लोपनिपातनम् ॥

४४४–कुर्याद् योगिनर्मप्येष स्फूर्जा-वान् परिमोहिनम् ॥ त्यागिनं सुख-दुःखस्य परिक्षेप्यम्भसार्मृतुः. ॥ १०॥

कुर्यादित्यादि —एप ऋतुरम्भसां जलानां परिक्षेपी परित्यजनशीलः । कर्म-णि षष्टी । योगिनमपि योगशीलमपि । सुखदुःखस्य त्यागिनं त्यागशीलम् । क-मेणि षष्टी । परिमोहिनं परिमोहनशीलम् । कुर्योत् । कीदशः।स्फूर्जावान् वज्र-निर्धोषयुक्तः । पूर्ववद् विनुण् ॥

४४५-विकत्थी याचते प्रत्तर्म-विश्रम्भी मुहुर् जलम् ॥ पर्जन्यं चातकः पक्षी निकृन्तित्रीव मानसम् . ॥११॥

विकत्थीत्यादि चातको मानसं तिक्वन्तन्निव खण्डयन्निव। प्रत्तं प्रदत्तम् । '३०७८। अच उपसर्गात् तः ।७।४।४७।' जलं याचत इति प्रधानं कर्म । पर्ज-न्यमिसकथितम् । विकत्थी विकत्थनशील इव पर्जन्यो ऽपि मस्रं जलं ददाति । इवशब्दो लुसोऽत्र द्रष्टयः । अविश्वस्भी अविश्वासशीलः । मानसखण्डनात् '३१२३। वो कप-लस-।३।२।१४३।' इति घिनुण् ॥

४४६-प्रलापिनो भविष्यन्ति कदा न्वेते ऽपलापिणः.'॥ प्रमाथिनो वियुक्तानां हिंसकाः पाप-दर्दुराः.॥१२॥

प्रलापिन इत्यादि—एते पापदर्दुराः पापाश्च ते दर्दुराश्चेत्याकोशाभिधानम् । कदा नु अपलापिणो भविष्यन्ति । अपलपणशीलाः व्यपगतकामा इत्यर्थः । '९५३। लप कान्तौ ।' '३१२४। अपे च लपः ।३।२।१४४।' इति विनुण् । प्रला-पिनः प्रलपनशीलाः । प्रमाथिनः प्रमथनशीलाः । चेतसामित्यर्थात् ।'२१२५। प्रे लप-२।२।१४५।' इत्यादिना विनुण्। अत एव वियुक्तानां मादशां हिंसकाः हिंसन-शीलाः । इत्येवं विल्लाप । '२१२६। निन्द-हिंस-।३।२।१४६।' इत्यादिना वुल्॥

४४७–निन्दको रजनिंमन्यं दिवसं क्वेशको निशाम् ॥ प्रावृष्येनैपीत् काकुत्स्थः कथंचित् परिदेवकः ॥१३॥

निन्द्क इत्यादि —काकुत्स्थो दिवसं रजनिमन्यं रजनीमात्मानं मन्यमानं घनान्धकारित्वात् । '२९९३। आत्ममाने खद्य च । ३।२।८३।' । '२९४३। खित्यनच्ययस्य ।६।३।३६।' इति इस्वत्वम् । निज्ञां च प्रावृषि कथमप्यनेषीत् नीतवान् । निन्दकः निन्दनशीलः । नक्तदिनस्येत्यर्थात् । क्षेत्राकः क्षेत्रानशीलः । परिदेवकः परिदेवनशीलः । आत्मन इत्यर्थात् ॥ १६६ भट्टि-काव्ये-दितीयेऽधिकार-काण्डे लक्षण-रूपे दितीयो वर्गः,

४४८-अधौपशरदे ऽपश्यत् ऋौञ्चानां चेष्टनैः कुलैः ॥

उत्कण्ठा-वर्धनैः शुभ्रं रैवणैरेम्बरं ततम् ॥ १४॥

अधेत्यादि —अथानन्तरमुपशरदे शरत्समीपे इति । '६७७। अव्ययीभावे शरत्मभृतिभ्यः ।५।४।१०७।' इति समासान्तष्टम् । '६५८। तृतीया-सप्तम्योवंहु- छम् ।२।४।८४।' इत्यमभावः ।कोञ्चानां कुलैस्ततं व्यासमम्बरं ग्रुश्रं शुक्तमपश्यत दृष्टवान् । चेष्टतैः व्यापारशिलैः । रवणैः शब्दनशीलैः । अनयोश्रलनशब्दार्थ- स्वात् '३१२८। चलनशब्द—३।२।१४८।' इत्यादिना युच् । उत्कण्ठावर्थनैः उत्क-

ण्डावर्धनक्षीलैः । '३१२९। अनुदात्तेतश्च-।३।२।१४९।' इति युच् । कीञ्च इति किन्यत्ययान्तत्वात् बज्ञादित्वादण् ॥

४४९-विलोक्य द्योतनं चन्द्रं लक्ष्मणं शोचनो ऽवदत्-॥

'पस्य दन्द्रमणान् हंसानंरविन्द-समुत्सुकान् . ॥१५॥ विलोक्येत्यादि—चन्द्रं विलोक्य बोतनं सालु बोतमानम् ॥ '३१२९॥

अनुदात्तेतश्र—।३।२।१४९।' इति युच्। शोचनः शोचनशीलः । '३१३०। जुच-क्रम्य—।३।२।१५०।' इत्यादिना युच्। रामो लक्ष्मणमवदत्। पर्य इंसान् दन्द्र-मणान् शनैर्द्रमणशीलान् । दमेनिलं कौटिल्य एव मवति नतु कियासम-मिहार इत्युक्तम् । तदन्तासुच्। अतो लोपः । यस्य हलः । अरविन्द्समुत्सु-कान् '६४१। प्रसित—।२।३।४४।' इति सप्तमीं विधाय 'सम्मी' इति योगवि-

भागात् सः ॥

४५०-कपिश् चङ्कमणो ऽद्यापि ना ऽसौ भवति गैर्धनः, ॥ कुर्वन्ति कोपनं तारा मण्डना गगनस्य माम् ॥१६॥

किपिरित्यादि — नासौ किपः सुत्रीवो ऽद्यापि चक्कमणः शनैर्गमनशीलो न भवति । यतो गर्धनो ऽभिलापशीलः स्त्रीब्वित्यर्थात् । पूर्ववद्युच् । ताराश्च मां कोपनं कोपनशीलं तद्विषय एव कुर्वन्ति । कीदृश्यः । गगनस्य मण्डना भूपणाः । '३१३१। । कुष्य—मण्डार्थभ्यश्च ।३।२।१५१।' इति युच् ॥

४५१-ना ऽत्रैत्यांप्यायितारं किं कमलानि रविं कपिः॥

दीपितारं दिनाऽऽरम्भे निरस्त-ध्वान्त-संचयम् ॥१७॥

नावैतीत्यादि — किमसौ कपिः रविं नावैति नावगच्छति । कमलान्याप्या-यितारं साधु वर्धयन्तम् । '३१२९। अनुदात्तेतश्च—।३।२।१२९।' इति प्राप्ते ।३१३२। न यः।३।२।१५२' हति प्रतिषिद्धे तृत्रेव भवति । ततश्च '६२७। न लोक—।२।२।६९। इति षष्ठीप्रतिषेधः । दिनारस्थे दीपितारं साधु दीप्यमानम् । पूर्ववधुनि प्राप्ते

१—'१०६३। रक्षणः शब्दनो, नान्दीवादी नान्दीकरः समी।' २—'१०६७। युष्तु द्व गर्धनः क्षमो जीनळाषुकस् एष्णक् समी लोक्षप-लोक्षमौ 'नाव मन

तथा लक्ष्य-रूपे कथानके सीता प्रत्येषणे नाम सप्तमः सर्गः-- १६०

'३१३३। सूद-दीप-दीक्ष-।३।२।१५३।' इति प्रतिषेधः । निरसक्वास्तसंचयं अप-नीतान्धकारसंहतिकं किमसौ शरस्समयं नावैतीत्वर्थः ॥

४५२—अतीते वर्षके काले, प्रमत्तः स्थायुको गृहे ॥ गामुको धुवर्मध्वानं सुष्रीवो वालिना गतम् ॥१८॥

अतितित्यादि—वर्षके वर्षणशीले काले अतीतेऽपि गृहे स्थायुकः स्थिति-शीलः शरदि नागतःवात् प्रमत्तः सन् सुधीवो वालिना गतं अध्वानं प्राप्तमार्गं धुवसवदयं गासुकः लाघु गन्ता । '३१६४। लप-पत-।३।२।१५४।' दृत्युकच् । '६२७। न लोक-।२।३।६९।' इति पष्टीप्रतिषेधः ॥

> ४५३-जंस्पाकीभिः सर्हा ऽऽसीनः स्त्रीभिः प्रजविना त्वया॥ गत्वा लक्ष्मण! वक्तव्यो जयिना निष्ठुरं वचः॥ १९॥

ज्ञहपाकीभिरित्यादि—हे लक्ष्मण ! त्वया प्रजविना प्रकृष्टगमनशीलेन । '११३६। प्रजोरिनिः।३।२।१५६।' जयिना अभिभवनशीलेन।'११३७। जिद्द-क्षि—।३।२।१५७।' इत्यादिना इतिः । सुप्रीवो निष्ठुरं वचोभिधावच्यः । जल्पाकीभिः जल्पनशीलाभिः सीभिः सहासीनः । '११३५। जल्प-भिक्ष-।३।२।५५।' इति पाकन् । पित्वात् कीष् । तत्मध्ये हि परुषमिधीयमानः । परिभवं मन्यत इति भावः॥

४५४-शैले विश्रयिणं क्षिप्रमंनादरिणमंभ्यमी ॥ न्यायं परिभवी ब्रुहि पापमं-व्यथिनं कपिम् ॥२०॥

शैल इत्यादि — किंप क्षियं गत्वा बृहि इत्यक्थितं कसे । न्याय्यं वच इति प्रधानं कसे । अस्य चातिस्पष्टार्थस्वादिदं तदिति संदिष्टम् । अनाद्रिणमनादरशीलं किंप कालातिकमणात् । आक्रपूर्वो दक् । अत एव पापं दुराचारम् । अत्यथिनं निर्भयशीलम् । नव्यूर्वो व्यथिः । शैले विश्रयिणं तत्र स्थितिशीलम् ।
वियुद्धेः श्रयतिः । त्वं चाम्यमी अनिमुखगमनशीलः । अनिपुर्वोऽमगत्यादिषु ।
परिभवी साधु परिभवं जनयन् । परिपूर्वो भवतिः । अत्र सर्वत्र '३१३७। जिदक्षि—।३।२।१५७।' इत्यादिना इनिः ॥

१—- १८१ । स्याज् जल्पाकस् तु वाचालो वाचाटो बहुगर्ह्यवाक् । रस्य तुसास-नात् त्रिषु लिङ्गेष्वयं शब्दः ।

१६८ भट्टि काञ्चे द्वितीयेऽविकार-कण्डे लक्षण-रूप द्वितायो वग,

४५५-स्पृहयाछं कपिं स्त्रीम्यो निद्रां छर्म-दयाछ-वत् ॥

श्रेद्धालुं भ्रामरं घारुं सद्धमंद्रौ वद द्वतम् .'॥ २१॥

स्पृह्यालुमित्यादि—क्षिभ्यः स्पृह्यालुं कपि साधु स्पृह्यन्तम् । स्पृह्धिः स्वाधिकण्यन्तो ऽदन्तश्च । '२३११। अयामन्त-। ११७५५।' इत्ययादेशः । '५७६। स्पृह्देरिष्मितः । ११४१६। १ इति सम्प्रदानसंशा । द्वृतं वद् बृहि । अद्यालुवत् अद्यनशील इव । निद्रालुं निद्राशीलं अस्मत्कार्येष्वनवधानत्वात् शयनीय एव अद्यनशील इव । निद्रालुं निद्राशीलं अस्मत्कार्येष्वनवधानत्वात् शयनीय एव सर्वदा स्थितत्वात् स्वीभः सह । अद्रालुं साध्वमिलपन्तम् । किम् । भ्रामरं अमेरेः कृतम् । '१४९९। श्रुद्दाश्रमर-। ११३१। १९।' इत्यादिना अथ् । मिवल्यः र्थात् । '१४९९। श्रुद्दाश्रमर-। ११३। १९।' इत्यादिना अथ् । मिवल्यः र्थात् । '६२७। न लोक-। २। ३। ६९।' इति पष्ठीप्रतिषेधः । '३१३८। स्पृहि-गृहि -। ३। २। १५८०। इत्यादिना आलुच् । श्रुद्धालुन्वादेव धारं साधु पिबन्तं भ्रामर-मेव । सद्धं साधु सीदन्तम् । क्ष अद्भौ । '३१३९। दा-धेद-सि-शद-सदो रुः । ३। २। १५९०।।

४५६-समरो भङ्कर-प्रज्ञो गृहीत्वा भासुरं धनुः॥

विदुरो जित्वरः प्राप लक्ष्मणो गत्वरान् कपीन् ॥२२॥

स्मर इत्यादि — लक्ष्मणः कपीन् प्राप । कीइशः । साधु गन्ता । '३१४०। स्यस्यदः वमरच् । शाश्वरा । भक्षुरा ये स्वयमेव भज्यन्ते । '३१४१ भक्ष-भास —।३।२।१६९।' इति बुरच् । तान् प्रजानातीति भक्षरप्रज्ञः '२५२० । प्रे दाज्ञः ।३।२।६१।' इति कः । विदुरः साधु वेदी । '३५४२ । विदि-भिदि-स्छिदेः कुरच् ।३।२।१६२।'। जित्वरः साधु जयशीलः । '३१४३। इण्-नश्-जि—।३।२।१६३।' इत्यादिना करप् । गृहीत्वा धनुभीसुरं भासनशीलम् । गत्वरान् गमनशीलान् कपीन् अस्थिरप्रकृतीनित्यर्थः । 'शत्वरश्च' इति निपातितम् । गमेः करप्यनुना-सिकलोपः ॥

४५७-तं जागरूकः कार्येषु दन्दशूकै-रिपुं कपि:॥

अ-केम्प्रं मारुतिर् दीप्रं नयः प्रावेशयद् गुहाम् ॥२३॥ तमित्यादि—तं लक्ष्मणं किप्मारुतिः गुहां प्रावेशयत् । विशेहेंतुमण्ण्य-नतात् लिक रूपम् । कार्येषु कृत्येषु जागरूकः सावधानः । '३१४५। जागरूकः ।३।२।१६५।' इति जागतेंरूकः । दन्दश्करिषुं हिंखारिम् । '३१४६। यज-जप —।३।२।१६६।' इत्यादिना दंशेर्यंङन्तादूकः । '२६३५। छप सद्—।३।१।२४।'



१—'१०७८। स्वमक् श्रायालुर् निद्राल्डर् निद्राण-शियतौ समौ' । २— '१०७२। श्रद्धालुः श्रद्धया लुक्ते'। १—'१०७७। जागस्को जागरिता। ४— 'दन्दश्कस् तु पुंलिक्को राक्षसे च सरीसमे ।' इति कोशान्तरम् । ५—'११२०। स्वनं कम्पनं कम्प्रं, घठं लोकं चटाचरुम् इति सर्गत्र ना० स०

तथा लक्ष्य-रूपे कथानके सीताऽन्वेषणं नाम सप्तमः सर्गः- १६९

इत्यादिना यङ् । दीप्रं साधु दीष्यमानम् । अकम्प्रं अकम्पनशीलं अभीरुमित्यर्थः। नम्रः साधु प्रद्वीभूतः । सर्वत्र '३१४७। नमि-कम्पि–।३।२।१६७।' इत्यादिनारः॥

४५८-कैमाभिरांवृतः स्त्रीभिरांशंसुः क्षेममात्मनः॥

इच्छुः प्रसादं प्रणमन् सुश्रीवः प्रावदन् नृपम्.॥२४॥

कम्नाभिरित्यादि —सुश्रीवः प्रावदन् नृषं लक्ष्मणम् । स्नीभिरावृतः परि-वृतः सन् प्रणमन् । ताभिः सहेल्यथेः । कन्नाभिः कमनशीलाभिः । पूर्ववदः । आत्मनः क्षेमं कल्याणमाशंसुः प्राथयमानः । '३१४८। सनाशंसिमक्ष उः ।३।२। १६८।' '६२७। न लोक-।२।३।६९।' इति षष्ठीप्रतिषेषः । इच्छुः प्रसादं प्रसाद्-विषणशीलः । 'अपि मे स्वामी प्रसन्नः स्वात्' इति । '३१४९। विन्तुरिच्छुः । ३।२।१६९।' इति निपातनम् ॥

४५९—'अहं स्विप्तक् प्रसादेन तव वैन्दारुभिः सह॥ अ-भीरुरैवसं स्त्रीभिर् भासुराभिरिहेश्वरः.॥ २५ ॥

अहमित्यादि — अहं तव प्रसादेन इह गुहायामवसं उषितवान् स्वमक् निद्रालुः चिन्ताभावात् । '३१५२। स्वपि-तृषोर्नेजिङ् ।३।२।१७२।' वन्दारुमि-मेन्द्रनशीलाभिः सह । '३१५३। शॄ-वन्द्योराकः।३।२।१७३।' अभीकः अभयशी-लः । '३१५४। भियः कु-कुकनो ।३।२।१७४।'। मासुराभिः भासनशीलाभिः। ईश्वरः ईशनशीलः। '३१५५। स्थेश-भास-।३।२।१७५।' इति वरच्॥

> ४६०-विद्युन्-नाशं रवेर् भासं विश्वाजं शश-लाञ्छनम् ॥ राम-प्रतेषु भोगेषु नौहर्मज्ञासिषं रतः.॥ २६॥

विद्युद्त्यादि—रामप्रचेषु रामद्चेषु भोगेषु रतः सकः। नाहमज्ञासिषं नाहं ज्ञातवान्। लुकि '२३७७। यम-रम-।७।२।७३।' इत्यादिना सिग्दो। विद्युवाशं शोतनशीला विद्युतः तासां नाशम्। रवेभीः भासनशीला दीप्तः। ताम् विश्राजं साषु दीप्यमानं शशलान्छनं चन्द्रम्। प्रावृत्वतिकानता शर-द्रायातेति नाज्ञासिषमित्यर्थः। सर्वत्र '३१५७। आज-भास-।३।२।१७७।' इति किए॥

१—'१०६९। कम्मः कामियता ऽभीकः कमनः कामनो ऽभिकः।'।२—'१०-७२-आरंसुर्शिसतिरे'। ३—(४५५) श्लोकस्थं टिप्पणं प्रेक्षणीयम् । ४—-'१०-७३। वन्दारुशिनादके' इति स० ना० अ०॥

१७० भट्टि-काच्ये--द्वितीयेऽधिकार-काण्डे लक्षण-कपे द्वितीयो वर्गः,

४६१-एप शोक-च्छिदो वीरान् प्रभो ! सम्प्रति वानरान्॥ धरा-शैल-समुद्राणामन्त-गान् प्रहिणोम्यंहम् ॥२०॥'

इति ताच्छीलिकाः समाप्ताः।

एष इत्यादि—है प्रभो ! एपो ऽहं सम्प्रति वानरान् प्रहिणोमि प्रस्थाप-यामि । कीदशान् शोकच्छिदः शोकापनोदनशीलान् । अन्येभ्यो ऽपि दृश्यत इति किए । वीरान् शूरान् । घराशैलसमुदाणां अन्तं गच्छन्ति ये तानन्तगान् । '२९६५। अन्तास्यन्त—।३।२।४८।' इति डः । घरा पृथ्वी । घरासमुद्रशैलाना-मिति पाठान्तरम् । अत्र 'बहुष्यनियमः' इति पूर्वनिपातः । यथा वीणाशङ्कदुन्दु-भयः ॥ इति ताच्छीलिककृतः ॥

अथ निरधिकारकृत्—

इतो विशेपाधिकाराभावात् निविंशेपकृतो दशैयन्नाह-

४६२-राघवस्य ततः कार्यं कारुर् वानर-पुङ्गवः॥

सर्व-वानर-सेनानामांश्वागमनमांदिशत्. ॥ २८ ॥

राध्यस्येत्यादि—ततो अभिधानानन्तरं वानरपुक्षवः सुग्रीवः सर्ववाक्र-रसेनानासाशु शीन्नमागमनमादिशत् आदिष्टवान् । पुमांश्वासौ गौश्रेति । '७२९। गोरतद्वितळ्कि ।५।४।९२।' इति समासान्तष्टच् । ब्युत्पत्तिमान्नमेतत् । पुक्षवशब्दस्तु प्रधानमाचष्टे । कादः करोतीति '३१६९। उणादयो बहुळम् ।३।३-।१।' इत्योणादिकः । 'क्र-वा-पा-जि—' इत्यादिना उण् । एवमाग्रु । कत्य कर्ते-त्याह । राधवत्य कार्यम् ॥

४६३-'वयमंद्यैव गच्छामो रामं द्रष्टुं त्वराऽन्विताः॥

कारका मित्र-कार्याणि सीता-लाभाय', सो ऽत्रवीत् ॥

चयमित्यादि — आगमनमादिश्य सुन्नीवो अन्नवीत् उक्तवान् । वयमवैव गच्छाम इति । रामं द्रष्टुं रामं द्रक्ष्याम इति । त्वरान्विताः त्वरिता इत्यभैः । कीदशा वयम् । सीताछाभाय सीतां प्राप्त्याम इति । कारका मित्रकार्याणि राव-णवधादेः कार्यस्य कर्तारो भविष्याम इति । गच्छाम इति क्रिया । तस्यां कि-यायां कियार्थायामुपपदे तुमुन् ण्वुछो भविष्यति काछे स्थाताम् । मित्रकार्या-णीति । '६२८। अकेनोभैविष्यदाधमण्ययोः ।२।३।७०।' इति षष्ठीप्रतिषेधे द्वि-तीयैव स्थात्। सीताछाभायेति '३१८०। भाववचनान् ।३।३।११।' इति कियार्थां क्रियार्थायामुपपदे भविष्यति घव् । '५८२। तुमर्थाच भाववचनान् ।२।३।१५।' इति चतुर्थां ॥

४६४-ततः कपीनां संघाता हर्षाद् राघव-भूतये ॥
पूरवन्तः समाजग्मुर भय-दाया दिस्रो दशः ॥ ३०॥



तत इत्यादि—तत आदेशादनन्तरं कपीनां संघाताः समाजग्मः। हर्षात् इपेण । आदेशादानमेव हर्षहेतुः । राघवभूतये कापि नाम राघवस्य संपश्सा-दिति समाजग्मुरित्यस्यां कियायां कियार्थायामुपपदे '३१८०। भाववचनाख ।३।११९१।' इति मविष्यति किन् । चतुर्थां च पूर्ववत् । पूर्यतो च्याप्तवन्तः । दश दिशः । भयदायाः भयं दास्याम इत्यस्यां कियायामुपपदे '३९८९। अण् कर्मणि च ।३।३।१२।' इत्यण् । आतो युक् ॥

४६५-सुग्रीवाऽन्तिकमसिदुः सादयिष्याम इत्वरिम् ॥ करिष्यन्त इवाऽकस्माद् भुवनं निर्-दद्याननम्, ३१

सुग्रीवेत्यादि - आरं शतुं साद्यिष्यामां व्यापाद्यिष्याम इति सुग्रीवा-नितकमासेतुः आगताः । '२१९३। सद रोषे च ।३।३।१३।' इति चकारात् कि-यार्थायासुपपदे भविष्यति सद् । आसेतुरिति किया कियार्था । अकसादतिकंतं सुवनत्रयं निर्देशाननं रावणरहितं करिष्यन्त इव सथाविषमहासंरम्भद्रश्ना-दुष्पेश्यते । '२१९३। सद रोषे च ।३।३।१३।' इति सद । अत्र कियायाः कि-वार्थीया अन्यः सुद्धो भविष्याकालः रोषः ॥

४६६-कर्ता ऽस्मि कार्यमीयातैरेभिरित्यंवगस्य सः॥ काकुतस्थ-पादप-च्छायां शीत-स्पर्शामुंपागमत्॥३२॥

कतीस्मीत्यादि — एभिरायातेवीनरैः कार्यं सीतान्वेषणादि कर्तास्म करि-ध्यामीति अवगम्य । अनवतने भविष्यति छुद् । सुग्रीवः काकुत्स्थपादपच्छाया-सुपागमत् । पद्यन्त इति पादाः । '३१८२। पद-६ज-१३१३१११' इति । कर्तरि षस् । तत्र भविष्यतीति निवृत्तस् । पादैः पिवतीति पादपो बृक्षः । '२९१५। आतो ऽनुपस्में कः १३१२१३।' । काकुत्स्थः पादप इत समाश्रयणीयस्वात् । तस्य छायां शीतस्पर्शाम् अनुद्वेजनकरीम् । स्पृश्यत इति स्पर्शस्तनमात्र उच्यते । '३१८८। अक्तरीरि स-१३१३१९।' इति घन् । नतु '३१८२। पद-६ज-१३११। १६।' इत्यादिना । तत्र हि 'स्पृश उपताप इति वक्तव्यम्' इत्युक्तं स्पृशतीति स्पर्शे उपतापः ॥

४६७-कार्यं सार-निभं दृष्ट्वा वानराणां समागमम् ॥ अवैन् नाहां दशाऽऽस्यस्य निर्वृत्तमिव राघवः.॥३३॥ इति निरिषकारकृत्।

कार्यमिखादि—राधवो वानराणां समागमं दृष्ट्वा कार्यं सारतिभं सीताला-भतुस्यम् । सरति कालान्तरे तिष्टतीति कर्तरि कारके '३१८३। सृष्यिरे १३।३। १७।' इति घन् । दशास्त्रस्य रावणस्य नाशं विनाशं निर्वृत्तमिव निष्पद्ममिव भवैत् भातवान् । अवपूर्वादिणो लक्षि रूपम् ॥

इति निरधिकाराः कृतः ॥

१७२ भट्टि-काट्ये दितीयेऽधिकार काण्डे लक्षण-रूपे दितीयो वर्गः,

अतः परं भावे ऽकर्तरि च कारक इत्यधिकृत्य कृदुच्यते---

४६८-ततः कपि-समाहारमें Sकनिश्चायमांगतम् ॥

जपौध्यायऽइवांऽऽयामं सुयीवोऽध्यापिपद् दिशाम्**३४**

तत इत्यादि—ततः कपिसमागमनानन्तरं सुप्रीवः कपिसमाहारं कपिस-मृहं दिशासायाममध्यापिपत् बोधितवान् । अमुका अमुका दिक् इंदशीति । '५४०। गतिवुद्धि–।१।४।५२।' इत्यादिना समाहारस्य कर्मसंज्ञा । आयासपरिज्ञानं चास्य वालिभयाद्रपरिश्रमणात् । एकनिश्रायमागतं एकराशितां प्राप्तं आयाम-मिलर्थः । निश्चायमिति '३१९०। परिमाणाख्यायाम्-।३।६।२०।' इति घत्र । पश्चादेकशब्देन '७२६। पूर्वकालैक-।२।१।४९।' इति सः । क इव । उपाध्याय इदेति । उपेलाधीयते असादिति '३१९१। इङ्घ ।३।३।२१।' इति घम् ॥

४६९–स-जलाऽम्मो-द-संरावं इतु-मन्तं सहा्ऽङ्गदम् ॥ जाम्बवं नील-सहितं चारु-सैन्द्रावर्मबवीत्-॥ ३५॥

सजलेत्यादि सुप्रीवो हनुमन्तमत्रवीत् । सजलाम्भोदसंरावं सजलमेव-स्येव संरावो यस्य हनुमतः । '३१९२। उपसर्गे रुवः ।३।३।२२।' इति धन्र । सहाङ्गदं अङ्गदसहितम् । तथा जाम्बनं ऋक्षािश्रपतिं मीलसहितमनवीत्। जाम्बवशब्दो ऽकारान्तो द्रष्टव्यः। चारुसन्द्रावं चारुगतिम्।'३१९४। समि युद्रु-दुवः ।३।३।२३।' इति वज् ॥

ङुलकम् ३६−४०−

४७०-'यात यूयं यम-आयं दिशं नायेन दक्षिणाम् ॥ विक्षाविस् तोय-विश्रावं तर्जयन्तो महोद्धेः ॥ ३६ ॥

यातेत्यादि-युवं यात गच्छत । यमश्रायं यमस्थानम् । अयत्येनसिति '३१९७। श्रि-णी-सुवो ऽनुपसर्गे ।३।३।२४।' इति धञ् कर्मणि । काम् १ दक्षिणां दिशम् । सामान्याभिधानाद्विशेषाभिधानम् । नायेन नीत्या सामादिना । नीय-तेऽनेनेति पूर्ववत्करणे घन् । महोद्धेस्तोयविश्रावं तोयध्वनिं तर्जयन्तो न्यक्कवी-णाः । कैः विक्षावैः स्वैः शब्दैः । उभयन्नापि '३१९६। वौ श्चःश्चवः ।३।३।२५।' इति कर्मणि घन् ॥

१--- (७१२ । उपाध्यायोऽध्यापकः । २--- (१९५) शब्दे निनादनिमदध्वनि-ष्यान-रद-स्वनाः । १९६। स्वान-निर्धोष-निर्होद-नाद-निरवान-नि:स्वनाः । आरवाऽऽरा-व**र्सराव**-विरावाः ।' ३—'८७६। प्रद्रावोद्राय-**संद्राब-**संदावा विद्रवोद्रवः ।' ४— '११७०। उन्नाय उन्नये, **आयः** श्रयणे, जयने जयः ।' ५—'११९५ निगारोहार-विद्याचोद् याद्यस् तु गरणादिषु । इति स० ना० अ०

४७१-- उन्नौयाने घिगच्छन्तेः प्रद्रोवैर् वसुधा-भृताम् ॥ वनाऽभिलावान् कुर्वन्तः स्वेच्छया चारु-विक्रमाः ३७

उद्यायानित्यादि—वसुधासतां पर्वतानां उन्नायानुचयानुचत्वान्यधिगच्छ-न्तः जानन्तः । '३१९७। अवोदोनियः ।३।३।२६।' इति भावे घन् । कैः प्रद्वावैः प्रकृष्टगतिभिः । '३१९८। प्रे द्ध-स्तु-सुवः ।३।३।२७।' इति घन् । वनाभिकावान् वनविष्वंसान् । '३१९९। निरम्योः प्-स्वोः ।३।३।२८।' इति भावे धन् । स्वेष्ट्यपा कुर्वन्तः । चारुविक्रमाः असाधारणपराक्रमाः । यात यूपमिति संवन्धः॥

४७२-सदोद्वाँर-सुगन्धीनां फलानामेलमाशिताः॥ उत्कारेषु च घान्यानामेनभोष्ट-परित्रहाः॥ ३८॥

सदेत्यादि — सदा सर्वदा उद्गारे भक्षणानन्तरं श्वसनपूर्वके शब्दोचारणे यानि सुगन्धीनि तेषामळं पर्याप्तमाशिताः । '१५९५। गृ शब्दे' इत्यसगदुत्पुर्धात् '३२००। उदयोर्थः ।३।३।२९।' इति घर् । आङ्पूर्वादभोतेः । '३०५३।
आदिकर्मणि कः कर्तरि च ।३।४।०९।' इति कर्तरि कः । कृष्पयोगे कर्मणि षष्ठी
न लोकेति निविद्धाऽतः होषे षष्ठी । उत्कारेषु च राशिषु धान्यानाम् । '१५०३।
विसेपे' इत्यसादुत्पूर्वात् '३२०९। कृ धान्ये ।३।३।३०।' इति कर्मणि घन्र ।
अनभीष्टपरिप्रहाः अनमिलाषुका इत्यर्थः ॥

४७३-संस्तावमिव शृण्वन्तश् छन्दोगानां महाध्वरे ॥ शिर्ज्जितं मधु-लेहानां पुष्प-प्रसार-शायिनाम् ॥३९॥

संस्ताविमत्यादि मधुलेहानां अमराणां पुष्पप्रस्तारशायिनाम् । '३२०३ प्रेस्नो उपने ।३।३।३२।' इति धन् । शिक्षितं श्रण्यन्तः यूयं यात । छन्दोगानां महाध्वरे संस्ताविमय सम्भूय स्तवनिमय पाठध्वनिविशेषमिय या ।'३२०२। यहे सिम स्तुवः ।३।३।३९।' इति धन् ॥

४७४—आलोचयन्तो विस्तारमेग्भसां दक्षिणो॒दधेः॥ स्त्रादयन्तः फल-रसं मुष्टि-संग्राह-पीडितम्.॥ ४०॥

१—(४७०) क्षोकस्यं टीकनमवलोक्यम् । २—(४६९) क्षोकस्यं टिप्पणमालोचनीयम् । ३—-(११८२ ल्वोडिमिलाबो ल्वने निष्पायः पवने पवः' । ४ —(४७०)
क्षोकस्यं टीकनं प्रेक्षम् । ५—-(१९९४। उत्कारदा च निकारका च हो धान्योत्क्षेपगार्थको ६ १९७ अग्र मसेर । स्वनिते वस्र पर्णाना प्रणाना तु शिखितम् '
शित सर्पत्र ना० अ०

आलोचयनत इत्यादि—दक्षिणोद्धरम्भसां विस्तारं विस्तीणंताम् । विष्-वीत् स्तृणातेः '३२०४। प्रथने वावशब्दे ।३।३।३३।' इति वन् । आलोचयन्तो तिरूपयन्तः। द्यानस्य विस्तार इति । फलरसमास्वादयन्तः। मुष्टिसंग्राहपीदितम् । मुष्टेः संग्राहेण हस्तेन वीदितम् । ग्रहेः '३२०८। समि मुष्टौ ।३।३।३६।' वन् । भावे मुष्टिविषये च्युत्पादितस्यात् । मुष्टिग्रहणममिष्यत्त्यर्थे ज्ञातस्यम् ॥ ४७५—स्याय्यं यद् यत्र, तत् कार्यं पर्यायेणां ऽविरोधिभिः,॥

निशोपैशायः कर्तव्यः फलो्चायश् च संहतैः ॥४१॥

न्याय्यमित्यादि—यदन्न न्यायादनपेतं तत्कार्यमितिशिधिमिर्युष्माभिः । '३२०९।पितन्योर्नीणोः-।३।३।३७।' इति घन् । पदार्थानामनपचारेणेत्यर्थः। '३२ १९। ह्युपयोः शेतेः पर्याये ।३।३।३९।' इति घन् । पर्यायेण पिरपाट्या ।'३२१०। परावनुपात्यय इणः ।३।३।३८।' इति भावे घन् । अनुपात्ययः पर्यायः । निर्माप्यायः कर्तव्यः । युष्माभिर्निशायामुपशायः पर्यायशयनं कर्तव्यम् । '३२१९। हयुपयोः शेतेः पर्याये ।३।३।३९।' इति वन् । फलोचायम् संहतैः युष्माभिः कर्तव्यः '३२१। हस्तादाने-।३।३।४०।' इति घन्। इस्तादानं चादेयस् प्रत्यासितः। ४७६—सीता रक्षो-निकायेषु स्तोक-कार्येश् छलेन च ॥

मृग्या शत्रु-निकायानां व्यावहासीमंनाश्रितैः ॥ ४२ ॥

सीतत्यादि — छठेन युष्माभिः सीता स्राया। रक्षोनिकायेषु निवासेषु। निवसन्यस्मिन्नित अधिकरणे '१२१३। निवास-चिति—।३।३।४१।' इत्यादिना धन्न । आदेश्र ककारः । सोककायेर्युष्माभिः । चिन्वन्यसाच्छुममिति कायः। शरीरे धन्न । शत्रुनिकायानां अरिसम्हानाम् । निचीयत इति निकायः। '३२१४। संघे चानौत्तराधर्ये।३।३।४२।' इति कर्मणि वन् आदेश्र ककारः। तेषां संबन्धिनीं व्यावहासीं परस्परहसनम् । अनाश्रितः। व्यावपूर्वाद्धसः कर्मव्यतीहारे '३२१६। णचः खियाम्—।५।४।१४।' इति क्रीलिङ्गे भावे णचं विधाय णचः वियामन् । '३२१६। न कर्मव्यतिहारे । ।।३।२६।' इति बृद्धिमतिषेधः॥ ४७७—सांराविणं न कर्तव्यं, यावन् नोऽऽयाति दर्शनम् , ॥

संदृष्टायां तु वैदेह्यां निम्राहो वोऽर्थवानरेः.॥ ४३॥

साराविणभित्यादि सांराविणमभिव्यास्या भाषणं न कर्तव्यं युष्माभिः यावज्ञायाति दर्शनं सीतेत्वर्थात् संपूर्वाद्वीतेः '३२१८। अभिविधौ भाव इतुण् १३१३१४१'तदन्तादणिनुण इत्यण् । तस्मिम् '१२४५। इनण्यनपत्ये ।६१४११६४१' इति प्रकृतिभावः । यसात्संदृष्टायां चैतस्यां वैदेखां अरेनिंआहः आक्रोशोऽभिम-वलक्षणः वो युष्माकमर्थवान् । '३२२०। आक्रोशे ऽवन्योग्रेहः ।३१३१४५।' इति भावे वस् ॥

१ ११९० **उपद्यायो** निशावस्त्र च पर्याय-ऋवना**र्वको' र**ति ना० म० ॥

४७८-प्रयाहेरिव पात्राणार्मन्वेष्या मैथिली कृतैः॥

ज्ञातव्या चेङ्गितैर् धर्म्यैर् ध्यायन्ती राधनाऽऽगमम्.

प्रशाहितियादि — पात्राणां भिक्षाभाजनानां प्रशाहितिव कृतैरन्वेण्या मैथिली। भिक्षकवेषेतिव युष्माभितिवर्थः। प्रहेः '१३२२१। प्रे लिण्सायाम् ।३।३।
१४६।' इति भावे धन् । कर्भणि पद्या । इङ्गितैर्थम्यैः चिष्टितैः कुलाङ्गनोचितैः
ज्ञातव्या सा ध्यायन्ती रामागमम् । कुलाङ्गना हि प्रोपितभर्तृका सर्वदा भर्तुरागमनं ध्यायति ॥

४७९- वेदि-वत् स-परिवाहा यज्ञियैः संस्कृता द्विँजैः ॥

हत्या मास-तमादृहः प्रार्ग-निन्दित-वेश-मृत् ॥ ४५॥ वेदिचदित्यादि—यथा यज्ञियेथैज्ञकमाहीद्विः बाह्यणैः। वेदिः यज्ञस्यली। सपरिम्राहा परिगृहीता संस्कृता तथा सा अपि अतिपवित्रस्वात् । महेः १३२२। परी यज्ञे ।३।३।४७।' इति यज्ञविषये वत्र् । मासतमादृहः प्राग्दश्या दर्शनाहीः। मासस्य पूरणं यदृहः। '१८५७। नित्यं ज्ञतादिमास—।५।२।५७।' इत्यादिना तमङ्गामः। अस्यादेव निपातनात् मासस्यासंस्थावाचित्वे दृद्र। मासतमे इद्वीति हेतुं दर्शयन्नाह । तस्याः प्तत्वाचह्रद्रतिन्दितवेशभृत् मैथिली सङ्गलमात्राभरणा दर्शनाही । तां द्रष्टुं भवतां न चिरकालो भवतीति मासाव-विना वेपिताः॥

४८०-नीवार-फल-मूलाऽशार्मुषीनंप्यंतिशेरते ॥

यस्या गुणा निर्हद्रावास् तां द्वतं यात, पश्यतः ११४६॥ भीवारेत्यादि — यसा गुणा बहाचर्याद्यः ऋषीनप्यतिशेरते न्यकुर्वते तां द्वतं यात पश्यतः। तत्र नीवारः अकृष्टपच्यधान्यस् । '३२२३। नौ वृ धान्ये ।३।३।४८।' इति घल् । '१०४४। उपसर्गस्य धल्-।६।३।१२२।' इति दीर्घरवम् । फर्लं मोचादि । सूलं शाल्द्रकादि । एतान्यश्वन्ति ये ऋषयः। कीदशा गुणाः। निरुद्वावाः स्थिराः। '३२३४। उदि अयति—।३।३।४९।' इति घल् ॥

४८१—उच्छाय-वान् घनाऽऽरावो वानरं जलदाऽरवम् ॥

दूराऽऽष्ठावं हनू-मन्तं रामः प्रोचेगजाऽऽष्ठवः ४७

उच्छायवानित्यादि — रामो हन्मन्तं प्रोचे। कीदशः। उच्छायवानुत्राति-युक्तः। पूर्ववद् घञ्। धनस्येवाराचो यस्य। '३२२५। विभाषा ऽऽङि रह्नवोः। ।३।३।५०।' इति भावे घम्। गजाप्रवः गजगमनः। पसे पूर्ववद् । कीदशम्। दूराष्ट्रावं दूरमाष्ट्राव उद्गमनं यस्य। पूर्ववद् घञ्॥

१— '७२३। वृद्धिः परिष्कृता भूमिः, समे स्थण्डिल-चलारे।' २— '(३५५) श्लोकस्थं टिप्पणं प्रेक्षणीयम्'। ३— '९१० द्यण-धान्यानि नीवाराः।' इति ना० अ०। ४— '(४६९) श्लोकस्थं टीकनमनलोकनीयम्'।

१७६ भट्टि काव्ये द्वितायऽधिकार काण्ड लक्ष्ण रूप द्वितायो वर्ग ,

४८२-'अवैद्याहे यथा दृष्टिं प्रार्थयन्ते कृषीवलाः,॥

प्रार्थयध्वं तथा सीतां, यात सुमीव-शासनात्॥४८॥

अवग्राह इत्यादि — जनमाहो वर्षमतिबन्धः । '२२२६। अने अहः — १२१२१८९।' इति पक्षे अप्। यथा अनमाहे कृषीयला वृष्टिं मार्थयन्ते तथा सीतां यूयं प्रार्थयध्वम् । तस्या दुर्लभत्वाद्यन्तादरणीयत्वाच । यात सुस्रीव-शासनात्॥

४८३-विणक् प्रयाह-वान् यद्वत् काले चरति सिद्धये, ॥
देशाुऽपेक्षास् तथा यूयं यातां ऽऽदायांऽङ्गुलीयकम्.'

विणिगित्यादि — तुला प्रगृद्धते थेन स्त्रेण स प्रमाहः । '३२२०। प्रे विण-जाम् ।३।३।५२।' इति करणे वज् । स तुलासंबन्धी विद्यते यस विण्यः । सं-सर्गे मतुप् । यथा तुलाग्रप्राहवान् तदुपलक्षितो विणक् काले उचिते क्रयसिद्धये चरति तथा यूयं अङ्गुलीयकं तुलास्त्रस्थानीयं चिह्नमादाय देशापेक्षाः तत्तहेश-स्थितासत्त्र हि चिह्नेन रामद्ता इति लक्ष्यन्ते ॥

४८४-अभिज्ञानं गृहीत्वा ते समुत्पेतुर् नभस्-तलम् ॥ वाजिनः स्यन्दने भानोर् विमुक्त-प्रग्रहा इव. ॥५०॥

अभिज्ञानिमित्यादि—ते वानरा नभस्तलमुत्पेतः। वाजिन इव विमुक्तप्र-प्रहाः। विमुक्तः प्रप्रहो नियमरुज्येषामिति। '३२२८। रहमो च। ३१३।५३।' इति विभाषाप्रहणमनुवर्तते । घनभावपक्षे '३२३४। प्रहःषृ-द-निश्चि-गमश्च ।३१३।५८।' इत्यप्। स्यन्दने रथे भानोरादिस्यस्य। किं कृत्वा। अभिज्ञानं गृही-रवा विह्नमङ्क्ष्ठीयकमादाय॥

४८५-उदक् शतविंखं कोट्या, सुषेणं पश्चिमां तथा ॥ दिशं प्रास्थापयद् राजा वानराणां कृत-त्वरः ॥५१॥

उद्गित्यादि — वानराणां राजा सुत्रीवः शतविं नाम वानरं वानराणां कोट्या सह उद्गुदीची दिशं प्रास्थापयत् । तिष्ठतेण्येन्तस्य लिङ रूपम् । उदी-चीशब्दात् प्रथमान्ताहिशि वर्तमानादस्तातिः । तस्याञ्चतेल्लेक् । लुक् तद्धितलु-कीति स्नीप्रत्ययस्य लुक् । तस्मिश्चिवृत्ते भसंज्ञाभावादीत्वमपि निवर्तते । तसि-लादिस्तिद्धत एधाच्पर्यन्त इत्यव्ययस्ये द्वितीयालुक् । तथेव सुषेणं वानरं पश्चि-मां दिशं प्रास्थापयत् । कृतस्वरः स्वरितः ॥

१— '९५ । बृष्टिर् वर्ष तदिवाते ऽसमाहा ऽवमही समी ।' २— '१४४५ । तुला सन्ने ऽश्वादिरक्मी प्रमाह: प्रमहो ऽपि च।' ३— '(४८३) श्लोकस्थं टीकनं प्रेश्य-म् विकार कर

४८६-प्राची तावद्भिर-व्ययः कपिभिर् विनतो ययौ ॥ अ-प्रयाहैरिवाऽऽदित्यो वाजिभिर्-दूर-पातिभिः, ५२

प्राचीमित्यादि — किपिभसाविद्विरित्येककोटिसंवातैः सह विनतः प्रणतः । सुग्रीव इत्यर्थात् । अव्यग्नः अनाकुलः । प्राचीं पूर्वा दिशं ययौ । यथा आदिखो वाजिभिरप्रग्राहैः मुक्तवन्धनैः करणभूतैः । '३२२८। रक्ष्मौ च ।३।३।५३।' इति घच । दूरपायिभिः॥

४८७-ययुर् विन्ध्यं शरन्-मेघैः प्रावारैः प्रवरेरिर्व ॥

प्रच्छन्नं मारुति-प्रष्ठाः सीतां द्रष्टुं स्वङ्गमाः ॥ ५३ ॥

ययुरित्यादि —मारुति प्रष्ठाः हन्मद्रयेसराः सीतां द्रष्टुं चिन्ध्यपर्वतं ययुः । शरन्मेषेः प्रावारैरिव प्रच्छन्नम् '३२२९। वृणोतेराच्छादने ।३।३।५४।' इति वज् । प्रवरेः श्रेष्टेः । अनाच्छादने प्रहेत्यादिना अप् ॥

४८८-परिभावं मृगेन्द्राणां कुर्वन्तो नगै-मूर्घसु ॥

विन्ध्ये तिग्मांशु-मार्गस्य चेरुः परिभवोपमे. ॥ ५४॥

परीत्यादि स्मेन्द्राणां सिंहानां परिभावमभिभवं कुर्वन्तः। विन्ध्ये चेरुः भ्रान्ताः।'३२३०। परो भ्रुवो ऽवज्ञाने।३।३।५५।' इति वज् । कीदशे [तिग्मां-भ्रुमार्गस्य] परिभवोपमे । आदित्यमार्गस्य परिभवनम् । अत्युचत्वात्। वन-भावपक्षे अप् ॥

४८९—भ्रेमुः शिलोचयास् तुङ्गार्नुत्तेरुर्रतरान् नदान् ॥ आशंसवो लवं शत्रोः सीतायाश् च विनिश्चयम् ॥५५॥

भ्रेमुरित्यादि — उत्पूर्वाचिनोतेः '३२३१। एरच् १।३।५६।' इत्यच् । शिला-भिरुचयो चेपां ताम् शिलोचयान् । श्रेमुः श्रमणिकयाया व्याप्यत्वात् सकर्म-कता । नदान् अतरान् तरितुमशक्यान् उत्तेशः उत्तीर्णवन्तः । शत्रोर्छवमुच्छेद-नम् । सीतायाश्र वितिश्रयं वितिर्णयम् । आशंसवः आशंसनशीलाः । '३१४८। सनाशंसभिक्ष उः ।३।२।१६८।' तरलवौ '३२३२। ऋदोरप् ।३।३।५७।' इति अग्वस्थयान्तो विनिश्रयमिति प्रदेखप् ॥

४९०-आदरेण गर्म चकुर् विषमेष्वेष्यं-सङ्घसाः ॥ व्यामुवन्तो दिशो ऽन्यादान् कुर्वन्तः स-व्यधान् हरीन् ॥ ५६ ॥

१---'६८१। हो प्राचारोत्तरासंगै समी बृहतिका तथा।' २---'१२२४। दैक-नृक्षो नगावगी।' इति ना० न०।

१७८ अहि-काट्ये हितायेऽधिकार काण्डे लक्षण रूपे हितीयो **वर्गः,**

आद्रेणस्यादि —विषमेष्वपि प्रदेशेषु गमं गमनं चकुः । आद्रेणानवक्तया । महेत्यप् । असंवसाः सक्ताहाराः । '३२३५। उपसर्गेऽदः ।३।३।५५१' ह्रसपि- '३२३६। घनपोश्च ।२।४।३८।' इति अदेर्धस्ळादेशः । हरीन् सिंहान् । सव्यधान् सम्रहारान् । '३२३८। व्यथ्—जगोः—।३।३।६१।' इत्यप् । सम्रहारत्वाद्न्यादान् परित्यक्ताहारान् कुर्वन्तः । '३२३०। नौ ण च ।३।३।६०।' इति निप्तांददोऽण् प्रत्ययः । तस्मिन्नदेर्वं घस्ळादेशः । चकारादिष तत्र निवसः । दिशो व्यामुवन्तः सर्वव्यापिनः ॥

४९१–संचेरः स-हसाः केचिदं,-स्वनाः केचिदांदिषुः॥

संयाम-वन्तो यति-वन्, निगंदानंपरे ऽमुचन् ।।१७॥ संचेहिरत्याद्—सहसाः सिसताः। अखनास्तूणीकाः। '३२३९। खन-ह-सोवा ।३।३।६२।' इत्यप्। यतिवत् संयामवन्तः नियमवन्तः '३२४०। यमः समुप-नि-विषु च ३।३।६३।' इति वज् । आदिषुः अदितवन्तः । अदेर्जुङि रूपम्। अपरे निगदान्यचनात्यमुचन् । '३२४१। नै। गद—।३।३।६४।' इत्यादिना विक-स्पेनापो विधानात् वध् ॥

४९२-अथ क्रमार्द-निःकाणा नराः क्षीण- पणौ इव ॥

अ-मदाः सेदुरेकस्मिन् निर्तम्बे निखिला गिरेः॥५८॥

अथेत्यादि—अथ परिश्रमणादनन्तरं इसेन परिश्रमेण अमदाः गतहर्षाः । '३२४४। मदो ऽनुपसर्गे ।३।३।६७।' इत्यप् । अत एव निःकाणाः निर्शब्दाः '३२४२। कणो वीणायां च ।३।३।६५।' इत्यपे विकल्पेन घन् । वीणादिविषयमे-तन् । कणेर्निपूर्वादनुपसर्गाद्वीणादिविषयाच विकल्पेनाप्यत्य इत्युक्तम् । एक-स्मिन् गिरेनित्यवे सेदुः निषण्णाः । निस्तिलाः समस्ता वानराः । क्षीणपणा इव अर्थरहिता नरा इव । पण्यन्त इति पणाः । व्यवहाराय कृते पणे व्यवस्थाप्यन्ते । '३२४३। नित्यं पणः परिमाणे ।३।३।६६।' इत्यप् ॥

४९३-ततः स-संमदास् तत्र निरैक्षन्त पतत्रिणः ॥ गुहा-द्वारेण निर्यातः समजेन पश्न्वि.॥ ५९॥

तत इत्यादि — ततो विश्रामानन्तरं ते तत्र तस्मिन् पर्वते पतत्रिणः पक्षिणो निरेश्चन्त इक्षितवन्तः । ईक्षेर्छेिङ रूपम् । कीदशान् गुहाद्वारेण निर्यातः निर्म-

१—(११७०। निगादो निगादे, मादो मद, उद्देग उद्धमः ।' २—(१९७। निकाणो निकाणः काणः कणः कणनमित्यपि । १९८ वीणायाः कणिते प्रादेः प्रकाणः प्रकाणादयः।' ३—(१२५३। पणो चूताऽऽदिष्ट्सष्टे भृतौ मूल्ये धने ऽपि च।'। ४—(१४४। कटको ऽस्त्री नितक्यो ऽद्रेः, स्तुः प्रस्थः सानुरस्थियाम्।'५—(५६२। पद्मा समाजो ऽन्येषां समाजोऽय समामिणाम् विशिष्यंत्रं ना० अ०

च्छतः । निष्पूर्वाचातेः शत्रन्तस्य शसि रूपम् । ससंमदाः सहषाः । '३२४५। प्रमद-संमदी-।३।३।६८।' इति निपासितम् । समजेन बृन्देन पश्चनिव निर्यातः '३२४६। समुदोरजः पश्चषु ।३।३।६९।' इत्यप् ॥

४९४—वीनार्मुपसैरं द्या ते ऽन्योन्योपहवा गुहाम् ॥ प्राविशन्नाहैव-प्रज्ञा आहावमुंपलिप्सवः. ॥ ६०॥

वीनामित्यादि—वीनां पक्षिणामुपसरं नैरन्तर्येण निर्गमनं दृष्टा । उपसर इव उपसरः नैरन्तर्यमात्रेणोपलक्षितत्वात् । उपसरो हि स्त्रीगमीषु पुक्षवानामभिगमनमुच्यते स च नैरन्तर्येण भवति । '३२४८। प्रजने सर्तेः ।६।३।०९।' इसप्।ते वानरा अन्योन्योपहवाः परस्परमाह्नानं येषां आगच्छतागच्छत प्रविशा इति । '२५६८। ह्वः संप्रसारणम् ।६।९।३२।' इसप् संप्रसारणं च । गुहां प्राविश्चन् प्रविष्टवन्तः । आहवप्रज्ञाः युद्धप्रज्ञाः । आहूयते युद्धाय स्पर्धते ऽत्र '३२५०। आङि युद्धे ।३।३।०३।' इसप् संप्रसारणं च । आहावसुपलिप्सवः उदकाधारमुपलब्धुमिच्छवः। '३२५९। निपानमाहावः।३।३।०४।' इति घनि संप्रसारणं निपात्यते युद्धिरस्येव । अप्परस्ये त्ववृद्धिः ॥

४९५–कुर्वन्तो हवमोप्तानां पिपासा-वध-काङ्किणः ॥

द्वारं तमो-घर्न-प्रख्यं गुहायाः प्राविशन् द्वतम् ॥६१॥

कुर्वन्त इत्यादि — गुहां प्रविश्य तस्याः द्वारमपरं प्राविशन् । आश्वानां स्निन्यानां हवमाह्वानं कुर्वन्तः । '३२५२। भावे ऽनुपसर्गस्य ।३।३।७५।' इत्यप् संप्रसारणं च । पिपासा पातुमिच्छा त्स्या वधो ऽपनयनस् । '३२५३। हनश्र वधः ।३।३।७६।' इत्यप् वधादेशश्र । तं काङ्कितुं शीलं येपामिति । '७१७। काश्चिमाश्चि काङ्क्षायाम्' इत्यसात् '२९८८। सुप्यजातौ णिनिः-।३।२।७८।' । '२२६२। इदितो सुम्-।७।१।५८।' साधुकारिणि वा । कीटशं द्वारं तमोधनप्रस्यं तमसो घनः मूर्तिः काठिन्यं तेन सद्दशम् '३२५४। सूर्तौ घनः ।३।३।७७।' इति इन्तेरप्रयो घनादेशश्र निपासते । मूर्तिमत्तम इव द्वारमिस्यर्थः॥

४९६-तस्मिन्नेन्तर्धणे ऽपरयन् प्रघाँणे सौध-सद्मनः. ॥

लौहों द्वन-धन-स्कन्धा ललिता ऽपधँनां स्त्रियम्. ६२

तस्मिन्नित्यादि — द्वारमितकम्य यः सावकाशमदेशः सो ऽन्तर्घण इत्युच्यते । तथाद्यन्तर्दस्यते क्रोडीभयस्मिन्निति अनुगतार्थत्वम् । '३२५५। अन्तर्घनो देशे

१—'(११८३। प्रजनः स्यादुपसरः।' २—'८७१। अभ्यामर्द-समाधातसंग्रामा-ऽभ्यागमा ऽऽह्वाः। ' २—'२८०। आहाबस् तु निपानं स्यादुपसूप-जलाशये।' ४—'(१३१८। घनो मेथे मूर्तिगुणे त्रिषु मूर्ते निरन्तरे।' ५—'३३२। प्रधाण-प्रथणा-ऽलिन्दा बहिद्दार-प्रकोष्टके।'। ६—'११९३। निभाय तक्ष्यते यत्र काष्टे कार्षं स उद्घनः!'। ७—'६३४। अङ्गं प्रतीको ऽवयनो ऽपद्यनो, ऽथ कलेवरम्।' इति स० ना० अ० ॥

१८० महि-काट्ये दितायऽधिकार काण्ड लक्षण रूप दिताया वर्ग ,

। श्राहा७८' इसन्तः पूर्वा सन्तेरप् घनादेशः घणादेशो वा ये णकारं पठन्ति । यसु संज्ञीभूतो वाहीकेषु देशविशेष इत्युक्तं तत् संज्ञाश्वरमाश्रित्य । तस्मिन्नन्तरे यत् सोधसद्य घवलगृहं तस्य प्रघणे एकदेशे। '३२५६। प्रघणः प्रवाणश्च । श्राहा०९।' इति निपातितम् । स्वियं लिलिताप्यनां लिलिताङ्गीमपश्यन् । '३२५६। अपधनो ऽङ्गम् । श्राहाद। इति निपातनम् । लोहोद्यनघनस्कन्धाः । यस्मिन् स्थापयित्वा काष्टादीनि संस्क्रियन्ते स उद्यनः तद्वद्वनाः स्कन्धो येषामिति । '३२५०। उद्य-नोऽस्वाधानम् । । श्राहा८०।' इति निपातनम् ॥

४९७-सा स्तम्बर्झ-पद-न्यासान् विधनेन्दु-सम-द्युतिः॥ परिघोरु-भुजानांह हसन्ती स्वागतं कपीन् ॥६३॥

संस्यादि—सा स्नी हसन्ती कपीन् स्वागतं वच आह । कीहशी विघनेन्दु-समझितः । विहन्यते अभिभृयते अन्या द्वतिर्यंन स विघनः '३२५९। करणे-ऽयोबिद्धुषु ।३।३।८२।' इस्वप् घनादेशश्च । सचेन्द्वश्चेति सः । तत्समा द्वतिर्यस्याः । सम्बो हन्यते येन पादन्यासेन स सम्बन्नः । तृणकाद्यादिः । '३२६०। सम्बे कच ।३।३।८३।' इति करणे कः ।'२३६३। गम-हन । ६।४।९८।' इत्युपघाळोपः । तादशः पादन्यासो येषां कपीनामिति । परिहन्यते येन । '३२६१। परी षः ।३।३।८४।' इत्यप् यादेशश्च । परिघो ऽर्गळः । तदनुकारिणो विपुला बाहवो येषामिति ॥

४९८-पिप्रार्था ऽद्रि-गुहोपन्नौर्नुद्धौन् संघसमागतान् ॥ फलैर्नाना-रसैश् चित्रैःस्वादु-शीतैश्र्-च वारिभिः६४

प्रिमायेत्यादि—तान्विविधः फलैवीरिभिश्च पिप्राय तर्पितवती । अदिगुही-पद्मान् । आदिगुहैव उपझ आश्रयो येषां कपीनाम् ।३२६३। उपझ आश्रये ।३। ३।८५।' इत्सप् उपघालोपश्च निपालते। संघसमागतान् समूहेनागतान् । उद्घान् प्रशस्तान् ।'३२६४। संघोद्घी गण-प्रशंसयोः ।३।३।८६।' इति समुदोरुपपदयोः हन्तेरपि टिलोपश्च निपालते ॥

४९९-निघाऽनिघ-तरु-च्छन्ने तस्मिस् त लब्धिमः फलैः ॥ तृप्तास् तां स्त्राजथु-मतीं पप्रच्छुः-'कस्य पूरियम्.'६५

निधेत्यादि—तस्मिन्प्रघणे निघानिधैनिंमितानिमितैस्तरिभइछत्तैः। '३२६५। निघो निमितम्।३।३।८७।' इति निपूर्वाझन्तेरिप टिछोपे निपासते। समारोह-परि रोहाभ्यां निमितमित्युच्यते । ते कपयः। छव्धिमैर्छामनिर्वृत्तैः। '३२६६। ड्वितः



१— '११९३। स्तम्बद्भस् त सम्बद्धनः स्तम्बो येन निहन्यते।'। २— '११७७। स्वाद्धम् अन्तिकाश्रये।'। ३— '१४९। मतिङ्कता मचिका प्रकाण्डमृद्ध-तङ्कौ। प्रस्

क्रिः ।३।३।८८।' फलेस्तृप्ताः सन्वस्तां खियं आजशुमतीं शोभावतीम् । पप्रच्छुः पृष्टवन्तः कस्येयं पृरिति । '३२६७। द्वितो इश्चच् ।३।३।८९।' तदन्तान्मतुप् ॥ ५००—'रैक्ष्णं करोषि कस्मात् त्वं, यहोन्। ऽऽख्यायतां शुभे !

स्वमे निधि-वदांभाति तव संदर्शनं हि नः. ॥ ६६ ॥

रश्णमित्यादि—हे शुमे ! कसाद्वा रक्ष्णं रक्षां करोषि । एतचलेनाद्रेण नो-ऽस्माकमास्यायताम् । उभयन्नापि '३२६८। यज-याच-।३।३।९०।' इति नङ् । यस्मात्स्वमे निधिवत् निधिरिव तव संदर्शनमाभाति । नोऽस्माकमतिदुर्छभ-रवात् । स्वम इति '३२६९। स्वपो नन् '३।३।९१। निधिरिति '३२७०। उप-सर्गे घो: कि: ।३।३।९२।'॥

५०१-ततो जलधि-गम्भीरान् वानरान् प्रत्युवाच सा- ॥

'इयं दानव-राजस्य पूः सृष्टिर् विश्वकर्मणः ॥ ६७ ॥ तत इत्यादि—ततस्त्रसादनन्तरं सा ब्रस्युवाच । जलं धीयते अस्मिनिति

अधिकरणे चिति किः। जलिषः समुद्रः। तद्वद्भम्भीरानश्चीम्यत्वात् । इयं प्रः
.दानवराजस्य विश्वकर्मणः सृष्टिः। सृज्यतं इति सृष्टिः। कर्मणि '३२७२। स्त्रियां
किन् ।३।३।९४।'॥

इतः स्त्रीलिङ्गमधिकृत्योज्यते---

५०२-मिहतश् च स्थितिं भिन्दन् दानवोऽसौ बल-द्विषा,॥

दुहिता मेरुसावर्णेरहं नाम्ना स्वयं-प्रभा. ॥ ६८ ॥

निहत इत्यादि—असौ दानवराजः स्थितिं सर्यादां मिन्दन् । '३२७३। स्थागा पा-पचो भावे ।३।३।९५।' इति किन् । बलहिपा इन्द्रेण निहतः । यस्य चाहं दुहिता । स पिता । नाम्ना मेहसावणिः, अहं च नाम्ना च्चयंप्रभेति ॥ ५०३—जूतिमिच्छथ चेत् तूर्णं, कीर्तिं वा पातुमात्मनः ॥

करोमि वो बहिर्-यूतीन् , पिधध्वं पाणिभिर्दशः ६९'

ज्तिमित्यादि — यदि त्र्णं शीघं ज्ति गमनमिन्छथ। कीर्ति वा आत्मनः पातुं रिक्षितुम् । वः युष्मान् बहिर्यूतीन् बहिर्भूतान् । '३२०४। ऊति-यृति—।३।३।९७।' इत्यादिना निपातितः । तत्र यौतेर्जवतेश्व किन् दीर्घत्वं च निपालते । कीर्तिरिप '१७७५। कृत संशब्दने' स्वार्थिको णिच् । '२५७१। उपधायाश्च ।७।१।१०१।' इतीरवं तस्मात् किन् । अतः पाणिभिः । इशो दृष्टीः पिघध्वं आच्छाद्यध्वम् । अपिपूर्वाद्धान्नो छोटि द्विष्यते '२५०१। दघ-स्तयोश्च।८।२।३८।' इति अभ्यासस्य भदभावे '२४८३। आभ्यस्तयोः—।६।४।१ १२।' इत्याकारकोपे '५२। झलां जश् झिश ।८।१।४३।' इति धातोदंकारे 'वष्टि भागुरिः—' इत्युपसर्गाकारकोपे च रूपस् ॥

१—'११६६। **रक्ष्णस्** त्राणे, रणः कणे।' इति ॥ २—'११९६ । जवने **ज्**तिः सातिः।' इति सर्वत्र ना० अ०॥

१८२ महिकाब्ये द्वितीयऽधिकार काण्डे लक्षण-रूप द्वितायो वर्ग ,

५०४-व्रज्या-यती निरुद्धाऽक्षान् विद्येवांऽनुष्ठित-क्रियान् ॥ निरचिकमदिंच्छा-तो वानरांश् चङ्कमा-वतः. ॥७०॥

वजेत्यादि—सा वज्यावती प्रशस्तामनवती । '३२७५। वज-यजोर्भावे वयप् ।३।३।९८।' प्रशंसायां मतुष् । वानराज्ञिरुद्धाक्षान् निरिविक्रमत् निष्कासितवती । क्रमेण्यंन्तस्य लुक्टि '२३१६। सन्वल्लवृति—ार्धाप्रश्रः' इति सन्वल्लावात् '२३१७। सन्यतः ।७।४।७९।' इति न दीर्षः संयोगपरस्य गुरुत्वात् । अनुष्टितिक्रयानाचिरतततुपिदृष्ट्याणरान् । '३२७७। क्रवः श च ।३।३।१००।' इति शः । '२७५६। सार्वधातुके यक् ।३।१।६७।' । रिखादेशश्र । चङ्कमावतः कुटिलगतिमतः । '३२७९। अः प्रत्ययात् ।३।३।००।' इति नाराणामिच्छायाः । '३२७८। इच्छा ।३।३।१०९।' इति निपातितम् । इषेः शप् प्रत्ययः छभावश्र निपात्वते । विद्या । '३२७६। संज्ञा-याम् ।३।३।९९।' इति क्यप् । यथा विद्या अनुष्टितिक्रियान् कृतपुरश्ररणान् पुरुष्पानिच्छातोऽभीष्टं सम्पादयति तद्वत्सेति ॥

५०५-निष्क्रम्य शिक्षया तस्यास् त्रपा-वन्तो रसा-तलात्॥ ज्ञात्वा मासमंतिकान्तं व्यथामंवललम्बिरे.॥ ७१॥

निष्कम्येत्यादि—तस्याः शिक्षया उपदेशेन '३२८०। गुरोश्च हलः ।३।३। १०३।' इत्यकारः । तस्माद्रसातलान्निष्कम्य निर्गम्य त्रपावन्तः ख्रिया उपदेशेन निष्कान्ता वयमिति त्रपेति । '३२८१। चिन्निदादिभ्योऽङ् ।३।३।१०४।' मास-मितिकान्तं ज्ञात्वा बहिर्निर्गताः सन्तः व्यथां भयम् । मिदादित्वाद् । अवलल-मिने वयं मासाविधना प्रेपिताः स च मासो विनैव कार्येणातिकान्त इति स्वा-मिनो भयम् ॥

५०६-चिन्ता-वन्तः कथां चक्रुर्रंपर्धां-भेद-भीरवः॥

'अ-कृत्वा नृ-पतेः कार्यं पूजां लप्यामहे कथम्. ७२ चिन्तेत्यादि—उपधानमुपधा परीक्षा । '३२८३। आतश्रोपसर्गे ।३।३। ३०६।' इत्यङ् । तत्परिशुद्धो हि मृत्यः कार्येषु नियुज्यते । तदकरणादुपधाया भेदो प्रभावः तस्माद्धीरवः। चिन्तावन्त इतिकर्तव्यतामृत्याः कथां चकुः कृतवन्तः। कीदशीमित्याह । अकृत्वा नृपतेः कार्यं पूजां लप्यामहे कथमिति नैवेत्यर्थः । चिन्तादयः। '३२८२। चिन्ति—एजि—।३।३।१०५।' इत्यादिना अङ्कताः ॥ ५०७—प्रायोपासनया शान्ति सन्वानो वालि-संभवः ॥

युक्तवा योगं स्थितः शैले विवृण्वंश्चित्त-वेदनाम् ॥७३॥ प्राय इत्यादि—उपासनेति । '३२८४। ण्यासश्रन्थो युच ।३।३।१०७।' प्रायेण अविच्छेदेन उपवासेनोपासना अनशनेनासनभित्यर्थः । तथा शान्ति



कस्याणं मन्दानोऽवगच्छन् उपायान्तराभावात् । वालिसम्भवो ऽङ्गदः । योग-श्चित्तवृत्तिनिरोधः । तं युक्त्वा संवध्य शेले स्थितः । चित्तवेदनां चित्तपीडां वि-वृण्वन् । 'घडि-विदि-वन्दिभ्यो युज् वक्तव्यः' इति युज् ॥

५०८–प्रस्कन्दिकार्मिव प्राप्तो

ध्यात्वा ब्रुते स्म जाम्बवान् ॥ 'धिक् शालभञ्जिका-प्रख्यान् विषयान् कल्पना-रुचीन् , ॥ ७४॥

प्रस्किन्दिकाभित्यादि—त्वयाका कियाकर्तव्येत्यन्यैः पृष्टः सन् जास्ववान् ध्यात्वा विचिन्त्य वृते सा । प्रस्किन्दिकाभिव रोगविशेषभिव प्राप्तो यातः उत्सा-हाभावात् । '३२८५। रोगाख्यायां ण्वुल् बहुलम् ।३।३।१०८।' शालभिका कीडाविशेषः । '३२८६। संज्ञायाम् ।३।३।१०९।' इति ण्वुल् । '७११। नित्यं कीडा—।२।२।१७।' इत्यादिना सः । तत्यख्या विषया रूपाद्यः अतितुच्छत्वात् । अतस्तान् धिक् । किन्तु कल्पनारुचीन् कल्पनीयान् ॥

५०९-यां कारिं राज-पुत्रो, ऽयमंनुतिष्ठति, तां क्रियाम् ॥ अहमंप्यंनुतिष्ठामि' सो ऽप्युक्तवैवमुंपाविश्चत् ॥७५॥

याभिस्यदि—अयं राजपुत्रो उद्भदो यां कारिं कियामनुतिष्ठति तां कियां अहमप्यनुतिष्ठामि । '३२८७। विभाषा ऽऽख्यान-परिप्रक्षयोरिज् च ।३।३।१९९०' इति करोतेरिज् । पसे '३२७७। क्वजः श च ।३।३।१००।' इति शः । सोऽप्ये-वमुक्त्वा उपाविश्वत् अनशनेन स्थितः ॥

५१०- उवाच मारुतिर् वृद्धे संन्यासिन्यंत्र वानरान् ॥

'अहं पर्याय-संप्राप्तां कुर्वे प्रायोपवेशिकाम् । ॥ ७६॥

उद्याचित्यादि—मारुतिर्वानरानुवाच वृद्धे जाम्बवति संन्यासिनि अनशन-वति अहमप्यत्र शैळे पर्यायेण परिपाट्या संप्राप्तां प्रायोपवेशिकां अनशनं कुर्वे । '३२८८। पर्यायार्हण-।३।३।१११।' इत्यादिना ण्डुल् ॥

> ५११-अ-भावे भवतां यो ऽस्मिन् जीवेत्, तस्यांऽस्त्वं-जीवनिः, ॥' इत्युंक्त्वा सर्व एवां ऽस्थुर् बद्धा योगाऽऽसनानि ते. ॥ ७७ ॥

अभाव इत्यादि — अभावे विनाशे भवतां यो ऽसिन् छोके जीवेत् तस्या-स्वजीवितः धिर्ग्जावितम् । '३२८९। आक्रोशे नञ्यितः ।३।३।९१२।' एवमुक्ता सर्वे एव अस्थुः स्थिताः । तिष्ठतेः '२२२३। गाति-स्था-।२।४।७७।' इति सिचो छुक् । बक्का योगासनानि विरचय्य पद्मासनादीनि ॥ १८४ साष्ट्र-काव्ये-दितीयेऽविकार-काण्डे लक्षण-रूपे दितीयो वर्गः,

इतस्रीलिङ्गभावं निवर्त्यं कृदुदाह्रियते—

५१२-अ-क्रेश्यमंसिना ऽध्यन्तं कवन्ध-वधमभ्यधुः, ॥

धिङ् नः प्रपतनं घोरं क्वेद्राऽन्तत्वर्मं-नाथ-वत् . ७८

अक्रेड्यमित्यादि—कबन्धवर्ध योजनबाहोवेधमभ्यष्टः अभिहितवन्तः । अभिपूर्वो धार्वभिधाने वर्तते । कीदशं अक्रेड्यं प्रयासरिहतम् । कस्मात् असिना सुखमरणात् तं चाझ्यन्तं अन्ते तस्याधिरभूत् । अस्ताकं धिक् प्रपतनं विनाशम् । दुःखेन घोरत्वात् । क्रेड्यन्तत्वं अन्ते प्रतीभावं तद्यत्रास्ति । अर्थआन्दिनाद्य । अनाथानामिवं । अक्रेड्यप्रपतनशब्दौ भावसाधनौ । क्रत्यस्युटो बहुलंमिति ॥

५२३-ततो मन्द-गतः पक्षी तेषां प्रायोपवेशनम् ॥

अञ्चनीयमिर्वाशंसुर् महानायाद-शोभनः ॥ ७९ ॥

तत इत्यादि — ततो अभिहतानन्तरं महान् पक्षी सम्पातिनामा जटायुः आता। आयात् आगतः। मन्दगतो मन्दगमनः। '३०९०। नपुंसके भावे कः। ११११९४।' आहिताकित्वात् परिनपातः। तेषां यद्यायोपवेशनं तद्शनीयभिव मोजनीयिव । '२८४१। कृत्यल्युटो बहुलस्। १११।१११।' इति कृत्यः। आशंसुः आशंसनंशीलः। अशोभनः शोभारहितः। दावाकिना द्वष्टशरित्वात्। '१२९०। ल्युट् च। १११। १९८। हर्मणि च येनं । १११। १११।' इति भावे ल्युट् । '१२९१। हर्मणि च येनं । १११। १११।' इत्येतल्परिहत्योद्। हत्यात्॥

५१४-देह-त्रश्चेन-तुण्डा्ऽग्नं तं विलोक्या ऽशुभाऽऽकरम्॥ पाप-गोचरमात्मानमंशोचन् वानरा मुहुः॥ ८०॥

देहेत्यादि —वृथ्यते येन तुण्डाग्रेण । '३२९३। करणाधिकरणयोश्च ।३।३।१९७।' इति करणे ल्युद् । देहस्य वश्चनमिति कृद्योगे पधी । देहवश्चनं तुण्डाग्रं
यस्य तं विलोक्य । वानरा अग्रुभाकरं पापस्योत्पत्तिस्थानम् । आकर इवाकरः ।
'३२९६। पुंसि संज्ञायां घः—।३।३१४८।' तत्र हि करणाधिकरणयोदिति वर्तते ।
एवं उत्तरत्रापि चात्मानं पापगोचरं पापविषयं पापविषये पतिता वयमिति
मुहुरशोचन् शोचितवन्तः । '३२९८। गोचर-सञ्चर—।३।३।१९९।' इत्यधिकरणे
निपातितः ॥

५१५-'जटायुः पुण्य-कृत् पक्षी दण्डकाऽरण्य-सञ्चरः॥

कृत्वा राघव-कार्यं यः स्वराऽऽरूढो ऽग्नि-संस्कृतः८१ यरित्यादि—कृत्वा राष्ट्रवर्षायम् । अधिमंद्रवरः अधिना कृतसंस्कृतः ।

जटायुरित्यादि — कृत्वा राघवकार्यम् । अग्निसंस्कृतः अग्निना कृतसंस्कारः । स्वः स्वर्गेमारूढः । जटायुः पुण्यकृत् । संचरत्यस्मित्रिति संचरः । पूर्वेवत् निपा-तित । वृण्यकरण्यं संचरो ऽवस्थानं यस्येति ॥

१ १०२० वश्चन.

त्रिका धमे। इदि साव अव ॥

५१६-नरकस्या ऽवतारो ऽयं प्रत्यक्षो ऽस्माकर्मागतः, ॥ अ-चेष्टा यदिहा ऽन्यायादंनेना ऽत्स्यामहे वयम् . ८२

नरकस्येत्यादि — अवतीर्यते येन कर्मणिति । '३२९९। अवे दस्तीर्घत् । ३।३।१२०।' स एवायं नरकस्यावतारः प्रत्यक्षी ऽस्माकमागतः । यद्यसाहयम-चेष्टाः तिश्वलाः अनेन पक्षिणा अन्यायादयुक्त्या । नीयते अनेनेति निपूर्वादिणः '३३०१। अध्याय-न्याय-।३।३।२२।' इति निपातनात् घत्र । अत्सामहे अक्ष-यिष्यामहे । कर्मणि स्टरः ॥

५१७-हृदयोदङ्क-संस्थानं कृतान्ताऽऽनाय-सन्निभम् ॥ शरीराऽऽखन-तुण्डा ऽत्रं प्राप्या-ऽमुं शर्भ दुर्लभम् ॥।

हृद्येत्यादि—असुं पक्षिणं प्राप्य। की इशं हृद्योदङ्कसंस्थानम् उदश्यते आकृष्यते अने नेति उत्पूर्वादञ्चतेः। '३३०२। उदङ्को उतुदके ।३।३।१२३।' इति घव्
निपालते । हृद्यस्योदङ्कः संदंशः तत् संस्थानं तत्सदृशम् । कृतान्तानायसिन्नकं यमजालतुल्यम् । तत्प्रिष्टस्य दुःखेन निर्गमत्वात् । '३३०३। जालमानायः
१३।३।१२४।' इति नयतेराङ्पूर्वात्करणे घच् निपालते । आखन्यते चेन तुण्डाग्रेण । खनो घच् । श्ररीरस्यास्त्रनं तादक् दुण्डामं यस्येति । प्राप्य शर्म सुखं
हुर्लमं कृष्णुलभ्यस् । '३३०५। ईषद्-१३।३१६२६।' इस्सादिना खल् । अत्र करशाधिकरणयोश्चेति निवृत्तम् । '२८३३। तयोरेव कृत्य-क्त-खल्याः ।३।४।७०।'
इति योज्यम् । '३३०६। उपसर्गात् खल्-घनोः ।७।१।६७।' इति प्राप्तस्य नुमः।

*३३०७। न सुदुर्म्यास्—।७।१।६८।' इति प्रतिषेधः॥

५१८-ईषदाुड्यङ्करो ऽप्येष न परत्रा ऽशुभ-क्रियः,॥

अस्मानंतुर्मितो ऽभ्येति परिग्लाचो बुभुक्षया. ॥८४॥

र्ष्यदित्यादि —य एव असानत्तामतः प्रदेशादम्यति आगच्छति स परत्र परस्रोके ईपदास्थ्वसो ऽपि अनास्थरीवदास्थो ऽपि न कृतः। अशुमेन कर्मणेय-र्थाद् । '३३०८। कर्तृ-कर्मणोश्च भू-कृत्रोः ।३।३।१२७।' इति च्यर्थे कर्मोपपदा-रक्रोतेः खस् । यतः परिग्छानो बुभुक्षया। यो हि कर्मणा शुमेन ईवदास्थ्वस्रो-इपि न कृतः स क्यं न बुभुक्षया पीक्यते । परिग्छायतीति कर्तरि बहुज्यचनात् स्युद्ध । निष्ठान्तो वा । '३०१७। संयोगादैः — ।८।२।४३।'इस्रादिना निष्ठान्त्वम् । अशुमक्रियः सत्यद्वोद्दासिरतत्वात् ॥

५१९-संग्राप्य वानरान् पक्षी जगाद मधुरं वचः-॥
'के यूयं दुरुपस्थाने मनसा ऽप्यद्भि-मूर्धनि.॥ ८५॥

इति कृद्धिकारः।

१---(२७०। आनायः पुंसि नावं सार्व्यणसूत्रं पवित्रकम्।' शति का० अ०।

१८६ महि काञ्चे दितायेऽधिकार काण्डे सक्षण-रूपे दितीयो वर्ग ,

संप्राप्येत्यादि—वानरान् संप्राप्य पक्षी जगाद गदितवान्। के यूयं अदिसूर्धनि पर्वतिशरित दुरुपस्थाने दुः खेनोपस्थातुं शक्ये मनसापि किं युनः शरीरेण । '३३०९। आतो युच्-।३।३।९२८।' तत्रापि ईषदादयो उनुवर्तन्ते । कर्नुकर्मणोरिति न सर्यते ॥

इति कुद्धिकारः॥

अथ प्रकीर्णकाः।

इतः प्रकीर्णकश्लोकानाह---

५२०-आत्मनः परिदेवध्वे कुर्वन्तो राम-संकथाम्,॥

समानोदर्थमस्माकं जटायुं च स्तुथा ऽऽदरात् . ॥८६॥

आत्मन इत्यादि आत्मनः परिदेवध्वे शोचथ '७३ श देवृ देवने' इति भौवादिकः । शसि '३५५। न संयोगाद्रमन्तात् ।६।४।३३७।' इत्यक्षोपो न मद-ति । जटायुं च समानोदर्यं श्चातरमस्माकम् । '१६५९। समानोदरे शयितः ।शश्य १०८।' इति यत् । आदरात् प्रस्तुथ प्रस्तुति कुरुथ । जटायुः पुण्यकृदि-त्यादिना । रामसरकथां च कुर्वन्तः अतः के यूपमिति ॥

५२१-शङ्का-धेवित्र-वचनं प्रत्यूचुर् वानराः खगम्--।।

'वयं शत्रु-लैवित्रेषोर् दूता रामस्य भू-पतेः. ॥ ८७॥

राङ्केत्यादि—धुनोत्यपनयत्यनेनेति धवित्रम् । '३१३५। अति-छः धू-।३।२।१८४।' इत्यादिना करणे इत्रः । किमयं करिष्यतीति शङ्काधवित्रं वचनं यस्य तं खगं वानराः अत्युचुः । शत्रुछवित्रा इषवो बाणा यस्य रामस्य भूपतेस्तस्य वयं दृताः । पूर्ववदित्रं कृत्वा सः ॥

५२२-केना ऽपि दौष्कुलेयेन कुल्यां माहाकुलीं प्रियाम्॥

हतां माहाकुलीनस्य तस्य लिप्सामहे वयम्,॥ ८८॥

केनेत्यादि—तस्य रामस्य प्रियां केनापि दौष्कुछेयेन हताम् । दुष्कुछस्या-पत्यमिति '११६५। दुष्कुछाइदक् ।४।१।१४२।' कुत्यां कुछे साध्वीं '१६५० । तत्र साधुः ।४।४।९८।' इति यत् । माहाकुछीं माहाकुछीनस्येति महाकुछसाप-स्यमिति '११६४। महाकुछादन् स्वजो ।४।१।१४१।' इति अन्तवेते । छिप्तामहें वयं छब्धुमिच्छामः ॥

५२३-त्रिंशत्तममंहर् यातं मत्वा प्रत्यागमाऽविधम् ॥ अ-कृताऽर्था विषीदन्तः पर-लोकमुपास्महे, ॥ ८९॥



१—'५९७ समानोद्र्य-सोदर्य-सगर्थ-सहजाः समाः ।'। २—'७२९।
थितं न्यजनं तद् यद् रचितं मृगचर्मणा।' ३—'८९८ दात्रं लिव्ज-मन्धि
योतं योकसमो फरुम् श्रि सर्थतं ना० न०।

त्रिशदित्यादि—त्रिशतः प्रणम् । '१८५६। विशसादिभ्यः-।५।२।५६।' इति तमह । त्रिशत्तमं यदहः तत् प्रलागमावधि प्रसागमनस्यावधि यातं अतीनः तं मत्वा अकृतार्थो अनिष्पादितप्रयोजना विषीदन्तो विषादं गच्छन्तो वयं पर-स्रोकसुपासाहे प्रायोपवेशनेन स्रियामहे ॥

५२४-मियामहे, न गच्छामः कौश्चल्यायनि-वह्नभाम् ॥ उपलग्भ्यामं-पश्चन्तः कौमारी पततां वर !॥९०॥"

श्चियामह इत्यादि—हे पततां पक्षिणां वर! श्चियामहे न गच्छामः किमिति कौमारीं अकृतपूर्वदारपति लब्धवतीम् । '१२१४। कौमारापूर्ववचने ।४।२।१३।' इति साधुः । कौशस्यायनिवल्लभाम् । कौशस्याया अपत्यं कौशस्यायनी रामः । '११७९। कौशस्य—कार्मायांभ्यां च ।४।१।१५५।' इति फिन्य् । फस्यायनादेशः । तस्य बल्लभां इष्टां उपलम्भ्यां प्रशस्ताम् । '२८४४। पोरद्वपधात् ।३।१।९८।' इति यत् । '२८४६। उपात्मशंसायाम् ।७।१।६६।' इति यत्प्रत्यये नुम् । अपस्य-न्तोऽनुपल्भमानाः । एते प्रकीर्णकाः ॥

इतः हिद्तिशेषसधिकत्याह—

५२५-जगाद वानरान् पक्षी-'नांध्यगीढूं ध्रुवं स्मृतिम् ॥ यूयं संकुटितुं यस्मात् काले ऽस्मिन्नध्यवस्यथः,॥९१॥

जगादेत्यादि—धुवं अवश्यं स्मृतिं स्मृतिशास्तं नाध्यगीद्वं नाधीतवन्त. इति पक्षी वानरान् जगाद। '२४६०। विभाषा छुक्-सुडोः। २।४।५०।' इति विभाषा गाडादेशः। '२४६०। गाङ्कुटादिभ्यः—। १।२।१। इति सिचो डिस्मम्। '२३६२। धुमा-स्था—। ६।४।६६।' इतित्वम् '२२४९। घि च।८।२।२५।' इति सिच्चो छोपः। '२२४७। इणः षीष्वम्।८।३।७८।' इति मूर्धन्यः। यसाव्यमस्थिन् काले संकृटितुं अवसातुमध्यवस्थय अमित्रायं कुरुथ। कृटादित्वात् डिल्वम्॥

भयमेवावसातुं काल इति चेदाह-

५२६-नाऽयमुद्धिजितुं कालः स्वामि-कार्याद् भवादशाम् ॥ इत-मार्थे च्युते राज्याद् रामे पर्युत्सुके भृशम् ॥९२॥

नायमित्यादि—भवादशां युष्मद्विधानां स्वामिकार्योद्वद्विजितुं नायं कालः।
'२५३६। विजः-१९१२१।' इति क्षित्वम् । किमिति न भवतीति चेदाह-राज्याबयुते अष्टे रामे निर्वासितत्वात्। तत्रापि हतभार्ये स्थामत्यथं पर्युत्सुके सीतायाम् ॥

५२७-यदं प्रोर्णवितुं तूर्णं दिशं कुरुत दक्षिणाम्,॥

प्रोर्णवित्री दिवस् तत्र पुरी द्रक्ष्यथ काञ्चनीम् ॥९३॥

यद्धमित्यादि—दक्षिणां दिशं घोणंवितं आच्छाद्यितं छाद्यित्याम इति तुसुन्। तूर्णं शीधं यतं कुरुत । तत्थां दिवि पुरीं दृष्ट्यथ । काञ्चनी । '१५३२। मामिरचतादिश्यो अम् ।शश्यभा' प्रोर्णुवित्रीं क्षितव्यापिनीम् तृनि स्पस्।

दिव आकाशस्य । क्मीण पष्टी । '२४४७। विभाषोणों: ।१।२।३।' इति किस्वपक्षे उदङ् । अङ्क्तिपक्षे च गुणः । कुरुतेति '२२३४। सार्वधातुकमपित् ।१।२।४।' इति क्तिये विकरणस्य गुणो न भवति । तस्य चार्यधातुकत्वात् अक्तिये धातौ-र्गुणः। '२४६७। अत उत् सार्वधातुके ।६।४।११०।' इति उत् ॥

कालापकम् ९४-९७-

५२८-लङ्कां नाम्ना गिरेर् मूर्झि राक्ष्मेन्द्रेण पालिताम् ॥

निर्जित्य शकमानीता दहशुरु यां सुर-स्त्रियः ॥९४॥

ळङ्कामित्यादि—यां पुरीं नामा लङ्कां सुरिखयो दृदछः दृष्टवत्यः। '२२४२। असंयोगाल्लिद् कित्।शश्या' इति कित्वम्। तां यातेति वक्ष्यमाणेन सम्बन्धः। गिरेः सुवेष्ठस्य सूर्धि स्थितां राक्षसेन्द्रेण पालितामिति दुर्गमत्वमाख्यातम् । अर्क निर्जित्य सुरखिय आनीता इति च रावणस्य माहात्म्यम् ॥

५२९-बभूव या ऽधिशैक्टेन्द्रं मृदित्वेवेन्द्र-गोचरम्॥

कुषित्वा जगतां सारं सैंका शङ्के कृता भुवि. ॥९५॥ वभूवेत्यादि —अधिशैलेन्द्रं शैलेन्द्रस्य सुमेरोहपरि । सप्तम्यर्थेऽव्ययीभावः। इन्द्रगोचरमिन्द्रनिखयममरावत्याख्यं सृदित्वेव तिरस्कृत्वेव बभूव । इन्धि-भवतिम्यां च ।१।२।६।' इति किस्वम् । जगतां सारं कुषित्वा न निष्कुष्य । सैका भुनि कृता निर्मितेत्यहं राङ्के। तां यात मृदिखा कुषित्वेति '३३२२। न क्रवा सेट् । ११२११८।' इति किरवप्रतिषेत्रे प्राप्ते '३२२३। मृह-मृद्-। ११२। ७।' इत्यादिना कित्त्वम् ॥

५३०-अ-मृडित्वा सहस्राऽक्षं क्लिशित्वा कौशलैर् निजैः॥

उदित्वा ऽलं चिरं यलात् सैका घाला विनिर्मिता. ९६

अमृडित्वेत्यादि — सहस्राक्षमिन्द्रममृहित्वा असुविनं कृत्वा । निजैः आत्मी बें: कीशकै: चिरं क्रिशित्वा प्रथतं कृत्वा । उदिस्वा अभिधायान्तं पर्यासमेवं करिष्यामीति । यदात् महता प्रयासेन । सेका धात्रा विनिर्मिता । पूर्वविकत्त्वम् ॥ ५३१-मुषित्वा धन-दं पापो यां गृहीत्वा ऽवसद् द्विषन्,॥

तां रुदित्वेव शकेण यात लङ्कामुपेक्षिताम् . ॥ ९७ ॥

मुपित्वेत्यावि — भुषित्वा धनदं वैभवणं तसात्पुरं पुष्पकं च विमानमपह्न-तम् । पापः पापाचरणात् यां गृहीत्वा अवसत् उपितः । द्विषत् शत्रः । झ्केष द्वित्वेबोपेक्षित्तामवधीरिताम् । '२६०९। रुद-विद-। १।२।८।' इति किञ्चम् । सत्र चकारेण क्खेलानुवर्तते ॥

[💳] वंश्वराद ग्रहकेषरः । सनुष्यनमे सार्थन्ती राष्ट्रापी क्लाभिया है इकि बाब बाब ह

५३२-विदित्वा शक्तिमात्मीयां रावणं विजिघृश्ववः ॥

उक्तं पिपृच्छिष्णां वो मा सा भूत सुषुप्सवः. ॥९८॥

विदित्वेत्यादि — आत्मीयां शक्ति सामध्ये विदित्वा । पूर्वविकत्वं । रावणं विकिध्नवः विश्वहीतुमिच्छवः । सुषुप्तवः शयितुमिच्छवो मा सा भृत । न प्रमत्ता भवतेल्यः। रावणस्य बलीयस्त्वादिद्मुक्तं मया वो युष्माकं पिपृच्छिष्णां प्रष्टुमिच्छ्ननाम् । अत्र '२६०९। रुद्-विद । १।२।८।' इति सनः किरवे सम्प्रसारणम् । प्रच्छेः '२६११। किर्म्थ पञ्चम्यः । ७।२।७५।' इति हागमः ॥

५३३-ना ऽविविदिषुमंभ्येति सम्पद् रुरुदिषुं नर्म्,॥

किं मुमुषिषु-वद् यात द्विंषो ना ऽपचिकीर्षया, ॥९९॥

नेत्यादि—वेदितं ज्ञातुभिच्छुर्यो न भवति तं नरमविविद्धिष्ठं रुरुदिष्ठं रोदितुमेषणस्वभावं सम्पद्धिभूतिनीभ्येति नागच्छतीति वो मयोक्तमिति योज्यम् ।
किं न यात न गच्छत । मुमुषिषुवत् चौरवदित्यर्थः । पूर्वविकरवम् । द्विषः
शन्त्रोरपचिकीर्षया अपकर्तुभिच्छया । '२६१२। इको झल् ।१।२।९।' इति किरवे
गुणो न भवतीति '२६१४। अञ्झनगमां सनि ।३।४।१६।' इति दीर्घः। '२३९०।
ऋत इद्धातोः ।७।४।१००।' ॥

५३४-बुभुत्सवो द्वतं सीतां भुत्सीध्वं, प्रज्ञवीमि वः, ॥

मा च भुद्ध्वं मृषोक्तं नः, कृषीद्वं स्वामिने हितं १००

बुभुत्सव इत्यादि — बुभुत्सवो ज्ञातुमिच्छवः यदि सीताम्। बुधेः सम्मन्तात् '२६१३। इलन्ताम ।१।२।१०।' इति कित्त्वम् । '३२६। एकाचः।८।२।३७।' इति कित्त्वम् । '३२६। एकाचः।८।२।३७।' इति कित्त्वम् । मुपोक्तं मिथ्योक्तं वो उस्माकं भा च भुद्धं न जानीत, अपि तु सत्यम् । '२२८१। झलो झलि ।८।२।२६।' इति सिचो लोपः। '५२। झलां जङ्ग झलि ।८।१।५३।' कित्तं पूर्ववत् । अतो सूर्यं स्वामिने रामाय हितं कृषीद्वं कुरुतः। '२३६८। उस्र ।१।२।१२।' इति कित्त्वम् । '२२४०। इणः पीष्वं—।८।३।७८।' इति मुर्थन्यः ॥

५३५-समगध्वं पुरः शत्रोर्, मोदयध्वं रधूत्तमम्,॥

नोपायध्यं भयं, सीतां नोपायंस्त दशाननः. ॥१०१॥

समगध्वमित्यादि — इदमहमाशंसे यदुत शत्रोः रावणस्य पुरः अअतः समगध्वं संगता भवत । '२७९० । आशंसायां भूतवच ।३।३।१३२।' इति छुङ् । '२६९९। समो गम्यृच्छि—।१।२।३।' इति तङ् । '२७००। वा गमः ।१।३।२९।' इति सिचः कित्वे '१४२८। अनुदात्त—।६।४।६७।' इत्यनुनासिकळोपः । '२३।

१— '७७६। रिपो वरि-सपतारि-द्विषद्-द्वेषण-दुईदः । द्विद्-विषक्षा ऽहिताङमित्र-द-स्यु-शात्रव-शत्रवः ।' इति माठ अठ ।

१९० सहि-काट्ये-द्वितीयेऽधिकार-काण्डे लक्षण-रूपे द्वितीयो वर्गः,

इश हस्वादङ्गात् १८१२१०।' इति सिचो लोपः । मोदयध्वं रघूत्तमं हष्यत । तत्कार्यकरणात् । मा च भयमुपायध्वं सूचयत । भयं मा कार्ष्टित्यर्थः । '२६९५। आहो यमहनः ।११३१२८।' इति तद्ध । '२६९८। यमो गन्धने ।११२१९५।' इति तद्ध । यमो गन्धने ।११२१९५।' इति तद्ध । यमो गन्धनं हित सिचः कित्त्वे अनुनासिकलोपः । गन्धनं सूचनम् । अन्यथा युप्मासु गन्धितनयेषु नियतमसौ दशाननः सीतामुपायंस्त स्वीकृतवान् स्वात् । तस्य दुर्वृत्तत्वात् । '२७९०। आशंसायां भूतवच ।३१३१३३२।' इत्यनि-धाशंसायां लुङ् । '२७९०। उपाद्यमः स्वकरणे ।११३१५६।' इति तद्ध । स्वकरणं चात्र विचाहनमुक्तम् । '२७६०। विमाषोपयमने ।११२१६।' इति अकि-त्वपक्षे रूपम् ॥

५३६-ततः प्रास्थिषता ऽद्रीन्द्रं महेन्द्रं वानरा द्वतम् ॥ सर्वे किलकिलायन्तो, धैर्यं चाऽऽधिषता ऽधिकम् ॥

तत इत्यादि—ततः सम्पातिवचनानन्तरं सर्वे वानरा महेन्द्रं पर्वतं प्रास्थिन यत प्रस्थितवन्तः । धेर्यं चाधिकमाधिषत आहितवन्त आत्मनि । तिष्ठतेदंधा-तेश्च '२३८९। स्था-घ्वोरिष ।१।२।१७।' इति किच्चमित्त्वं च । तिष्ठतेः '२६८९। समय-प्र-विभ्यः स्थः १।३।२२।' इति तक् । किल्किलायन्तः किल्किलाच्चानं कुवाणाः । '८१। अव्यक्तानुकरण—।६।१।९८।' इत्यादिना हाच् तदन्तात् '२६-६८। लोहितादिहात्म्यः क्यप् ।३।१।१३।' । '२६६९ । वा क्यषः ११।३।९०।' इति परस्थेपदम् ॥

कुलकम् १०३−१०७−−

५२७-निर्कुं तस्य वर्तित्वा रम्ये प्रश्वेदिताः परम्॥ मणि-रह्नाऽधिशयितं प्रत्युदैक्षन्त तोय-धिम् ॥१०३॥

निकु इत्यादि — तस्य पर्वतस्य निकु ले छतादिपिहितस्थाने वर्तित्वा स्थित्वा। '३३२२। व क्वा से ह । ११२। १८।' इति कित्वप्रतिषेषः । परं प्रस्वे-दिता उच्चेरत्यक्तशब्दं कुर्वाणाः । '३०५२। निष्ठा शिष्ट्-। ११२। १९।' इति कित्व-प्रतिषेषः । तोयिषं प्रत्युदेश्वन्त दष्टवन्तः । छि रूपम् । की हशं मणिरवाधि-श्रितम् । '३०८७। को उधिकरणे च । ३।४।७६।' इति कः पूर्वविकित्वप्रति-षेषः । मणिर्थद्वामिति स्वीरवादाविष स्वशब्दस्य दष्टत्वात् एकपद्व्यमिचारे विशेषणविशेष्यभावः । तस्याधिशयितमवस्थानमित्यर्थः ॥

५३८-अ-मर्षितमिव झन्तं तटाऽद्रीन् सिळेटोर्मिभिः॥ श्रिया समग्रं द्युतितं मदेनैव प्रलोठितम् ॥ १०४॥



१—'२४८। निकुञ्ज-जुःशौ वा क्वीबे छतादिपिहितोदरे।'। २—'२५९। मकुर्य-चरक ऊर्मिर् वा स्तिवा बीचिरशोर्मिषु 'श्री ना० न०

अम्षित इत्यादि—सिंछलोर्मिसः कछोलेः। तटाद्रीन् तटस्थान् पर्वतान् वन्तं प्रत्युदेश्वन्त । अम्षितिमिव '३०५५। स्विस्तितिक्षायाम् ।१।२।२०।' इति कित्त्वप्रतिषेधः । पश्चात् नञ्जसमासः। श्रिया हेतुभूतया समग्रं संपूर्णम् । द्यति तमिति कर्तिरे तिष्ठा । यदि वा श्रिया कर्तृभृतया द्यतितं शोभितम् । यञ्चेत्य-श्याहृत्य तमैक्षन्तेति योज्यम् । एवं च कृत्वा '३०५६। उदुपधात्—।१।२।२१।' इत्यादिना मावे निष्ठायां विकल्पेन कित्त्वप्रतिपेधात् कित्त्वमुदाहृतम् । मदेनेव मत्तत्येव । श्रिया हेतुभूतया प्रकोठितं वूर्णितुमारव्यम् । '३०५३। आदिकर्म-णि—।३।४।७१।' निष्ठायामिकित्वमुदाहृतम् ॥

५३९-पूर्त शीतैर् नेभस्विद्धर् मन्थित्वेव स्थितं रुचः ॥

गुम्पित्वेव निरस्यन्तं तरङ्गांन् सर्वतो मुद्दः ॥१०५॥
प्तमित्यादि—नभस्तिर्वायुभिः शीतैः पूतं पवित्रीकृतम् । '३०५०॥
पूरुश्च ।७।२।५३)' इति निकल्पेनेद । अत एव पक्षे पूञः क्रवानिष्ठयोः किरवप्रतिषेघो ऽत्र न भवति । तत्र सेढिलानुवर्तते । रुचो दीसीर्प्रन्थित्वेव संदर्भ्येव
स्थितम् । '३३२४। नोपधारथफान्ताद्वा ।१।२।२३।' इति किरवप्रतिषेधपक्षे रूपम् । सर्वतस्तरङ्गान् गुम्फित्वेव निरस्यन्तं क्षिपन्तम् । नोपधादिति विकल्पेन
किरवप्रतिषेधः । यत्रेसध्याहृत्य तमक्षन्तेति योज्यम् ॥

५४०-विञ्चत्वा ऽप्यम्बरं दूरं स्वसिंस् तिष्ठन्तमात्मिन ॥ तृषित्वेवा ऽनिद्यं स्वादु पिवन्तं सरितां पयः ॥१०६॥

विश्वित्वादि — स्थित्यनिकमाद्म्बरं दूरं विश्वत्यातिकम्य । '३३२५। विश्व-तिद्यादि — स्थित्यनिकमाद्म्बरं दूरं विश्वत्यातिकम्य । '३३२५। विश्व-तिक्रियातिकम्य । स्विस्ति व्यक्ति स्वक्रंपे तिष्ठन्तम्। अत्र '१४०। नइक्रव्यप्रशान् ।८।३।७।' इति नकारस रूवम् । पूर्वस्य त्वनुनासि-कादेशः । तृषित्वेच तृषित इव भूत्वा । '३३२६। शृषि-मृषि-।१।२।२५।' इत्या-दिना [किरविवक्त्यः ।] प्रतिषेधः । तत्सिळिकस्य स्वादुत्वात् । सरितां पयः स्वादु पियन्तं अनिश्यमजसम् ॥

५४१-द्युतित्वा शशिना नैकं रहिमँभिः परिवर्धितम् ॥

मेरोर् जेतुमिवा SSभोगमुंचेर् दिद्योतिषुं मुहुः. १०७ श्रुतित्वेत्यादि शिश्वना नक्तम् रात्रौ श्रुतित्वा दीक्षिमता भूत्वा । रहिम-भिः परिवर्धितं वृद्धिं नीतं सन्तं तोयधिं मेरोराभोगं महत्त्वं जेतुमित मुहुरुचै। दिंबोतिषुं वर्धितुमिन्छुमित्यर्थः । अनेकार्थत्वाद्धात्नाम् । श्रुतित्वा दिधोतिषु-मिति '२६१७। रहो द्युपधात्—।१।२।२६।' इति किलाकित्त्वे । तत्र शुकारो-

१— '७० । नभस्त्रद्-वात-पवन-पवमान-प्रभक्षताः ।' २— (५३८) स्रोकस्थं टिप्पणं निलोकनीयम् । ३— '१४७१ दिवा ऽह्वीत्यथ दोषा च नक्तं च रजनाविष ।' ४— '११८ । किरणोक्षमयूखांऽद्य-गमस्ति छणि-रञ्चयः ।' इति सर्वत्र ना० अ० ।

१९२ भट्टि-काट्ये-हितीयेऽधिकार-काण्डे सक्षण-क्षे द्वितीयो वर्गः,

पधादिकारोपधाश्च रकम्ताद्धकादेधांतोः परौ क्लासनौ वा न कितौ भवत इति सुत्रार्थः ॥

५४२-विठीक्य सिठिटोच्चयानिधि समुद्रमेश्वेटिहान् श्वमन्-मकर-भीषणं समधिगम्य चा ऽधः पयः॥ गमाऽऽगम-सहं द्वतं कपि-वृषौः परिष्ठेषयन् गजेन्द्र-गुरु-विक्रमं तरु-मृगोत्तमं मारुतिम् ॥१०८॥

विक्रोक्षेत्यादि किप्तुष्याः किप्तुष्या मार्गतं हुतुमन्तं हुतं परिप्रेषयन् स्यसंजयन् । परिप्रपूर्वाद् '१२०२। हृष गतौ' हूलस्यात् हेन्नुमण्यम्तात् छिङ्क स्पम् । कि कृत्येत्याह् । विक्रोक्य सिळिलोस्यान् सिळिलोमीन् । अर्ध्व चीयत इति '१२६१। एरन् ।१।१।५।'। अधिसमुद्रं समुद्रस्योपिर । अर्थेळहान् दूर्मुख्यान् । अध्य पयः समधिगम्य ज्ञात्वा । की दशम् अमिद्रमेकरेमीं पणं भयानकम् । भीषयतीति नन्दादित्वाह्युः । गमागमसद्दं गमनागमनयोग्यं मारुतिम् । ग्रोन्द्रस्येव गुरुविकमो यस्य । तरुमुगेषु वानरेषूत्तमसित् । स्यमीति योगविभागात् सः ॥

॥ इति किस्वाधिकारः ॥

इति श्री-जयमङ्गलाऽऽल्या व्याख्यया समलंकते श्री-महिकान्यै-दितीयेऽधिकार-काण्डे लक्षण-कृषे दितीयः परिच्छेदः (वर्गः), तथा लक्ष्य-कृषे कथानकेसीताऽन्येष्णं नाम समसः सर्गः पर्मवितिः।

अष्टमः सर्गः।

आत्मवेपद्मधिकृत्वाह ---

५४३-अगाधत ततो व्योम हनूमार्नुरु-विश्रहः, ॥ अत्यशेरत तद्-वेगं न सुपर्णाठर्क-मारुताः ॥ १ ॥

अवाधितेति — ततो विसर्जनान्तरं हन्नान् समुद्रलङ्कनाथ व्योमाकाशम-गाधत प्रस्थितवान्। (४) गाए प्रतिष्ठा-किण्सयोः। (इत्यसालक्। (११५७) अहुदा-स्रक्षितः—।१।३।१२। (इत्यमुदानेत्वादारमनेपद्म्। उस्विश्वहः कामरूपित्वात् तद्व-नीमुत्यादितविषुलकायः। तस्य चोत्यतन्नो वेशं गरुडादिस्यवनाः नास्प्रोहन नामि-

२--- 'पचेऽसिन् गृथ्वी इत्तन् । तद्यक्षणं तु-- '९४। जन्सी जन्सन्यन्ता वसु-यहवित्रः व गृथ्वी सुरः ।' इति वृत्तरताकरे भट्टकेदार आह । २--- '१४२९। खुक्तले मूर्णं श्रेष्ठे सुर्वे सुर

द्मायितवन्तः । क्रित्वात्तङ् । '२४४२। द्मीको रुद्ध ।७।९।६।' '२४४१। द्मीकः सार्वधातुके गुणः ।७।४।२१।'॥

५४४-अभायत यथाऽर्केण सुप्रातेन शरन्-मुखे, ॥ गम्यमानं न तेनाऽऽसीदंगतं कामता पुरः. ॥ २ ॥

अभायतेत्यादि—यथा अर्केण सुमातेन सुप्रभातेन नीहाराद्यभावात्। शोभनं प्रातरनेनेति ।'८६०। सुमात-सुश्च—।५।४।३२०।' इति समासान्तनिपात-नम् । शरन्युखे शरदारम्भे । अभायत दीप्यते स्म । '२६०९। भाव-कर्मणोः ।३।३।३३। इति भावे तङ्। तहत्तेनाभायत । प्ररोऽप्रतो यद्केण गम्यमानमव-दृभ्यमानं वस्मेत्यर्थात् । कर्मण्यात्मनेपदम् । तेन हन्मता क्रामता गच्छता । शिति कम इति दीर्घत्वम् । नागतमासीत् अपि तु सर्वभेव गतमिति ॥ ५४५—वियति व्यत्यतन्वातां मूर्तीं हैरि-पयोनिधी, ॥

व्यत्यैतां चौत्तमं मार्गर्मर्केन्द्रेन्दु-निषेवितम्. ॥ ३ ॥

वियतीत्यादि हिरपयोनिधी हन्मस्समुद्रौ मूर्ती खदेहौ वियत्मकारो व्यत्मत्वातां व्यतिविक्षारितवन्तौ । तनोतेर्छङ् । '२६८०। कर्तरि कर्मव्यतिहारे । ११३।१४।' इत्यात्मनेपदम् । उत्तमं च मार्ग अर्केन्द्रेन्दुनिपेवितं व्यत्येतां व्यतिगन्तवन्तौ । इणः परस्य छङः कर्मव्यतिहार इत्यात्मनेपदं प्राप्तं '२६८९। न गति हिंसार्थम्यः ।११३।१५।' इति गत्यर्थत्वात् प्रतिषिद्धं, तेन तसस्तामादेशः । तम्र हरेर्गच्छतः पुरतो यस्मिन्वयत्पदेशे स्वमूर्ति विस्तारितुमवसरो भविता, तम्न प्रयोनिधिक्सिमाः स्वमूर्ति वितत्तार । पयोनिधेम्र्य वेषा तटं गच्छतो यत्र स्वमूर्ति वितत्तार । पयोनिधेम्र वेषा पयोनिधेर्यं मार्ग गन्तुमवसरो भविता, हरिहत्पत्य तं मार्ग गन्तुमैच्छत्। यं च हरेर्मार्ग गन्तुमवसरो भविता, हरिहत्पत्य तं मार्ग गन्तुमैच्छत्। यत्र यत्कियावसरे क्रियां करोति स तत्र तिक्कयाकारीत्युपचर्यते । यथा देवदत्तसाच्यां क्रियां यज्ञदत्तः कृषेत् तत्कारित्युच्यते । तत्रश्चतेरसंबन्धिन्याः क्रियायाः करणात् अन्यतर-संबन्धन्याश्चेत् सम्भवति कर्मव्यतिहारः ॥

५४६-व्यतिजिग्ये समुद्रोऽपि न धैर्यं तस्य गच्छतः॥

व्यत्यगच्छन् न च गतं प्रचण्डोऽपि प्रभञ्जनः. ॥४॥

ध्यतीत्यादि — तस्य हरेरीच्छतः स्वदेहस्याल्पतां कर्तुं योऽवसरो भावी तत्र समुद्रो नातिशयधेर्यं कृतवान् । तेन तस्य धेर्यं न जितं, तदानीं तस्योद्धतक्छो-छत्वात् । अपिशब्दाच हन्मानपि समुद्रस्य शान्तत्वं कर्तुं योऽवसरो भावी तत्र नातिशयधेर्यं कृतवान् । तेन तस्य धेर्यं वा न जितं, तदानीं तस्य विपुलकायस्वात्।

१---- '१३८३। यमाऽनिलेन्द्र-चन्द्राऽर्क-विष्णु-सिंहांऽशु-वाजिषु । शुकाऽहि-किम-भेकेषु इति ना कपिले त्रिपु । 'इति नानार्थेऽमरः ।

१९४ भट्टि काब्ये द्वितायेऽधिकार-काण्डे स्रक्षण रूप तृतीयो वर्ग ,

तदेवं हन्मतः समुद्रो हन्मानिष समुद्रस्य वैर्यं न व्यतिजग्ये नामिबभूव। एकवचनस्य प्रत्येकाभिसंबन्धात्। कर्मव्यतीहारे पूर्ववदात्मनेपदम् । '२३३१। सँखिटोर्जः। ।। ३।५०।' इति कुत्वम्। तस्य हन्मतो गतं गमनं प्रचण्डोऽपि महान् प्रभक्षनो वायुर्वे व्यत्यगच्छत् प्राप्तवान्॥

तस्यातिजवेन गच्छतः पथि राक्षसी संप्राप्ता तामसौ स्यापादितवानित्याह— ५४७—व्यतिघ्रन्तीं पथि घ्रन्तं राक्षसीं पवनाऽऽत्मजः॥

जघानाऽऽविश्य वदनं निर्यात् भित्त्वोदरं द्वतम् ५

व्यतीत्यादि — हनिष्याम्येनमिति राक्षस्यायो वधकरणावसरः तत्र व्यतिष्ठन् व्यतिष्ठन्तीं तस्येनां हनिष्यामीति यो वधकरणावसरः तत्र श्रन्तीं तदेवमितरे-तरिक्रयाकरणेन व्यतिश्वन्तीं राक्षसीम् । न गतीत्यादिना हिंसार्थेत्वादात्मनेपदश-तिषेधः । तां पवनात्मजो हन्मान् जवान । कथं, वदनमाविश्य उदरं भित्या द्वतं निर्यात् निर्गव्छन् । यातेः शतिर रूपम् ॥

५४८-अन्योन्यं सा व्यतियुतः

शब्दान् शब्दैस् तु भीषणान् ॥ उदन्वांश् चीनिलोुद्धतो स्वियमाणा च राक्षसी.॥ ६॥

अन्योन्यमित्यादि—अन्योन्यमित्यन्योन्यस्वेत्यर्थः। 'कर्मव्यतिहारे सर्व-नाम्नो हे भवतः स्त्रीनपुंसकयोरामभाव इति वक्तव्यम् ।' अन्योन्यस्य संब-निश्वभिः शब्दैः उदन्वद्राक्षस्यो शब्दान् भीषणानात्मीयान् व्यतियुतः स्म मिश्रि-तवन्तौ । '११०६। यु मिश्रणे'इत्यस्मात् '२७७८। स्वद्र स्मे ।३।२।११८।' इति श्रूते स्वद्र । '२६८२। इतरेतर—११।३।१६।' इत्यादिना कर्मव्यतिहार आत्मनेपद-प्रतिषेधः । तत्रोदन्वतः शब्दकरणाद्यो भीषणशब्दमिश्रणावसरो भावी तत्र राक्षसी त्रियमाणा शब्दान् भीषणानुदन्वच्छब्दैर्युयाव । राक्षस्याः शब्दकरणाद्यो भीषणशब्दमिश्रणावसरो भावी तत्रोदन्वाननिस्रोद्धृतः शब्दान् भीषणान् साथ्र-सीशब्दैर्युयाव ॥

५४९-न्यविक्षत् महा-ग्रीह-संकुरुं मकराऽऽलयम् ॥

सैका बहूनां कुर्वाणा नक्राणां स्वाऽऽशितम्भवम् ॥७॥

न्यविक्षतेत्यादि — महद्रिगाँहैः संकुछं मकराछयं समुदं न्यविक्षत प्रवि-ष्टंबती। '२६८३। नेर्विशः । ११३।१७।' इत्यात्मनेपदम् । '२३३६। शछ इगुषधां-द्रिटः क्सः ।३।१।४५।' बहूनां नकाणामेकापि सती स्वाशितम्भवं सुष्टु तृतिं कुर्वाणा। '२८६२। आशिते सुवः-।३।२।४५।' इति भावे खच् ॥

१ '२७५ **प्राहो**ज्यहारी, नक्त्स तु कुम्मीर ' **र**ति नाव म०

५५०-कृतेनोपकृतं वायोः परिक्रीणानमुंत्थितम् ॥

पित्रा संरक्षितं शकात् स मैनाकाऽद्विमैक्षत. ॥ ८॥

कृतेनेत्यादि — सहन्मान् समुद्राहु त्थितं मैनाकादिमैक्षतः । वागोरुपकृतमुपकारं कृतेन प्रत्युपकारेण परिक्रीणानं परिक्रयं विचिन्चन्तम् । '२६८४। परिइयचेभ्यः क्रियः । ११३१। १८।' इत्यक्ष्रीभिप्रायविषयमारमनेपदम् । पित्रा वायुना
रक्षितं शकात्। तेन हि पक्षच्छेदकाले महता वेगेन समुद्रं नीत्वा रक्षितं इतिः
श्रूयते ॥

५५१-खं पराजयमानोऽसार्चन्नत्या पवनाऽत्मजम् ॥

जगादाऽदिर् 'विजेषीष्ठा मयि विश्वम्य वैरिणम्.॥९॥ खमित्यादि—असावदिः उबत्या उन्नतया खंपराजयमानोऽभिभवन् पव-भारमञं जगाद । मयि विश्रम्य स्थित्वा वैरिणं शत्रुं विजेषीष्ठाः त्वमभिभूयाः । आशिषि लिङ् । उभयत्रापि '२६८५। वि-पराम्यां जेः ।१।३।१९।' इति तङ् ॥ ५५२-फलान्यांदरस्व चित्राणि, परिक्रीडस्व सानुषु, ॥

साध्वं नुक्रीडमानानि पर्य वृत्दानि पक्षिणाम्, ॥ १० ॥
फलानीत्यादि — चित्राणि नानाविधानि फलानि नादस्य गृहाण। '२६८६।
आकोदोऽनास्यविहरणे १११३१२०।'इत्यात्मनेपदम्। सामुष्ठ ममैकदेशेषुपरिकीडस्व विहर । पक्षिणां च वृन्दानि साधु शोभनं अनुक्रीडमानानि विहरन्ति सन्ति
पश्य । उभयत्र '२६८७। क्रीडोऽनु-सं-परिभ्यत्र १९१२११' इति तङ् ॥
५५३—क्षणं भद्राऽवतिष्ठस्य, ततः प्रस्थास्यसे पुनः ॥

न तत् संस्थास्यते कार्यं देक्षेणोरीकृतं त्वया. ॥ ११॥ सणमित्यादि—हे मद कल्याण ! क्षणमवतिष्ठस्व । ततः पश्चात्प्रस्थासंसे यास्यसे । यज्ञ कार्यं करणीयं दक्षेणानलसेन व्वया जरीकृतमङ्गीकृतं न च संस्थास्यते अपि तु निष्णत्सत एवेल्यंः । सर्वत्र '२६८९। समय-प्र विभ्यः स्थः । ११३।२२।' इति तङ्ग ॥

५५४-त्वयि नस् तिष्ठते भीतिस् तुभ्यं तिष्ठामहे वयम्, ॥

उत्तिष्ठमानं मित्राऽर्थे कस् त्वां न बहु मन्यते. ॥१२॥
त्वयीत्यादि—त्वयि विषये असाकं भीतिरस्ति। तेन संशये असाभिरन्यो
निर्णेता नान्वेषणीयः। किंतु नो ऽस्ताकं भीतिरेव निर्णयं प्रथन्ती त्विय तिष्ठते। '२६९० प्रकाशन-स्थेयास्ययोश्च । ११३।२३।' इत्यात्मनेपदम् । विवादपदनिर्णेता स्थेय उच्यते। तुभ्यं तिष्ठामहे चयमिति त्विय विषये असाकं चेतो

^{-- &#}x27;१०१६। दस्ते तु चतुर-पेशल-पटनः स्त्थान जण्णश्च ।'। २— '११६४। उत्तीकृतस्ररीकृतमङ्गीकृतमाश्चतं प्रतिज्ञातम्।' इति सर्वेत्र ना० अ०॥

वर्तत इति स्वाभित्रायम् । तुभ्यं तिष्ठामहे स्वाभित्रायं निवेदयाम इत्यर्थः । अत्र प्रकाशनं च स्वाभित्रायकथनम् । '५७२। श्वाच-हुङ्-स्था-हापां ज्ञीपस्यमानः ।१। ४।३४।' इति सम्प्रदानसंज्ञायां चतुर्था । कस्मादेवं मां श्वावस इति चेदाहः । उत्तिष्ठमानं यतमानम् । '२६९१। उदोऽन्ध्वंकर्मणि ।१।३।२४।' इत्यात्मनेपदम् । कस्त्वां न बहु मन्यते न श्वावते ॥

प्पप-ये सूर्यमुपतिष्ठन्ते मन्त्रैः संध्या-त्रयं द्विजाः, ॥ रक्षोमिस् तापितास् तेऽपि सिद्धिं ध्यायन्ति तेऽधुना.

य इत्यादि—ये द्विजा मन्नैः करणभूतैः सूर्येमुपतिष्ठन्ते प्रत्युपासते। '२६-९२। उपानमन्त्रकरणे १९।३।२५।' इत्यात्मनेपदम्। संध्यात्रयं त्रिसन्ध्यम्। असं-स्तसंयोगे द्वितीया। तेऽपि रक्षोभिस्तापिताः उपदुताः अधुना ते सिद्धिं ध्याय-नित । किं पुनरहं यसे पितुः सुहृत्॥

तदेव दर्शयन्नाह-

५५६-अ-व्ययमुंदतिष्ठस्त्र वीर! वायोरहं सुहत्,॥

रविर् वितपतेऽत्यर्थमाश्वस्य मयि गम्यताम्. ॥१४॥

अन्यत्र इत्यादि—हे वीर ! अन्यत्रमनाकुलं मय्युपतिष्ठस्व समिहितो भव। '२६९३। अकर्मकाच ।१।३।२६।' इत्यात्मनेपदम् । यतो वायोस्तव पितुरहं सुहृत् । रविरत्यर्थं वितपते दीप्यते । '२६९४। उद्-विभ्याम्—।१।३।२७।' इत्यान्मनेपदम् । तत्राकर्मकादिति वर्तते । तसादाश्वस्य विश्वभ्य गम्यतास् ॥ ५५७—तीत्रमुत्तपमानो ऽयम-शक्यः सो दुर्मातपः, ॥

आझान इव संदीप्तैरंलातिः सर्वतो मुहुः. ॥ १५॥

तीव्रमित्यादि—तीवं सुष्ठु उत्तपमानो दीप्यमान आतपः सोहुमशक्यः।
पूर्वेवदात्मनेपदम्। अलातैः उत्सुकैः संदीष्ठैः सर्वत आञ्चान इव ताडयन्निव।
'२६९५। आङो यमहनः।१।३।२८।' इत्यविवक्षितकर्मकत्वादात्मनेपदम् '२३६३।
गम-हन-।६।४।९८।'इत्युपधालोपः '३५४। हो हन्तेः-।७।३।५४।' इति कृत्वम् ॥

५५८—संशृणुष्व कपे ! मत्कैः संगच्छस्व वनैः शुभैः, ॥

समारन्त ममा ऽभीष्टाः संकल्पांस् त्वय्युपागते. १६

संश्राणुष्वेत्यादि—हे कपे ! संश्राणुष्व आकर्णय । '२६९९। समो गस्यू-च्छि-।।।२।२९।' इत्यादिविवक्षितकर्मकत्वादात्मनेपदम् । श्रुमैः शोभमानैः । इगुपचलक्षणः कः । वनैर्मत्केः मत्स्वामिकैः । अहं स्वामी चेषामिति '१८७७।

१—'१२० । रोचिः शोचिर्रमे छीने, प्रकाशो द्योत आतपः।'। २—'९१५। अथ स्नी स्वादंक्षारो, ऽस्त्रात्मुल्मुकम्।'। ३—'१५५। धीर् धारणानती मेथा, संकत्य कर्म मानसम् इति सर्वत्र ना० अ०

स एवां मासणीः।पाराण्टां इति कः । '१३७३। प्रत्ययोत्तरपदयोश्च । णाराप्टां इति मदादेशः । संगच्छस्य संगतो भव । पूर्ववदात्मनेपदम् । समारन्त ममा-भिष्ठा चे संकल्पा अभिप्रायाः 'कदा नु से सुहत्तया वा कश्चि-देश्यति यस्याहसुपयोगी स्थाम्' इति ते समारन्त आगताः त्वच्युपागते सति । अर्तेर्लुङ पूर्ववदात्मनेपदम् । '२३८२। सर्ति-शास्त्यर्तिभ्यश्च ।३।१।५६।' इस्यङि '१४०६। ऋ-दशोऽङ गुणः ।७।४।१६।' । '१२२५४। आडनादीनाम् ।६।४।७२।' भाषाविषयस्य प्रयोगः ॥

न चैचं मिथ्या वायुर्भे सुहृदिसाह —

५५९—के न संविद्रते, वायोर् मैनाकाऽद्विर् यथा सर्खा,॥ यहार्दुपाह्रये पीतः, संह्रयस्त्र विवक्षितम् ॥१७॥'

क इत्यादि—वायोमेंनाकादिर्थथा सखेति के न संविद्दते जानन्ति । वेतेः पूर्ववदास्मनेपदम् '२७०१। वेत्तेविभाषा ।७।१।७।' इति हद । तसात् । प्रीतः सन् अहं यतादुपाह्यये भवन्तमाह्ययामि । ततः संह्वयस्व कथय विवक्षितमभि-भेतम् । '२७०६। नि समुपविभयो हः ।१।३।३०।' इत्यक्त्रीममाचे हद्दहोदोरा- समेपदम् । ततो ऽकर्मकादिति निवृत्तम् । सामान्येन विधानम् ॥ ५६०—द्योमिर्यावयमानं तमेवोचद् भूधरं कृपिः ॥

उपकुर्वन्तर्मत्यर्थं प्रकुर्वाणोऽनुँजीवि-वत्. ॥ १८॥

द्यामित्यादि — बाप्तिवाकाशिमवाह्मयमानं महत्त्वा स्पर्धमानम् । २००४। स्पर्द्धायमानः । ११३।११ इत्यास्मनेपदम् । अत्यर्थमुपकुर्वन्तं आतिथ्येन तमीदर्शं भूधरमनोचत् । कपिः प्रकुर्वाणः सेवमानो ऽनुजीविवत् सृत्यवत् । '२००५। गन्धन—। १।३।३२।' इत्यादिना सेवने तङ् ॥

५६१-'कुल-भार्या प्रकुर्वाणमंहं द्रष्टुं दशाननम् ॥

यामि त्वरा-वान् शैलेन्द्र!, माकस्यचिदुंपस्कृथाः.१९

कुलमार्यामित्यादि — अहं दशाननं द्रष्टुं यामि कुलमार्या प्रकृवीणं कुल-नारीमिन्नगच्छन्तम्। तस्यां सहसा प्रवर्तमानमित्यर्थः। साहसिक्ये तस् । त्य-रावान् त्वरायुक्तः। अतः हे शैलेन्द्र! मा कस्यचिदशनपानादिकस्य उपस्कृथाः अतिशयवन्तं मा कार्षीरित्यर्थः। माङि छुन्। प्रतियत्वे तस् । '२५४७। तनादि-भ्यस्त-थासोः। २१४।७९।' इति सिचो छुन्। '२५५२। उपात्मितयत्न-। ६१६। — ३३९।' इति सुद् । कस्यचिदिति '७६४ कृषः प्रतियत्वे । २।३।५३।' इति कर्मणि पद्या।

१— '७७७ । वयस्यः लिग्धः सवया, अध मित्रं सखा सहत् ।' । २— '८० । द्यो-दिवा दे लियामभ्रं न्योम पुष्करमम्बरम् । नभोऽन्तरिक्षं । गगनमनन्तं सुरवर्त्तं लम् । विवद् विष्णुपदं वा तु पुंस्याकाश-विद्यायसी ॥' ३— '७७४। षण्डो वर्ष-वरस् तुल्यो, सेवकार्थ्यं सुल्योविनः ।' इति सर्वत्र ना० अ०।।

१९८ भट्टि-काठ्ये--दितीयेऽधिकार-काण्डे लक्षण-रूपे तृतीयो वर्गः,

५६२-योऽपचके वनात् सीतामधिचके न यं हीरिः,॥ विकुर्वाणः स्वरानंद्य वलं तस्य निहन्म्यहम्.॥२०॥

य इत्यादि—यः सीतामपचके अभिवभूव। अवशेषणे तङ् । वनादिति वनमुपगम्य। व्यव्लोपे कर्मणि पञ्चमी। यं हरिरिन्द्रो नाधिचके न प्रसेहे। '२७०६। अधेः प्रसहने। ११३१३३।' इति तङ्। तस्य वर्लं द्शाननस्य सामर्थं• म्। कीडशं स्वरान् विकुर्वाणं विविधान् स्वरान् कुर्वाणम्। '२७०७। वेः शब्द-कर्मणः। १११२१३॥' इति तङ्। तस्य दशाननस्य वर्लं निहन्मि॥ ५६३—विकुर्वे नगरे तस्य पापस्या ऽद्य रघु-द्विपः, ॥

विनेष्ये वा प्रियान् प्राणानुंदानेष्येऽथवा यशः. २१

विकुर्वे इत्यादि—तस्य रघुद्विचो रामशत्रोः पापस्य नगरे पुर्या अहमध्य विकुर्वे विविधं चेष्टे। '२७१८। अकर्मकाच ।१।३।४५।' इति तङ् । तत्र विकुर्वाणो यदि वा प्रियानपि प्राणान् स्वास्यधे विनेष्ये अपनेष्यामि । '२७०९। संमानन —।१।३।३६।' इत्यादिना व्यये तङ् । यतो धर्मादिषु विनियोगो व्ययः । यशो वा उदानेष्ये अर्धं नेष्यामि तस्यापकारकरणात्। अत्रोत्सक्षने तङ् । उत्सक्षन- सुरक्षेपणम् ॥

५६४-विनेष्ये कोधमंथवा क्रममाणोऽरि-संसंदि॥'

इत्युक्त्वा खे पराकंस्त तूर्णं सूनुर् नमस्वतः. ॥२२॥

विनेष्य इत्यादि — यदि वा कोधमात्मनो विनेष्ये अपनेष्यामि । '२७२०। कर्नृस्थे च-। शश्यः। इति तङ् । कर्नृस्थस कोधकर्मणो ऽशरीरत्वात् अत्र स्ययो न संभवतीति । अरिसंसदि शत्रुसभायां क्रमम । णः अप्रतिबन्धेन प्रवर्तन्मानः । '२७१९। वृत्ति-सर्ग-। शश्यः। इत्योदना वृत्तौ तङ् । वृत्तिरप्रतिबन्धः। इत्येवमुक्त्वा सूर्जुनभस्ततः वायोस्तनयः से तूर्णं पराकंस शीष्टमुत्सेहे ।'२७१२। उप-पराभ्याम् । शश्यः। इत्यनेन सर्गे तङ् । सर्ग उत्साहः ॥

५६५-परीक्षितुमुंपाकंस्त राक्षसी तस्य विक्रमम्॥

दिवर्माक्रममाणेव केर्तुं-तारा भय-प्रदा. ॥ २३ ॥

परीत्यादि—तस्य हन्मतो विक्रमं शौर्यं परीक्षितं राक्षसी उपाकंसा उत्सेहे
पूर्ववत्तङ् । दिवमाकसमाणेव । यथा केतुः स्वभीतुः तारा नभस्युद्गच्छति भर्यकरा । '२७६३। आङ उद्गमने ।१।३।४०।' इति तङ् । तत्र हि ज्योतिरुद्गमन
इत्युक्तम् । केतुतारायाश्च ज्योतिःस्वभावत्वात् ॥

१—(५४५) क्षोकस्थं टिष्पणमालोचनीयम् । २—(७२०। समज्या परिषद् गोष्ठी समा-समिति-संसदः ।'। १—(५१९) क्षोकस्थं टीकनं विलोवयताम् । ४— ११२६७ महमेदे चन्ने केतु , पाधिने तनये सुत 'इति सर्वत्र नाण्यक

५६६-जले विक्रममाणाया हनूमान् शत-योजनम् ॥

आस्यं प्रविक्य निरयादंणुभूया ऽप्रचेतितः, ॥ २४ ॥

जल इत्यादि—विक्रममाणायाः पद्मां विचरन्याः । '२७१४। वेः पाद्वि-हरणे । १।३।४१।' इति तङ् । जलप्रहणात् गतिविशेषं द्शेयति । आस्यं शतयोजनं शतं योजनानि यस्य प्रमाणतः । तदण्भूय सूक्ष्मीभूय प्रविश्य निरमात् निर्गतः। उदरं विदार्थेत्यर्थोत् । अप्रचेतितः अविज्ञातः॥

५६७-द्रष्टुं त्रक्रममाणो ऽसौ सीतामंग्भोनिधेस् तटम् , ॥

उपाकंस्ता ऽऽकुलं घोरैः क्रममाणैर् निशाचरैः ॥२५॥

द्रष्टुसित्यादि — असौ हन्मान् सीतां द्रष्टुं प्रक्रममाणः आरभमाणः आदिकः मेणि यथा भोकुं प्रक्रमते इति । उद्धेस्तटमुपाकंस्त गन्तुं प्रारब्धवानित्यर्थः । ततश्र प्रोपबोरादिकमिणि समानार्थत्वात् '२७१५। प्रोपाभ्यां समर्थाभ्याम् ।११३। ४२।' इति तङ् । घोरैः रौदैः। निशाचरैराकुछं व्यासम् । तटं क्रममाणेः इतस्ततौ गच्छद्भिः । '२७१६। अनुपसर्गाद्वा ।११३।४३।' इति तङ् ॥

५६८-आत्मानमंपजानानः शैश-मात्रो ऽनयद् दिनम्,॥

ज्ञास्ये रात्राविति प्राज्ञः प्रत्यज्ञास्त किया-पेटुः, ॥२६॥

आत्मानमित्यादि — मा कश्चिददाशीदिति तथाविधमात्मानं शिरामव-जानानः अपहुवानः। '२७१७। अपह्नवे झः । ११२१४४।' इति तङ् । यो हि शस-मान्नो भूत्वा स्थितः तेन कथमात्मा लोके नापलपितः सात्। अनयितं अगम-यद्विसम् । ज्ञास्ये रात्राविति पत्यज्ञास्त प्रतिज्ञातवानिस्थर्थः। '२७१९। सं-प्रति-भ्यामनाध्याने । ११३१६।' इत्यात्मनेपदं लुको भवति । आध्यानं चोत्कण्ठनम् । ज्ञास्ये इत्यकर्मकाचेत्यकर्मकित्रयावचनत्वादात्मनेपदम् । प्राज्ञः कियापद्धरिति बुद्धिकोशलं कर्मकीशलं च दर्शयति॥

५६९-संजानानान् परिहरन् रावणाऽनुचरान् बहून् ॥

लङ्कां समाविशद् रात्रौ वदमानोऽरि-दुर्गमाम् ॥२०॥

संजानानानित्यादि — रावणस्यार्थेषु कार्येषु ये चरन्तीति '२९३०। चरेष्टः । ११२११६।' तान् बहून् संजानानान् चेतयतः परिहरन् । अनाध्याने तङ् । रात्रो छक्कां समाविशत् प्रविष्टवान् । अरिदुर्गमां राश्चसदुर्गमाम् । वदमानो भासमा- नः । '२७२०। भासनोपसंभाषा-। ११३१४७।' इत्यादिना आत्मनेपदम् ॥

५७०-कंचिन् नोपावदिष्टा ऽसौ, केनचिद् व्यवदिष्ट न,॥

शृण्वन् संप्रवदमानाद् रावणस्य गुणान् जनात् ॥२८

१—(५२९। गन्धर्वः द्वारभो रामः समरो गवयः द्वाद्याः। दित ना० अ० ॥ २—(५५६) स्रोकस्थं टीकनं द्रष्टव्यम् ।

२०० भट्टि-काव्ये —द्वितीयेऽधिकार-काण्डे लक्षण-कृषे तृतीयो वर्गः,

कंचिदित्यादि —असौ प्रविष्टः सन् न कंचिदुणावदिष्ट उपसान्तिवतवान् । उपसम्भाषायां तङ् । केनचिद्यवदिष्ट न, न भाषितवान् । विभतौ तङ् । विमतिर्गानामितः । श्रुण्वन् आकर्णयन् । जनात् संप्रवद्मानात् संभूय भाषमाणात् । रावणस्य संवन्धिनो गणान् । '२७२१। व्यक्तवाचाम्—।१।३।४८।' इत्यारमनेपद-म् । जनानां व्यक्तवाक्तवात् ॥

५७१-जैल्पितोत्कुंष्ट-संगीत-प्रनृत्त-स्मित-वैल्गितैः ॥ घोषस्योन्ववदिष्टेव लङ्का पूत-क्रतोः पुरः. ॥ २९॥

जिंचितत्यादि—प्तक्रतोरिन्द्रस्य या प्ः तस्या अमरावत्याः संबन्धिनो घोषस्यान्वविद्धेव सङ्का । अनुशब्दः सादृश्ये। सदृशं वादं कृतवती । तैर्जिल्पिन तादिभिः । उभयत्रापि जिल्पतादिघोषस्य तुल्यःवात् । सङ्केति तत्स्थो जन उच्यन् ते । तेन व्यक्तवागिवषयत्वात् '२७२२। अनोरकर्मकात्—।१।३।४९।' इति तङ् । तत्र व्यक्तवाचामित्यनुवर्तते न समुद्धारण इति ॥

५७२-ऐद् विप्रवदमानैस् तां संयुक्तां ब्रह्म-राक्षसैः ॥ तथाऽवगिरमाणैश् च पिशाचैर् मांस-शोणितम्, ३०

ऐदित्यादि—तां ब्रह्मशक्ष्मेः संयुक्तां हनूमानैत् जगाम । इणो छिङ रूपम् । वित्रवद्मानैः परस्परविरुद्धार्थाभिधायिभिः । वित्रछापात्मके व्यक्तवाचां
समुचारणे '२७२३। विभाषा वित्रछापे । १।३।५०।' इति तक् । तथा पिशाचैमांस्त्रोणितमविपरमाणेः भक्षयिः संयुक्ताम् । गिरतेरभ्यवहारार्थत्वात् २७२४। अवाद् प्रः । १।३।५१।' इति तक् । मांस्त्रोणितमिति '९१०। जातिरपाणिनाम् । १।४।६।' इत्येकवद्भावः ॥

५७३-यथा-स्वं संगिरन्ते सा गोधीर्षु स्वामिनो गुणान्, ॥ पान-शौण्डाः पथः क्षीवा वृन्दैर्हदचरन्त च. ॥३१॥

यथास्त्रमित्यादि — वहाराक्षसाः पिशाचाश्च यथास्त्रमात्मीयस्य स्त्रामिनौ गुणान् गोष्ठीषु गोष्ठीमध्ये संगिरन्ते सा अभ्युषगतवन्तः । '२७२५। समः प्रति- ज्ञाने । १।३।५२'। इति तङ् । पानशीण्डाः पानसक्ताः क्षीवा मक्ताः सन्तः पयो- मार्गानुद्चरन्त उत्क्रस्य गच्छन्ति सा । '२७२६। उद्श्वरः सकर्मकात् । १।३।५३।' इति तङ् । वृन्दैरिति सम्भूयेत्यर्थः ॥



१—'(११५३। उक्तं भाषितमुदितं जिल्पितमाख्यातमिशिहतं लिपितम्।' २—
'(२३५। क्रन्दितं रुदितं कुछं, जूम्भस् तु त्रिषु जूम्भणम्।'। ३—।'८१४। आस्केनिंदतं थीरितकं रेचितं चिशितं द्वतम्।'४—(५६४) क्षोकस्थं टिप्पणं विलोक्यताम्।
'५—'१०६८ मसे शीणद्धी कट-शीना कामुके कमिता ज्तुक कि सर्वतं ना० स०

५७४—यानैः समचरन्ता ऽन्ये कुञ्जराऽश्व-रथाऽऽदिभिः,॥ संप्रायच्छन्त वेन्दीभिर्रन्ये पुष्प-फलं श्रमम्. ॥३२॥

यानैरित्यादि — अन्ये यानैः कुझरादिभिः समचरन्त संचरन्ते सा ।'२७-२७। समस्तृतीयायुक्तात् ।१।३।५४।' इति तङ् । अन्ये बन्दीभिरानीताभिः । सम्प्रदाने तृतीया । अज्ञिष्टव्यवहारे तृतीया चतुर्थ्येये भवति इति वचनाद्वन्दी-भ्य इत्यर्थः । पुष्पफलं शोभनं संप्रायच्छन्त ददति सा । '२७२६। । दाणश्च सा चेचतुर्थ्येथे ।१।३।५५।' इति तङ् । पुष्पफलमिति जातेरेकवद्वावः ॥

५७५-कोपात् काश्चित् प्रियैः प्रत्तर्मुपायंसत नाऽऽसैवम् ,॥ प्रेम जिज्ञासमानाभ्यस् ताभ्योऽऽश्चरत कामिनः३३

कोपादित्यादि — काश्चित् क्षियः कोपात् अन्यक्षीगमनजनितात् । आसवं मद्यविशेषं नोपायंसत न स्वीकृतवत्यः १२७३ । विभाषोपयमने ११११६। दृष्टा-किरवपक्षे रूपम् । '२७२९। उपाद्यमः स्वकरणे १११३।५६।' इति तङ् । पाणिप्रहण-पूर्वेस्य स्वीकरणस्य तम्र स्थितत्वादौपचारिकमत्र स्वीकरणं दृष्टव्यम् । '२७४२। समुदाङ्भ्यो यमो प्रन्थे ।११३।७५।' इति वा तङ् । उदाङ्पूर्वस्य यम आदाना-थेत्वात् । अवसरप्राप्तं स्वद्वयमुणाहृतं स्यात् । प्रियैः प्रत्तं दत्तम् । '३०७८। अच उपसर्गात्तः ।७११४७।' प्रेम जिज्ञासमानाभ्यः किमस्मासु प्रेमास्ति वा न वेति कृतकोपप्रकाशेन ज्ञातुमिच्छन्तीभ्यः । '२०३ १। ज्ञान्श्र-स्मृ-दशां सनः ।११३।५७।' इति तङ् । ताभ्यो योषिच्यः । कामिनः अशप्सत न मे त्वद्न्या वियास्तीति वदीयशरिरस्पशंनेन शपथं चकुः । शप उपारुम्भने इत्यात्मनेपदम् । वाचा उपां रूम्भनं शरीरस्पर्शनम् '५७२। श्राध-ह्र—११।४१३४।' इत्यादिना सम्प्रदानसंज्ञाय-चतुर्थो । तासां ज्ञापयितुमिव्यमाणस्वात् ॥

५७६-प्रादिदक्षत नो नृत्यं, ना ऽग्रुश्रूषत गायनान् ॥ रामं सुस्मूर्षमाणोऽसौ कपिरू विरह-दुःखितम्. ॥३४॥

प्राद्दिक्षतेत्यादि — असौ कपिरुंद्वायां नो नृखं प्राद्दिक्षत । गायनान् गायकान् । '२९०८। गस्थकन् ।३१११४६।' ण्युद् च । नाञ्चश्र्वत न श्रोतुसिष्ट-वान् किमिति रामं विरहदुः खितं सुस्मूर्षमाणः सार्तुमिष्टन् । सञ्चन्तेभ्यः पूर्व-वदात्मनेपदम् । '२६१५। अञ्चनगमां सनि ।६१४११६।' इति दीर्यत्वम् । '२४९४। उदोष्टापूर्वस्य ।७१११०२।' इत्युक्तम् ॥

१—'८२३। सर्वं स्थाद् वाहनं **धानं** शुग्यं पत्रं च धोरणम्।'। २—'८६३। स्थुर् मागधास् तु मगधा धन्दिनस् स्तुतिपाठकाः।'। ३—'१०३९। मैरेयमासवः सीधर् मेदको जगळ समौ।' इति सर्वत्र ना० अ० '।

२०२ महि-काट्ये दितायेऽधिकार काण्डे लक्षण रूप तृतीयो वर्ग ,

५७७-अनुजिज्ञासतेवाऽथ लङ्का-दर्शनमिंन्दुना ॥

तैमोऽपहविमुक्तांऽशु पूर्वस्यां दिश्युंदैयत. ॥ ३५ ॥

अन्वित्यादि अथैतिसन् प्रसावे इन्दुना चन्द्रेण उदैयत रहितम् । इणो भावे छि रूपम् । पूर्वेत्यां दिशीति पूर्णेनेति दर्शयति । दश्यते यत् दर्शनं रूपम् । छङ्काया रूपमनु जिज्ञासतेव । पूर्वेण प्राप्तस्यात्मनेपदस्य '२७३२। मानोर्ज्ञः ।११३।५८।' इति प्रतिषेधः । तमोपहास्तमोविध्वंसमानाः विमुक्ताः प्रीरता अंशवो यसिन् उदय इति ॥

५७८-आशुश्रूषन् स मैथिल्या वार्ता हैम्येषु रक्षसाम् ॥

शीयमाना ऽन्धकारेषु समचारीदं-शङ्कितः. ॥ ३६॥

आशुश्रूषित्तत्यादि — स किपैमेथिव्याः सीताया वार्तामाञ्चश्र्वन् श्रोतुप्ति-च्छन्। '२७३३। प्रत्याङ्भ्यां श्चवः ।१।३।५९।' इत्यात्मनेपद्प्रतिषेषः । रक्षसां इम्येषु गृहेषु । समचारीत् संक्रान्तवान् । '२३३०। अतो व्रान्तस्य ।७।२।२।' इति वृद्धिः । शीयमानान्धकारेषु अपगच्छत्तमःसु । '९१२। शट्ट शातने'। '२३६२। शदेः शितः ।१।३।६०।' इति तङ् । '२३६०।पा-ध्रा-।७।३।७८।' इति शीयादेशः । अशङ्कितः शङ्कारहितः ॥

५७९-शत-साहस्रमारक्षं मध्यगं रक्षसां कपिः॥

द्दर्श, यं कृतान्तोऽपि सियेताऽऽसाद्य भीषणम्,३७

कृतित्यादि—मध्यमं मध्यप्रकोष्टगतं आरक्षं गोपकं शतसाहकं रक्षसां लक्षमात्रं
दृद्शं विक्षोकितवान् । शतसहकं परिमाणमस्येति प्राग्वतेः संख्यापूर्वपदानां तद-न्त्यप्रकणमञ्जकीति वचनात् । '१६९२। शतमानविंशतिक—।५।१।२०।' इत्यादिनाः अणि । '१७५२। संख्यायाः संवत्सर—।७।३।१५।' इत्युत्तरपद्वृद्धिः। भीषणं भयामकं आसाद्य प्राप्य । कृतान्तो ऽपि यमो ऽपि स्रियेत प्राणान् संत्यवेत् । '२५३८।
स्रियतेर्लुङ्ख्ङोश्च ।१।३।६१।' इति तक् । तत्र हि शित इत्यनुवर्तते ॥

५८०-अध्यासिसिपमाणे ऽथ वियन्-मध्यं निशा-करे ॥ कासांचके पुरी सीधैरतीवोद्धासिभिः सितैः ॥३८॥

अधीत्यादि — अथ निशाकरे चन्द्रमसि वियन्मध्यं अध्यासितुमारोद्धमिन्छति सिति । '२७३४। पूर्ववत्सनः ।१।३।६२।' इत्यात्मनेपद्म् । अस्तेरनुदात्तेस्वमात्म-नेपद्मिमत्तम् । तेनैव सञ्चन्तादिष भवति । अत्र सिन इटि छते अजादेर्हिताय-

१— ११४४७। व्यूहो वृन्देऽव्यंहिर् वृत्रे ऽप्यंभीन्द्रकीस् तमोपहाः ।' २— '३२९। इस्योऽदिः धनिनां वासः, शासादो देव-भृगुजाम्।' ३— '६६ कृतान्तो समुना न्नाता स्थानी यमस्य यम ' ४ '३२९ सौघोऽसी कारिका दित सर्वत्र ना० व०

स्येति द्विवचनम् । पुरी छङ्का कासांचके शोभते सा । सौधेः सौधानां ज्योरक्षया चोद्गास्यमानत्वात् ।'२२४०। आम्प्रत्ययवत्–।१।३।६३।' इति तङ्क ॥

५८१-इन्दुं चैवक-संक्रान्तर्मुपायुङ्क यथाऽमृतम् ॥

प्रयुञ्जानः प्रिया वाचः समाज<u>ा</u>ऽनुरतो जनः ॥३९॥

इन्दुमित्यादि—एवं शोभितायां छङ्कायां समाजानुरतः पानगो छीरतो जनः चषकसंकान्तं सद्यभाजने प्रतिविम्बेन संक्रान्तमिन्दुमुपायुङ्क उप भुक्तवान् । प्रतिविम्बावच्छित्रस्य मद्यस्योपलक्ष्यमाणत्वादेवमुक्तम् । यथाऽसृतं असृतमिव । प्रिया अनुकूळा वाचः प्रयुक्तानः अभिद्धानः । २७३५। प्रोपाभ्याम्—।१।३। ६४।' इति तङ् ॥

५८२-संक्ष्णुवान इवोत्कण्ठार्मुपाभुङ्क सुरामलम् ॥

ज्योत्स्रायां विगलन्-मानस् तरुणो रक्षसां गणः४०

संश्णुवान इत्यादि—रक्षसां तरुणो गणः उत्कण्टां प्रियासु संसारणं संश्णुवान इव समुत्तेजयन्निव ।२७३६। समः १णुवः ।११३।६५।' इति तङ् । जगोत्मायां सुरां अलं पर्याप्तसुपाभुङ्क अभ्याहतवान् ।'२७३७। सुजो उनवने १११३।६६।' इति तङ् । विगळनमानः ॥

५८३–मध्वंपाययत स्वृच्छं सोत्पलं दयिताऽन्तिके ॥ आत्मानं सुरताऽऽभोग-विश्रम्भोत्पादनं मुहुः ॥४१॥

मध्वत्यादि — की दशं मधु स्वच्छत्वात् सोत्पलतया सुरभिष्वात् शोभनं जातं यतः स्वयमात्मानं मुहुरपाययत पायितवत् । '२७३८। णेरणी — । ११३। ६७।' इति तङ् । दयितान्तिके दयितस्य समीपे । सुरताभोगः सुरतिमर्दः तत्र विश्वम्भः तस्योत्पादनं जनकम् । उत्पादयतीति '२८४१। कृत्यल्युटो बहुलम् । १३३।११३।' इति कर्तरि ल्युट्ट ॥

५८४-अभीषयन्त ये शैंक राक्षसा रण-पण्डिताः॥

अविस्मापयमानस् तान् कपिराटीद् गृहाद् गृहम्,४२

अभीषयन्तेत्यादि — एवं रक्षःसु यथाययं चेष्टमानेषुं ये राक्षसा रणपण्डिताः संग्रामितज्ञाः शक्रमभीषयन्त भीषितवन्तः । '२५८४। भी-स्म्योहेतुभये । ११३। ६८।' इति तङ् । '२५९५। भियो हेतुभये पुक् । ७१३१४०।' भयग्रहणसुपलक्षणं तेन स्मयतेरपि भवति । तानसौ कपिरविस्मापयमानः विस्मयमकारयम् ।

१— '१०४०। चषकोऽली पानपात्रं सरकोऽप्यनुतर्पणम् ।'। २— '१००। चित्रका कौ मुदी जोत्स्ता प्रसादस् तु प्रसन्नता ।' १— '७८९। समौ चिश्रक्त निश्वासी भेषो अंशो यथोचितात् ।'। ४— '४७। इन्द्रो मरुतान् मधवा विडीजाः पाक् शासनः । वृद्धश्रवाः श्रुनासीरः पुरुद्दुतः पुरन्दरः। जिल्लुर्ठेखर्षभः श्रुनासीरः

२०४ भाट्ट-काट्ये-द्वितीयेऽधिकार-काण्डे स्टक्षण-रूपे तृतीयो वर्गः,

(२५९६) नित्यं सम्यतेः ।६।१।५७' ब्लात्वम् । गृहाहृहमाठीत् गतवान् । लुङि रूपम् ॥

५८५-सीतां दिद्यः प्रच्छन्नः सो ऽगर्धयत राक्षसान्,॥

अवञ्चयत मायाश् च स्व-मायाभिर् नरिद्धपाम्, ४३

सीतामित्यादि —स कृषिः सीतां दिदश्चः सीतां द्रष्टमिच्छुः प्रच्छन्नः राक्ष-सानगर्धयत । व्यामोहयत् । स्वमायाभिश्च नरहिषां मायाश्च अवज्ञयत अतिसंहि तवान् । '२७३९। गृधि-चङ्चयोः प्रलम्भने ।१।३।६९।' इति तङ्ग् ॥

५८६-अपलापयमानस्य शत्रूंस् तस्याऽभवन् मतिः॥

'मिथ्या कारयते चाँरेर् घोषेणां राक्षसाऽधिपः' ॥४४॥

अपेत्यादि—तस्य कपेः शत्रून् राक्षसान् अपलापयमानस्य न्यक्कुर्वतः।
'२५२९। विभाषा लीयतेः १६।११५।' इत्यात्वे '२५९२। लियः सम्मानन-।११३१७०।' इत्यादिना शालिनीकरणे न्यम्भावने आत्मनेपद्म्। मितरभवत्। कीदशील्याह-सिध्याकारयत इति। अयं राक्षसाधिपतिश्चारैदेण्डवाहकैः यां घोषणां
पुनः पुनः कारयति जागृत जागृतेति तां मिथ्या कारयते येनाहमविज्ञात एव
प्रविष्टः। '२७४०। मिथ्योपपदात् कृत्रो ऽभ्यासे।११३।७१।' इति तक् । अभ्यासश्च पुनः पुनः करणम्।।

कुछकम् ४५-४९--

५८७-गृहमानः स्व-माहात्म्यमंदित्वा मैन्त्रि-संसँदः॥ नृभ्यो ऽपवदमानस्य रावणस्य गृहं ययौ,॥ ४५॥

गृहमान इत्यादि—स्वमाहात्म्यं स्वपराक्रमं गृहमानः आवृण्वन् । '२३५४। कृदुपधाया गोहः ।६।४।८९।' इत्यूत्वम् । '२१५८। स्वरितिवितः—।१।३।७२।' इति तङ् । अटित्वा मिल्रसंसदः शुक्तसारणादिगृहाणि गत्वा रावणस्य गृहं ययो । कीदशस्य । नृभ्यो ऽपवद्भमानस्य कृष्यतः असूयतो वा । '२७४१। अपाहदः ।२।३।७३।' इति तङ् । नृभ्य इति '५७५। कृध-हुह—।१।४।३७।' इति सम्प्रदानसंज्ञायां चतुर्थी ॥

कीदशं गृहमिलाह-

५८८-दिशो द्योतयमानाभिर् दिन्य-नारीभिराकुछम् ॥ श्रियमोयच्छमानाभिर्रत्तमाभिर्रनुत्तमाम् ॥ ४६॥



⁻१—'७७९। चारश् च गूद-पुरुषश्, जा SSR-प्रलियती समी।'।२—
'१८३। आक्रेडितं द्विस-त्रिरुक्त मुचेर् गुष्टं गु घोषणा।'३—'७७०। मन्त्री धीसविवोडसालो प्रचे कमेसचिनास तत । एति सर्वत्र ना० अ० ४ (५६४) शोकरण
न्तु एति

दिश इत्यादि—दिशः योतयमानाभिः सासयमानाभिः। '२५६४। णिचश्र १९१२।७४।' इति तङ् । दिव्यनारीभिः उत्तमाभिः प्रधाननाथिकाभिराकुरुं व्यासम् । श्रियमनुत्तमामतिशयवर्ती आयच्छमानाभिः स्वीकुर्वाणाभिः । '२७४२। समुदाङ्ग्यः-। ११३।७५। इति तङ् ॥

५८९-नित्यमुंचच्छमानाभिः सारःसंभोग-कर्मसु ॥ जानानाभिरंत्रं लीला-किलकिंचित-विश्वमान् ॥४७॥

नित्यमित्यादि—सरसंभोगकर्मसु कामोपभोगिकियासु । नित्यमुद्यच्छमानािमः उत्साहमानािभः । लीला जानानािभः । '२०४३। अनुपसर्गाव्जः । ११३। ७६।' इति तह । पूर्वनत्तह । लीलाः खीणां श्रङ्गारचेष्टाविशेषाः । तथा चौक्त-प्रिताति लिच्चोक मोहायित-विश्रमाणि । विच्छित्त-मासुहिमितेक्षितािन योज्यानि तः इं सुकुमारनृते' इति । लक्षणं चैपां नृत्यशास्त्रे॥ ५९०-स्वं कर्म कारयन्नास्ते निश्चिन्तो या झष-ध्यजः, ।।

स्बाऽर्थं कारयमाणाभिर् यूनो मद-विमोहितान्॥४८॥

स्विभित्यादि—स्वभात्मीयं मोहनादिकर्म दिव्यनारीः कारयम् अनुष्ठापयम् एष अषध्वजः कामदेवः निश्चिन्त आस्ते । ताभिराकुलभिति योज्यस् । '५४१। इ.कोरन्यतरस्यास् । ११४।५३।' इति द्विकर्मकता । यूनः स्वार्थं स्वप्रयोजनं मैथु-नाद्यं कारयमाणाभिः आकुलस् । ता हन्मानिति वक्ष्यमाणेन संबन्धः । कीद-भान् । भददिमोहितान् मञ्जपानमद्दरवक्षान् । तासिः ॥

कीदशीभिरिलाह--

५९१-कान्तिं स्वां वहमानाभिर् यजन्तीभिः स्व-विर्यहान् ॥ नेत्रीरिव पिवन्तीभिः पद्यतां चित्त-संहतीः॥ ४९॥

कान्तिमित्यादि— त्वां कान्ति शोभां वहमानाभिः। यजन्तीसिः स्वविध-हान् ददतीभिः कामिभ्यः। तत्र स्वं कर्मेति णिचश्रेत्यस्य विषयः। कान्ति स्वां स्वविधहानिति स्वरितेत इत्यस्य विषयः। '२०४४। विभा षोपपदेन प्रतीयमाने १९११।७७।' इति विभाषा आत्मनेपदम् ॥ इत्यात्मनेपद्धिकारः॥ शेष-भूतत्वात् परस्मैपद्विधानमाह— नेत्रीतित । पश्यतां विचसंहतीः। चि-ससंदोहान् पिबन्तीभिरिव गृह्यन्तीभिरिव । '२९५९। शेषात्कर्तरि परस्मैपद्म् १९१३।७८।'॥

१—'६३४। अथ कलेवरम् । नार्त्र वपुः संहननं शरीरं वर्ष्म विश्वहः । कायो देहः ही वर्षुसोः, सियां मृतिस तनुस तनुः ।' इति ना० अ०॥

२०६ भट्टिकाच्ये द्वितीयेऽविकार काण्डे छक्षण रूपे तृतीयो वर्गः,

५९२-ता हनूमान् पराकुर्वश्चीगमत् पुष्पकं प्रति ॥ विमानं मन्दरस्याद्वेरेनुकुर्वदिव श्रियम्.॥ ५०॥

ता इत्यादि—ता दिव्यनारीः पराकुर्वश्रपक्षिपन् । अगमत् । पुष्पकं प्रति पुष्पकविमानं प्रति । येन पुष्पकविमानेन जगाम । कीदशं मन्दरसादेः श्रियम-बुद्धविदिन । '२७४५। अबु-पराभ्यां कृत्रः । १।३।७९।' कर्त्रमिप्राये चाहमनेपद्स्य प्राप्तत्वात् ॥

युग्मम् ५१, ५२---

५९३-तिस्मन् कैलास-संकाशं शिर्रः-शृङ्गं मज-द्वमम्॥ अभिक्षिपन्तमैक्षिष्ट रावणं पर्वत-श्रियम्॥ ५१॥

तस्मित्रित्यादि — तस्मित् विमाने राजणमेक्षिष्ट । कैलाससंकाशं कैलासतुत्यम् । शिरः शहं शिरांसि शङ्गाणीव यस्य । भुजद्वमं भुजा द्वमा इव यस्य ।
तं पर्वतस्य श्रियमभिक्षिपन्तं अभिभवन्तम् । '२७४६। अभिमलतिभ्यः क्षिपः
।११३।८०।' इति परस्मैपदम् । तस्य स्वरितेत्वात् कर्त्रभिमाय आत्मनेपदं मासम् ॥
५९४—प्रवहन्तं सद्मिगेदं सुप्तं परिजनाऽन्वितम् ॥

मैघोने परिमृष्यन्तमारंभन्तं परं सारे ॥ ५२ ॥

प्रवहन्तिम्दादि सदामोदं कस्त्रिकादिपरिमलं प्रवहन्तम् । '२०४०। प्राहृहः।११३।८१।'इति परस्मैपदं खरितेस्वात्। सुतं शयने संविष्टम्।परिजनान्वितं पारिपार्श्विकाधिष्टितम् । मघोने इन्द्राय परिमृत्यन्तं अस्यन्तम् । '२०४८। परे-र्मृषः ।९१३।८२।' इति परस्मैपदं। सृषेः खरितेस्वात् । '५७५। कुध द्वह-।११४। ३७।' इति सम्प्रदानसंज्ञायां चतुर्थो । स्मरे कामे परमत्यर्थे आरमन्तं सर्ति कुर्वाणम्।'२७४९। व्याङ्-परिभ्यो रमः।११३।८३।' इति परस्मैपदम्। रमेरनुदान्तेस्वात् ५९५-व्यरमत् प्रधनाद् यस्मात् परित्रसः सहस्र-हक्, ॥

क्षणं पर्यरमत् तस्य दर्शनान् मारुताऽऽत्मजः, ॥५३॥

१—'७८। अस्थो (कुवेरस्य) बानं चैत्रर्थं, पुत्रस्त तु नलक्वरः, । कैलासः स्थानमलका पूर्, विमानं तु पुष्पक्रम् ।' इति ना० अ० । २—'श्रीर् वेषरचना शोमा
भारती सरल-हुमे । लक्ष्मां ति-वर्ग-संपत्तौ वेधोपकरणे मतौ ।' इति विश्व-मेदिन्यौ ।
३—'१०३५ । निम-संकाद्या-नीकाश-प्रतीकाशोपमादयः ।' इति ना० अ० ॥ ४—
अस्मिन् 'शिरः-शृत्तं' पदे इवादेरपमायाचकस्य साधारणधर्मस्य च लोपात् समासगा लुतोपमा—'वादेर् लोपे समासे सा कर्माधार-व्यच्चि वयिक । कर्म-क्त्रोंणंसुल्येतद् दिलोपे किष्समासगा ॥' इति तलक्षणं काल्यप्रकाशे दशम उद्यासे दृश्यते । ५—'१६४। विमद्रासेथे
परिमलो गन्धे जन-मनोहरे । आमोदः सोडतिनिहारी, वाच्य-लिङ्गत्वमा-गुणात् ।' ६—
(-५८४) श्रोकस्थं टिप्पणं पश्यन्तु । ७—-'८६९। युद्मायोपनं चन्यं प्रधनं
प्रियरनम् ' रिव ना॰ मिन् मे



व्यरमदित्यादि —यसादावणात् सहस्तहियन्दः परित्रसः '५८८। भीत्रार्थाः नाम्-।शश्वरः' दूसपादाने पद्ममी । प्रधनात् युद्धात् । व्यरमत् उपरतव्याः पारोऽभूत्।'२७४९। व्या क् परिम्यो रमः।शश्वरः)'इति परस्मैपदम् । जुगुण्सा-विराम-प्रमादार्थानामपादाने पद्ममी । तस्य दर्शनान्माहतात्मनः हन्मान् क्षणं पर्यरमत् तृष्टिमानभवदित्यर्थः । 'साधु रावण' इति । पूर्ववछङः परस्मैपदम् ॥ ५९६—उपारंसीच् च संपद्मन् वानरस् तं चिकीर्षितात् ॥

रम्यं मेरुमिवाऽऽधृत-कृतनं श्वसनोृमिभिः ॥ ५४ ॥
उपस्यादि—तं रावणं पश्यन् वानरः चिकीर्षितात्कर्तुमिष्टात् सीतान्वेषणादुपारंसीत् निवृत्तः । उपान्नेत्यधिकृत्य '२७५१। विभाषाऽकर्मकात् ।१।३।८५।'
इति छुङः परस्मैपदम् । तत्य मेरोरिव रम्यत्वाद् तदाइ मेरुमिव । श्वसनोर्मिभिः
वातसमूहैः । आधृतकाननं प्रचित्रववनं मेरुम् । तथा श्वसनोर्मिभः श्वसितकछोकैः आधृतानि शिरांस्याननानि च यस्येति ॥

५९७-हञ्चा दियतया साकं रहीभूतं दशाननम् ॥

ना ऽत्र सीतित्युपारंस्त दुर्मना वायु-संभवः. ॥ ५५ ॥ इंदेर्सादि—रहीभूतं विजनस्थं दशाननम् । '२१२१। अस्मैनश्रक्षः-।५।४। ५१।' इत्यादिना स्वौ सलोपः । दियतया साकं दृष्ट्वा नात्र सीतेति इत्या उपारंस्त विमना निवर्तते सा । '२७५१। विभाषा ऽकमैकात् ।१।६।८५।' इति तद्ध । वायुसंभवो हनुमान् ॥

५९८-ततः प्रौकारमारोहत् क्षपाटानविबोधयन्,॥

नाऽयोधयत् समधों ऽपि सीता-दर्शन-लालसः,॥५६॥

तत इत्यादि—तत उत्तरकालं प्राकारमारोहत् आरूडवान् । क्षपाटान् राक्ष-सान् अविवोधयन् अचेतयन् । '२५६४। णिचश्च ।१।३।७४।' इलात्मनेपदे प्राप्ते '२७५२। बुध-युध-।१।३।८६।' इत्यादिना चा लटः परस्मैपद्म्।बुधेरणौ सकर्मकस्य चित्तवत्कर्तृत्वात् हन्मतश्चित्तवत्वात् । तत्र इकर्मका ये तेषामचित्तवत्कर्तृ-कत्वार्थमुपादानमित्युक्तम् । तान्नायोधयत् समर्थो ऽपि न संप्रामितवान् । यतः सीतादर्शनलालसः लम्पटः । '२७५४। भणावकर्मकात्—।१।३।८८।' इत्यनेन उभयन्नापि लङः परस्मैपदम् । युधेरेकसाचित्तवत्कर्तृकत्वात् ॥

५९९-अध्यासीद् , 'राघवस्या ऽहं नाशयेयं कथं शुचम्,॥

वैदेह्या जनयेयं वा कथमानन्दर्भुत्तमम् . ॥ ५७ ॥ अभ्यासीदित्यादि—राषवसाहं कथं केन प्रकारेण शुचं शोकं नाशयेयम्। कथं वा वैदेह्याः सीताया आनन्दं जनयेयमिति ह्नुमानव्यासीत् विन्तितवान् ।

१—'१२०५। कं शिरोम्बनोः ।' २—'१०५३ । दुर्मना विमना अन्तर्मनाः -स्योद्धक जन्मनाः ।' ३—'१२२। प्राकारो वरणः सालः ।'इति सर्वत्र ना० अ०॥

२०८ भट्टिका ये द्वितायेऽधिकार काण्डे लक्षण हम तृतीयो वर्ग ,

'९७४। ध्यै चिन्तायाम्' इसस्य लुक्ति रूपम् । नशिजन्योरकर्मेकत्वात् '३७५४। अगौ–।१।३।८८।' इस्यनेन लिकः पुरस्मैपदम् । न बुधेत्यादिना जनीजृषित्यादिना । जनेर्मित्संज्ञायां हस्वत्यम् ॥

६००-हङ्का राघव-कान्तां तां द्राविषयामि राक्षसान्,॥ तस्या हि दर्शनात् पूर्वं विक्रमः कार्य-नाश-कृत् ॥५८॥

द्रष्ट्रेखादि - इयमसाविति राधवस कान्तां द्रष्ट्वा द्राविष्यामि राक्षसान् पछायविष्यामि । अत्र अणाविस्यनेन न बुधेसादिना तस्याकर्मकस्य चित्तवस्कर्तृ-कत्वात् । हि यसात् तस्याः सीताया द्र्शनात्पूर्वं विक्रमः कार्यस्य सीतादर्शन-रूपस्य नाशकृत् ॥

६०१-चिन्तयनित्थमुर्नुङ्गैः प्रावयन्तीं दिवं वनैः॥

अशोक-वनिकामीरोदंपस्यत् स्तवकाँऽऽचिताम्. ५९

चिन्तयस्त्रित्यादि — इत्यं पूर्वोक्तप्रकारेण चिन्तयकारात्समीपे अशोकविनिकामपश्यत् । उनुक्रेरुचैर्यनैदिवमाकाशं प्रावयन्तीं व्यामुवानाम् । '२०५२। बुध-युध-१९१३८६।' इत्यादिना तिए । प्रवतेरकर्मकत्याचित्तवत्कर्मकत्वात् । अशोक-विनेकायाश्चाचित्तवतीत्वात् । स्ववशाचितां अशोकपुष्पस्तवकैः छन्नाम् ॥

कुलकम् ६०–६४–

६०२-तां प्राविशत् कपि-व्याघ्रम् तर्रूनं-चलयन् शनैः॥ अ-त्रासयन् वन-शयान् सुप्तान् शाखाँसु पक्षिणः. ६०

तामित्यादि—तामशोकवितकां किपव्यात्रः किपन्यांत्र इय शनैर्मन्दं प्रा-विश्वत् । तरूनचळयन् अकम्पयत् । चळेरकर्मकःवाचित्तवत्कर्नृकाद्णावित्यनेन च छटः परस्मैपदं न निगरणेत्यादिना । तद्धि तत्र सकर्मकार्यं अचित्तवत्कर्नृकार्यं चेत्युक्तम् । वनशयान् पक्षिणः शाखासु सुसान् अत्रासयन् । '२७५४। अणी— १९१३८८।' इत्यनेन परस्मैपदम् । वने शेरत इति '२९२९। अधिकर्णे शेतेः १३१२१५।' इत्यन् । '९७६। शय-वास-वासिषु-।६१३११८।' इत्यादिना सप्तस्या

६०२-अवाद् षायुः शनैर् यस्यां छतां नर्तयमान-वत् ॥ नाऽऽयासयन्त संत्रस्ता ऋतवोऽन्योन्य-संपदः, ॥६१॥

१—'१११५। उस-प्रांश्वतीद्योच्छितास तु हो ।'। २—'१४५१। आराद् द्र-समीपयोः।' ३—'१६४। स्थाद् गुच्छकस तु स्तवकः, कुइमलो मुकुलो ऽसि-याम्।' ४—'३५३। वृक्षो महीरुहः शासी विटपी पादपस् तरुः'। ५—'३५९। समे शास्त्रा-लवे, स्वन्धशास्त्रा शाले शिफा-लटे 'शत सर्वत्र ना० अ०



तथा लक्ष्य-रूपे कथानके 'Sशोक-वनिका-सङ्गो, नामार्थमः सर्गः- २०९

अवादित्यादि — यसामशोकवितिशायां वायुर्वातः श्रेमेन्द्रमवात् वाति स्म । तामादेति वश्यमाणेन संबन्धः । लतां नर्तयमानवत् मृलमिव कारयन् । नृतिश्रकने वर्तते । ततश्च । '२७५३। निगरण—। १।३।८७।' इत्यादिना एरसै-पदं प्राप्तं ।'२७५५। न पादमि—। १।३।८९।' इत्यादिना प्रतिषिद्धम् । ऋतवो ऽन्योन्यसंपदः परस्परस्य विभ्तीः नायासयन्त नोपपीद्धयन्ति स्म । संबन्धा रावणान्त् । आङ्पूर्वाद्यसेः विस्वतः र्तृकत्वात् अणावित्यादिमा परस्मैपदं प्राप्तं 'म पाद्-मि' इत्यादिना प्रतिपिद्धम् ॥

६०४-ज्योत्स्ना ऽमृतं शक्षी यस्यां वाषीर् विकसितोृत्पलाः ॥

अपाययत संपूर्णः सदा दश-मुखाऽऽज्ञया, ॥ ६२ ॥ ज्योत्स्त्रेत्यादि—यसां रावणाज्ञया शशी सदा संपूर्णः सन् ज्योत्स्त्रामृतं वापीरपाययत पायितवान् । निगरणार्थत्वान्तिप प्राप्ते न पादमीत्यादिना प्रति- षिद्धे णिचक्षेति तङ् ॥

६०५-प्रादमयन्त पुष्पेषुं यस्यां बैन्द्यः समाहृताः ॥

परिमोहयमाणाभी राक्षसीभिः समावृताः. ॥ ६३ ॥

प्राद्मयन्तेत्यादि—यस्यां बन्धः समाहताः समानीताः पुष्पेषुं कामं प्राद्मयन्त शमितवत्यः । तन्मतस्याचरणात् । कीदृशः । परिमोहयमाणामिः स्यामो-हयन्तीभिः राक्षसीभिः परिष्ठताः । दमि-परिमुद्धोः अणाविस्यादिना प्राप्तस्य पर्स्येपदस्य न पादमीत्यादिना प्रतिषेधे णिचश्चेत्यात्मनेपदम् ॥

६०६-यस्यां वासयते सीतां केवछं सा रिपुः सारात्॥

न त्वरोचयता SSत्मानं चतुरो वृद्धि-मानंपि ॥६४॥ यसामित्यादि—रिपुर्वशाननः सरात् कामाद्येतोः केवलं निष्फलं यसां सीतां वासयते सावासितवान् । न त्वरोचयत आत्मानं नैवात्मानमुपरोचितवा-न् । चतुरो अपि शोपिदाराधनकुशालो अपि । वृद्धिमानपि संपद्यको अपि । रोचि-वास्योरणावित्यादिना माप्तस्थापि च परस्मैपदस्य न पादमीति प्रतिषेधे णिच-श्चेति तङ्॥

६०७--मन्दायमान-गमनो हरितायत्-तरुं कपिः, ॥

द्विमै: शकशकायित्रम् मारुतेना SSZ सर्वतः. ॥६५॥ मन्देत्यादि किपः सर्वतः सर्वतः सर्वतः विज्ञार । यसदोर्नित्यसंबन्धाः सामिति गम्यते । मन्दायमानगमनः मन्दीभवद्गमनः । कीदशीम् । हरिताय- तर्वः शाद्वलीभवद्वश्राम् । अप्राणिजातेश्वेत्यूङ् । द्वमैरुपलक्षिताम् । कीदशैः ।

१—'२८२। खाणी, तु दीर्विका।' २—वन्दिशालास्थिताः स्तिय इत्यर्थः। '८८४। प्रमहोपप्रही खन्दां, कारा स्याद् वन्धनालये।' ३—'२७। मदनो मन्मयो मारः कामः पञ्चशरः स्मरः। ' इति सर्वत्र ना० अ०।

२१० भट्टि-काट्ये-इतियेऽधिकार-काण्डे छक्षण-रूपे तृतीयो वर्गः,

शकशकायद्भिः शकस्वभावैः शकीभवद्भिः। केन मारुतेन । अत्रामन्दं मन्दं भवति अहरिता हरिता भवन्तीति लोहितादित्वात् नथप्। अशकाः शका भवन्तीति वावये। '२१२८। अव्यक्तानुकरणात्—।५।४।५७।' इति डाच्।तस्मिन्दिच्यभूते 'डाचि बहुलं द्वे भवतः।' 'नित्यमाम्रेडिते डाचि' इति पररूपत्वम्। डाजन्तात् शकशकाशब्दात् वयप्। '२६६९। वा क्यषः।१।३।९०।' इति परस्मेपदं आस्मनेपदं च॥

६०८-अस्पन्दिनिन्दु-मणयो, व्यरुचन् कुमुदा्ऽऽकराः,॥ अलोठिषत वातेन प्रकीणीः स्तवको्चयाः,॥ ६६॥

अस्यन्द्श्चित्यादि — चन्द्रोदयादिन्दुमणयः अस्यन्दन् सन्दन्ते सा। तामा-टेति योज्यम् । व्यरुचन् कुसुदाकराः विराजितवन्तः । स्ववकोचयाः गुच्छराश-यः । वातेन प्रकीर्णाः इतस्ततो विश्विष्ठाः सन्तः अछोठिषत छुठन्ते सा। सर्वन्न '२३४५। द्वाचो छुङि ।१।३।९१।' इति विभाषा परसीपदम् । द्युताद्यश्च - कृपूपर्यन्ताः ॥

६०९-सीताऽन्तिके विवृत्सन्तं वर्त्स्यत्-सिद्धं प्रवङ्गमम् ॥ पैतत्रिणः शुभा मन्द्रमनिवानाम् त्वेजिह्नदन् ॥६७॥

सीतेत्यादि — सीतासमीपे विद्वःसन्तं वर्तितुमिन्छन्तं स्वद्वमं वरस्येत्सि-द्वि वर्स्यन्ती भविष्यन्ती सिद्धिः सीतादशैनलक्षणा यस्य । '२३४७। वृद्धः स्य-सनोः ।११३१९२।' इति विभाषा तिप् । तं पक्षिणः शुभाः प्रशस्ता अजिह्व-दम् सुख्यन्ति स्म । णिचि लुङि चिङ रूपम् । कीदशाः । मन्द्रं गम्भीरं मधुर-मानुवानाः वाश्यमानाः । 'आङि नु-प्रच्ल्रधोरूपसंख्यानं' इति तक् । '११०८। णु स्तुतौ' हत्यादादिकस्य परसौपदिस्वाम् ॥

६१०-वर्तिष्यमाणमात्मानं सीता पत्युरिवा डन्तिके ॥ उदपश्यत् तदा तैथ्यैर् निर्मित्तीरेष्ट-दर्शनैः, ॥ ६८॥

वर्तिष्यमाणिमत्यादि—सीतापि तदा तस्मिन् काले पत्यू रामस्यान्तिके आत्मानं वर्तिष्यमाणिमत्यादि—सीतापि तदा तस्मिन् काले पत्यू रामस्यान्तिके आत्मानं वर्तिष्यमाणिमत्र उदपश्यत् उत्प्रेक्षते स्म । '२३४७। वृद्धः स्व-सनोः । ११३१०२।' इति विभाषाचचनात्त् । निमित्तैश्रश्चःस्पन्दनादिभिः । तथ्यैरविसं-चादिभिः इष्टदर्शनैः इष्टार्थप्रकाशकैः । दर्शनिमिति । '२८४१। कुत्यस्युदो बहुलम् ।३१३।९१३।' इति कर्तरि लयुद् ॥



१—'१११२। समीपे निकटाऽऽसन्न-सन्निकृष्ट-सनीडनत् । सदेशाभ्याश-सविध-समर्था-द-सदेशनत् ॥ १११३। उपकण्ठा नितका-ऽभ्यणीऽभ्यमा अप्यभितो ऽञ्ययम् ।' २— '६५२। शकुन्ति-पश्चि-शकुनि-शकुनत-शकुन-द्विजाः।५५३ पतिन्नि-पश्चि-पत्तन-पत्तत्-पत्रर-थाण्डजाः ।' २—'१९५। सत्यं तथ्यपृतं सम्यगमूनि त्रिपु तद्वति ।' । ४—'१२८३ निमित्तं देश्व-ठदमणो रित सन्तंत्र ना० अ०

६११-'निरवर्त्सन् न चेद् वार्ता सीताया, वितथैव नः॥ अकल्प्सदुंचितिः सर्वा', हनूमानित्यंचिन्तयत्.॥६९॥

इत्यात्मनेपदाधिकारः।

निर्मास्यं निर्वादि—चेदित यद्यं। यदि सीताया वार्ता न निरवर्स्य निर्देति नायास्यत्, तदा वृथैव निष्क्षलेव नो ऽस्माक्ष्यचितः सर्वा अयमुद्यमः समुद्रलङ्गादिकः। अकल्प्स्यत् अभविष्यत्। इत्येवं हन्मानचिन्तयत्। किया-तिपत्तो तद्य निरवर्स्यदिति '२३४७। वृद्यः स्य-सनोः ।११३।९२।' इति विभाषापरस्मेषदम्। अकल्प्सदिति '२३५९। स्विट च क्रृपः ।११३।९३।' इति चकारात् स्य-सनोरिप भवति विभाषापरस्मेषदम्। उद्यतिति यमेः '३२७२। स्थियां क्तिन् ।३।३।९४।' । '२४२८। अनुदात्त—।६।४।३७।' इत्यादिना अनु- ' नासिकलोषः॥ इत्यातमनेषदाधिकारः॥

इ्तः प्रभृति कारकमधिकृत्याह--

विदेशिकम् ७०-७२---

६१२-वृक्षाद् वृक्षं परिकामन् रावणाद् विभ्यतीं भृशम् ॥ शत्रोस् त्राणर्म-पश्यन्तीर्म-हश्यो जनकाुऽऽत्मजाम्७०

मुक्षादित्यादि—तां जनकात्मजां सीतां स किपकुक्षरो ऽपश्यदिति वश्य-माणेन संबन्धः । वृक्षात् वृक्षं परिकामन् गच्छन् । '५८६। ध्रुवमपाये अपादा-नम् ।१।४।२४।' इत्यपादानसंज्ञायां पञ्चमी । रावणात् विभ्यतीं सृशं त्रस्यन्तीं अत्यर्थं शत्रो रावणादक्षामपश्यन्तीं यतो भयं ततः कृतो रक्षेति '५८८। भीत्रा-र्थानाम्—।१।४।२५।' इत्यपादानसंज्ञा । अदृश्यः प्रच्छन्नो भूत्वा । '२८५९। ऋतुपध—।३।११९१०।' इत्यादिना वयप् ॥

६१३-तां पराजयमानां स प्रीते रक्ष्यां दशाःऽऽननात् ॥ अन्तर्दधानां रक्षोभ्यो मलिनां म्लान-मूर्धजाम्॥७१॥

तामित्यादि - प्रीतेः रावणसंबन्धिन्याः पराजयमानां विमुखीमवन्तीम् । '५८९। पराजेरसोढः १९१३।२६।' इस्रपादानस्वम् । असोदो ऽधैः प्रीतिः । रश्यां दृशाननात् रावणविषये स्वयं निवार्यप्रसराम् । '५९०। वारणार्थानामीप्सितः । ११४१२७।' इस्रपादानस्वम् । प्रवृत्तिविधात्तरुक्षणया रक्षणित्रयया आत्मसंबन्धिन्या दृशाननस्य व्याप्तमभिप्रेतस्वात् । अन्तर्द्धानां रक्षोभ्यः मा मां रक्षांसि द्राश्चरिति । तत्रश्च '५९१। अन्तर्धी येनादर्शनम्-। ११४१२८।' इस्रपादानसंज्ञा । अन्तर्धिनिमित्तं हि रक्षोभिरात्मनो दृशनस्यानीप्सितत्वात् । मलिनां शरीरेण क्लानमूर्धजां मलिनकेशां बद्धवेणीत्वात् ॥

१ '१७८। बार्ता प्रवृत्तिर् वृत्तान्त उदन्त- स्यात् ।' श्री ना० अ० ॥

६१४-रामादंधीत-संदेशो वायोर जातश् च्युत-स्मिताम्॥

प्रभवन्तीर्मिवदित्यादेपश्यत् कपि-कुझरः. ॥ ७२ ॥

रामावित्यादि—सःकृत्य अधीतसंदेशो गृहीतसंदेशः किषकुक्षरः । '५९२। आख्यातोपयोगे। ११७।२९।' इत्यपादानसंज्ञा। रामस्याख्यातृःवात्। सावधानतया संदेशग्रहणात् नियमपूर्वकविद्यावत् संदेशग्रहणाम्। वायोजीत इति '५९३। जित-कर्तुः—। ११४१३०।' इत्यपादानसंज्ञा। जन्यर्थस्य जन्मनः कर्ता हनुमान् तस्य वायुः शकृतिः कारणम्। च्युतस्थितां शोकाकान्तत्वात्। प्रभवन्तीभिवादित्यात्। '५९४। भुवः प्रभवः। ११४।३३।' इत्यनेन भवत्यर्थस्य सीतायाः कर्तृभृतायाः प्रथमत

उपरुभ्यमानत्वात् । अतः प्रभव आदित्यः तस्यास्तेजस्यित्वात् ॥ ६१५—रोचमानः कु-दृष्टिभ्यो रक्षोभ्यः प्रत्तवान् श्रियम् ॥

५१५--रायमानः अन्टाटण्या (सार्याः संस्याः स्वर्याः स्वर्य

रोचमान इत्यादि—तत्र तत्यामशोकविनकायां राक्षसाधियो रावणः आगात् आगतः । रोचमानः कुदृष्टिभ्यः त्यक्तत्रवीधमैत्वात् । ये कुदृष्टयः कुबृदृयः तान् स्वविषये स्पृद्दावतः कारयिवत्यर्थः । '५७१। रुच्यर्थानां प्रीयमाणः ।११४। ३३।' इति सम्प्रदानसंज्ञायां चतुर्थां । रुचेरभिलाषस्य तत्रावस्थानात् । कुदृष्यः प्रीयमाणाः । रक्षोभ्यः श्रियं विभूति प्रत्तवान् । '५६९। कर्मणा यमभिषेति—।११४।३२।' इति सम्प्रदानम् । ददातिकियया राक्षसानामभिष्रीयमाणत्वात् । श्राध्यमानः परस्रीभ्यः युष्मद्विषये उस्माकं स्थावेति परकलत्राणि ज्ञापयितुमेप-यन् । '५७२। स्थाव-हुक्-।१।४।३४।' इत्यादिना सम्प्रदानत्वम् । स्थावया वहु-मानेन ज्ञापयितुमिष्यमाणत्वात्तासाम् ॥

६१६-अश्रप्त निहुवानो ऽसौ सीतायै सार-मोहितः, ॥

घारयन्निव चैतस्यै वसूनि प्रत्यपद्यत. ॥ ७४ **॥**

अशिस्पादि — सीतायै निहुवानः क्रौर्यादिकं न मेऽस्तीति सीतां ज्ञापिय-तुमेपयश्चित्यर्थः। तस्यै सीतायै अशपत्। शपयं सीतां ज्ञापियतुमेपदित्यर्थः। किमित्येवमाह। स्वरमोहितः। अत्र शपथापहुतिकियया सीतामाज्ञापियतुमि-च्यमाणस्वात्। पूर्वेवत् सम्प्रदानसंज्ञा। किंचास्यै सीतायै स्वामिनीभूतायै वसूनि

द्रव्याणि प्रत्यपद्यतः अङ्गीकृतवान् । धारयन्निव गृहीतवित्तः इत्र । अत्र '५७३। भारेरुत्तमर्णः ।१।४।३५।' इति सीतायाः कदाचिदुत्तमर्णया तुल्यत्वात् ॥

६१७-तस्यै स्पृहयमाणो ऽस्ौ बहु प्रियमेभाषत, ॥

सानुनीतिश् च सीतायै ना ८क्रुध्यन्, नार्प्यस्यत.७५ तस्यामित्यादि—असौ राक्षसाधिपः स्ट्रहयमाणः सीतामामुमिन्छन् बहु-

प्रियमभाषत वक्ष्यभाणम् । '५७४। स्पृहेरीिष्सतः ।१।४।३६।' इति स्पृह्यतेः

मयोगे सीवाया

सानुनीतिश्र सानुनय सीताः

यै नाक्रुध्यत् तां प्रति कोपं न कृतवान्। नाष्यसूयत दोषाविष्करणळक्षणामसूयां न कृतवान्। क्रुध्यतिस्यत्योदिंवादिकयोस्दात्तेन्डितोर्छेङि प्रयोगे '५७५। क्रुंब-द्वह्—।१।४।३७।' इत्यादिना सम्प्रदानम् ॥

६१८—'संकुध्यसि मृषा किं त्वं दिदक्षं मां मृगेक्षणे !, ॥ देखितत्यं पर-स्वीभ्यः म्व-धर्मो रक्षमार्ययम् ॥ ५६।

इंक्षितच्यं पर-स्त्रीभ्यः स्व-धर्मो रक्षसामंयम्. ॥ ७६॥ संकुध्यसीत्यादि—किं त्वं छुभाशुमे दिद्दक्षं द्रष्टुमिष्कुं मां हे स्गेक्षणे ! संकुध्यसी। '५०६। कुध दुहोरुपस्ष्ट्रयोः। ११४३८।' इति कर्मसंज्ञा । कुधेरुपः संगण युक्तत्वात् । कुत्रते परिज्ञानं यत्परकीतु ग्रुभाशुमं निरूपयसि अन्यत्र दुष्टाशयत्वात् । अथ कथं मृषा संकुध्यामीति चेदाह—ईक्षितव्यं परस्त्रीम्यः का ग्रुभति यदीक्षितव्यमीक्षणीयं तद्यं स्वधर्मो रक्षसाम् । '५०७। राधी- क्योगंस्य विप्रशः । ११४३६।' इति सम्प्रदानसंज्ञा । यतः स्त्रीविषये विविधस्य प्रशस्य कियमाणत्वात् ॥

६१९-शृण्वद्धः प्रतिशृण्वन्ति मध्यमा भीरुं ! नौत्तमाः,॥
गृणद्धो ऽनुगृणन्त्यंन्ये ऽकृताऽर्था, नैव मद्-विधाः॥

शृण्यक् इत्यादि — अनेनात्मनः प्रभावं दर्शयति । स्व्यव्हः प्रार्थयमानेभ्यः स्वामिश्वदं क्रियतामिति मध्यमाः प्रभवः प्रतिश्व्यवन्ति ओमित्युपगच्छन्ति । हे भीरु ! मोत्तमा मादशाः । ते हि स्वात्वयात्स्व्यमेव हितं प्रतिपद्यन्त इति भावः । '५७८। प्रसाङ्भ्यां श्रुवः पूर्वस्य कर्ता ।शशश्यां इति सम्प्रदानसंज्ञा । पूर्वस्याः प्रार्थनिक्रयायाः प्रार्थयितुः कर्तृत्वात् । अन्ये प्रभवो अकृतार्थाः अल्ड्यलाभाः गृणस्यः अनुप्राह्यस्य भृत्यस्य कस्यचित्र स्तृतिं कुर्वन्यो मित्रभ्यः अनुगृणिन्त तान् प्रोत्साह्यन्ति । अनुगृणीत अनुगृणीतेति ममानुगतो भवनिति नैव मिद्रभा अनुगृणन्ति कृतार्थत्वात् । '१५९५। गृ शब्दे' इसस्य प्रयोगे '५७९। अनु प्रतिगृणश्च । १।४।४१। १। इति सम्प्रदानसंज्ञा । गृणातेः स्तृतिक्रियान्येक्षया कर्तृत्वात् ॥

६२०-इच्छ स्नेहेन दीव्यन्ती विषयान् भुवनेश्वरम्,॥

संभोगाय परिक्रीतः कर्तास्मि तव ना अप्रियम् ॥७८॥

इच्छेत्यादि—ईदशं प्जितं भुवनेश्वरं त्रिलोकविजयिनमिच्छ अङ्गीकुरु । आत्मानमुद्दिश्य खेद्देन प्रेम्णा । '५६०। साधकतमं करणम्—। ११४१२।' इति करणसंज्ञा । दीव्यन्ती कीडन्ती विषयान् शब्दादिभिरित्यर्थः । '५६२। दिवः कर्म च—। ११४१३।' इति करणसंज्ञापवादात् कर्मसंज्ञा । संभोगाय परिकीतः त्वद्वि- प्रयभोगेन परिकीत इत्यर्थः । '५८०। परिक्रयणे सम्प्रदानम्—। ११४१४।' इति सम्प्रदानत्वम् । तव नावियं कर्तासा न करिष्यामि ॥

१—'५६६) विशेषास् त्वङ्गमा भीरः कामिनी वामलोचना।' इति ना० अ०।
'भीर' तें त्रिलिङ्गः स्वाद् वरयोषिति योषिति।' इति मेदिनी च।

२१४ भट्टि-काट्ये-द्वितीयेऽधिकार-काण्डे लक्षण-क्षे तृतीयो वर्गः,

६२१-आस्स्व साकं मया सौधे, मा ऽधिष्ठा निर्-जनं वनम्॥ गा ऽधिवात्सीर् भुवं, शय्यामीधिशेष्त्र स्मरोत्सुका.७९

आस्स्वेत्यादि — मया सार्क सार्ध साँध घवलगृहे आस्स्व तिष्ठ । आसेलोंटि रूपम् । '६७२। आधारो अधिकरणम् । ११४१४५।' इत्यधिकरणसंज्ञायां
सप्तमी । मा अधिष्ठा निर्जनं वनम् । '५४२। अधि-शीक्-स्थासां कर्म । ११४१६१।'
इत्यधिकरणे कर्मसंज्ञा । लुक्टि रूपम् । मा अधिवात्सीः सुवं भूमी मा शिवष्ठाः ।
माङि लुङि रूपम् । '५४४। उपान्वध्याङ्वसः । ११४१८।' इति अधिकरणे
कर्मसंज्ञा । किंतु । शर्यामधिशेष्व । शीको लोटि रूपम् । '५४२। अधिशीक्। ११४४६। इति कर्मसंज्ञा । स्वरोत्सुका कामाधिनी ॥

६२२-अभिन्यविक्षथास् त्वं मे यथैवाऽव्याहता मनः,॥

तवाऽप्यंध्यावसन्तं मां मा रौत्सीर् हृदयं तथा.॥८०॥

अभीत्यादि—यथैव त्वमव्याहता अनिवारिता सती मे मम मनः अभिन्य-विक्षयाः अभिनिविष्टासि । छुङि रूपम् । '३६८३। नेविंशः ।११३।१७।' इति तङ् । '५४३। अभि-नि-विश्वश्व ।३।४।४७।' इत्यधिकरणे मनसः कर्मसंज्ञा । तथा त्वमपि त्वद्भृदयमध्यावसन्तं मां मा रोत्सीः मा निवारय । रुधेर्छुङि रूपम् । '५४४। उपान्वध्याङ्—।१।४।४८।' इति हृदयस कर्मसंज्ञा ॥

६२३-मा ऽवमंस्था नमस्यन्तमं-कार्य-ज्ञे ! जगत्-पतिम्, ॥ संदृष्टे मयि काकुतस्थमं-धन्यं कामयेत ? का.॥८१॥

मेखादि—हे अकार्यज्ञे ! अविशेषज्ञे । मां जगत्पति नमस्यन्तं माऽवमंस्थाः। छुङि रूपम् । '५३५। कर्तुरीष्सिततमम्–।१।४।४९।' इति कर्मसंज्ञा । अवमान-कियया कर्तृसंबन्धिन्यः जगत्पतेरासुमिष्टत्वात् । संदृष्टे मिय काकुस्खमधन्यं मन्द्भाग्यं का कामयेत का इच्छेत् । नैवेस्ययः। '५३८। तथायुक्तं चानीष्सितम् । १।४।५०।' इति कर्मसंज्ञा । येनैव प्रकारेण कर्तुरीष्सिततमं कियया युक्तं तेनैवे-ष्सितादन्यस्य रामस्य प्रयुज्यमानत्वात् ॥

६२४-यः पयो दोग्धि पाषाणं, स रामाद् भूतिमांशुयात्,॥ रावणं गमय प्रीतिं बोधयन्तं हिताऽहितम्.॥ ८२॥

य इत्यादि—यथा पाषाणात् पयो न संभवति तथा रामादिप विभूतिरिति नैराइयं दर्शयति । पयसः पूर्वेणैव कर्भसंज्ञा । पाषाणस्य '५३९। अकथितं च ।१।४।५१।' इत्यनेन । रावणं गमय श्रीति भवत्या सह प्रीतिं गच्छन्तं गमय श्रीतिम् । स्वयमेव हिताहितं भवतीं बुध्यमानां बोधयन्तम् । '५४७। गति-बुद्धि-।१।४।५२।' इत्यादिना कर्मसंज्ञा । गति—बुद्धोरण्यन्तावस्थायां तथोः कर्तृत्वात् ॥

१ '४१ विमूतिर् **भूति**रैश्वयमिणीमादिकमष्टमा ं **श्रव ना**० स०

६२५-प्रीतो ऽहं भोजयिष्यामि भवतीं भुवन-त्रयम्,॥

किं विलापयसेऽत्यर्थं, पार्श्वे शायय रावणम्.॥८३॥

प्रीत इत्यादि — अहं प्रीतः सन् भुवनत्रयं तत्समुःथं भोज्यं सोक्तं योग्यं भवतीं भोजयिष्यामि । प्रत्यवसानार्थः वात्कर्मसंज्ञा । प्रत्यवसानमभ्यवहारः । अकन्निप्राये '२५६४। णिचश्च ।१।३।७४।' इत्यात्मनेपदं न भवति । विल्पन्तं विविधं भाषमाणं किं विल्पायसेऽत्यर्थं नाहं त्वामिच्छामीति जुवाणा । अत्र शब्दकर्मकत्वात् कर्मसंज्ञा । कन्नेभिप्राये णिचश्चतात्मनेपदम् । तसादिदं प्रार्थ-ये — पार्श्वे रावणं शायय । अनाकर्मकत्वात्कर्मसंज्ञा ॥

६२६-आज्ञां कारय रक्षोभिर्, मा प्रियाण्युंपहारय, ॥

कः शक्रेण कृतं नैच्छेदंधिमूर्धानमं झिलम्.॥ ८४॥

इति कारकाधिकारः॥

आज्ञामित्यादि—रक्षांसि त्वदान्नां छुर्वन्त्येव। कारय प्रियाणि च त्वत्संबन्धीनि मामुपहरन्तमुपहारय उत्पादय। '५४१। ह-कोरच्यतरस्याम् ।११४।५३। इति कर्मसंज्ञा। शकेण कृतं विरचितं अञ्जलिमधिमूर्धांनं अधिगतः प्राप्तो सूर्धा येनेति। को नेष्छेत् '५५९। स्वतन्त्रः—।११४।५४।' इति कर्तृसंन्ना। शकेण प्रणतो- ऽहमित्यर्थः। प्रयोज्यकर्तां नोदाहतोण्यन्तावस्थायामुदाहतत्वात्॥ इति कारका- धिकारः॥

इतः प्रसृति कर्मप्रवचनीयस्थिकृत्याह-

६२७-वचनं रक्षसां पत्युरंनु कुद्धा पति-प्रिया॥

पापाऽनुवसितं सीता रावणं प्राव्नवीद् वचः ॥ ८५॥

चन्नमित्यादि रक्षसां पत्यू रावणस्य वचनमनु लक्ष्यीकृत्य । '५४%। अनुर्लक्षणे ।११४/८४।' इति कर्मप्रवचनीयसंज्ञायां द्वितीया । बुद्धा सती सीता । पतिप्रिया पतिः प्रियो यस्या इति । रावणं प्राव्यविद्वचे वक्ष्यमाणम् । पापानुवनिसतं पापेन संयुक्तम् । '५४९। तृतीयार्थे ।११४/८५।' इत्यनेन कर्मप्रवचनीयसंज्ञायां द्वितीया । पापमन्ववसित इति । द्वितीयेति योगविभागात् सः सुप्सुपेति वा ॥

६२८-'न भवानेनु रामं चेदुंप झ्रेषु वा, ततः ॥

अपवाह्य च्छलींद् वीरौ किमर्थं मामिहा Sहरः,॥८६॥

नेत्यादि—यदि भवाजानुरामं रामाज हीन इत्यर्थः । '५५०। हीने ।११४ ८६।' इत्यनेन कमेप्रवचनीयसंज्ञा । अनुशब्दश्च सहीनार्थघोतकः । हीनश्रोत्कृष्टा-पेक्षः । उपशूरेषु वा शूरेभ्यो वा यद्यधिको भवान् । '५५१। उपोऽधिके च ।११४। ८७।'इति चकाराद्धीने उपशब्दत्य कमेप्रवचनीयसंज्ञा। यसाद्धिकमित्यनेन सप्त-

१—१८७४। प्रसमं तु बलात्कारी हठो, ऽथ स्खलितं छल्छम्। इति ना॰ अ० ।

२१६ भट्टि-काइये-द्वितीयेऽधिकार-काण्डे लक्षण-रूपे तृतीयो वर्गः,

मी । उपशब्दस्याधिकशोतनात् । किमर्थं कनकसृगच्छलेन । वीरा रामलक्ष्मणौ अपवाह्य अन्यतो नीत्वा । मामिहाहरः छङ्कामानीतवान् ॥

६२९-'उप-शूरं न ते वृत्तं कथं रात्रिंचराऽधम !।।

यत् संप्रत्यंपलोकेभ्यो लङ्कायां वसतिर् भयात् ॥८७॥ उपेत्यादि—हे राक्षिवराधम ! कथं ते वृत्तं चरितं नोपद्धरं ध्रुरेभ्यो न हीनम् । '५५१। उपो ऽधिके च ।११४।८७।' इति चकाराद्धीने उपशब्दस्य कर्म-प्रवचनीयसंज्ञा । यद्यसात् संप्रत्यधुना भयाछङ्कायां जलपर्वतदुर्गायां वसतिः । वसेरतिः 'वहि-वस्पर्तिभयश्चित्' इत्याणादिकः । अपलोकेभ्यो लोकान् वर्जयित्वा । '५९६। अप-परी वर्जने ।१।४।८८।' इति कर्ममवचनीयसंज्ञायां '५९८। पश्चम्य-पाङ्-परिभिः ।२।३।१०।' इति पद्यमी ॥

६३०-आ राम-दर्शनात् पाप! विद्योतस्व स्त्रियः प्रति॥

सद्-वृत्तानंतु दुर्-वृत्तः परस्त्रीं जात-सन्भथः ॥८८॥ आ रामेत्यादि—हे पाप! आ रामदर्शनान् रामदर्शनं यावत् । '५९७। आङ् मर्यादावचने । ११४।८९।' इति पूर्ववापञ्चमी । स्वियः प्रति योषितो लक्ष्यी-कृत्य । विद्योतस्य स्थिरो भव । श्विय इति '३०२। वा अम्-शमोः । ६१४।८०।' इति इयङ् । '५५२। लक्षणेत्यं मृत-। ११५।९०।' इत्यादिना कर्मप्रवचनीयत्वम् । सङ्क्तानतु दुर्वृत्तः सदाचारिणासुपरि दुर्वृत्त इत्यर्थः । इत्यं भूताख्याने इनोः कर्मप्रवचनीयत्वम् । परस्त्रीं जातमन्मथः । अत्र वीप्सायां कर्मप्रवचनीयत्वम् ॥ ६३१-अभि द्योतिष्यते रामो भवन्तमं-चिरादिहः, ॥

उदूर्ण-बाणः संग्रामे यो नारायणतः प्रति. ॥ ८९ ॥ अभीत्यादि सवन्तमि भवन्तं छक्ष्यीकृत्य । '५५५। अभिरमागे ।१।४। ९१।' इति कर्मप्रवचनीयत्वम् । अविरादिह छङ्कायां रामो बोतिष्यते असञ्च-तेजाः भविष्यति । य उद्गूर्णवाणः संग्रामे नारायणतः प्रति तेन तुल्यः । '५९९। प्रतिः प्रतिनिधि प्रतिदानयोः ।१।४।९२।' इति प्रतिनिधौ कर्मप्रवचनीयत्वम् । '६००। प्रतिनिधि-प्रतिदानयोः ।१।४।९२।' इति प्रतिनिधौ कर्मप्रवचनीयत्वम् । '६००। प्रतिनिधि-प्रतिदाने च यसात् ।२।३।११।' इति पञ्चमी । प्रतियोगे पञ्चन्यास्तिः । सुख्यसदशः प्रतिनिधिः ॥

६३२-कुतो ऽधियास्यसि कूर! निहतस् तेन पैत्रिभिः॥

न सूक्तं भवता ऽत्युग्रमंतिरामं मदोुद्धत !॥ ९०॥

कृत इत्यादि—हे कृर ! तेन रामेण उद्गूर्णबाणेन पत्रिभिः हाँरः निहतः सन् कृतो अधियास्त्रिक्ष केन प्रकारेण निःसारिष्यसि । '५५४। अधि-परी अनर्थकौ' । ११४१९२।' इति अधेः कर्मप्रवचनीयसंज्ञा । धाःवर्थव्यतिरेकार्थस्यानभिधाना-दनर्थकत्वम् । संज्ञा च गत्युपसर्गसंज्ञाबाधनार्था । तेन '३९७८। तिक्षि चोदात्त-

१ १३१३ म नाणी केस-पात भी पत्रिणी सर-पक्षिणी। रित ना० स०।

वित । ८।३।७१। द्वि निधाताभावो द्रष्टव्यः । पञ्चमी च 'प्रश्लाख्यानयोः' इत्यु-पसंख्यानाद्भवति । किमिति हनिष्यतीति चेत्—यतो भवता न सूक्तं प्रश्लासमु-कस् । '५५५। सुः पूजायाम् । १।४।९४। द्वि कर्मप्रवचनीयत्वम् । '३७८३। गतिरनन्तरः ।६।२।४९। द्वि स्वराभावः । अत्युप्रमतिरौद्रम् । अतिरामं राम-मिषिक्षिप्य । काकुत्स्थमधन्यमिति । '५५६। अतिरतिक्रमणे च ।१।४।९५।' इति कर्मप्रवचनीयत्वम् । चकारात्पूजायां च तत्र चाप्युक्तमिति प्रयोगः । हैं महोद्धतः !॥

६३३-परिशेषं न नामा ऽपि स्थापयिष्यति ते विभुः,॥ अपि स्थाणुं जयेद् रामो, भवतो ग्रहणं कियत्. ९१

परीत्यादि—रामो विभुः प्रभुः ते परिरोषं नामपि संज्ञासपि न स्थापयि-ध्यति, किसु देहम्। 'पप्त अपिः पदार्थ—।१।४।९६।' हस्यादिना पदार्थे कर्मप्र-वचनीयसंज्ञा। पदस्य देहस्याप्रयुज्यमानस्यार्थे अपिशब्दो वर्तते। अपि स्थाणुं जयेदामो यमाराध्याधिपत्यं प्राप्तवानसि तमपि स्थाणुं महादेवं जेतुं संभाव्यते भवतो प्रहणं कियत्। यस्त्वेव न भवति। अत्र संभावनायां कर्मप्रवचनीयत्वम्। संभावने छिङ्। उपसर्गवाधनत्वारसंज्ञायाः'२२७०। उपसर्गात्सुनोति—।८।३।६५। इस्रादिना पत्वं न भवति॥

६३४-अपि स्तुह्यंपिसेघा ऽस्मांस् तथ्यं मुक्तं नराऽशन !,॥ अपि सिक्चेः कृशानी त्वं दर्पं, मर्थ्यपि यो ऽभिकः.९२

अपीत्यादि — हे नराजन! मया तथ्यमुक्तं यन्नामापि न स्थापियविति। असानिष स्तृहि साधूक्तमिति प्रशंस। '२२०१। सेर्ह्यपिच ।३।४।८७।' इति अपिति कित्त्वाहुणाभावः। अपिलेध निगृहाण यथेच्छं तथा कियातास्। मया तु स्रथमेवोक्तमिति भावः। अन्नान्वसर्भो कामचारानुज्ञाने कर्मप्रवचनीयसंज्ञा। किंच कृशानायन्नौ दर्षं अपि सिद्धेः क्षरेस्त्वम्। अन्न गर्हायां छिक्टि रूपम्। यो-ऽयं मर्व्यपि महिष्येऽपि अभिकः कामयिता। '१८७४। अनुक्शिक-।५१।-७४।' इत्यादिना निपातितः। उपसर्गसंज्ञाबाधनार्थत्वात् स्तौति-सेधि-सिचां पर्वं न भवति॥

६३५-अधिरामे पराक्रान्तमधिकर्ता स ते क्षयम्,॥

इत्युंक्तवा मैथिली तूष्णीमांसांचके दशाननम् . ॥९३॥

अधीत्यादि पराकान्तस्य शोर्यस्य राम ईशितेत्यसिन्नर्थे अधिरामे परा-क्रान्तम्। '३०९०। नष्टंसके भावे कः ।३।३।११४।'। '६४४। अधिरीश्वरे १।४।९७।' इति स्वस्वामिसंबन्धे अधेः कर्मप्रवचनीयसंज्ञा । '६४५। यसाद-

१—'३९। न्योमकेशो भवो भीमः स्थाण्यू रुद्र उमा-पतिः ।' इति ना० अ०। 'स्थाणुः कीले हरे पुमान्' इति कोशान्तरं च। २—'५९। अग्निर्—' इत्यादित आरम्य ६१। आश्रयाशो बृहद् मानु कृशानुः पानकोऽनलः।' इति ना० अ०॥

धिकम्-1२।३।९।' हत्यादिना सप्तमी । यश्चैवं स रामस्ते क्षयमधिकर्ता किर्व्य-ति । अत्र कर्मण्येव द्वितीया । न '५४८। कर्मप्रवचनीययुक्ते ।२।३।८।' इति '७७४। विभाषा कृति ।१।४।१२।' इति या संज्ञा तस्या गत्युपसर्गसंज्ञाबाध-नार्थस्वात् । संज्ञापक्षे '३९७८। तिक्टि चोदात्तवि ।८।१।७१।' इति निघाता-भावो द्रष्ट्य इति । एवसुक्ता द्शाननं मैथिली त्ष्णीमासांचके त्ष्णीं स्थि-ववती ॥

इति कर्मप्रवचनीयाधिकारः॥

इतः प्रसृति 'अनिमिहिते' इत्यधिकृत्य विभक्तिविधानमाह— ६३६—ततः खड्गं समुद्यम्य रावणः कूर-विग्रहः॥

वैदेही मन्तरा कुद्धः क्षणमूचे विनिश्वसन्. ॥ ९४॥

तत इत्यादि—ततः सीतावचनादुत्तरकालं रावणः खडं समुखम्य उल्लिन्य । कर्मणि द्वितीया । ऋ्रवित्रहः दुष्पेक्ष्यत्वात् । वैदेहीमन्तरा कुदः वैदेद्या वसे कुषितः । '५४५। अन्तराऽन्तरेण युक्ते ।२।३।४।' इति पष्ट्यपवादाद्वितीया । अन्तराशक्दो मध्यमाधेयप्रधानमाचष्टे, आध्यश्चात्र वधः, क्षणमूचे उक्तवात् । उक्तिक्षियया क्षणस्य कालस्य साकल्येन संबन्धात् '५५८। कालाध्वनोः—।२।३।५।' इति द्वितीया । विनिश्वसन् क्रोधात् ॥

६३७-'चिरेणा ऽनुगुणं प्रोक्ता प्रतिपत्ति-पराङ्मुखी ॥
न मासे प्रतिपत्तासे मां चेन्, मर्तासि मैथिली ! ९५'

चिरेणेत्यादि है मैथिल ! चिरेणापि कालेनानुगुणमनुक्लं मया श्री कापि सती प्रतिपत्तिपराङ्मुखी। उक्तस्यार्थसानुष्ठानं प्रतिपत्तिः तस्यां परा- इमुखी इदानीं यदि त्वं मासे त्रिशद्दियसळक्षणे मां न प्रतिपत्तासे नाक्नीकरि- इमिस तदा मतासि मरिष्यसि। उभयमपि लुटि रूपम्। तत्र चिरेण प्रोक्ता इति। 'पद्दा अपवर्गे नृतीया। रादादा' विवक्षितार्थप्रकाशनं फलं तस्य प्राप्ती तिक्तयापरिसमासिरपवर्ग इति। मां मासे न प्रतिपत्तास इति '६४३। सप्तमी- पञ्चम्यो कारकमध्ये। रादाशां इति सप्तमी। कर्मकर्त्रीः कारकयोर्मध्यत्वात् सासस्य।।

६३८-प्रायुङ्क राक्षसीर् भीमा मन्दिराय प्रतिव्रजन् ॥

'भयानि दत्त सीताये सर्वा यूयं कृते मम. ॥ ९६ ॥' प्रायुक्केत्यादि—रावणो राक्षसीभीमा भयानकाः प्रायुक्क समादिष्टवान्। छ-डि रूपम्। मन्दिराय प्रतिव्रजन् गृहाय प्रतिव्रजन् । '५८५। गत्यर्थकर्मण्य-३२१३।१२।' इत्यादिना तु चतुर्थी। कर्मप्रवचनीयादिस्त्रचतुष्टयेनोदाहतं कर्मप्र-

12131921 इत्यादना तु चतुथा। कम्प्रवचनायादसूत्रचतुष्टयनादाहृत कम्प्रव वचनीयाधिकार एव दर्शितत्वात्। किमादिशदित्याह—सर्वा यूयं सीताये भया-नि दत्त। छोटि रूपम्। चतुर्थी संप्रदाने। संपूज्यादृत्य प्रकर्पेण दीयत इति सं-श्रदानम् मम कृते



६३९-गते तस्मिन् समाजग्मुर् भयाय प्रति मैथिलीम् ॥ राक्षस्यो, रावण-प्रीत्यै क्रूरं चौचुरैलं मुहुः, ॥ ९७ ॥

गत इत्यादि— तसिन् रावणे गते सित राक्षसः समाजग्मः संभूय गताः। '२६९९। समो गम्यृच्छि—।१।३।२९।' इत्यादिना आस्मनेपदं न भवति । आङा व्यवहितत्वात् । मैथिकीं प्रति कक्ष्यीकृत्य भयाय सीताये भयं दातुम् । '५८१। क्रियाथोंपपदस्य च कमीण स्थानिनः ।२।३।१४।' इति चतुर्थी । ददातेः क्रियाथों-पपदस्य स्थानिनः प्रयुज्यमानस्य भयं कमें । क्रिया चात्र समागमः । तत्रोपपदं क्रियाथीमिति कूरं च भयानकम् । मुद्दः प्रतिक्षणं अळं पर्याप्तमूचः उक्तवत्यः । रावणप्रीत्ये रावणस्यैवं प्रीतिः स्यादिति । '५८२। तुमर्थाच भाववचनात् ।२।३। १५।' इति चतुर्थी । क्रियायां क्रियाथीयामिति तुमुना समानार्थत्वात् । भाववचनात् क्ष्याथीयामिति तुमुना समानार्थत्वात् । भाववचनात् वनाश्चेत्वान् । क्ष्यायीयामिति तुमुना तमानार्थत्वात् । भाववचनात् वनाश्चेत्वान् विहितस्य क्तिनः क्षियार्थं उपपदं कूराभिधानम् ॥

६४०—'रार्वणाय नमस्कुर्याः, स्यात् सीते ! स्वस्ति ते ध्रुवम् ॥ अन्यथा प्रातराशाय कुर्याम त्वामेलं वयम् ॥९८॥

रावणायेत्यादि—हे सीते! रावणाय नमस्कुर्या रावणं नमस्कुरु । एवं च सित ते तुभ्यं स्वस्ति कल्याणं ध्रुवं स्थात् । युष्मच्छव्दस्य चतुर्थ्येकवचनान्तस्य तेश्वादेशः । नमस्कृत्वेति पाठान्तरम् । तत्र नमस्कृत्वा स्थिताये तुभ्यमित्यध्या- इत्य योज्यम् । अन्यथा ह्यसमानकर्तृकत्वात् कत्वाप्रस्ययो न घटते । नमस्कृत्येति पाठान्तरम् । साक्षात्प्रभृतिषु नमःशब्दस्य विकल्पेन गतिसंज्ञा । गत्यभावपक्षे नित्यं गतिसमासाभावे स्थवादेशः । '१५४। नमस्पुरसोर्गलोः ।८।३।४०।' इति विसर्जनीयस्य सकारादेशश्च न संभवतीति । अन्यथेति यदि न नमस्कुर्याः तदा अलं प्रातराशाय प्रातर्भोजनाय त्वां कुर्याम वयमित्युचुः । '२२००। नित्यं कितः ।३।४।९९।' इति सलोपः । रावणायेत्यादिषु '५८३। नमःस्वस्ति—।२।३।१६।' इत्यादिना चतुर्थी ॥

६४१-तृणाय मत्वा ताः सर्वा वदन्तीस् त्रिजटा ऽवदत्।। 'आत्मानं हत दुर्वृत्ताः ! स्व-मांसैः कुरुता ऽशनम् . ९९

१—अत्र 'उपपद्विभक्तः कारकविभक्तिर् वलीयसी' इति वार्तिकवलात् कर्मणि दितीवैव प्राप्ता, परं च तस्याप्यपवादभूतेन '५८१। क्रियाथीं पपदस्य च कर्मणि स्थानिनः
1२।३।१४।' इति स्त्रेण चतुश्येंव भवति। तेन 'नमस्कुमौं नृसिंहाय, स्वयंभुवे नमस्कुल'
इत्यादिवत् 'रायणाय—' इत्यस्य रावणं प्रसादयितुमित्यथीं युक्त इति शेयम् । एवं सति
'नमः-स्वस्ति-' इत्यादिना चतुर्थी' इति टीकाक्वदुक्तं प्रमादगर्मितम् । केवलं 'नमः-स्वस्ति'
इत्याकारकशब्दयोग एव तस्या विधानादिति भाति । किंतु 'प्रातराशाय त्वां अलं कुर्यांम' इत्यत्र तु अलंशब्दयोगात् 'नमः-स्वस्ति-' इत्यनेनैवेति । अत्र युक्तायुक्तविवेचनं तु

२२० भट्टि-काव्ये-दितीयेऽधिकार-काण्डे लक्षण-रूपे तृतीयो वर्गः,

तृणायेत्यादि —अथानन्तरं राक्षसीर्वदन्तीः त्रिजटा रावणस्वसा अवद्त् व उक्तवती। तृणाय मत्या तृणमिव संगणय्य। '५८४। मन्यकर्मण्यनादरे—।२।३।१७।' इति चतुर्थी। तत्र 'कुत्सितग्रहणं कर्तव्यम्' इत्युक्तम्। इह मा भूत् तृणं मत्वे-ति। किमवदत् आत्मानं इत मारयत्। दुर्वृत्ताः दुराचाराः। स्वमांसैः कुरुताः शनमिति करणे तृतीया॥

किमधीमेवमाहेलाह—

६४२-अद्य सीता मया दृष्टा सूर्यं चन्द्रमसा सह ॥

स्वमे स्पृशन्ती मध्येन ततुः श्यामा सुलोचना. ॥१००'

अद्येत्यादि— स्वमे मया अद्य सीता दृष्टा। कर्तरि तृतीया। सूर्यं स्पृशन्ती चन्द्रमसा सह। सहयोगे तृतीया। सूर्याचन्द्रमसाविति रामरूक्ष्मणाविति भावः। मध्येन तनुः तन्ती। '५६६। इत्यंभूतरूक्षणे। राइ। रशः तृतीया '५०२। वोतो गुणवचनात्। १। ११४४।' इति धीवभावपक्षे रूपम्। इयामा वर्णेन। सुलोचना शोभननेता॥

६४३-तास् तया तर्जिताः सर्वा मुखैर् भीमा यथाऽऽगतम्॥

ययुः सुषुप्सवस् तर्लं भीमैर् वचन-कर्मभिः ॥१०१॥ ता इत्यादि—ता राक्षसस्तया त्रिजटया तर्जिता भर्धिताः। सुषुपसनः स्नाः

मिच्छवस्तर्षं शयनीयं ययुर्गताः । यथागतं यतो यतस्तरपादुत्थाय गताः । '६-६१। यथाऽसादश्ये ।२।१।७।' इति चीप्सायामव्ययीभावः । मुखैर्मीमा रौदाः मुखानां विकृतत्वात् । '५६५। येनाङ्गविकारः ।२।३।२०।' इति तृतीया । भीमैंः' वैचनकर्मभिः उपलक्षिताः । इत्थंभूते तृतीया ॥

६४४-गतासु तासु मैथिल्या संजानानो ऽनिलाऽऽत्मजः॥ आयातेन दशाऽऽस्यस्य संस्थितो ऽन्तर्हितश् चिरम्॥

गतास्त्रित्यादि — तासु राक्षसीषु गतासु । अतिलात्मजो हन्मान् 'रामसं-कथां प्रास्तावीत्' इति वक्ष्यमाणेन संबन्धः । मैथिल्या संजानानः इयं सेत्यव-गच्छन् । '५६७। संज्ञो उन्यतरस्याम्—।२।३।२२।' इति कर्मणि तृतीया । '२७१९'

सं-प्रतिभ्याम्-।१।३।४६।' इति तङ् । दशास्त्रसायातेनागमनेन हेतुना चिरम-न्तर्हितो निळीनः स्थितः ।, '५६८। हेतौ ।२।३।२३।' इति तृतीया ॥ ६४५-ऋणाद् बद्ध इवीन्मुक्तो वियोगेन ऋतु-द्विषः ॥

हेतोर् बोधस्य मैथिल्याः प्रास्तावीद् राम-संकथाम् ।।

'६०९। अकर्तर्थृणे—।२।३।२४।' इति पञ्चमी । ऋणस्याकर्तृहेतुत्वात् । ऋणेन बन्धित इवेति नोक्तम् । अप्रयोजककर्तृत्वादणस्य । उन्युक्तः ऋतुद्विषो रावणस्य क्षेत्रेण '६०२ विमाना गुणे ऽखियाम् ।२ २ १५ 'इति पक्षे तृती

. ऋणादित्यादि — ऋगाद्धेतोबैद्ध इवोन्युक्तो यथा स्थानान्तरं गतवान्।

海岸

योदाहृता न पञ्चमी । वियोगस्य गुणपदार्थत्यात् । किमिति संकथां प्रास्तावीदिन्त्याह—हेतोबोंधस्य मैथित्याः । एप रामदृत इति मैथित्या बोधो ऽवगमः स्थान्त् । '६०७। पष्टी हेतुप्रयोगे ।२।३।२६।' इति बोधशब्दस्य पष्टी । प्रास्तान्वीदिति '२३८५। स्तु-सु-धूक्त्यः परस्पेपदेषु ।७।२।७२।' इति ह । '२२६८। नेटि ।७।२।४।' इति हरुन्तरुक्षणाया बृद्धेः प्रतिषेधः नेगन्तरुक्षणायाः ॥

६४६-तं दृष्ट्वा ऽचिन्तयत् सीता-'हेतोः कस्यैष रावणः ॥ अवरुह्य तरोरौराँदैति वानर-विग्रहः ॥ १०४ ॥

तिमिस्यादि—तं हन् भन्तं रामं स्तुवन्तं दृष्ट्वा सीता अचिन्तयत्। कस्य हेतोः रावणो वानरविग्रहः सन् ऐति आयाति। आङ्पूर्वस्रेणो रूपम्। '६०८। सर्वना- झस्तृतीया च।र।३।२७।' इति षष्टी । किंग्रव्दस्य सर्वनामत्वात् । आरात् अन्तिके। तरोरिति '५९५। अन्यारात्—।२।३।२९।' इत्याराच्छव्दयोगे पञ्चमी। अवरुह्यावतीयेति । अवरोहणापेक्षया द्यपादाने पञ्चमी। अपेक्षाया योगपद्यामा- वात्। 'उपपद्विमक्तेः कारकविभक्तिकेठीयसी' आराद्योगे न वर्तते॥

६४७-पूर्वसमादंन्य-वद् भाति भावाद् दाशरथिं स्तुवन्,॥ ऋते कौर्यात् समायातो मां विश्वासयितुं नु किम्?॥

पूर्वसादित्यादि — पूर्वसादावणादन्यवद्ध ति ज्ञायते। अन्येन तुस्यं वर्तते इति कृत्वा अन्यशब्दयोगे पञ्चमी। यतो मावात् स्नेहादाशर्यां स्तुवन्। किंतु कौर्योदते कौर्यं वर्जयित्वा। ऋतेशब्दयोगे पञ्चमी। मां विश्वास्यतुं संभावयितुं किमागत इत्यविन्तयत्॥

६४८-इतरो रावणादेव राघवाऽनुचरो यदि,॥

स-फलानि निमित्तानि प्राक् प्रभातात् ततो मम. १०६

इतर इत्यादि — यदि रावणादितरः प्रतियोगी राववानुचरः राधनार्थकारी । इतरयोगे पञ्चमी । ततो मम सफलानि स्वप्तलक्षणानि दर्शनादीनि निमित्तानि । प्राक् प्रभावान् आदित्योदधारपूर्वस्मिन् काले । अन्यस्य हि प्रभातादुत्तरकार्क सफलानि । अञ्चल्तरपदयोगे पञ्चमी ॥

६४९-उत्तराहि वसन् रामः समुद्राद् रक्षसां पुरम्॥

अवैद्ध लवण-तोयस्य स्थितां दक्षिणतः कथम् . १०७

उत्तराहीत्यादि—रामदूतो ऽयमिति न संभास्यते । यतः समुदादुत्तरा या दिक् तस्यामुत्तराहि वसन् रामः । आहि च दूरे उत्तराचेति । तत्राहिमस्ययान्तेन उत्तराहिशब्देन योगे समुदादिति पञ्चमी । छवणतोयस्य छवणसमुदस्य दक्षि-णतो दक्षिणसां दिशि स्थितां रक्षसां पुरीं छङ्कां कथमवैत् ज्ञातवान् । दक्षिणत इति '१९७८। दक्षिणोत्तराभ्यामतसुत्र । ५।३।२८।' सदन्तेन योगे '६०९। षष्ट्य-तसर्यमस्येन । २।३।३०। दिति षष्ठी ॥ २२२ अहि-काव्ये —द्वितीयेऽधिकार-काण्डे लक्षण-रूपे तृतीयो वर्गः,

६५०-दण्डकान् दक्षिणेना ऽहं सरितो ऽद्रीन् वनानि च॥

अतिक्रम्या ८म्बुधि चैव पुंसामंगममाहृता. ॥ १०८॥ दण्डकानित्यादि—दण्डकानामदूरे या दक्षिणा दिक तसामिति । '१९-८॥ एनवन्यतस्याम्-।५।३।३५।' इति ससम्यन्तादेनप् प्रस्यः । तदन्तेन योगे

'६१०। एनपा द्वितीया ।२।३।३१।' इति द्वितीया । दक्षिणेन दण्डकानां दक्षि-णस्यां दिशि । सरितो ऽदीन् वनाति च अन्तुर्वि चातिकस्य पुंसामगममगम्यम् । '३२३४। ग्रह-हु-ह-निश्चि गमश्च ।३।३।५८।' इत्यप् । अहमाहता आनीता ।

तत्कथमवैदिसचिन्तयत्॥ ६५१—पृथङ् नभस्वतद्य चण्डाद् वैनतेयेन वा विना॥

गन्तुमुत्सहते नेह कश्चित् किमुत वानरः. ॥१०९॥'

पृथगित्यादि—नभस्ततो वातात् चण्डात् पृथक् वायुं त्यक्तवा । वैनतेयेन वा विना गरुडं वा वर्जधित्वा । '६०३। पृथग्विना—।२।३।३२।' इत्यादिना तृती-यापञ्चम्यो । इह सङ्कार्या कश्चित् गन्तुं नोत्सहते किमुत वानरः ॥

६५२-इति चिन्ता-वर्ती कृच्छात् समासाद्य कपि-द्विपः ॥
मुक्तां स्तोकेन रक्षोभिः प्रोचे-'ऽहं राम-किङ्करः ११०

इतीत्यादि — एवमुक्तेन प्रकारेण चिन्तावतीं कपिद्विपो हन्मान् । कृष्णा-त्समासाध कथमप्युपगम्य । अहं रामिकिङ्गरः रामधेषणकर इति शोचे । मुक्तां स्तोकेनात्पेन रक्षोभिः कर्तृभिः । '६०४। करणे च स्तोकात्प-।२।३।३३।' इत्या-

दिना तृतीयापञ्चम्यौ । इन्छ्न्स्तोकयोरसत्त्ववचनयोः करणत्वात् ॥

यदि त्वं रामिकक्करः कासावित्याह— ६५२-विप्रकृष्टं महेन्द्रस्य न दूरं विन्ध्य-पर्वतात्॥

ना ऽनभ्याशे समुद्रस्य तव माल्यवति प्रियः. ॥१११॥

चित्रेत्यादि साल्यवति पर्वते तव प्रियो रामः महेन्द्रस्य पर्वतस्य वित्रकृष्टं दूरं । विन्ध्यपर्वतास न दूरम् । '६११। दूरान्तिकार्थेः षष्टुशन्यतरस्याम् ।२।३।-३४।' इति पष्टी-पञ्चन्यो । महेन्द्रपर्वत-विन्ध्ययोदूरविप्रकृष्टयोस्तु '६०५। दूरा-नितकार्थेभ्यो द्वितीया च ।२।३।३५५।' इति द्वितीया । नानभ्याशे न दूरे ससु-द्रस्य । '६११। दूरान्तिकार्थेः-।२।३।३४।' इति पष्टी । माल्यवति '६३३। सस-न्यक्षिकरणे ।२।३।३६।' इति सप्तमी । चकाराहूरान्तिकार्थेभ्यक्ष । तेनानभ्याश इति सप्तमी ॥

६५४-अ-संप्राप्ते दश-धीवे प्रविष्टो ऽहमिदं वनम् ॥ तिसन् प्रतिगते द्रष्टुं त्वामुपाऋसंचेतितः ॥ ११२॥

ें अर असमिसाहि व्यवधीये दश्चवदने असंप्राप्ते अप्रविष्टे अहमचेविवः प्रविष्ट इति । तस्मिन् प्रविश्वते त्यौ द्रहुभुपार्कः तथा लक्ष्य रूपे कथानके 'Sद्योक वनिका भक्तो' नामाष्टम सर्गः १२३

ासि समुत्सहे सा। '६३४। यस च भावेन—१२१३१०।' इति ससमी । कपैः अवेशोपक्रमयोः रावणसंप्राप्तिप्रतिगमनिक्याभ्यां लक्ष्यमाणस्वात् । उपाकंसीति '२७३२। उपपराभ्याम्—१९१३६९।' इल्लेन वृत्त्यादिषु सर्ग उत्साहे कमेसाङ् । उत्तमपुरुषेकवचनम् । '२३२३। स्नु-कमोरनात्मनेपदिनिमित्ते ।७१२।३६१' इति सिच इद न भवति ॥

यवादावेव प्रविधो असे ति किमिति सकर्म न दक्षितवानसीत्याह— ६५५—तिस्मिन् वदित रुष्टो ऽपिना ऽकार्ष देवि! विक्रमम्॥ अ-विनाशाय कार्यस्य विचिन्त्रानः परापरम्॥११३॥

तिसिन्नित्यादि —हे देवि ! तिसम् वदति रुष्टोऽपि विक्रमं नाकार्षं तं तथा वदन्तमनादस विक्रमं नाकार्षमित्यर्थः । '६३५। पष्टी चानादरे ।२।३।३८।' इति चकारात्ससमी । किमर्थं कार्यस्य संदेशकथादेशविनाशाय । विचिन्वानः परापरं पौर्वापर्यं निरूपयन् । कर्नभित्राये तक् ॥

कथं वानरस्त्रं तस्य किङ्कर इत्याह—

६५६-वानरेषु कपिः स्वामी नरेष्वंधिपतेः सखा॥

जातो रामस्य सुग्रीवस् ततो दूतो ऽहर्मागतः॥ ११४॥
'वानरेष्वित्यादि—वानरेषु स्त्रामी यः किषः सुग्रीवः स नरेष्विषिपतेः
रामस्य सखा जातः। '६३६। स्वामीश्वर-।२।३।३९।' इत्यादिना पद्यी-सहम्योविधानात् सहस्युदाहता। ततो ऽहं दूत आगतः॥

आगत्म च रुङ्कां प्रविश्य इहायात इत्याह—

युग्मम्-११५-११६

६५७-ईश्वरस्य निशाटानां विलोक्य निखिलां पुरीम् ॥ कुशलो ऽन्वेषणस्या ऽहर्मायुक्तो दूत-कर्मणि ॥११५॥

ईश्वरस्पेत्यादि — निशादानां राक्षसानामीश्वरस्य दशाननस्य । अत्र षष्ट्यु-दाहता । पुरीं निखिलां निःदोषां विलोक्य किं तत्र वर्तत हृति । मास इति वश्यमाणेन संवन्धः । कुशलो ऽन्येषणस्याहं सीताया अन्वेषणस्य निपुणः । आयुक्तो दूतकर्मणि दूतकियायां व्यापृतः । '६३७। आयुक्त – कुशलान्याम् –। २।३।' ४०।' इति षष्टी-ससम्यो ॥

> ६५८-दर्शनीय-तमाः पश्यन् स्त्रीषु दिव्यास्त्रीपि स्त्रियः ॥ प्राप्तो व्याल-तमान् व्यस्यन् भुजङ्गेभ्यो ऽपि राक्षसान् ॥ ११६॥

रंद४ अहि-काट्ये-द्वितीयेऽधिकार-काण्डे लक्षण-हपे तृतीयो चर्गः,

द्रीनीयेत्यादि—तत्र दिव्यास्विप सीषु मध्ये दर्शनीयतमाः श्चियः पर्यन्। '६३८। यतश्च निर्धारणम्।२।३।४९।' इति सप्तमी । दर्शनीयतमत्वेन गुणेन
पृथक्करणान् । भुजङ्गेभ्यो अपि व्यालतमान् हिंसान् राक्षमान् व्यस्पन् अपिक्षपन्। '६३९। पञ्चमी विभक्ते ।२।३।४२।' इति पश्चमी । भुजङ्गेभ्यो राक्षमानां
विभागान् शासो देव्याः पादमूलमित्यर्थान् ॥

किमवस्थो राम इत्याह--

६५९-भवलार्मुत्सुको रामः प्रसितः संगमेन ते ॥ मघासु कृत-निर्वापः पितृभ्यो मां व्यसर्जयत् ॥११७॥

भवत्यासित्यादि सवत्यां त्विय उत्सुकः उन्मनाः रामः । तत्र संगन्नेन प्रसितः प्रसन्तः । '६४९ । प्रसितोरसुकाभ्यां नृतीया च ।२।३।४४।' इति चका-रात्समि । मद्यामिर्युक्तः कालः तत्समिपे चन्द्रमसो वर्तमानत्वात् । '१२०४। नक्षत्रेण युक्तः कालः ।४।२।३।' इत्यण् । तत्य '१२०५। छुवविदोषे ।४।२।४।' इति छुप् । तस्मिन् काले पितृभ्यः कृतनिर्वापः दत्तदानः मां व्यसर्जयत् । '६४२। नक्षत्रे च लुपि ।२।३।४५।' इति सप्तमी । तत्रापि '१२९४। लुपि युक्त-वद्यक्तिवचने ।१।२।५१।' इति स्वीलिङ्ग-बहुवचने भवतः । व्यसर्जयदिति विद्या-वदात् '५३२। प्रातिपदिक-।२।३।४६।' इत्यादिना प्रातिपदिकमात्रे प्रथमा ॥

संदेहिनिवृत्यर्थं चाभिज्ञानं दर्शयन्नाह—

६६०-अयं मैथिर्व्यभिज्ञानं काकुत्स्थस्या ऽङ्कुलीयकः ॥

भवत्याः स्मरता ऽत्यर्थमंपितः सादरं मम. ॥११८॥

अयभित्यादि —काकुत्स्थस्यायमञ्ज्ञुलीयको ऽभिज्ञानं चिह्नमयमभिज्ञानमिति लिङ्गाधिके प्रातिपदिकमात्रे प्रथमा । मैथिलीति संगोधनादिके '५३३। संबोधने च ।२।३।४७।' इति । सामन्नितं संबुद्धिश्चान्त्रेव द्रष्ट्यम् । काकुत्स्थस्येति '६०६। षष्टी शेषे ।२।३।५०।' इति षष्टी । भवत्या अत्यर्थं स्मरता सादरमपितम् । '६१३। अधीगर्थ-।२।३।५२।' इत्यादिना स्मरणार्थे कर्मणः शेषत्विवद्धा-यां पष्टी ॥

६६१-रामस्य दयमानो ऽसार्वध्येति तव रुक्ष्मणः,॥

उपास्कृषातां राजेन्द्रावांगमस्थेह, मा त्रसीः ॥११९॥

रामस्यत्यादि — असी लक्ष्मणी रामस्य दयमानी रामं रक्षन् शुर्व मा काणीरिति। दयतेः कमिण पष्टी। तवाध्येति त्वां सरिति। '६१३। अधीगर्थं— ।२।३।५२।' इति पष्टी। आश्वासनार्थमाह—मा त्रसीः उद्देगं मा काणीः। त्रसे-रीदिस्वाश्विष्ठायामिद्शतिपेधात् सिच इद भवति। यतो राजेन्द्री रामल्हमणी। इहागमस्यामनस्य। भावे अप्। उपास्क्षणातां प्रतियतं कृतवन्ती। आगमनस्य निश्चितत्वात् तस्यैव सुप्रीवसल्येन गुणाधानात् तेन '६१४। कृषः प्रतियत्ने।२।३

अवस्थित करोणि पत्ती मतियवे छुए तक् सुद ॥

६६२-रावणस्येंह रोश्यन्ति कपयो भीम-विक्रमाः, ॥

भूत्या नाथस्व वैदेहि!, मन्योर्कजासयाऽऽत्मनः.१२०

रावणस्वेत्यादि—इह छङ्कायां कपयो भीमविकमाः असह्यपराकमाः राव-णस्य रोध्यन्ति सरोगं रावणं करिष्यन्ति । भीमविकमा इति गुणप्रधानो निर्दे-शः । ततश्च विक्रमे रुजः भावकर्तृकत्वात् '६१५। रुजार्थानां भाववचनानामज्त्ररेः ।राइ।५४।' इति घष्टी । अतो है वेदेहि ! छत्या नाथस्व आशंसस्व । धति रुभस्वेत्यर्थः । '६१६। आशिषि नाथः ।राइ।५५।' इति कमेणि पष्टी । आशिषि नाथ इत्युपसंख्यानात्त्रङ् । मन्योरुजासयात्मनो मन्यु नाशय । '१८५१। जसु हिसायां ताडने।' चौरादिकस्य हिंसार्थस्वात्तेन '६१७। जासि-निम्नहण—१२।३।५६।' इति कमेणि पष्टी ॥

६६३-राक्षसानां मयि गते रामः प्रणिहनिष्यति ॥

प्राणानामपणिष्टाऽयं रावणस् त्वामिहानयन् ॥१२१॥

रास्यसानामित्यादि—मयि गते रामो राक्षसानां प्रणिहनिष्यति राक्षसान्
मारियव्यति । पूर्ववत् कमेणि पष्टी । निष्ठहण इति संघातित्रगृहीतविपर्यस्तप्रहणिमित्युक्तम् । '२२८५। नेगेद-।८।४।४७।' इत्यादिना णत्वम् । किंच प्राणानामपणिष्ठायमिति अयं रावणस्त्वामिहानयन् प्राणानपणिष्ट विकीतवान् । '६१८।
व्यवह-पणोः समर्थयोः ।२।३।५७।' इति पष्टी । 'प्राणानामपणायिष्ट' इति
पाठान्तरम् । तद्युक्तं, स्तुत्यर्थस्य पणेस्तत्र प्रहणात् '२३०३। गुपू धूप-।३।४।२८।'
इत्यादिना आयप्रत्ययो न भवति ॥

६६४-अदेवीद् बन्धु-भोगानां, प्रादेवीदात्म-संपदम्, ॥

शत-कृत्वस् तवैकस्याः सगरत्येह्रो रघूत्तमः,॥१२२॥

अदेवीदित्यादि—न केवलं प्राणानपणिष्ट बन्धुमोगानामदेवीत् बन्धुमोन गान् विक्रीतवान् । '६९९। दिवसदर्थस्य ।२।३।५८।' इति षष्ठी । दिनो व्यव-हारार्थस्वात् । प्रादेवीदासमसंपदं विक्रीसवान् ।'६२०। विभोषोपसर्गे ।२।३।५९।' इति पक्षे द्वितीया । प्रशब्देन युक्तत्वात् । रामानुरागं पुनर्दशंबद्याह । शतकृत्व इति बहुत्वोपलक्षणार्थम् । '२०८५। क्रियाम्यानृत्तिराणने कृत्वसुन् ।५।४।५७।' तवैकस्याद्वो रघूक्तमः स्वरति । '६९३। अधीगर्थ-।२।३।५२।' इति षष्ठी । अह इति एकस्मिक्रत्यह्वि । '६२२। कृत्वोऽर्धप्रयोगे काले ऽविकरणे ।२।३।६४।'

पुत्रं तामाश्वास्य संदेशं दापयितुमाह—

इति षष्टी ॥

६६५-तवीपशायिका यावद् राक्षस्यश् चेतयन्ति न, ॥
तावद् भर्तुः शार्क्सस्य मैथिछि । १२३

२२६ भट्टि-काट्ये--द्वितीयेऽधिकार-काण्डे लक्षण-रूपे तृतीयो वर्गः,

तवेत्यादि — हे मैथिछि ! तवोपशायिका परिपाट्या शयनं याभी राक्षसी-भिः सहेत्यर्थात् । '३२८८। पर्यायाहंणोत्पत्तिषु ण्वुच् ।३।३।११११ यावश्व चेतयन्ति न प्रतिबुध्यन्ते तावत् प्रतिसंदिङ्यतां प्रतिसंदेशो दीयताम् । शाङ्गंस भर्तुः शाङ्गं घनुर्धारयतो रामस्य । तव शार्ङ्गस्येति यथाक्रमं '६२३। कर्तृ-कर्मणोः कृति ।२।३।६५।' इति षष्टी ॥

६६६-पुरः प्रवेद्यमिश्चर्यं बुद्धा शाखा-मृगेण सा ॥ चूडा-मणिमेभिज्ञानं ददौ रामस्य संमतम्. ॥१२४॥

पुर इत्यादि—काखाम्रगेण मर्कटेन पुरो लङ्कायाः दुष्प्रवेशायाः प्रवेशः तमाश्रर्थमञ्चतं बुङ्का सा सीता चूडामणिमभिज्ञानं ददौ सर्वमुक्तमस्य संभाव्यतः . इति । '६२४। उभयप्राप्तौ कर्मणि ।२।३।३६।' इति षष्ठी । प्रवेश इत्युभयप्राप्तौ कृति लङ्का-हनूमतोः कर्मकर्तृत्वात् । रामस्य संमतं थियम् । '३०८९। मतिबुद्धि न ।३।२।१८८।' इत्यादिना वर्तमाने निष्ठा । '६२७। म लोक-।२।३।६९।' इति षष्ठीप्रतिवेधे प्राप्ते '६२५। क्तस च वर्तमाने ।२।३।६९।' इति पष्ठी ॥

६६७-रामस्य शयितं भुक्तं जल्पितं हसितं स्थितम् ॥

प्रकान्तं च मुहुः पृष्ट्वा हनूमन्तं व्यसर्जयत् । ॥१२५॥

रामस्यत्यादि — रामस्य अभिज्ञानं दत्त्वा शियतादिकं मुहुः पृष्ट्वा हन् मन्तं व्यस्तंयत् प्रेषितवती । तस्य शियतुं शयनस्थानं किं भूमें। होते अन्यन्नेति वा । भुकं भोजनस्थानं किं गृहे भुक्के मुनिजनगृहे वेति । जिल्पतं मञ्जस्थानं कि रहिस मन्नयते प्रकाशे वेति । हिसतं हसनस्थानं किं स्क्रारवस्त् निहसति वीर-वस्त् नि वेति । स्थितं निवासस्थानं किं गृहायां तिष्ठत्युत तस्तले वेति । प्रकान्तं प्रचङ्कमणस्थानम् । '२६६६। अनुनासिकस्य—।६।४।५५।' इत्यादिना दीर्घः । किं अङ्गने ऋग्यते अन्यन्न वेति । एषां भौव्यगतिमत्यवसानार्थत्वात् । '३०८०। को-ऽधिकरणे च—।३।४।०६।' इति कः । तस्य प्रयोगे '६२६। अधिकरणवाविनश्च ।रा३।६८।' इति षष्टी ॥

६६८-असौ दघदंभिज्ञानं चिकीर्षुः कर्भ दारुणम् ॥ गामुको ऽप्यंन्तिकं भर्तुर् मनसा ऽचिन्तयत् क्षणम् ॥ १२६॥

े असावित्यादि असी हन्मान् दधत् धारयश्वभिज्ञानं चिह्नम् । '६२३। कर्तृ-कर्मणोः कृति ।२।३।६५।' इति पष्टवां प्राप्तायां '६२७। न छोक-२।३।६५।' कृति कप्रयोगे प्रतिषेच क इति ो गृहीता विकास विकास विकास महीः स्त्रासिनः अन्तिकं समीपं गामुको ऽपि गमनशीखो ऽपि । उक्तप्रयोगे प्रतिषेधः । मनसा क्षणं चिन्तितवान् वस्यमाणं कर्मे ॥

६६९—'कृत्वा कर्म यथाऽऽदिष्टं पूर्व-कार्याऽविरोधि यः॥ करोत्यंभ्यधिकं कृत्यं, तर्माहुर् दूतमुत्तमम्।॥१२७॥

हत्वेत्यादि—यो दूतो यथोद्दिं कर्म कार्य हत्वा। अत्र हत्वेत्यव्ययप्रयोगे प्रतिषेधः । तत उत्तरकालं पूर्वकर्माविरोधि पूर्वहतत्त्व कार्यस्य थद्विरोधि तद-धिकं करोति तमुत्तमं दूतमाहुर्विद्वर्गीतिविद इति रोषः । मया च यथोदिष्टं सीतान्वेषणं कृतमिति भावः॥

तदेव च दर्शयसाह--

६७०-वैदेहीं दृष्टवान् कर्म कृत्वा अन्यैरंपि दुष्करम् ॥ यशो यास्याम्युंपादाता वार्तामांख्यायकः प्रभोः. १२८

चेदेहीमित्यादि—अहमद्य तावहुँदेहीं दृष्टवान् । निष्टाप्रयोगे प्रतिषेधः । अन्यदिष कार्यमतिदुष्करं कृत्वा । खळ्पयोगे प्रतिषेधः । ततो यश उपादाता । आत्मसास्कर्ता । इदमतिदुष्करं तेन कृतमिति । तृज्ञन्तस्य प्रयोगे प्रतिषेधः । वार्तामास्यायकः प्रभोवार्तामाख्यातास्त्रीति भविष्यद्षिकारात् '३१७५। तुमुन् प्रकुष्टै क्रियायाम्—।३।३।१०।' इति ण्युळ् । '६२८। अकेनोर्भविष्यद्ष्यमण्येयोः ।२।३।७०।' इति प्रतिषेधः ॥

६७१-राक्षमेन्द्रस्य संरक्ष्यं मया खव्यर्मिदं वनम्,॥'

इति संचिन्त्य सदशं नन्दनस्या ऽभनक् कपिः. १२९ राक्षसेत्यादि—इदं वनमशोकवनिकाल्यं राक्षसेन्द्रस्य संरक्ष्यं रक्षाईम्।

१८२२। अहें इत्य-। ३।३।१६९। '२८७२। ऋ-हलोण्यंत् ।३।१।१२४।' तन्मया लव्यं लवनीयस्। '६२९। क्रत्यानां कर्तरि वा।२।३।७१।' इति पष्ठीतृतीये कर्तरि भावतः। इत्येवं संचिन्त्य कपिनेन्द्रनस्य बनस्य सहस्रां तुल्यं। '६३०। तुल्यार्थेः।२।३।७२' इति पक्षे पष्टी। अभनक् भझवान्। भक्षेर्लेङि '२५४४। शाक्षलोपः। १।४।२३।' इति नलोपे हल्ल्यादिलोपे जरुत्वे चर्त्वे च रूपम्॥

६७२-राघवाभ्यां शिवं, दूतस् तयोरंहिमिति बुवन् ॥

हितो भनज्मि रामस्य, कः किं ब्रूते ऽत्र राक्षसः, १३०

राघवाभ्यामित्यादि —राघवाभ्यां रामछक्ष्मणाभ्यां शिवं भद्रमस्तु । तयो-ईन्सान् दूतो हितो रामस्य भनव्मीदं वनम् । एवं च कियमाणे को अवतां मध्ये राक्षसः किं बृते दृत्येवं बुवन् । बभक्ष पवनात्मजो रिपुवनमिति वक्ष्यमा-णेन संबन्धः । राधवाभ्यां सिवं हितो रामस्येति '६३१। चतुर्थी चाशिष्य—।२। ३।७३।' द्व्यादिना षष्ठी-चतुष्यों ॥ २२८ अहि-काठ्ये--द्वितीयेऽधिकार-काण्डे स्रक्षण-रूपे तृतीयो वर्गः,

६७३-विर्लुलित-पुष्प-रेणु-किपशं
प्रशान्त-कलिका-पलाश-कुसुमं
कुसुम-निपात-विचित्र-वसुधं
स-शब्द-निपतद् द्रुमो्त्क-शकुनम्॥ शकुन-निनाद-नादि-ककुब् विलोल-विपलायमान-हरिणं हरिण-विलोचना्ऽधिवसतिं

विलुलितेत्यादि — कीद्दर्श वभक्ष । विलुलितानां पुष्पाणां रेणुभिः किपशं पिक्षम् । प्रशान्ता अवस्त्राः किलकाः प्रकाशानि पत्राणि कुसुमानि च यत्र । कुसुमानां निपातेन विचित्रा वसुधा यत्र । सङ्गार्वेनियति क्षितुं मेरुका उन्मनसः शक्तना यत्र । शक्तनानां प्रवायसानानां निनादेन नादिताः संजातपादाः ककुभो दिशो यत्र । विलोला व्याकुला विपलायमाना हरिणा यत्र । हरिणस्पेव लोचने यसाः सीताया तस्या अधिवसान निवासम् ॥

वभञ्ज पवनाऽऽत्मजो रिपु-वनम् ।॥ १३१ ॥

इत्यनभिहिताधिकारः ॥

इति श्री-जयमङ्गलाऽऽय्यया व्याख्यया समलंकते श्री-भहिकाव्ये द्वितीयेऽधिकार-काण्डे लक्षण-रूपे तृतीयः परिच्छेदः (वर्गः), तथा लक्ष्य-रूपे कथानके 'उद्योकचिकाभङ्गो' नामाष्टमः

सर्गः पर्यवसितः।

नवमः सर्गः।

अथ प्रकीर्णकाः---

अम्रान्तरे प्रकीर्णकक्षोकानाह—

६७४-द्व-भङ्ग-ध्वनि-संविग्नाः कुवद्-पक्षि-कुलाः ऽऽकुलाः॥

अकार्षुः क्षणदा चर्यो रावणस्य निवेदनम् । ॥ १ ॥

द्वुमङ्गेत्यादि—क्षणदाचर्या निशाचर्यः । '२९३०। चरेष्टः ।३।२।१६।' राव-णस्य निवेदनमकार्षुः कृतवत्यः वस्यमाणप्रकारेण । द्व-भङ्ग ध्वनि-संविद्याः शास्ता-भङ्गशब्देन संवस्ताः । '१३७३। ओविजी भय चलनयोः ।' '३०१९। ओदितश्च ।८।२।३५।' इति निष्ठानत्वम् । कुवत्यक्षिकुलाकुलाः कृजद्भिः पक्षिकुलैः व्यस्तमा-ससाः। '१११५। कु शब्दे ।' आदादिकसस्य उत्रकादेशः ॥

१—प्रवेडिसिन् **अश्वलिलं** वृत्तम् । तल्लक्षणं तु—'यदिह न-जी- भ-जी श-ज-सुर्यः परार्क्र-विनिष् पति वृत्तरसाकरे अ**हकेदार** साह

६७५-'यर्दताप्सीच् छनैर् भातुर्, यत्राऽवासीन् मितं मरुत्।। यदांष्यानं हिमोसेण, भनक्तर्युपवनं कपिः ॥ २॥'

यदित्यादि यद्वनं भानुः शतैर्मन्दमताप्सीत् तपति स्म । हलन्तलक्षणा वृद्धिः । मरुत् मितं स्तोकमवासीत् वाति स्म । हिमोस्नेण शिशिररश्मिना आप्यानं वृद्धि नीतम् । प्यापतेः '८७३। लोपो न्योवेलि ।६।१।६६।' इति यलोपः ।

ओदित्वान्नत्वस् । तदुपयनं कपिभनिक्तः चूर्णयतीति निवेदनसङार्षुः ॥

६७६-ततो ऽशीति-सहस्राणि किङ्कराणां समादिशत् ॥ इन्द्रजित्-सुर् विनाशाय मारुतेः क्रोध-मूर्च्छितः॥३॥

तत इत्यादि—तिवेदनानन्तरमिन्द्रजित्सः रावणः । इन्द्रजितं सूत इति '२९७५। सत्सृद्धिष-।३।२।६९।' इत्यादिनानुपसर्गे किए । मास्तेर्हन्ततो विना-शाय । अशीतसहस्राणि समादिशत् समादिष्टनान् । किङ्कराणां किं कुर्वन्तीति '२९३५। दिवा-विभा—।३।२।२९।' इत्यादिना दच् । क्रोधमूर्व्छितः क्रोधोद्धतः । मुच्छैं: समुच्छाये वर्तमानस्वात्॥

६७७- शक्त्यृष्टि-परिघ-प्राप्त गदा-मुद्गर-पाणयः ॥

व्यश्चवाना दिशः प्रापुर् वनं दृष्टि-विषोपमाः. ॥ ४॥

शक्तीत्यादि—ते किङ्करा वनं प्राप्तः प्राप्तवन्तः । शक्तयादयः प्रहरण-विशेषाः पाणौ चेषामिति प्रहरणार्थेभ्यः परे निष्ठाससम्बौ भवतः । व्यक्षवानाः दिशो व्याग्नवन्तः । '१३४५। अञ्च व्यासौ' सौवादिकः । दृष्टिविपोपसा शुक्क-वत दृष्टेव विनाशयन्त इत्यर्थः ॥

६७८-दध्वान मेघ-वद् भीममादाय परिघं कपिः॥

नेदुर् दीप्तायुधास् तेऽपि तडित्वन्त इवा अम्बुदाः॥५॥

द्ध्वानेत्यादि—किपिसींमं परिषं भयानकमर्गठमातृत्य मेघवद्ध्वान ध्वन-ति सा। तेऽपि किङ्कराः तिडत्वन्त इवाम्बुदाः । नेदुः नदन्ति सा। किङ्कराणां कृष्णत्वात् मेघैः सादशं आयुधानां च तिडतेति ॥

६७९-किपना ऽम्भोधि-धीरेण समगंसत राक्षसाः॥

वर्षासूंद्धत-तोयौ्घाः समुद्रेणेव सिन्धवः ॥ ६ ॥

किपनित्यादि किपना अम्मोधिधीरेणाक्षोम्यत्वात्। राक्षसाः समर्गसत संगताः। '२६९९। समो गम्यृच्छि-।१।३।२९।' इत्यादिना तङ् छुङ्। यथा सिन्धवो नद्यः उद्धततोयोधाः उदिक्कजळपुराः समुद्रेण सङ्गच्छन्ते॥

६८०-लाङ्गलसंद्धतं धुन्वश्चंद्रहन् परिधं गुरुम्॥

तस्यौ तोरणमारुहा, पूर्व न प्रजहार सः. ॥ ७ ।

लाङ्क्सिस्यादि—स हन्मान् लाङ्कं पुन्छसुद्धतं बिक्सितं पुन्व न्।'१३३५। धून् कम्पने' इति स्वादो पटितः । परिवं गुरुं उद्दहन् तोरणसारुह्य तस्थो । न तु पूर्वं प्रजहार प्रहृतवान् द्धराणां पश्चाद् प्रहारित्वात् ॥ एते प्रकीर्णकाः ॥

इतःपरं सिचि वृद्धिमधिकृत्याह—

Ni.

६८१-अक्षारिषुः श्रराऽम्भांसि तस्मिन् रक्षः-पयोषराः, ॥

न चा ऽह्वालीन्, न चाऽब्राजीत् त्रामं कपि-महीघरः८

अद्भारिषुरित्यादि—तस्मिन् वने रक्षःपयोधराः रक्षांसि पयोधरा इत । शराम्भांसि शरान् अम्मांसीव । अक्षारिषुः क्षारितवन्तः । अरतिरक्षमेकः क्षरे-स्मृतज्ञवृत्तिरित्यादि प्रयोगेषु दश्यते । इह तु सकर्मको विवक्षितः । किपमेहीधर इय । न चाह्वालीत् न चलितवान् । द्वयोरिष '२२८४। अतो हलादेलंघोः ।॥' २।॥' इति विकल्पे प्राप्ते '२३३०। अतो ल्रान्तस्य ।॥२।२।' इति सिचि वृद्धिः। नाम्राजीत् न्नासं भयं च न जगाम । महीधरतुल्यत्वात् । '२२६८। नेटि ।॥२। भा' इति प्रतिषेत्रस्य '२२८४। अतो हलादेलंबोः ।॥२।७।' इति विकल्पिते '२२६७। वद-न्रज्ञ—।॥२।३।' इत्यादिना वृद्धिः ॥

६८२-अवादीत् तिष्ठतेत्युचैः, प्रादेवीत् परिषं कपिः॥

तथा, यथा रणे प्राणान् बहुनामंत्रहीद् द्विषाम् . ॥९॥

अवादीदित्यादि—तत उत्तरकारुं किपिलिष्टत मा प्रायध्वमिति उत्तरकारुं नवादीत् । पूर्ववहृद्धिः । तथा तेन प्रकारेण परिघं परिघेण प्रादेवीत् निजगीवते सा १ '५६२। दिवः कर्म च १९१४।४६।' इति परिघस्य कर्मसंज्ञा । दिवेः '२२६८। नेटि १७१२।४।' इति वृद्धिप्रतिषेधः । यथा बहुनां हिषां शत्रुणां प्राणाष्ट्रयप्रहीत् निगृहीतवान् । '२२८४। अतो हलादेः—१७१२।७।' इति विकल्पे प्राप्ते '२२९९। हयन्त-क्षण-श्वस्—१७१२।५।' इति प्रतिषेधः ॥

६८३-त्रणैरविमष् रक्तं, देहैः प्रौर्णाविषुर् भुवम् ,॥

दिशः शौर्णाविषुश् चा उन्ये यातुधाना भवद्-भियः १०

वर्णेरित्यावि —यातुषाना राक्षसा वर्णेः प्रहारमागैः रक्तं शोणितमविष्णः वसन्ति स्म । '२२९९। हयन्त-।७।२।५।' इति वृद्धिप्रतिषेषः । देहेर्सुवं प्रौणीविषः छादितवन्तः । अन्ये यातुषानाः भवद्भियः भवन्ती भीर्येवामिति भयात्प- छायमानाः । दिशः प्रौणीविषुः छादितवन्तः । '२४४९। ऊणीतिर्विमाषा ।७।२।६।' इति विकल्पः । कणीतेः '२४४७। विमाषोणीः ।१।२।३।' इत्यक्तिवएसे दृष्ट्यः । कित्वे गुणवृद्धिप्रतिवेषात् ॥

६८४-अरासिषुरा च्युतोत्साहा भिन्न-देहाः त्रियाऽसवः ॥ कपेर्रत्रासिषुर् नादान् मृगाः सिंह-ध्वनेरित्र ॥ ११ ॥

इति सिचि वृद्ध्यिकारः।

अरासिषुरित्यादि—च्युतोत्साहाः निरुत्साहाः अरासिषुः मृताः सा इति श्रव्हितवन्तः । यतः प्रियासवः प्रियप्राणाः । कपेः संबन्धिनो नादादत्रासिषुः त्रसाः । उभयत्रापि '२२६८। नेटि ।७।२।४।' इति प्रतिषिद्धोऽसो हलादेरिति विकल्पः ॥

इति सिचि वृद्यधिकारः ॥

इत इदप्रतिषेधमधिकृत्याह-

६८५-मायानामींश्वरास् ते ऽपि शस्त्र-हस्ता रथैः कपिम् ॥ प्रत्याववृतिरे हन्तुं हन्तव्या मारुतेः पुनः ॥ १२ ॥

मायानामित्यादि —अथानन्तरं राक्षसा ये दिशो गताः ते किषं हन्तुं पुनः
प्रत्याववृतिरे प्रतिनिवृत्ताः। मायानामीश्वराः प्रभवः। '३१५५। स्थेश-।३१२११०५।'
इति वरच्। '२९८१। नेड्विश कृति।७।२।८।' इति नेट । आर्धधातुकेत्यादिना प्राप्तस्वात् । रथेस्तत्र गताः सन्तः । शखहस्ताः शखाणि हस्तेषु येपामिति। हनि-कुशेत्यादिना रमेरीणादिकः नथन् । रथाः । अमि चमीत्यादिना शसेरीणादिकस्तन् ।
हसि-मृग्वद्यत्यादिना हसेस्तन् । तयोस्तितुत्रेत्यादिना इट्पतिपेधः । हन्तव्या
मास्तेरिति हन्मतो वधाद्दाः । '६२९। कृत्यानां कर्वरि वा।२।३।०१।' इति षष्टी।
'२२४६। एकाचः-।७।२११०।' इत्यादिना इट्पतिषेधः। हन्तेनमान्तेष्वनिद्वात्॥

६८६-तांझ् चेतव्यान् क्षितौ श्रित्वा वानरस् तोरणं युतान् ॥ जघानाऽऽधूय परिघं विजिघृक्षून् समागतान् ॥ १३॥

तानित्यादि—समुदिता एकसामेव वेलायां मया हन्तव्या इति वानरस्तोरणमाश्रितवान्।स तोरणं श्रिरवा तान् राक्षसान् विजिष्वश्चन् विग्रहीतुमिन्छ्न्।युतान् समुदितान्।समागतान् ढोकितान्। क्षितौ पृथिव्यां चेतव्यान् पुञ्जीकर्तव्यान्
ज्ञान हतवान्।परिधमाध्य परिश्राम्य। तत्र चेतव्यानिति '२२४६। एकाचः—७।२
१०।' इतीद्मतिषेधः। क्षिताविति '३३१३। किच्-कौ च संज्ञायाम् ।३१३।९७४।'
इति किच्। '३१६३। ति-तु-त्र—।७।२।९। इत्यादिना इस्मतिषेधः। श्रित्वा युतानिति '२३८५।श्रयुकः किति ।७।२।१९।' इति इस्मतिषेधः। विजिष्वश्चरिति '२६१०। सनि मह-गुहोश्च ।७।२।१९। इति । तत्र '२६०९। रुद-विद्—।१।२।८।' इति
सनः किच्वं '२४१२। महि—ज्या—।६।१।१६।' इति संप्रसारणं ढत्व-कत्व-षत्वानि॥

६८७—संजुघुक्षव आयूंषि ततः प्रतिरुरूषवः॥ रावणा॒ऽन्तिकमोजग्मुर् हत-शेषा निशा-चराः॥१४॥ संजुघुक्षव इत्यादि — तत उत्तरकालं ये हतरोषा निशाचराः ते संजुघुक्षव आयूंषि जीवितानि गोहितुमिच्छवः। गुहेः पूर्ववत्प्रतिषेधः। रावणान्तिकमाज-ग्मुः आगताः। प्रतिरुद्धषवः वक्ष्यमाणमर्थं कथितुमिच्छवः। अत्रापि पूर्ववत्प्र-तिषेधः। तत्र चकारेणोगन्तानां सनि समुचित्तत्वात्॥

६८८-'एकेन बहवः शूराः साऽऽविष्काराः प्रमत्त-वत् ॥

वैमुख्यं चकुमें' त्युंचैरूंचुर् दश-मुखा्डिन्तके. ॥१६॥

एकेनेत्यादि—वयं बहवः शूराः साविष्काराः साहंकारा अपि सन्तः एके-नापि कपिना हेतुभूतेन वैमुख्यं चक्रम पराङ्मुखत्वमनुष्ठितवन्तः प्रमत्तवत् मद्य-पानमत्ता इव । एवं च चित्तव्याक्षेपादुत्तमपुरुषे छिटि कृते '२२९३। कृ-स्-।७। २।१३।' इत्यादिना इद्मतिषेधः नियमित इति । एवं दशमुखान्तिके उचैरुषुः ॥ ६८९—मांसोपभोग-संशूनानुद्विशांस् तान्वेत्यं सः ॥

उद्घृत्त-नयनो मित्रान् मित्रणः स्वान् व्यसर्जयत् १६ मांसेत्यादि स दशमुखलानुहिमान् भीतानवेत्य ज्ञात्वा स्वानात्मीयान् मित्रणो व्यसर्जयत् प्राहिणोत् । कीदशांस्तान् । मांसोपभोगसंग्र्नान् मांसोपभोग्नेन स्थूलवर्ष्मणः । उभयत्रापि । '३०३९। श्वीदितो निष्ठायाम् ।७।२।१४।' इती-द्रप्रतिषेधः । तत्र श्वयतेर्यजादित्वात् संप्रसारणं '२५५९। हलः ।६।४।२।' इति संप्रसारणस्य दीर्घः । द्वयोरप्योदित्वान्निष्ठानत्वम् । उद्वत्तनयनो रोषात् निष्कान्ततारकः । '३०२५। यस्य विभाषा ।७।२।१५।' इतीद्रप्रतिषेधः वृतेरुदित्वात् । मित्रान् स्विग्धान् मित्रणः । '२०३६। ओदितश्च ।७।२।१६।' इतीद्रप्रतिषेधः । '३०१६। रदाभ्याम् ।८।२।४२।' इति निष्ठानत्वम् ॥

६९०-प्रमेदिताः स-पुत्रास् ते
सु-स्वान्ता बाढ-विक्रमाः॥
अ-म्लिष्ट-नादा निरगुः
फाण्टचित्राऽस्त्र-पाणयः॥ १७॥

प्रमेदिता इत्यादि—ते मिल्रणः सपुत्राः पुत्रैः सह निरगुः निर्गताः । '२४- ५८। इणो गा लुङ ।२।४।४५।' प्रमेदिताः स्निःधीभवितुमारब्धाः । आदिकमेणि निष्ठा । ततो '३०५४। विभाषा भावादिकमेणोः' इति प्रतिषेधः । इदपक्षे '३०- ५२। निष्ठा शीङ्—।१।२।१९।' इत्यादिना कित्त्वप्रतिषेधात् गुणः । सुस्वान्ताः स्वा-मिनि कल्याणमनसः । बाढविकमाः भृशपराक्रमाः अम्लिष्टनादाः विस्पष्टवादः मिल्रिणां वाग्मित्वाद् । फाण्टिचित्रास्त्रपाणयः यद्शुतमिष्टं कषायमुद्कसंपर्कमान्त्राद्विभक्तरसं ईषदुष्णं तद्रत्पप्रयाससाध्यत्वात् अनायाससाध्यं फाण्टिमित्युच्यते तेन चित्राणि रिक्ततानि अस्नाणि पाणो चेषामिति । स्नान्ताद्यः '३०५८। क्षुष्ध —।७२।१८।' इत्यादिना निपातिताः ॥